

मूल्य  
प्रथम संस्करण  
प्रकाशक

चारहू रुपये  
मई १९६१  
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली  
हिन्दी प्रिंटिंग प्रस दिल्ली

## आभार

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरे पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत साध प्रबंध का यत्किञ्चन परिवर्तित मुद्रित स्वरूप है। इस प्रयास के पूरे होने में जिन विद्वानों सज्जनों आरम्भीय जनों आलोचकों एवं कवियों की कृतियों में सहायता मिली है उन सबके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। विद्वान गुरुवर प्रो० जगन्नाथजी तिवारी अध्यक्ष हिन्दी विभाग आगरा कानिज आगरा के वात्सल्य एवं आभारों का मैं फिर आभारी हूँ जिनकी स्फूर्तिमयी सतत प्रेरणा में मैं केवल के अध्ययन में प्रवृत्त हो सका। साथ ही अध्यक्ष डा० हरबलालजी शर्मा अध्यक्ष हिन्दी मस्कुन विभाग अलीगढ़ विश्व विद्यालय अलीगढ़ का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनके पथप्रदर्शन प्रोत्साहन एवं स्नेह से यह शोध प्रबंध पूर्ण हो सका। इनके प्रतिरिक्त डा० हजारीप्रसादजी द्विवेदी डा० नगद जी तथा डा० सत्येन्द्रजी से भी समय-समय पर सत्परामर्श सत्ता रहा हूँ। अतः इनके प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ। डा० विजयन्द्रजी स्नानक डा० रामप्रकाशजी तथा डा० प्रमस्वरूपजी गुप्त ने भी बहुमुखी सहायता की है परन्तु सम्बन्ध की निकटता के कारण मैं इनके प्रति आभार प्रकट करने का साहस भी नहीं कर सकता। साथ ही इस ग्रन्थ को प्रकाश में लानेवाले राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली के व्यवस्थापकों के प्रति आभार प्रकट न कर ता क्या उचित होगा ?

अपनी समस्त भूतों भुटिया एवं यूनताभा के साथ भी यदि प्रस्तुत ग्रन्थ में सहृदय एवं मुष्ठी पाठकों को कुछ परिणाम हो सका तो मैं अपना प्रयत्न सफर समझूँगा।

‘आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्’।

निष्पत्ति (आभार)

रामनवमी स ० १८

२५ मार्च १९६१

—विजयपालसिंह

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग  
श्री वेम्पेटेसर विश्वविद्यालय

पूज्य पितृदेव  
श्री निहालसिंहजी  
को  
सादर सभक्ति समर्पित

## विषयानुक्रमशिका

प्राक्कथन	१-५
प्रथम परिच्छेद	
केगव का जीवन-वृत्त	६-६२
१ केगव की कृतियों में उपलब्ध जीवन सम्बन्धी सामग्री	७
रत्नबावनी	७
रसिकप्रिया	७
कविप्रिया	८
रामचरित्रा	१०
वीरसिंहदवचरित	११
विज्ञानगीता	१२
विवेचन	१२
निष्पत्ति	१५
२ केगव का उल्लेख करनेवाली अन्य रचनाएँ	१६
भूत गोसाइचरित	१६
कामरूप की कथा	१७
पराम्यशतक मयना देवशतक	१८
जनश्रुतिपां	१९
ऐतिहासिक ग्रन्थ	२३
खात्र रिपोर्ट—हिन्दी-साहित्य के इतिहास	२४
(क) खोज रिपोर्ट	२४
(ख) शिवसिंह सरोज	२४
(ग) मिश्रबाबु विनोद	२५
(घ) हिन्दी नवरत्न	२५
(ङ) हिन्दी साहित्य (डा राममुन्दरदास)	२५
(च) हिन्दी साहित्य का इतिहास (प्रा० रामचन्द्र शुक्ल)	२५
(छ) हिन्दी के कवि और काव्य	२५

(ज) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	२६
(झ) हिन्दी साहित्य (आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी)	२६
(ञ) आलोचनात्मक ग्रन्थ	२७

३ जन्मतिथि	३१
४ निवास-स्थान एवं काव्यक्षेत्र	३३
५ नाम	३५
६ जाति	३६
७ ऋण परिवर्धन	३७
८ केशव का पुरुष	३८
९ केशव के आध्यात्मिकता	४१
इन्द्रजीतसिंह	४६
वीरसिंहदेव	४६
१० केशव एवं बिहारी	४८
११ कुछ विशिष्ट व्यक्तियों से केशव का सम्बन्ध	५४
बीरबल	५५
राम प्रवीण	५५
रहीम	५५
टोहरमान	५६
पतिराम	५६
काममेन	५६
बन्धु	५७
बिठुलनाथ मोरवामी	५७
१२ शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान	५७
१३ स्वभाव एवं चरित्र	५८
१४ निधन	६१

### द्वितीय परिच्छेद केशव की रचनाएँ

६३-६९

१ केशव की रचनाएँ	६३
रतनबावनी	६४
रतिप्रिया	६८
(क) खोज रिपोर्	६४
(ख) रतिप्रिया की टीकाएँ	६७
नवनिर्गल	६८
रामचन्द्रिका	६८

(क) खोज रिपोर्ट	६६
(घ) रामचन्द्रिका की टीकाएं	७१
वविप्रिया	७१
(क) खोज रिपोर्ट	७१
(ख) वविप्रिया की टीकाएं	७५

छन्दमाला	७७
बीरसिंहदेवचरित	७८
विज्ञानगीता	८१
जहागौर-जस चन्द्रिका	८४

२ सविध रघुताण्ड	८५
रामातकुलमञ्जरी	८५
ममोषूट	८६
जमिनि की कथा	८७
हनुमान जयलौका	८८
वासि-चरित्र	८८
मानन्दनहरी	८८
रसतलित	८९
कृष्णलीला	८९
सगीत रत्नाकर पर भाष्य	९०

## तृतीय परिच्छेद केशवकालीन परिस्थितियां

९२-११६

१ पूर्वपीठिका	९२
राजनीतिक	९२
सामाजिक	९५
धार्मिक	९५
रामानुजाचार्य का श्रीसम्प्रदाय	९७
आचार्य रामानन्द	९७
दत्तात्रेयसम्प्रदाय	९८
मध्वाचार्य और मध्यसम्प्रदाय	९८
विष्णुस्वामीसम्प्रदाय	१००
निम्बाकरसम्प्रदाय	१००
वत्सलसम्प्रदाय	१०१
राधावल्लभ सम्प्रदाय	१०२

चैतन्यसम्प्रदाय	१०३
हरिदासी या सखीसम्प्रदाय	१०४
२ तत्कालीन समाज और संस्कृति का केनय के काव्य में प्रतिबिम्ब	१०५
(क) राजनीतिक	१०५
(ख) सामाजिक	१०६
(ग) धार्मिक	१०७
(घ) सांस्कृतिक	१०८
३ हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ एवं केनय	१०९
(क) आदिकालीन परिस्थितियाँ	१०९
(ख) भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ	१११
४ संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा एवं केनय	१११
(क) रससम्प्रदाय	११२
(ख) अलंकारसम्प्रदाय	११३
(ग) रीतिसम्प्रदाय	११४
(घ) वक्रावृत्तिसम्प्रदाय	११५
(ङ) ध्वनिसम्प्रदाय	११५

### चतुर्थ परिच्छेद

#### केशव का जीवन-दर्शन

११७-१३८

१ जीवन-दर्शन का स्वरूप	११७
२ दर्शन, भक्ति एवं धर्म का क्षेत्र	११८
३ केनय का जीवन-दर्शन	११८
४ अष्ट तत्वाव	११९
५ दर्शन	१२०
ब्रह्म (निगुण)	१२१
ब्रह्म (सगुण)	१२२
जीव	१२४
जीव भेद	१२८
अज्ञान की भूमिकाएँ	१२९
ज्ञान की भूमिकाएँ	१२९
मन	१२९
जगत्	१३०
माया	१३१
मुक्ति	१३२
नम-मुक्ति	१३३

६ भक्ति	१३४
महत्त्वानुभूति	१३४
निश्चल धाराधना	१३५
धनन्यता	१३५
नाम-धधार	१३५
वर्णाश्रम-निरपेक्षता	१३५
७ वप	१३६
वाह्यापार	१३६
ब्राह्मण-पूजा	१३६
भवतारवाद	१३७
वृष्णभक्ति	१३७
८ निष्कप	१३८

### पञ्चम परिच्छेद केशव का भाषायत्व

१३९-२४६

१ भाषायत्व का क्षेत्र	१३९
रसिकप्रिया—विषयानुक्रमणिका	१३९
कविप्रिया—विषयानुक्रमणिका	१४०
छन्दमाला—वर्गीकरण एवं परिवर्ण	१४२
रसिकप्रिया	१४३
(क) नायक भेद	१४६
(ख) नायिका भेद	१४७
कविप्रिया	१४३
(क) काव्य में दोष	१४३
(ख) कवि भेद	१४६
(ग) कवि रीतियाँ	१४६
(घ) अलंकार-वर्णन	१४६
२ भाषायत्व की पद्धतियाँ	१४८
३ रस निरूपण	१४९
भाव	१६०
अस्तश्रुति	१६१
धनजय	१६२
मम्मट	१६३
विश्वनाथ	१६३
जगन्नाथ	१६४



भावों के प्रकार	११६
विभाव-लक्षण एवं भेद	११८
भरत का लक्षण	११८
उद्दीपन विभाव	१७२
भनुभाव तथा सात्त्विक भाव	१७३
भनुभाव	१७३
सात्त्विक भाव	१७६
स्वायीभाव	१७७
अभिवादीभाव	१७८
हास्यरस	१८३
कटुणरस	१८६
रोद्ररस	१८८
वीररस	१८०
भयानकरस	१८०
बीभत्सरस	१८१
अद्भुतरस	१८२
गमरस	१८२
४ अलंकार निरूपण	१८४
स्वभावोक्ति	१८५
विभावना	१८५
सामान्य विभावना	१८६
असम विभावना	१८६
हेतु	१८७
विरोधान्नास या विरोध	२०३
विरोध	२०६
भाक्षण	२०८
क्रम	२११
गणना	२१३
ग्रामी	२१३
प्रेमालंकार	२१४
दत्त	२१६
सूक्ष्म	२१८
सेवा	२१८
निदर्शना	२१८

ऊर्जालकार	२१६
रसकलकार	२१६
अर्थान्तरन्यास	२२१
व्यतिरेक	२२३
अपह्नुति	२२४
उक्ति	२२४
वक्रोक्ति	२२४
अन्योक्ति	२२६
अधिकरणोक्ति	२२६
विशेषोक्ति	२२६
सहोक्ति	२२६
आज्ञस्तुति आज्ञानिन्दा	२२७
अभिनव	२२८
पर्यायोक्ति	२२८
मुक्त	२२९
समाहित	२३०
सुसिद्ध प्रसिद्ध एवं विपरीत	२३१
रूपक	२३२
अद्भुत रूपक	२३३
विदग्ध रूपक	२३४
रूपक-रूपक	२३५
दीपक	२३६
दीपक के भेद	२३७
प्रहेलिका	२४१
परिवृत्त	२४२
उपमा	२४४
५ निष्पद्य	२४६

### षष्ठ परिच्छेद

#### केगाव की काव्य-कला

२४७-३३६

#### १ केगाव की रस-व्यञ्जना

२४८

रसराजत्व

२४८

शृंगार का रसराजत्व

२४८

(अ) सयोग शृंगार

२४९

(आ) विप्रसम्भ-शृंगार

२५३

पूर्वराग	२५३
मान	२५३
करण	२५४
प्रवास	२५४
विरह दशाएं	२५५

वीररस	२५६
रोद्ररस	२६०
भयानकरस	२६०
वीमत्तरस	२६१
करुणरस	२६१
हास्यरस	२६३
मदभुतरस	२६४
शान्तरस	२६४
निष्पद्य	२६५

## २ केगव की झलकार-योजना

उत्प्रेक्षा	२६५
उपमा	२७२
रूपक	२७३
संदेह	२७४
परिसंख्या	२७५
विरोधामास	२७६
प्रतिघमाक्षिप	२७६

## ३ केगव का प्रकृति चित्रण

धालम्बन-रूप में	२७७
उद्दीपन रूप में	२७८
सपमान-रूप में	२८४
मानव भावनाओं के रूप में	२८७
उपदेशात्मक रूप में	२८८
निष्पद्य	२८९

## ४ केगव की प्रशंसा पदुता

गाहिम्य में प्रवेश का स्थान	२८९
रामचन्द्रिका	२९२
वीरसिंहदेवचरित	२९६
विशालगीता	२९७

जहाँगीर-अस नमिका	२६६
रतनबावनी	३००
रसिनप्रिया कविप्रिया एवं छन्दमाता	३००
५. केराव का चरित्र चित्रण	३०१
राम	३०२
सीता	३०४
सदमण	३०५
भरत	३०७
रावण	३०७
वीरसिंहदेव	३०८
रतनसेन	३०८
निष्पत्य	३१०
६. केराव के संवाद	३१०
७. केराव की छन्द-योग्यता	३१६
छन्दों के प्रकार	३१६
केराव की छन्दावली	३१७
छन्दों में केराव की मौलिकता	३१८
रस एवं भाव के अनुरूप छन्द	३२१
८. केराव का भाषाधिकार	३२४
संस्कृत का प्रभाव	३२४
बुन्देलखण्डों का प्रभाव	३२४
भगधी का प्रभाव	३२५
विदेशी शब्दों का प्रयोग	३२६
शब्दों की लोढ़-भरी	३२८
भसाधारण शब्दों का प्रयोग	३२८
मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ	३३०
मुहावरे	३३०
लोकोक्तियाँ	३३१
९. भोज, माधुर्य एवं प्रसादगुण	३३१
माधुर्य	३३१
भोज	३३२
प्रसाद	३३२
१०. शब्द-गतिता	३३३
११. शोध	३३४

## सप्तम परिच्छेद

केशव का आदान प्रदान

३३७—३७०

## १ आदान

क रामचन्द्रिका एवं सस्कृत ग्रंथों में भाव-साम्य

३३७

(१) प्रसन्नराघव

३३८

(२) हनुमत्ताटक

३४०

(३) वादम्बरी

३४३

(४) नैषधीयचरितम्

३४६

(५) मृच्छकटिकम्

३४७

(६) अम्मारवराभाषणम्

३४७

ख विज्ञानगीता एवं सस्कृत ग्रंथों में भाव-साम्य

३४८

(१) प्रबोधचन्द्रोदय

३४८

(२) योगवामिष्ठ

३४९

ग रसिकप्रिया एवं सस्कृत ग्रंथों में भाव-साम्य

३५१

(१) साहित्यदपण

३५३

(२) रसानवसुधाकर

३५४

(३) अनगरग

३५४

(४) कामसूत्र

३५५

घ कविप्रिया एवं सस्कृत ग्रंथों में भाव-साम्य

३५७

(१) वृत्तरत्नाकर

३५७

(२) भलवारखोसर

३५७

(३) काव्यकल्पलतावृत्ति

३५८

(४) नीतिगानक

३६०

ङ केशव और उनके पूर्ववर्ती एवं समकालीन हिन्दी-कवि

३६०

(१) जामसी एवं केशव

३६०

(२) तुलसी एवं केशव

३६१

(३) मूर एवं केशव

३६२

## २ प्रदान

३६३

केशव तथा मृणाल

३६३

केशव तथा जयवर्तसिंह

३६४

केशवदास तथा भिखारीदास

३६४

केशव तथा भक्तिराम

३६५

केशव तथा देव

३६५

केशव तथा पद्माकर

३६७

केशव तथा रीतिकाल के अर्थ कवि	३६८
केशव तथा प्राच्यनिक कवि	३६९
निष्कर्ष	३७०

### अष्टम परिच्छेद

केशव का हिन्दी-साहित्य में स्थान	३७१-३७६
परिशिष्ट	

सहायक ग्रन्थ-सूची	३७७
(१) हिन्दी	३७७
(२) संस्कृत	३७८
(३) अंग्रेजी	३८०
(४) हस्तलिखित	३८१
(५) पत्रिका	३८१
(६) रिपोर्ट	३८१
नामानुषमणिका	३८२
ग्रन्थानुषमणिका	३८८
स्थानानुक्रमणिका	३८४
शुद्धिपत्र	३८५









## प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य का मध्ययुग साहित्यिक चमत्कार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इस युग में कतिपय ऐसे भी कलाकार हुए जिन्होंने कवि-रस के साथ-साथ भाषाय की भी पन्था प्राप्त की। उनमें सर्वोच्च स्थान आचार्य केशवमान का है। प्रस्तुत गाथ प्रबंध में उनकी केशव के साहित्य का काननिक एवं व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। अमृत रोडिकान का साहित्य आचार्यत्व की छाया में पर्याप्त हुआ है, विशेषकर केशव का साहित्य तो आचार्यत्व का एक वास्तविक अभिव्यक्ति ही है। अतः केशव के आचार्यत्व एवं कविता ज्ञान ही दोनों का अन्तर्गत विवरण करने पड़े हैं।

एक काननिक शोध में पूर्वाग्रहों का स्थान नहीं है किन्तु आदर-पूर्ण पूर्वाग्रहों में कोई बच भी देने सकता है। मुझ में आ पूर्वाग्रह रहा है किन्तु कुछ भिन्न प्रकार का। अनेक विद्यार्थी-जीवन में मैंने केशव का विभिन्न प्रकार की आलोचनाएँ पढ़ी हैं। वे सब पढ़कर बुद्धि का भ्रान्ति में पड़ना बड़ा ही स्वाभाविक था। श्री भ्रान्ति ने वास्तविकता का ज्ञान ही और उम्र में हूँ था। एक गाथा में हूँ मैं सुन उठती रही है कि केशव के परवर्ती तो सौ वर्षों में केशव का जसा सम्मान रहा आधुनिक युग में आचार्य वह सम्मान क्यों हा गया? यह आश्चर्यजनक बात हुई कि केशव का साहित्य मध्ययुगीन साहित्य है। उसका मान्यता आज में सबसे भिन्न है जो केशव के लगभग दो सौ वर्षों बाद ज्यों के त्यों बन रहा। उन मान्यताओं का हमारी आलोचना मध्ययुग की अन्तर्गत आलोचना या अधिक परिवर्तन था। व मान्यता मध्ययुग के आगे थी। उन मान्यताओं का अन्तर्गत मुझे तो केशव के महत्त्व का नतमस्तक हाव-स्वीकार करता रहा और आज का युग जो उन मान्यताओं में अधिक सहानुभूति नही रखता केशव के महत्त्व का तिरस्कार करता है। निश्चय ही इस महत्त्व तिरस्कार में आधुनिक आलोचकों में सहानुभूति ह्रास का अभाव है। अतः वे अटक गए हैं। केशव का युग का उसकी परम्परा की तथा उस युग एवं परम्परा का मान्यताओं का अन्तर्गत महानुभूति का साथ यदि फिर में उनके साहित्य की परत की जाए तो निश्चय ही निम्न केशव के रूप में निकलेगा। बस यही मेरा पूर्वाग्रह था और गाथा करते-करते आ मैं इस नही छोड़ पाया। इतिहास प्राचीन साहित्य-परम्परा एवं प्राचीन मान्यताओं के सहार में केशव के साहित्य का परम्परा की भण्टा की है। इस परम्परागत सम्मान के साथ में केशव का निम्न अधिकतम सहानुभूति दन के लिए प्रस्तुत रहा है किन्तु इस सहानुभूति का उच्छेदन प्रयास मन नहीं किया।



### प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य का मध्यम साहित्यिक चरित्र का अर्थ यह प्रत्यक्ष नहीं है। इस युग में कवि-जन एक ही धारा में बहने के साथ-साथ अन्धकार का भी प्रदीप प्रज्वालीत है। उनमें सर्वोच्च स्थान आचार्य काव्यमान का है। प्रमुख गुरु प्रवचन में नहीं केवल के साहित्य का चरित्र एक ही चरित्र प्रमुख काल का प्रत्यक्ष किया गया है। समस्त साहित्य का साहित्य आचार्य का अर्थ में प्रवचन हुआ है, विचार-वर्णन का साहित्य का आचार्य का अर्थ का अन्धकार अन्धकार ही है। अन्धकार के आचार्य एक ही चरित्र का अर्थ का अन्धकार अन्धकार ही है।

एक वैज्ञानिक छात्र म पूछा—'हो का स्पष्ट नहीं है किन्तु चार-बहुत पूछा—'हो म कोई वच भा कने सकता है । मुन्म मा पूछ-पत्र रहा है किन्तु कुछ निम्न प्रकार का । माने विद्यार्थी-आवन म मैने क'व का विभिन्न प्रकार का भाव-वनाग पडा थी । व सब पत्रकर बुद्धि का भ्रान्ति में पडता बडा हा स्वाभाविक था । एना भ्रान्ति न वास्तविकता का निगमा की धीर उमम हुम्न रना । एक गवा मर हुम्न में सुग उल्ला रहा है कि क'व क परपत्री ने सौ बपों म क'व का बसा सम्मान रहा प्राधुनिक युग म क'व क बहु समान्य क्यों हा गया ? यह क'व-उन्नत के बात हुम्न कम ? क'व का साहित्य मध्ययुगीन साहित्य है । उसका मानद' माद म मवया निम्न थ जा क'व क लगभग दस सौ बपों बा' क्यों क र्यों बने रह । उन मानद'ओं का हमारा धाना मध्ययुग की प्रवृद्धा धम्मास मा अधिक परिवर्तन था । व मानद' मध्ययुग क प्राण थ । उन मानद'ओं का धम्मासो युग ता क'व के महत्त्व का नष्टमन्त्र हाकर स्वाकार करता रहा धीर क'व का युग जो उन मानद'ओं में अधिक सहानुभूति नहा रखता क'व क महत्त्व का तिर स्वार करता है । निचय ही इस महत्त्व-तिरस्कार म प्राधुनिक धानोबकों म सहानुभूति उत्त्व का अभाव है । अत के अन्क गण हैं । क'व क युग का उसकी परम्परा को तथा उस युग एव परम्परा क मानद'ओं का धानाकर सहानुभूति के साथ यदि फिर स उनके साहित्य की परल की जाए ता निचय ही निचय क'व के पक्ष म निकलेगा । बस यही मेरा पूजाग्रह था धीर शोध करते-करते भी म इस नहीं छाड पाया । इसलिए प्राचीन साहित्य-परम्परा एव प्राचीन मानद'ओं के सहारे मन क'व के साहित्य की परलने की चेष्टा की है । इस परम्परागत सम्मान के साथ म क'व क लिए अधिकतम सहानुभूति देने के लिए प्रयुक्त रहा हू किन्तु एम सहानुभूति का अन्त्यव प्रयास मने नहीं किया ।

वेशव सम्बन्धी जितनी मासोचनाएँ अब तक प्रकाशित हुई हैं उनमें से कुछ तो पत्र-पत्रिकाओं में मुन्ति छोटे छोटे लेखों के रूप में मिलती हैं कुछ भूमिकाओं के रूप में तथा कुछ स्वतन्त्र पुस्तकाकार के रूप में उपलब्ध हैं। इनमें से छाटे छोटे लेख तो आकार में सीमित होने के कारण वेशव के साथ पूर्णतया काम नहीं कर सकते हैं। परन्तु उन लेखों में लिखित मासोचनाएँ न तो ख़तरा हैं और न उनमें वेशव के सर्वांगीण स्वरूप को समझने का जो प्रयत्न किया गया है। भूमिकाओं में प्रायः राग एवं मय राग का स्वर सुनाई पड़ता है। राग तथा मयराग के आधारों को अपनाकर बलवत् वाणी रचनाएँ दिग्गज उद्घाटित कर सकते हैं। शोध-वर्ता उनका उपयोग भी कर सकती है परन्तु वे गाय की आवश्यकता समाप्त नहीं करती। इनके अतिरिक्त पुस्तकाकार मासोचनाओं में वेशव की वाक्य-शक्ति वेशव एक अध्ययन वेशव-शास्त्र तथा आचार्य वेशवदास आदि प्रमुख है। ये सभी ग्रन्थ अपना अपना महत्त्व रखते हैं तथा इन्होंने वेशव के अध्ययन का पर्याप्त गति प्रदान की है। परन्तु इनके रचयिताओं का प्रयत्न सराहनीय है। यद्यपि इन ग्रन्थों में वेशव के प्रतिपाद्य विषयों में बहुत कुछ अज्ञान को लक्षित किया गया है फिर भी उनके सामोपाग वजन में बहुत कुछ योगदान रहा गया है। अधिकांश लेखकों का ध्यान वाक्य-शक्ति को स्पष्ट करने की ओर ही रहा है उन्होंने वेशव के जीवन वृत्त रचनाओं जीवन-दान आचार्यत्व आदान प्रधान तथा हिन्दी-साहित्य में उनके स्थान आदि का सम्यक् निरूपण नहीं किया। परन्तु इन सभी ग्रन्थों को ध्यान में रखकर उनकी पूर्ति के लिए ही प्रस्तुत शोध प्रबंध (Thesis) में वेशव के सर्वांगीण स्वरूप का अध्ययन उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है। मेरा यह दावा नहीं कि यह शोध प्रबंध वेशव के विषय में अन्तिम फल है परन्तु मुझ पर विश्वास है कि यह शोध प्रबंध वेशव के अध्ययन को अग्रसर करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा। प्रस्तुत शोध प्रबंध साठ परिच्छेदों में विभक्त किया गया है।

प्रथम परिच्छेद में वेशव के जीवन-वृत्त का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वेशव की जन्मतिथि ज्ञाति अथवा कुछ एवं आध्यात्मिकताओं का विवेचन आत्मक परिचय दत्त हुए वेशव और बिहारी के सम्बन्ध का प्रमाणपूर्ण विवेचन उपस्थित किया गया है। इनके अन्तर कुछ विविध व्यक्तियों के साथ वेशव के सम्बन्ध एवं उनके साम्प्रदायिक और व्यापक हारिक ज्ञान की चर्चा आती है। इस प्रामाणिक जीवन-वृत्त का प्रस्तुत करने में अग्रज ने अत्यन्त साहस के रूप में वेशव की ममत्त्व रचनाओं तथा यहि गान्धर्व के रूप में राज रिपोर्टों मजिस्ट्रेटों हिन्दी-साहित्य के अनेक इतिहासों तथा आचार्यत्व आदान तथा का महाराज लिखा है।

द्वितीय परिच्छेद में वेशव की रचनाओं का परिचय दिया गया है और उन्नीस प्रमाण निरूपण पर विचार किया गया है। उपलब्ध विभिन्न प्रमाणों के आधार पर अनेक अल्प लिखित प्रतिलिपियों का उपयोग करते हुए वेशव के नाम पर उपलब्ध रचनाओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है—

१. केराव की अमरिगु रचनाएँ

२. केराव की मरिगु रचनाएँ

३. केराव नामधारी अरुग कविगु की रचनाएँ

रतनबावनु रसिनप्रियः नसुगिख बारहभासा रामचरित्रः कविप्रिया छन्दमाला बीररसिहदेवचरित तथा विज्ञानगाता अमरिगु रूप से केराव की रचनाएँ हैं। रामालकृतमजरी सन्देहारपद रचना है। इम सन्देहास्पद वय मे रखने का प्रधान भाधार यही है कि शिवसिहसरोज म उदित रामानकृतमजरी के दो छन्द इस रचना म उपनय नही होते। इनके अतिरिक्त सात अरुग रचनाएँ हैं जिनके विषय म मेरा निश्चय है कि य रचनाएँ केराव की नही बिन्ही दूसरे केराव नामधारी कविगु की हैं।

तृतीय परिच्छेद मे केराव की पुषवर्गी एव समकालीन परिस्थितियों का विन्ले पणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनका केराव मे सम्बन्ध बतसाया गया है। प्रारम्भ म राजनीतिक सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियाँ पर प्रकाश डालते हुए केराव क काव्य पर युग का प्रतिबिम्ब चित्रित किया गया है। तदुपरान्त हिन्दी-साहित्य की आदिवासीन तथा भक्तिवासीन प्रवृत्तियों का विन्लेपण करते हुए केराव के साथ उनका सम्बन्ध तथा पित किया गया है। अन्त मे सरकृत-काव्यशास्त्र के सभी प्रमुख मन्त्रागु का विवेचन करते हुए उनका केराव पर प्रभाव निलालाया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में केराव के जीवन-दान का अध्ययन आता है। परिस्थितियों के समान ही कलाकार का स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी साहित्य निर्माण म एव प्रमुख तत्व है। किसीके व्यक्तित्व के वास्तविक परिचय का अर्थ है जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण का परिचय। इस व्यापक अर्थ म मे लेखक ने दान भक्ति एव धर्म तीन पन्ना को चुन लिया है। केराव के जीवन दान का इस ढंग का अध्ययन प्रायः प्राप्त नही या।

पञ्चम परिच्छेद में केराव के आचार्यत्व का वैज्ञानिक एव गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। केराव के आचार्य रूप म उनका मूल्यावन तीन दृष्टियों मे किया गया है।

१. ऐतिहासिक दृष्टि मे—हिन्दी साहित्य के काव्यशास्त्र का सर्वांगीण विचार करने वाला वे ही प्रथम आचार्य हैं।

२. अध्ययन प्रौढ़ता की दृष्टि मे—गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त म इम निर्णय पर पहुचा ह कि केराव का अध्ययन अत्यन्त व्यापक है। सरकृत-साहित्य शास्त्र की प्राचीनतम एव नवीनतम मान्यताओं का उह पूर्ण परिचय है। उनके प्रत्येक लक्षण मे अद्भुत गम्भीरता एव उगाहरणों मे अनूठी मरलता के दान हाते हैं।

३. मौलिकता की दृष्टि मे—केराव के प्रत्येक लक्षण पर उनकी मौलिकता की छाप है। ये आठ मौलिकर प्राचीन मान्यताओं की स्वीकार नही करते। उनके अपने दृष्टिकोण हैं जिनके कारण उनके आचार्यत्व का स्वम्प बधी सीध मे कुद हू गया है। इम सम्बन्धी मान्यताओं म उहीने रम-ध्वनिवाद का अनुसरण

बिया है तथा चलकार क्षेत्र में प्राचीन चलकारवादी भाषायों का। अनेक स्थानों पर वह मे वडे भाषायों की मान्यताओं को छोड़कर अपनी नवीन मायता उपस्थित करने का उनका साहस है। अनेक स्थानों पर जहाँ उह भाषा भाषायों की मायताओं में बल दिखाई देता है वे उन सभी मान्यताओं का परिचय कराते हैं। उन्होंने रसिकप्रिया में अधिक मौलिक दृष्टि अपनाई है। कविप्रिया में शिक्षक की परिचयारम्भता अधिक है। जिस गम्भीर विनयेप शास्त्रक पद्धति का केनव के भाषायत्व की परख के लिए स्वीकार किया गया है उसपर उनकी समस्त शास्त्रीय मान्यताओं की समीक्षा इस प्रबंध में प्रथमवर्ष की। अतः भाषायत्व के दो प्रमुख पक्ष रस एवं चलकार-विवेचन को जो चर्चकर अभीष्ट पद्धति पर विवेचन किया गया है। यद्यपि मैं केनव के समस्त भाषायत्व को इस शैली पर नहीं परख सका किन्तु सदा एव नूतन दृष्टि में केनव-साहित्य के अध्ययन का एव द्वार मेरे इस प्रयास से खुला है ऐसा मेरा विश्वास है।

केनव का प्रायः चलकारवादी कहा जाता है। लेकिन उन्हें दण्डी नामक कण्ट के समान चलकारवादी नहीं मानता। इस मान्यता का उसने तर्कपूर्ण समर्थन प्रस्तुत किया है।

केनव के लक्षणा में अनेक आलोचकों ने गड़बड़ी पाई है। विन्न अपनी विनयेप शास्त्रक पद्धति में जैसे इन गड़बड़ कहे जान वाले स्थलों में ही केनव की गम्भीरता एवं मौलिकता का सर्वाधिक पता पाया है। मैंने अपने इस विश्वास का तर्कपूर्ण प्रतिपादन करने का प्रयत्न किया है कि केनव के समान समस्त मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में कोई ग्रीक एवं मौलिक भाषा नहीं हुआ।

प्रत्यक्ष मैंने केनव के अनेक लक्षणा व मौलिक धर्म प्रस्तुत किए हैं परन्तु उन सबमें सरलता और गम्भीरता का ध्यान अवश्य रखा है।

पठ परिच्छेद में केनव के भाष्यपक्ष का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कुछ विषय कवि के सामान्य पक्ष का ध्यान में रखकर विवेचित किए गए हैं जैसे रस-व्यञ्जना चलकार-योजना एवं प्रवृत्ति-चित्रण। कुछ उनके कविरूप के विषय पक्ष प्रबंध-कविरव को ध्यान में रखकर लिए गए हैं जैसे प्रबंध-मदता चरित्र चित्रण एवं सदा। इनके साथ ही साथ ध्यान-योजना एवं भाषाविचार पर भी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। केनव के कविरूप में भावुकता का प्रथम चमत्कार एवं पांडित्य के पूर्ण दर्शन होते हैं। केनव गूर तुलसी की परम्परा की अपेक्षा संस्कृत के परवर्ती काव्य-परम्परा की बड़ी में हिन्दी के कवि हैं।

सप्तम परिच्छेद में केनव के ज्ञान प्रज्ञान का विवेचन किया गया है। इस परिच्छेद में ज्ञान प्रज्ञान के अनेक पक्षों को नहीं लिया गया केवल भाव-साध्य को ही गहरा बनाया गया है। भाव-साध्य के द्वारा ही यह निश्चयन का प्रयत्न किया गया है कि केनव

अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से किम प्रकार प्रभावित हुए और अपने परवर्ती साहित्य को उन्होंने कहाँ तक प्रभावित किया है ? आगन म बिगेपकर रामचन्द्रिका विज्ञानगीता रसिकप्रिया एवं कविप्रिया स सखन कविया एवं आचार्यों के ग्रन्थों में भाव-साम्य के अनेक स्थल लिखमाए गए हैं। इसके अतिरिक्त जायमा मूर तुलसीसे भी भाव-साम्य दिखनाया गया है। 'प्रगन म भी रीतिकाल के कविया और आचार्यों पर कंगव के ऋण का निरूपण एवं आधुनिकयुग पर उनके छायाभासा का वणन है।

अन्तिम एक अष्टम परिच्छेद म कंगव का हिन्दी-साहित्य म स्थान निर्धारित किया गया है। कंगव हिन्दी-साहित्य म एक महत्वपूर्ण स्थान रखत हैं। उनके महत्व का कई पदों का ध्यान म रखकर विवेचन किया गया है। कवि के दो धरातन हैं प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति। दोनों धरातनों पर विभिन्न दृष्टियां म कंगव का स्थान निर्धारित करते हुए मैं इस निगम पर पहुँचा हूँ कि कंगव का स्थान समस्त मध्यकालीन हिन्दी काव्याचार्यों म सर्वप्रथम है। कवित्व की दृष्टि से उनका स्थान मूर तुलसी के अनन्तर है। यदि कबल कनापस की दृष्टि स विचार करें तो वे उनम भी आगे बढ़ जाते हैं।



## प्रथम परिच्छेद

### केशव का जीवन-वृत्त

महाकवि केशवदास निर्विवाद रूप से दरबारी कवि थे। और किसी भी दरबारी कवि के सम्बन्ध में यह आशा की जा सकती है कि उसका जीवन-वृत्त अवश्य उपलब्ध होगा। उन भक्त कवियों की बात दूसरी है जो 'बीह प्रकृत अन गुल गाना सिर धुनि गिरा लागि पछिताना' के सिद्धान्त को मानकर स्वान्त मुखाय<sup>१</sup> ही रचना करने हैं अथवा जो अपने इष्ट के साग्रिष्म को प्राप्त कर भौतिकता से परे इहलोक में ही परलोक की भावना रखते हैं। परन्तु महाकवि केशवदास जन्मे दरबारी कवि का जीवन-वृत्त आप बार में हो यह बात अवश्य आश्चर्य की है। हिन्दी के अधिकांश कवियों के जीवन वृत्त का प्रामाणिक विवरण प्राप्त न होने का कारण जहाँ एक ओर हमारे भारतीय राजा महा राजा और उनकी परम्पराओं में ऐतिहासिक मनोवृत्ति का अभाव है, वहाँ दूसरी ओर इन महाकवियों की कोरी अध्यात्म-धरता भी एक कारण है। वहना न होता कि आज भारतीय वाङ्मय के लिए यह बात भूषण न होकर दूषण ही है। सारे ही भारत के साहित्य के मूल में हमें इस दार्शनिक प्रवृत्ति का दृग्गन् होते हैं जो प्रवृत्ति से निवृत्ति सौमित्रता से असौमित्रता भौतिकता से आध्यात्मिकता अस्तित्व से सत् विवृति से प्रवृत्ति और अन्त से द्रव्य की ओर से जाने वाली है। संभव है केशव के जीवन के सम्बन्ध में अधिष्ठित प्रामाणिक सामग्री में मिलने के कारण में आभारमूलक यही प्रवृत्ति रही हो।

किसी कवि अथवा लेखक पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखते समय उसके जीवन वृत्त रचनात्मक आदि पर विचार करना एक परिपाटी-सी हो गई है। केशवदास को आलोचना भी इसमें अपवाद नहीं है और सभी आलोचकों एवं प्रबन्ध-लेखकों ने इन विषयों पर लेखनी बनाई है तथा यथाशक्ति उनका विवेचन किया है और निष्कर्ष भी निकाले हैं परन्तु यह एक बड़ा आश्चर्य की बात है कि कोई भी दो सत्य रूप से एकमत नहीं होसके। परिपाटी का निर्वाह सबने किया है और अन्त माध्य और अन्ति माध्य की कसौटी पर अपने निष्कर्षों का कसा भी है। अपने अपने मन की पुष्टि में ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं। इतना सब कुछ होना हूण जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में और क्या नवीन सामग्री प्रस्तुत की जाए यह किसी भी अनुमयाता के लिए गहरी हो सकती है। मेरा अपना विचार है कि ऐसा विषयों में केवल दृष्टिकोण का अन्तर रहता है। नीतता दृष्टि

१ रामायण भाष्यकण्ड पृ० १ नरककिशोर प्रेम सखनरु, गो गुणमोक्षण

२ रामायण भाष्यकण्ड, अन्ध ७ गोम्पायी गुणमोक्षण

कोण सत्य के अधिक निकट है यह कितना बड़ा कठिन है। केवल के जीवन सम्बन्धी इस सभी उपलब्ध वृत्त को पढ़कर मुझ मन्त्रों नहीं हुआ इसलिए मैं भी अपना दृष्टिकोण उनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्रस्तुत करता हूँ। अन्त साक्ष्य एवं वहि साम्य वाली लोक इतनी पिटी-सी हो गई है कि उसमें मुझ कुछ नीरसता-सी लगती है। इसलिए मैंने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए दूसरी परिपाटी का अनुसरण किया है। उनका जीवन-वृत्त निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित मामलों का आश्रय लिया गया है

### केवल की कृतियों में उपलब्ध जीवन सम्बन्धी मामलों

केवल की रचनाओं उनके विषय कान्धम और प्रामाणिकता के सम्बन्ध में आगे विचार किया जाएगा। यद्यपि केवल के जीवन की घटनाओं के ठीक-ठीक निर्धारण और विनियोजन के लिए यह सभी मामलों आवश्यक है फिर भी विस्तार भय और पुनर्निर्माण दोष-निवारण के कारण यहाँ मैं केवल उन्हीं रचनाओं और तत्-तत् स्थलों का उल्लेख करूँगा जिनका साक्षात् सम्बन्ध केवलदास जी के जीवन से है। कुछ आलोचकों ने उनकी रचनाओं में प्रक्षिप्ताश मानकर अपनी-अपनी मान्यताओं की सत्यता निर्माण की चेष्टा की है। ऐसे पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से किसी भी महाकवि का जीवन पक्ष धूमिल हो सकता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसलिए रचनाओं के प्रक्षिप्त अथवा वास्तविक भाग पर भी हमने यहाँ विचार नहीं किया है। हाँ जहाँ घटनाओं में उलट कर लगा है वहाँ उसे अवश्य स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

काल क्रम के अनुसार केवलदास जी की निम्नलिखित रचनाएँ हैं जिनमें उनके जीवन पर प्रकाश पड़ता है—

१ रतनबावनी २ रसिकप्रिया, ३ कविप्रिया ४ वारसिंहदेवचरित एवं ५ विज्ञानगीता।

### रतनबावनी

रतनबावनी में केवलदास जी ने अपने विषय में कुछ भा नहा लिखा। यहाँ तक कि इसका अन्य रचनाओं की भाँति रचना-काल भी नहीं दिया। इतना होना पर भी एतिहासिक घटनाओं के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप में उनकी जन्म तिथि निर्धारित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। काव्य के कलापक्ष भाषा अक्षरकार एवं छन्द आदि पर विचार करने में भी केवल की जन्म तिथि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'यह केवलदास जी की प्रारम्भिक रचना है।'।

### रसिकप्रिया

दूसरी रचना रसिकप्रिया है। यह ग्रन्थ रस निणय पर लिखा गया है परन्तु केवलदास जी ने कुछ छन्द ऐसे भी लिखे हैं जिनके द्वारा उनके जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है—

## प्रथम परिच्छेद

### केशव का जीवन-वृत्त

महाकवि केशवदास निर्विवाद रूप से दरबारी कवि थे। और किसी भी दरबारी कवि के सम्बन्ध में यह आशा की जा सकती है कि उसका जीवन-वृत्त अवश्य उपलब्ध होगा। उन भक्त कवियों की बात दूसरी है जो बौद्ध प्राकृत जन गुन गाना, सिर घुमि गिरा लागि पछिताना<sup>१</sup> के सिद्धान्त की मानकर स्वान्त मुखाय<sup>२</sup> ही रचना करते हैं भगवा जो अपने इष्ट के साक्षिण्य को प्राप्त कर भीतिवृत्ता से परे इहलोका में ही परलोक की भावना रखते हैं। परन्तु महाकवि केशवदास जैसे दरबारी कवि का जीवन वृत्त भ्रष्ट कार में हो यह बात अवश्य आश्चर्य की है। हिन्दी के अधिकांश कवियों के जीवन-वृत्त का प्रामाणिक विवरण प्राप्त न होने का कारण जहाँ तक और हमारे भारतीय राजा महा राजा और उनकी परम्पराओं में ऐतिहासिक मनोवृत्ति का भभाव है, वहाँ दूसरी ओर इन महाकवियों की बोरी अध्यात्म-परता भी एक कारण है। कहना न होगा कि आज भारतीय वाङ्मय के लिए यह बात भूषण न होकर दूषण ही है। सारे ही भारत के साहित्य के मूल में हम इस दामनिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं जो प्रकृति से निकृति लीबिबिता से भलीबिबिता भीतिवृत्ता का अध्यात्मिकता भ्रमत् से सत विकृति से प्रकृति और भ्रमत् से दूष की ओर के जाने वाला है। समय है केशव के जीवन के सम्बन्ध में अधिक प्रामाणिक सामग्री न मिलने के कारण में आपारमृत यही प्रवृत्ति रही हो।

किसी कवि अथवा लेखक पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखते समय उसके जीवन वृत्त रचनाओं आदि पर विचार करना एक परिपाटी-सी हो गई है। केशवदास की आलोचना भी इसमें अपवाद नहीं है और सभी आलोचक एक प्रवृत्ति-लेखकों ने इन विषयों पर लेखनी खलाई है तथा यथार्थता के आकाश निवेदन किया है और निष्कर्ष भी निकाले हैं परन्तु यह एक बड़ा आश्चर्य की बात है कि कोई भी दा लेखक रूप से एकमत नहीं होसके। परिपाटी का निर्वाह करने किया है और भक्त माध्य और बहिर्माध्य की बगोटी पर अपने निष्कर्षों को बताया भी है। अपने अपने मतों की पुष्टि में ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं। इतना सब कुछ होत हुआ जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में और क्या नवीन सामग्री प्रस्तुत की जाए यह किसी भी अनुमतिता के लिए संशय ही हो सकती है। मेरा अपना विचार है कि ऐसे विषयों में केवल दृष्टिकोण का अन्तर रहता है। नीचे दृष्टि

१ रामायण बालकाण्ड, पृ० १० नवकिशोर प्रेम सदानन्द, गो० गुणभोग्य

२ रामायण बालकाण्ड, पृ० ७, गोमयाजी गुणभोग्य

कीज सत्य के अधिक निकट है यह कहना बड़ा कठिन है। बेगाव के जीवन सम्बन्धी इस सभा उपलब्ध वृत्त को पकड़ कर मुन सन्नाय नहीं हुआ इसलिए म भी अपना दृष्टिकोण उनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्रस्तुत करता ॥। अन्य मास्य एवं वह मास्य वाली लोक इसनी पिनी-सी हा गई है कि उसमें मुन कुछ नारमता-मी लानी है। इसलिए मन अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए दूसरा परिपाटी का अनुसरण किया है। उनका जीवन-वृत्त निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित सामग्री का साध्य किया गया है

**बेगाव की कृतियों में उपलब्ध जीवन-सम्बन्धी सामग्री**

बेगाव की रचनाएँ उनके विषय कालक्रम और प्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्राण विचार किया जाएगा। यद्यपि बेगाव के जीवन की घटनाएँ के ठीक-ठीक निर्धारण और विवक्षणा के लिए यह सभी सामग्री आवश्यक है फिर भी विस्तार भय और पुनर्गति दोष-निवारण के कारण यहाँ में बेगाव जहाँ रचनाएँ और तत्काल स्थलों का उल्लेख किया जा रहा है। साक्षात् सम्बन्ध बेगावजी के जीवन से है। कुछ छात्रों ने उनकी रचनाओं में प्रशिक्षण मानकर अपनी-अपनी मान्यताओं की समीक्षा करने की चेष्टा की है। ऐसे पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण में किसी भी महाकवि का जीवन-पत्र घुमिल हो सकता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसलिए रचनाओं के प्रशिक्षण अपना वास्तविक भाग पर भी हमने यहाँ विचार नहीं किया है। हाँ जहाँ घटनाओं में उनका-कर लगा है वहाँ उस सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

काल क्रम के अनुसार बेगावजी की निम्नलिखित रचनाएँ हैं जिनमें उनके जीवन पर प्रकाश पड़ता है—

१ रत्नबावनी २ रसिकप्रिया ३ कविप्रिया ४ बीरमहिदेवचरित एवं ५ विनायगीता।

**रत्नबावनी**

रत्नबावनी में बेगावजी ने अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा। यहाँ तक कि इसका अन्य रचनाओं की भाँति रचना-काल या नहीं दिया। इतना जान पर भी ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप में उनकी जन्म तिथि निर्धारित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है। काव्य के अन्तर्गत भाषा अन्वय और अन्य भाषा पर विचार करने में भी बेगाव का जन्म-तिथि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यह बेगावजी की आरम्भिक रचना है।<sup>१</sup>

**रसिकप्रिया**

दूसरी रचना रसिकप्रिया है। यह गद्य रूप में लिखी गई है परन्तु बेगाव राम जान कुछ अन्य ऐसी भाषा में लिखे हैं जिनके नाम उनके जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है—

"नदी बेटये तीर जह तीरए सुमार'य,  
नगर ओझछो बहु बस, धरनी-तल में घम्य।  
दिन प्रति जहं बूनी सह, जहां बया भय बान,  
एक सही बेशय सुकवि जानत सकल जहान ॥' १

इन्द्रजीतसिंह का उत्स्वर्ग करते हुए वे सिखते हैं कि उनकी भाषा से इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ—

'तिन कवि केशवदास सों, कीहों घम-सनहु  
सब सुख ब करि यों बह्यो, रसिकप्रिया करि वेहु ॥' २

### कविप्रिया

कविप्रिया में कवि ने विनोय रूप से अपने जीवन पर प्रकाश डाला है। सम्पूर्ण द्वितीय प्रभाव जीवन-वृत्त सम्बन्धी सामग्री में प्रोतप्रोत है इसमें कवि ने अपने वन पूर्वजों तथा अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कुछ ग्रन्थ वालों का उल्लेख किया है—

"ब्रह्मा जू के विनय त प्रगट भए सनकारि।  
उपजे तिनके वित्त त सकल सनावड़ आदि ॥१॥  
परसुराम भृगु-नन्द सब तिनके पाय पजारि।  
बए बहत्तर घाम तिन उत्तम विप्र विचारि ॥२॥  
जगपावन बेंकुण्ठपति रामचन्द्र इहि नाम।  
मयुरा-मंडल में बए तिहें सात त घाम ॥३॥  
सोमवश जवहुस कलस त्रिभुवनपाल नरेस।  
फेरि बए कलिनाल पुर तेई तिनाह मुदेस ॥४॥  
कुभकार उहसहुस प्रगटे तिनके बस।  
तिनकें देवानन्द सुत उपज कुस अवतस ॥५॥  
तिनकें सुत जयदेव जग भाये पृथ्वीराज।  
तिनकें दिनकर मुकुलमुत प्रगटे पंडितराज ॥६॥  
दिल्लोपति अलायदी कीग्री कृपा अपार।  
तीरथ गया समेत जिन अवर करे बह्वार ॥७॥  
गया गजाधर सुत भए तिनकें ध्यानगंधर।  
जयानन्द तिनकें भए, विद्याजुत जगवद ॥८॥  
भए त्रिविक्रममिथ सब तिनकें पंडितराय।  
गोपाचलगढ़ बुर्गपति तिनके धूजे पाय ॥९॥

१ रसिकप्रिया, नक़्क प्रेम पृष्ठ ६ १

२ रसिकप्रिया, पृष्ठ १, प्रथम प्रकाश

भावसम तिनके भए जिनके बुद्धि अपार ।  
 भए सुरोत्तम मिथ सब पद दरसन अवतार ॥१०॥  
 भार्ताहि सों रोष करि जिन जोसो बिसि चारि ।  
 ग्राम बीस तिनको दये राना पाय पक्षारि ॥११॥  
 तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग कीहैं हरि हरिनाथ ।  
 सोवरपति सजि और सौ भूतिन घोड़यो हाथ ॥१२॥  
 पुत्र भए हरिनाथ के हस्तवत्त सुभवेय ।  
 समा साहि सग्राम की ओते गढ़ा असेय ॥१३॥  
 तिनको वसि पुराण की दोही राजा इन्द्र ।  
 तिनके कागीनाथ सुत सोभे बुद्धिसमद ॥१४॥  
 जिनको मधुकरसाह नृप बहुत करयो सनमान ।  
 तिनके सुत बलभद्र ग्राम प्रगटे बुद्धिनिधान ॥१५॥  
 भार्ताहि ते मधुसाहि नृप जिनप सुग्यो परान ।  
 तिनके सोदर द्वय भए केगवदास कल्याण ॥१६॥  
 भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास ।  
 भाषा कबि भो मंत्रमति, तिहि कुल केगवदास ॥१७॥<sup>१</sup>

अर्थात् ब्रह्माजी के चित्त से सनकादि प्रवृत्त हुए और उनके चित्त से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। भृगुनाथ परापुराण ने उन्हें उत्तम ब्राह्मण समझकर चरणों का प्रक्षालन करके बहुरात्र ग्राम दिए। जगन्नाथन बहुलपति या रामचन्द्रजी ने मधुरा-मंडल में उन्हें सात सौ ग्राम दिए। फिर सोमवर्ग के मधुकुलश्रेष्ठ तथा त्रिभुवनपालन श्रीकृष्ण महाराज ने भी कलियुग में उन्हें वही मधुरा-मंडल देना प्रमाण किया। उनके वंश के उद्भव कुल में कुमार उत्पन्न हुए। उनके पुत्र अपने वंश की शोभा देवानन्द थे। उनके पुत्र जयदेव और जयदेव के पुत्र पद्मिनाराज स्निह्य हुए। उनपर दिल्ली का बादशाह अराउदीन खाने कृपा रसता था। उहाँ गया सहित मनक तापी की यात्रा की थी। उनके पुत्र आनन्दकर गया गयावर हुए और उनके पुत्र अमानन्द हुए जो विद्वान् और जगन् प्रतिष्ठित थे। उनके पुत्र पद्मिनाराज त्रिविधम मिथ्य हुए। उनके परो की पूजा गोपाचन बिने के राजा न की थी। उनके पुत्र भावार्मा हुए जो बड़ा बुद्धिमान थे। भावार्मा के पुत्र शिरोमणि मिथ्य हुए जो पद्म दाना के माना अवतार ही थे। मानमिह पर शोध प्रकट करने वहनि चारा दिशाया को जीता और राणा ने पर धोकर बीस ग्राम प्रदान किए। उनको भगवान ने अग्रप्रसिद्ध हरिनाथ पुत्र दिया जिन्होंने तामरपति को छोड़ और किसी के साथ भूतकर भी हाथ नहीं पलाया। हरिनाथ के शुभ वध दास कृष्णवत्त हुए जिनको राजा रघु ने पुराण की वृत्ति प्रमाण की। उनके पुत्र बुद्धि के समुद्र कागीनाथ हुए जिनका राजा मधुकरसाह न बडा

“नदी बेटवे तीर जह तीरथ सुगारथ,  
नगर छोड़्यो बहु बस, घरनो-सस में धन्य।  
दिन प्रति जह दूनो लह, जहा दया घर बान,  
एक सहा केनय मुख वि जानत सकल जहान ॥”

इन्द्रजीतसिंह का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि उनकी भाषा से इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ—

‘तिन कवि बेशकबास सौं, की-हौं धम सनहु  
सब सुख ब करि यों कह्यो, रसिकप्रिया करि देहु ॥’

### कविप्रिया

कविप्रिया म रवि ने विनोद रूप में अपने जीवन पर प्रकाश डाला है। सम्पूर्ण द्वितीय प्रभाव जीवन-वृत्त सम्बन्धी सामग्री से ओतप्रोत है इसमें कवि ने अपने बग पूर्वजों तथा अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कुछ अन्य बातों का उल्लेख किया है—

ब्रह्मा भू के विनय त प्रगट भए सनकादि ।  
उपजे तिनके चित्त त सकल सनावड़ आदि ॥१॥  
परसुराम भृगु-नन्द सब तिनके पांय प्यारि ।  
दए बहतर प्राम तिन उत्तम विप्र विचारि ॥२॥  
जगपावन बहुकृपति रामचन्द्र इहि नाम ।  
मयूरा मंडल में दए तिहें सात ॥ प्राम ॥३॥  
सोमना जदुल बलस त्रिभुवनपाल नरेस ।  
केरि दए कलिकास पुर तेई तिनहि सुदेस ॥४॥  
बृमवार उद्दसकुल प्रगटे तिनके बस ।  
तिनके देवानन्द सुत उपज कुल अचलस ॥५॥  
तिनके सुत जयदेव जग धापे पुण्यवीराज ।  
तिनके दिनवार मुकुसुम प्रगटे पंडितराज ॥६॥  
दिस्नीपति अस्तायदों कीन्हौ कृपा अपार ।  
तीरथ गया समेत जिन अकर बरे धनुवार ॥७॥  
गया गजाघर सुत भए तिनके भानदर ।  
जयानन्द तिनके भए, विद्यामृत जगधर ॥८॥  
भए त्रिविक्रममिथ सब तिनके पंडितराय ।  
गोपाचसगढ़ कुपति तिनके पूजे पाय ॥९॥

१ रसिकप्रिया, नक्षत्र प्रेम पृष्ठ ६ १

२ रसिकप्रिया, पृष्ठ १, प्रथम प्रकार

भावसम तिनको भए जिनके बुद्धि अपार ।  
 भए सुरोत्तम मिथ तब पद-चरसन अथतार ॥१०॥  
 मानसिह सौ रोष करि जिन जीती बिसि चारि ।  
 ग्राम बीस तिनको दये राना पांय पखारि ॥११॥  
 तिनको पुत्र प्रसिद्ध जय की हँ हरि हरिनाथ ।  
 सोपरपति तजि घोर सौ भूलिन छोड़्यो हाम ॥१२॥  
 पुत्र भए हरिनाथ के कृष्णवत् सुभवेय ।  
 सभा साहि संप्राप की जीते यदा असेय ॥१३॥  
 तिनको बसि पुरान की दोही राजा इन्द्र ।  
 तिनको काशीनाथ सुत सोभे बुद्धिसमद्र ॥१४॥  
 जिनको मधुकरसाह नृप बहुत कर्षी सनमान ।  
 तिनको सुत बसभद्र दुभ प्रगटे बद्धिनिधान ॥१५॥  
 बालहि ते मधुसाहि नृप जिनप सुग्यो परान ।  
 तिनको सोदर द्वय भए बैरावदास कल्याण ॥१६॥  
 भाया बीसि न जानई जिनके कुल को दास ।  
 भाया बबि भो मंभवति, तिहि कुल के गवदास ॥१७॥<sup>१</sup>

अर्थात् ब्रह्माजी के चित से सनकादि प्रकट हुए और उनके चित से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। मृगुन परापुराम ने उन्हें उत्तम ब्राह्मण समझकर चरणों का प्रक्षालन करके बहत्तर ग्राम दिए। जगपावन बहुष्पति श्री रामचन्द्रजी ने मयुरा-मंडल में उन्हें सात सौ ग्राम दिए। फिर सोमवर्ग के यदुकुलश्रेष्ठ तथा त्रिभुवनपानव श्रीकृष्ण महाराज ने भी कलियुग में उन्हें कहीं मयुरा-मंडल देश प्रदान किया। उनके वंश के उद्देश्य कुल में कभवार उत्पन्न हुए। उनके पुत्र अपने वंश की गोमा देवान थे। उनके पुत्र जयदेव और जयदेव के पुत्र पंडितराम दिनकर हुए। उनपर दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन बड़ी कृपा रखता था। उहाने गया सहित अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। उनके पुत्र भानुदकर गया गयावर हुए और उनके पुत्र जयान हुए जो विष्णु और जगन प्रतिष्ठित थे। उनके पुत्र पंडितराम त्रिविक्रम मित्र हुए। उनके परा की पूजा गोपाधर कित्त के राजा ने की थी। उनके पुत्र मावगर्मा हुए जो ब्रह्म बुद्धिमान थे। मावगर्मा के पुत्र गिरोमणि मित्र हुए जो परा दाना के माना अवतार ही थे। मानसिह पर जोष प्रकट करके उन्होंने चारा दिग्भाषा की जीता और राणा ने पर धोकर बीस ग्राम प्रदान किए। उनको भगवान न जग-प्रसिद्ध हरिनाथ पुत्र दिया जिन्होंने तोमरपति को छोड़ और किसी के साथे भूलकर भी हाम नहीं पनाया। हरिनाथ के दुभ वेप मासे कृष्णवत् हुए जिनको राजा रद्र ने पुराण की वृत्ति प्रदान की। उनके पुत्र बुद्धि के समुद्र काशीनाथ हुए जिनका राजा मधुकरसाह ने यदा



“नदी बेटवे तोर अह तोरय सुगारम्य,  
नगर भोइछो बहुत बस, धरनी-तल में धन्य।  
बिन प्रति जहं कुनो सहे, जहाँ बया भववान,  
एक तहाँ केगव सुकवि जानत सकल जहान ॥”<sup>१</sup>

इन्द्रजीतसिंह वा उत्तरेख करते हुए ये लिखते हैं कि उनकी धाना से इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ—

“तिन कवि केगवरास सौ, कीहों धम-सनहु,  
सब सुख द करि यों बह्यो, रसिकप्रिया करि बहु ॥”<sup>२</sup>

### कविप्रिया

कविप्रिया भ कवि ने विशेष रूप से अपने जीवन पर प्रकाश डाला है। सम्पूर्ण द्वितीय प्रभाव जीवन-वृत्त सम्बन्धी सामग्री में भोतभोत है इसमें कवि ने अपने वंश पूर्वजों तथा अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कुछ अन्य बातों का उल्लेख किया है—

बह्यो जू के बिनय स प्रगट भए सनकावि ।  
उपजे तिनके बिस ते सकल सनावडु छारि ॥१॥  
बरसुराम भृगु-नन्द सब तिनके पाँय पछारि ।  
बए बहुतर घाम तिन उत्तम बिष विचारि ॥२॥  
अगपावन बकुलपति रामचन्द्र इहि नाम ।  
भयुरा-भंडल में बए तिहें सात स घाम ॥३॥  
सोमवग जइकुल कलस त्रिभुवनपाल मरेस ।  
केरि दए कलिकाल पुर तेई तिनहि सुदेस ॥४॥  
कुंभकार उहेसकुल प्रगटे तिनके भंस ।  
तिनकें डेवानन्द मुत उपजे कुल भयतस ॥५॥  
तिनकें मुत जयदेव जग धापे पुष्योराज ।  
तिनकें बिनकर सुकुलमुत प्रगटे पडितराज ॥६॥  
दिलोपति बरलाखरी कीन्हों कृपा अपार ।  
तीरय गया समेत जिन छकर करे बह्यार ॥७॥  
गया गजधर मुत भए तिनकें आनन्दबंद ।  
जयानन्द तिनकें भए, विद्याजुत जगबंद ॥८॥  
भए त्रिविक्रममिथ सब तिनकें पंडितराज ।  
गोपाचलगढ़ दुगपति तिनके पूजे पाय ॥९॥

१ रसिकप्रिया, नवम प्रेम पृष्ठ ६ १०

२ रसिकप्रिया सूत्र १, प्रथम प्रकाश

भावसम तिनको भए जिनके बुद्धि अपार ।  
 भए सुरोत्तम मिथ सब पट-बरसन अवतार ॥१०॥  
 मारोसहस्रो रोप करि जिन जीती बिसि पारि ।  
 ग्राम बीस तिनको बडे राना पाय पत्तारि ॥११॥  
 तिनको पत्र प्रसिद्ध जग को हँ हरि हरिनाथ ।  
 तोवरपति तजि और सो भूसि न छोडयो हाथ ॥१२॥  
 पुत्र भए हरिनाथ के इन्दवत् सुभवेष्ट ।  
 सभा साहि संधाय की जीते सदा असेष्ट ॥१३॥  
 तिनको बलि पुरान की दीही राजा इन्द्र ।  
 तिनको कानीनाथ सुत सोभे बुद्धिसमद ॥१४॥  
 जिनको मधुकरसाह नृप बहुत करयो सनमान ।  
 तिनको सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धिनिधान ॥१५॥  
 बालहि से मधुसाहि नृप जिनप मुम्मी परान ।  
 तिनको सोवर द्वय भए केगवदास कल्याण ॥१६॥  
 भाया बोलि न जानई जिनके कुल की दास ।  
 भाया बलि भो मंदमति, तिहि कुल केगवदास ॥१७॥

अर्थात् ब्रह्माजी के चित्त में सनकादि प्रकट हुए और उनके चित्त से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई। भृगुनाथ परगुराम ने उन्हें उत्तम ब्राह्मण समझकर चरणा का प्रक्षालन करके बहुतरंगम दिए। जगपावन बहुष्ठाति श्री रामचन्द्रजी ने मयुरा-मदन में उन्हें सात सौ ग्राम दिए। फिर सोमवर्म ने यदुकुलधेष्ठ तथा त्रिभुवनपातक श्रीहरण महाराज ने भी बलिपुत्र में उन्हें वही मयुरा-मदन देण प्रदान किया। उनके वंश के उद्दय कुल में कमलार उत्पन्न हुए। उनके पुत्र अपन वंश की गाथा देवानन्द थे। उनके पुत्र अय्येव और जयवं के पुत्र पतिराज दिनकर हुए। उनपर दिल्ली का बाग्याह भलाबहीन बड़ी कृपा रत्न था। उन्होंने गया सहित अनन्त तीर्थों की यात्रा की थी। उनके पुत्र धानकर गया गंगापर हुए और उनके पुत्र जयानन्द हुए जो मिर्जा और जयन प्रतिष्ठित थे। उनके पुत्र पठितराज त्रिविक्रम मिथ हुए। उनके परों की पूजा गोपावन किन के राजा न की थी। उनके पुत्र भावार्मा हुए जो यह बुद्धिमान थे। भावार्मा के पुत्र निरोमणि मिथ हुए जो पट्ट दानों के भागों अवतार हो थे। मानमिह परबोध प्रवृत्त करके उन्होंने चारों सिंघाषा को जीना और राणा न पर धाकर बीस ग्राम प्रदान किए। उनको भगवान न जगत्प्रसिद्ध हरिनाथ पुत्र दिया जिन्होंने तोयरपति को छोड़ और किमी के भागे भूतकर भी हाथ नहीं फैलाया। हरिनाथ के शुभ वधवाने वृष्णवत्त हुए जिनको राजा ने पुरान की वृत्ति प्रदान की। उनके पुत्र बुद्धि के समुद्र कानीनाथ हुए जिनका राजा मधुकरसाह न बडा

सम्मान किया। उनके बुद्धिमान पुत्र बलभद्र मिश्र से घाल्यावस्था से ही मधुकरसाहू ने पुराणों को सुना। बलभद्र मिश्र के दो भाई भी थे—एक तो स्वयं केशवदास तथा दूसरे कल्याणदास। जिनके कुल के दास भी भाषा का प्रयोग नहीं करते थे, उसी कुल में भाषा कवि भद्रमति केशवदास उत्पन्न हुए।<sup>१</sup>

आगे के परिचय से प्रतीत होता है कि केशव का बड़ा सम्मान था और वे बड़े निस्पृह थे—

‘इन्द्रजीत तासों कहाँ मांगन माँझ प्रयाग।  
माग्यो सब दिन एकरस कीज कृपा सभाग ॥’  
‘यों ही कह्यो जु बीरबर माँगि जु मनमें होइ।  
माग्यो सब दरबार में मोहिन रोके कोइ ॥  
गुरुवरि माग्यो इन्द्रजित तन मन कृपा बिचारि।  
ग्राम बए इकबोस सब ताके पाँय पलारि ॥  
इन्द्रजीत के हेत सब राजा राम मुजान।  
माग्यो मन्त्री मित्र क ‘कैसबदास’ प्रमान ॥’<sup>२</sup>

अर्थात् केशवदास जी से जब इन्द्रजीत ने प्रयाग में कुछ मागने के लिए कहा तब उन्होंने उत्तर दिया कि आप इसी प्रकार कृपा करते रहिए। इसी प्रकार बीरबल ने भी कहा कि तुम्हारे मन में जो कुछ हो माग ला। तब यही मागा था कि आपके दरबार में मुझ कोई न रोके। इनको इन्द्रजीतमिहान अपना गुरु समझकर सत्ता तन-मन से कृपा की और इनके पर धीवर इकबोस गाव दान में दिए। इन्हीं इन्द्रजीतसिंह के हित राजाराम साहू ने केशवदास को अपना मन्त्री तथा मित्र समझकर आनर किया।

### रामचन्द्रिका

रामचन्द्रिका के द्वारा हम विषय परिचय नहीं प्राप्त होता। कविप्रिया में जो बिस्तृत परिचय दिया हुआ है उगी प्रकार अपना और अपने बग का मक्षिप्त परिचय इन ग्रंथ में दिया गया है। किसी नवीन घटना का उल्लेख नहीं किया—

“तनादध जाति गुनादध है जगतिइ गुड सुभाउ।  
कृत्स्नदत्त प्रसिद्ध ह अहे मिश्र पंडितराउ ॥  
गनम तो सत पाइयो बध वासिनाथ अगापु।  
असेस सास्त्र विचार्यो जिन जान्यो भत सापु ॥  
उपयो तिनके मगधति सुत कवि केसवदास।  
रामचंद्र की चरित्रका भाषा करी प्रकास ॥”<sup>४</sup>

१ कविप्रिया द्वितीय प्रभाव पृष्ठ २७०

२ कवि प्रिया, द्वितीय प्रभाव पृष्ठ १८२१

३ कविप्रिया, द्वितीय प्रभाव पृष्ठ १८२१

४ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश, पृष्ठ ४५, लाला मंगलानन्द

## वीरसिंहदेवचरित

वीरसिंहदेवचरित एक ऐतिहासिक काव्य है। इस काव्य में केगवदास के राजनातिक जीवन की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। रामशाह एवं वीरसिंहदेव में राज्य के कारण से ठन जाती है। युद्ध के बाद रघोरछा पर पुनर्दने लगते हैं। ऐसी कठिन परिस्थिति में केगवदासजी यह युद्ध को रोकने का प्रयत्न करते हैं और इस काव्य में उन्हें आश्रित सफलता भी मिलती है। व राजा रामशाह की आशा में वीरसिंहदेव के समीप आया प्रस्ताव लेकर जाते हैं। वीरसिंहदेव केशवदासजी का सम्मान करते थे। अतः उन्होंने सचि प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। प्रस्ताव के अनुसार रामशाह जीवन-मयन्त राय कर परन्तु मृत्यु के उपरान्त वीरसिंहदेव राजा बन। परन्तु माना कल्याणदे की प्रस्वीकृति न काय बिगाड दिया। इस प्रसंग में रामशाह कहते हैं—

बहा होय गुन मन क नाथ फाटपो दूध में आवे हाथ ।  
मगद पायक पैम बनाय पठये केगव मिथ बुलाय ॥  
जो कहूँ करि आवहु सुप्रमान यों कहि पठये राम सुजान ।  
गये बरेठो कहूँ बहु धने वीरसिंह व तीनों जने ॥<sup>१</sup>  
केगव मिथ कह्यो यह बात, मुनिप महाराज के तात ।  
राजनि तो बडे दीवान बिनती करत परम अज्ञान ।  
जब हम समय पाइह राज बिनती करिह नप सिरताज ।  
इतनी सुनि हिय मति सुख पाय, बडे पारे द्व नप जाय ।  
बोली तिए कवि केतवदास कियो नृपति यह बचन प्रकास ॥<sup>२</sup>

आन्वासन देते हुए वीरसिंह बोले—

जिहि भग होय बृहन् को भली तेहि भग मोहि चला त चलती ।<sup>३</sup>  
केगव ने वास्तविकता का प्रकट किया—

‘इ ठ बाट भली अनभली बलिबो कुसल कीन सी गली ।  
बडा एक दाहिनी घोर, सुखद दाहिनी बाइ घोर ॥’<sup>४</sup>

अन्त में जाकर राजा की कहना पडा—

राजहि मोहि करो इकठोर विविध विचारन की तजि घोर ।  
॥ मानी जो मान राज, सफल हाहि सबही के बाज ॥<sup>५</sup>  
इहि त्रिध प्रम कह्यो हरलाय कल्याणदे रानी सों जाइ ।  
हम न भते को जान भेब, जाने मिथ कि विरमिह देख ।

- १ वीरसिंह देवचरित दशम प्रकाश ६३ ६६ छन्द, काशी ना प्र मभा
- २ वीरसिंह देवचरित दशम प्रकाश ७५-७६ छन्द, काशी ना प्र मभा
- ३ वीरसिंह देवचरित दशम प्रकाश ८२ छन्द, काशी ना प्र मभा
- ४ वीरसिंह देवचरित दशम प्रकाश ८७-८८ छन्द, काशी ना प्र मभा
- ५ वीरसिंह देवचरित दशम प्रकाश ११६ ११७ छन्द, काशी ना प्र मभा

ज्यों ब्यों हूँ घटि बड़ि परि जाय, हमको बोल न दोऊ माय ।

इतनी कहत महामत दियो, बस्यानवे रानी को हियो ।

रानी कह्यो स पूछ काहि, तो धायहु सत भारत साहि ॥<sup>१</sup>

केशव न पुन समझाने का प्रयत्न किया परन्तु सब व्यर्थ रहा । युद्ध हुआ और वीरसिंहदेव विजयी हुए । यद्यपि केशवदास जी का हाथ युद्ध में था तथापि वे तो विपक्षी ही । फलतः वृत्ति और पदवी दोनों छिन गई । इस प्रसंग से हमें इतना ही ज्ञात होता है कि इन्द्रजीतसिंह तथा वीरसिंहदेव दोनों ही केशवदास जी का भादर करते थे ।

### विज्ञानगीता

विज्ञानगीता के प्रारम्भ में भी सक्षिप्त वक्ष परिचय दिया गया है—

तहाँ प्रकाश तो निवास निमि कृष्ण बस को ।

अशेष पंडिता गुणो सुदास बिप्र भक्त को ॥

सु कान्हीनाथ तस्य पुत्र विज्ञ कान्हीनाथ का ।

सनाथमकुम्भकार अंश था वेद व्यास को ॥<sup>१</sup>

सम्पूर्ण ग्रंथ में बराबर की स्पष्ट छाया है । सम्भवतः केशवदासजी के जीवन में भी इसका थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा था । ग्रंथ के अन्तिम छन्दों में पता चलता है कि विज्ञान गीता की रचना से वीरसिंहदेव प्रसन्न हो गए थे । परिणाम स्वरूप वृत्ति एवं पदवी जो पहले छीनी जा चुकी थी केशवदास के पुत्रों को पुनः प्राप्त हुई । बराबर उत्पन्न हो जाने के कारण नृपनाथ से अपने लिए कुछ न मागते हुए 'गंगा तट पर बास' की याचना की ।

'सुनि सुनि केशवराय सों रोहि बह्यो नृपनाथ ।

भांगि मनोरथ विल के बीजे सब सनाथ ॥

बलि बई पुरखानि की देऊ बालनि आसु ।

मोहि आपनी जानि क गंगा तट वेउ बासु ।

वृत्ति बई पदवी बई दूर करौ बुझ आस ।

जाइ करौ सकलत्र थी गंगातट बस पास ॥<sup>२</sup>

उपयुक्त बचन में प्रतीत होता है कि केशवदासजी निरपुह थे । 'बालनि दण्ड' से यह भी व्यजना है कि केशव का एक ही अधिकांशान्त थी । सबलत्र दण्ड से नात होता है कि विज्ञानगीता निम्न समय अर्थात् सं० १६६७ वि० में केशवदास जी की पत्नी अर्पित थी ।

### वियेसन

रत्नवायनी में खुदशरा प्रतिष्ठा है । हम पुस्तक की भाष्य पटनाया की केशव का

१ बरिनिष्ठ देवदत्त ग्रन्थ प्रकाश १२१ १२५ छन्द कारी ना० प्र० सभा

२ विज्ञानगीता प्रथम प्रकाश छन्द ५, वेददेवर प्रेम बम्बर

३ विज्ञानगीता प्रकाश प्रकाश छन्द ५५ ५७ वेददेवर प्रेम बम्बर

अन्य पुस्तकों में वर्णित घटनाओं में समानता नहीं पाई जाती। दूसरे प्रारम्भिक नोट छद्म। मवेश्य की छाप नहीं है। तीसरे नाम के अनुसार इस ग्रन्थ में बाबन छद्म होने चाहिए, परन्तु इस समय का पुष्पक प्राप्त हुई है उसमें अक्षर छद्म है।<sup>१</sup> अतः स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ में प्रामाण्य नहीं है। गेप रचनाओं में स्पष्ट श्रुति प्राप्त नहीं। यत्र-तत्र दो एक छद्म वहीं मिल जाय यह बात दूसरी है।

इन प्रामाण्यता में घटनाओं के सम्बन्ध में पारस्परिक विरोध है। इतिहास एवं रत्नवाचना की घटनाओं में वषट्प है। यही नहीं वीरमिहन्वचरित तथा कविप्रिया की घटनाओं में रत्नवाचना की घटनाएँ मिल नहीं पाती। मधुकर्गाह में मदन १६३२ वि० स १६८६ विक्रमात्क राज्या विषा।<sup>२</sup> अक्षर और मधुकर्गाह में परस्पर युद्ध के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने अलग अलग वन्दनाएँ की हैं—

१ मदन १६३८ विक्रमात्क मधुकर्गाह का विषा अक्षरधार चण्ड के कारण अक्षर धरु हया। परिणामस्वरूप खनीक आतया राजा अक्षर धरु कछवाहा का विद्याल बाहिना दकर मधुकर्गाह में विरुद्ध भया।<sup>३</sup>

२ अक्षर ने एक बार आजा दी कि कोई मरदार दरबार में तिनक नगाकर तथा माना पहनकर न आय। परन्तु मधुकर्गाह बड़ हा मट्टन धामिक राजा थे। वे ऐसी बातों को बर्क माननशाल में। उस दिन और भी तिमक-भुजा आदि लगाकर गाही दरबार में गए। यह दक्षर अक्षर प्रकट रूप में ता बहन प्रमल हुमा परन्तु हृदय में कट हुमा। उन मधुकर्गाह की यह घाल बहुत बुरी प्रनीत हुई।<sup>४</sup>

३ अक्षर ने एक बार मधुकर्गाह में आछट में चलन क लिए कया। मधुकर्गाह नृसिंह के उपासक थे अतः महाराज मधुकर्गाह ने निर्मोक्तापूर्वक उत्तर दिया कि मैं अपने इष्ट को मानन नहीं जा सकता। यह सुनकर मधुकर्गाह क्रुप रह गया। इस प्रकार धार और इन दोनों में अक्षर बदन गया। अतः में युद्ध अक्षर भावा हो गया।<sup>५</sup>

अतः ने रत्नवाचना में युद्ध का कारण कुछ और ही दिया है। परन्तु यह राज पूर्वी गान के अनुसार अक्षर है। वे रत्नवाचना के प्रारम्भ में ही कहते हैं—

‘राजाधिराज मधुकर्गाह नय यह विचार उदित भयव।

हिन्दुवान धम रक्षक समुभिषास अक्षर क गयव ॥’<sup>६</sup>

दिल्लीपति दरबार जाय मधुसाह मुद्रायव।

निमित्तारन के भाहि इन्दु गोभित धवि धायव ॥

१ दिल्ली मुद्रित छ० इतिहास द्वितीय पृष्ठ २४२

२ मुद्रितपत्र का मुद्रित श्रुतिमान गारंगान निवारी, पृष्ठ १२२

३ औरदा गवर्धन मध ६ अ तथा अक्षर अक्षर मधन मया पृष्ठ २२, अनुवाक अक्षर मध

४ मुद्रितपत्र का मधुसाह इतिहास गारंगान निवारी पृष्ठ १

५ मुद्रितपत्र का मुद्रित इतिहास गारंगान निवारी पृष्ठ १०७

६ रत्नवाचना पृष्ठ १ छन्द ४

इस विवरण से पता चलता है कि बेगवदास की युवावस्था अत्यन्त सुख से व्यतीत हुई। अन्त में वृद्धावस्था आई और बेगव ज्ञान विज्ञान की ओर घाटूँ हुए। विज्ञान गीता रचकर उन्होंने बीरमिहद्वय को मुनाई और स्वयं ससार में विरक्त होकर राजकवि पर स भववांग नेकर गंगा-सेवन के लिए चले गए। विज्ञानगीता के उपरान्त फिर लोक की सूची। अन्त एलखि साहि की प्रेरणा से सं० १६६६ विजयीय में जहागीर जस चन्द्रिका का रचना की। इस प्रकार केशवदास जी ने ग्रन्थों में उनका केवल सामान्य परिचय ही प्राप्त होता है। उसमें केशवदास जी का विस्तृत जीवन विवरण नहीं मिलता और न उनके कौटुम्बिक जीवन पर ही प्रकाश पड़ता है। सन् १६६६ विजयीय के उपरान्त केशवदास जी कहा रहे और क्या उन्होंने अपनी जीवन-सीसा समाप्त की। जीवन वृत्त सम्बन्धी इन प्रणियों का अनुमान के लिए भिन्न भिन्न विचार प्रकट किए गए हैं जिनका उल्लेख हम यथास्थान इसी अध्याय में करेंगे।

**केशव का उल्लेख करने वाली अन्य रचनाएँ**

जहाँ-जहाँ संभव हो सका है मैंने उन सभी पुस्तकालयों को देखा है जहाँ केशव सम्बन्धी सामग्री प्राप्य है परन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध में कोई उच्च कोटि की प्रामाणिक रचना देखने का नहीं मिली। केशवदास जी का उल्लेख करने वाली तीन रचनाओं को प्राधुनिक ग्रन्थों ने लिया है— मूल गोसाईं चरित नामरूप की कथा और देव गतक जिस बरारम शतक नाम से भी अभिहित किया जाता है। इनमें कविवर देवकृत बरारम शतक में ता बेगवदास का गग और बीरबल के साथ उल्लेख मात्र है। नामरूप की कथा के रचना काल का ठीक-ठीक पता नहीं है तथा मूल गोसाईं चरित की प्रामाणिकता ही सन्देहास्पद है। हम नीचे इन्हीं तीन ग्रन्थों में वर्णित बेगव सम्बन्धी विषय का गति प्त विवरण प्रस्तुत करेंगे —

**मूल गोसाईं चरित**

गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक गीत वेणी माधवदास कृत मूल गोसाईं चरित का उल्लेख है। 'गिरिनिह सरोज' में लिखा है कि —

इस पुस्तक में गोस्वामी जी महाराज के साथ चरित प्रकट होते हैं पर इस पुस्तक में (गिरिनिह सरोज में) इस विस्तृत कथा का कहा तक विस्तार नहीं।<sup>१</sup>

इसी प्रकार बेगवदास जी की रामचन्द्रिका का रचना-काल सं० १६४२ वि० के लगभग दिया गया है जबकि स्वयं बेगवदास जी सं० १६५८ वि० रामचन्द्रिका का रचना काल लिखते हैं—

१ भागद से उद्धृत माधव दास विचार।

जहागीर जस चन्द्रिका, की चन्द्रिका पत्र ॥

—जहागीर जस चन्द्रिका पृष्ठ २, इतिहासिक प्रणि कारीना प १५

२ शिवमिह मंगल पृष्ठ ४२७ जगन्निगोर प्रेम लालक (१९२६)

“सोरह स घट्ठावता कातिक सुदि सुधवार ।  
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब सीनी भवतार ॥”

केशवदास जो एक गोस्वामी तुलसीदास के मिलन में भी कल्पना में काम लिया गया है। प्रथम इस प्रकार है—

कवि केशवदास बड़े रसिया । घनस्याम सुकुल नभ के बसिया ॥  
कवि जानि क बरसन हेतु गये । रहि बाहिर सुधन भेजि दप ॥  
सुनि क जू गुसाइ कछो इतनी । कवि प्राकृत केसव भाषत धी ॥  
किरिगे भट केशव सो सुनि क । निज सुधना आपुइते गुनि क ॥  
जब सेवक टरेउगे कहि क । हों भेटि हों काल्हि बिनय गहिके ॥  
घनस्याम रह घासीराम रह । बतभड रह बिलाम सह ॥  
रवि राम-स चन्द्रिका रातिहि में । जुरे केसव जू अति घाटिहि में ॥  
सतमग जमा रसरग मची । बोट प्राकृत दिव्य विभूति बची ॥  
मिनि कसव की सकाष गयो । उर भीतर प्रीति की रीति रयो ॥”

इस प्रकार ‘कवि प्राकृत केसव भाषत धी’ का बोट सावर केशवदास जाने राम चरितमानस की प्रतिश्रुतिता में एक ही राति में रामचन्द्रिका का रचना का और दूसरे दिन प्रातः काल कागी के अन्त घाट पर आकर तुलसीदास जी से मिल । एक राति में ‘रामचन्द्रिका’ की रचना करना अनन्त प्रतीत होता है । साथ ही साथ अन्त साक्ष्य से भी इस कथन का पुष्टि नहीं होता ।

५—इसी ग्रन्थ के अनुसार सन १६४६ वि० के लगभग चित्रकूट में दिल्ली जान समय औरछा में तुलसीदास जी को केशव के प्रथम घर लिया । तब गोस्वामी जी का कृपा से बिना प्रयास के केशवदास जी प्रत्य-योगि में भुक्त होकर विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गए—

‘उठए केसवदास प्रत हती घेरेउ भुनिहि ।

उपरेउ बिनहि प्रयास चढ़ि विमान स्वरगहि गयो ॥”<sup>१३</sup>

इस कथन में ज्ञात होता है कि केशवदास जी की मृत्यु सन १६४६ के लगभग हो चुकी थी परन्तु केशवदास जी की रचनाओं से स्पष्ट है कि ‘रतनबावनी’ एवं ‘रसिक प्रिया’ के अतिरिक्त सारी रचनाएँ स० १६४६ वि० के बाद की हैं । अतः यह ग्रन्थ अप्रामाणिक है ।

कामरूप की कथा

कागी नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में कामरूप की कथा नामक प्रबंध-नाट्य का उत्तम मिश्रता है । ग्रन्थ के रचयिता हरिमेवक मिश्र हैं जिन्होंने अपने

१ रामचन्द्रिका पृष्ठ ५४५

२ मूल गोस्वामी चरित पृष्ठ २५, २६, दोहा ५८ की चौथाया

३ मूल गोस्वामी चरित पृष्ठ २६ दोहा १८



भाषा की आचार्य केशवदास का वंशज बतसाया है। उनकी वंश-परम्परा के उल्लेख का सारा यह इस प्रकार है—

घोरदा नगर में सनाढ्य-वर्णिय वृष्णवृत्त मिश्र रहते थे। वृष्णवृत्त जी के पुत्र काशीनाथ जी हुए। काशीनाथ जी के केशवदास एवं कल्याणदास नामक पुत्र हुए। कल्याणदास के पुत्र परमेश्वर हुए तथा परमेश्वर के पुत्र प्राणनाथ हुए। इसी प्राणनाथ के पुत्र हरिसेवक मिश्र थे जिन्होंने प्रस्तुत ग्रंथ का प्रणयन किया।<sup>१</sup>

यह न की जावश्यकता नहीं कि हरिसेवक मिश्र के इस प्रकाशित ग्रंथ में केशवदास जी का जीवन-वृत्त समझने में कोई विषय सहायता नहीं मिलती। अपने समय तक तो केशवदास जी ने अपने ग्रंथों में स्वयं ही वंशावली का उल्लेख किया है। अतः अन्तःसाक्ष्य से अधिक इस बहिःसाक्ष्य में जीवन-परिचय नहीं मिलता। हरिसेवक मिश्र यदि केशवदास जी के भाई कल्याणदास की वंश-परम्परा के साथ ही साथ केशवदास जी के पुत्र पौत्रादि का वर्णन कर देते तो हम केशवदास जी का जीवन-वृत्त समझने में पूरी पूरी सहायता मिलती। केशव तथा बिहारी के पिता पुत्र सम्बन्ध का विवादास्पद विषय स्पष्ट हो जाता। हो सकता है आचार्य केशवदास जी की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर ही हरिसेवक मिश्र ने अपना सम्यग् उनसे जाहने का प्रयत्न किया हो। केशव के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में मूल गोमाहंकरित की भाँति इस ग्रंथ में भी निराग होना पड़ता है।

### धराग्र्यशतक अथवा देवशतक

महाकवि देव की देवशतक नामक रचना में भी केशव-जीवन-व्यामर्श प्राप्त करने के लिए हमें निराग होना पड़ता है। एवं छंद में कविवर देव ने गगन बीरवन तथा केशव के काव्य का महत्त्व स्वीकार किया है, साथ ही साथ हम बात का भी प्रतिपादन किया गया है कि राधाश्रय से कभी किसी व्यक्ति का मुग्न नहीं मिलता है। यह छंद निम्न प्रकार है—

केशव से गगन से प्रसिद्ध कविवर स न  
कालहि गये न यथा कालही धितावहीं।  
साहित्य की सेवा तब नाहिन विचारि देखो,  
सोम की उमाहिन य पीछे पड़तावहीं।  
कविवर परम प्रवीन बीरवर वृत्तो  
यग की सुकविताई गाई ततपाथी ने।

१. स्तुम्भ ग्यानदक्षिणेश्वर वृत्त मिश्र सनाउड बर नगर ओम्पिछे बसक धारन वृत्त पुत्र १५।  
कल्याण पुत्र पुन जय कालिनाथ परधान निने सु प्रसिद्ध हैं केसवदास कल्याण।  
कवि कल्याण के सनय दुव परमेश्वर शिव नाथ निने पुत्र प्रसिद्ध दुव प्राणनाथ इन्दिराम।  
निने पुन हरमेश्वर कियो, यह ग्रंथ मुग्गद ॥

एक दत्त सहित बिलोने एक पत्त ही में  
एक भये भूत एक मौजि भारे हाथी न॥”

अर्थात् केगव गय एवं बीरबल अत्यन्त प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राजाया का सेवा में समर्पित करके व्यय ही समय नष्ट किया। अन्त में बाल द्वारा कबलित कर लिए गए। यह बात अक्षर्य सत्य है। अन्तिम बार पक्षियों में यथासंभव असकार का आश्रय लेकर कहते हैं कि बीरबल सेना के सहित एक क्षण में मृत्यु का मुख में चले गए, केगवदास जा को प्रत-योनि मिली और गय को भक्तर ने हाथी के नीचे कुचलवा दिया। तीनों का अन्त में बुरा हाल रहा। प्रस्तुत कवित्त से यही पता चलता है कि केगव अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे राज्याध्यय में रहते हुए उन्होंने जीवन-यापन किया तथा अन्त में प्रत-योनि को प्राप्त हुए। प्रत-योनि वाली बात देव ने जनश्रुति के आधार पर लिखी है।

उपयुक्त विवरण से निष्पन्न निष्कर्ष है कि ‘भूत गासाइचरित’ ‘कामरूप की कथा’ और ‘वैराग्यसतक’ में हम उस सामग्री के दान नहीं होते जिससे कि केगवदास जी के जीवन वृत्त को समझने में विद्यय सहायता मिले। इनमें केगवदास जी का नामास्तर मात्र है।

इस प्रकार के उत्तर अन्त्य कवियों की कृतियों में भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह का निम्न छन्द लिया जा सकता है यद्यपि इस छन्द में भक्तवर सूरदास जी की विद्यय रूप से प्रशंसा की गई है—

‘मतिराम भूषण बिहारी, नीलकण्ठ गण  
केनी गम तोष चित्तार्मान, कालिदास की।  
ठाकुर नवाज, सनापति गुरुदेव देव  
यजनेन घनानन्द घनस्याम दास की।  
सुंदर मुरारी मोघा, श्रीपति हूँ श्यामतिथि  
मुगल कवित्त यों गोविंद केसोदास की।  
भन रघुराज और कवि न अनूठी उक्ति  
मोहि सागी मंडी जानि जूठी सूरदास की॥”

### जनश्रुतियाँ

कुछ सरल एवं भावुक जनसमुदाय अपने महान् कथाकारों की स्मृति चिरस्थायी बनाने के लिए उनके जीवन में ऐसे अनेक रोचक आख्यानों का सम्मिश्रण कर लेता है जिनमें मनुष्य की किसी आध्यात्मिक प्रगति का आसकारिक दलील में उद्घाटन करने के उद्देश्य से पारिव्य इतिवृत्त को केवल आनुपयिक रूप में ग्रहण किया जाता है। ऐसे आख्यानों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचलित है। महाभारत एवं पुराणा में ऐसी अनेक दन्त-कथाएँ मिलती हैं। संस्कृत के कालिदास भास एवं भवभूति आदि हिन्दी के सूर, तुलसी एवं केगवदास आदि के सम्बन्ध में भी ऐसी दन्त-कथाओं का प्रभाव

नहीं। मध्य काल में यह प्रवृत्ति और भी अधिक बढ़ी। गोस्वामी तुलसीदास जी एवं भक्त-वर मूरदास जी तो उच्च कोटि के भक्त थे। उन्होंने साधपणा व्रतपणा तथा पुत्रपणा नामक तीनों एषणाओं को तिलाजलि देकर स्वान्त मुखाय अपनी कविताओं का भुजन किया। अतः उनके सम्बन्ध में तो धनक जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। बेगवदास जी इन महा कवियों की भाँति न तो उच्च कोटि के भक्त ही थे और न ही उन्होंने तीनों एषणाओं को तिलाजलि ही दी थी। परन्तु फिर भी उनके सम्बन्ध में धनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जाता है—

१ बेगवदास जी की रसिकता के सम्बन्ध में यह दोहा प्रचलित है —

केसव केसनि भस करो, जसि भरिहू न करहि ।

चन्द्रबदनि भुगतोषनी बाया कहि-कहि जाहि ॥' १

यद्यपि बेगवदास जी के सम्पूर्ण साहित्य में यह दावा कही भी नहीं मिलता। हो सकता है किसी अनात कवि ने बेगव के उपरान्त उनकी मनावृत्ति का परिचायक यह दोहा बना दिया हो। इस जनश्रुति में तथ्य इतना ही प्रतीत होता है कि बेगवदास जी की मनावृत्ति शृंगारिक थी तथा वे बृद्धावस्था तक रसिक बन रहे।

२ दूसरी जनश्रुति बेगवदास जी की व्रत-यानि के सम्बन्ध में है। उनके व्रत होने की चर्चा तो बहुत है और समस्त इसी कारण उन्हें व्रतिकाव्य का व्रत कहा जाता है। यदि बेगवदास जी की कविता-सम्बन्धी क्लिष्टता का ही ध्यान में रखा जाय तो भी स्पष्ट होता तो व्रतिकाव्य का कवि सरलता से कहा जा सकता था। बेगव का व्रत के साथ कुछ विशेष सम्बन्ध प्रतीत होता है।

इ-जीतसिंह के हृदय में एक बार यह भावना हुई कि मरी यही मङ्गी भक्त कान तक बनी रहे। बेगवदास ने व्रत-यान करन की सलाह दी। फलतः सम्पूर्ण मङ्गी ने अपने जीवन की आहुति व्रत-यान में दी। और सब लागे व साथ बेगवदास जी भी व्रत हो गए। भला बेगवदास जी जसा जीव व्रत-यानि में बड़ा मुम पा सकता था व्रत मन न लगने में दुश्मिन् रहते लगे। कहते हैं योभाय स गोस्वामी तुलसीदास जा बहा हावर निकले और उन्होंने जन पीन के लिए अपना लाटा कुछ में डाला। बेगवदास जी उसी कुछ में व्रत गोस्वामी जी के मोटे को उन्होंने पकड़ लिया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लाटा छोड़ने के लिए अनुमति-विनम की परन्तु बेगवदास जी ने लाटा नहीं छोड़ा। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जब तक तुम मरा व्रत-यानि से उद्धार न कराग तब तक लागे नहीं छोड़ूँगा। गोस्वामी जी ने व्रत-यानि से उद्धार पान के लिए स्वरचित रामचन्द्रिका का इरोग बार पाठ बनलाया। बेगवदास जी स्वरचित रामचन्द्रिका का पाठ करने के लिए सा उद्यत हो गए परन्तु उन्हें रामचन्द्रिका का प्रथम छन्द स्मरण न आता था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जब प्रथम छन्द का स्मरण आया तब बेगवदास जी ने रामचन्द्रिका का अन्तिम बार पाठ किया। फलतः बेगवदास जी का व्रत-यानि में मुक्ति मिल गई।

इस जनश्रुति का न ता धन मास्य से हा पुष्टि होना है और न किसी इतिहास ग्रन्थ में ही प्रत-यन का उत्पत्ति मित जा है। अधिक से अधिक हमने इतना ही ग्रन्थ निकाला जा सकता है कि केरावदाम जी की मृत्यु गोस्वामी सुनमादास जी का मृत्यु से पूर्व हुई थी।

३ तीसरी जनश्रुति बीरवल के मृत्यु-समाचार के सम्बन्ध में है। भक्तवर बीरवल को हृदय से चाहता था। जिस समय बीरवल को मेना के साथ युद्ध के लिए पश्चिमोत्तर सीमा पर भेजा उस समय भक्तवर ने घोषणा की कि जो व्यक्ति बीरवल के सम्बन्ध में घनिष्ट-समाचार मुख में निष्काशना उस भारी दण्ड दिया जाएगा। बीरवल युद्ध में गए और दुर्भाग्यवश मार गए। अब इस समाचार का सम्राट भक्तवर से कहने का जिसका साहस था। ऐसी कठिन परिस्थिति में लोग ने केरावदाम जी को उपयुक्त व्यक्ति समझा। केरावदाम जी उन लोगों वही पर ठहरे हुए थे। उन्हें अपने पण्डित्य एवं बुद्धिमत्ता पर पूर्ण विश्वास था अतः प्रायत्ता को स्वीकार कर लिया। केरावदाम जी ने अपने विश्वास का वाचक रूप में परिणत करके भी निम्नला दिया। कहा जाता है कि सम्राट भक्तवर के समक्ष जाकर उन्होंने निम्न प्रकार से बीरवल की मृत्यु का दुःख समाचार सुनाया—

माचक सब भूपति भये रह्यो न कोऊ सेन।

इन्द्रजी की इच्छा भई गयो बीरवर देन ॥ १

जनश्रुतियों के सम्बन्ध में इतिहास सम्बन्ध मौन रहता है। यह जनश्रुति भी इस नियम का अपवाद नहीं। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार बीरवल की मृत्यु का समाचार राज प्रया के अनुसार भक्तवर के मंत्रा न दिया। इस जनश्रुति में सत्यास कितना है यह कहना कठिन है परन्तु इतना भक्त्य परिलक्षित होता है कि बीरवल बहुत बड़ दानी थे तथा भक्तवर एवं केरावदाम के अमिल मित्र थे।

४ इन्द्रजीतसिंह के एक परम सुन्दरी वेश्या थी जिसका नाम प्रवीण राय था। महाकवि कन्नदास जी की भी वह प्रिय गिण्या थी। इन्द्रजीतसिंह की इस प्रयत्नी के रूप सौन्दर्य का प्रथमा सुनकर सम्राट भक्तवर भी उन पर अनुरक्त हुआ। फलतः इन्द्रजीतसिंह के लिए माना हुई कि वे प्रवीण राय को राज दरबार में भेजें। भक्तवर की महान् शक्ति का अनुमान करते हुए इन्द्रजीतसिंह ने प्रवीण राय को भेजने का निश्चय कर लिया। क्योंकि न भेजने का परिणाम आराति माल लगा था। इस निश्चय का पता जब प्रवीण राय का चला तब वह स्वयं इन्द्रजीतसिंह के पास पहुँची और निम्न छन्द सुनाकर इन्द्रजीतसिंह को अपने कलत्र के प्रति सजग किया—

‘माई हो भूभन भत्र तुम्हें निज वचासन सो सिपरी मति सोई।

वेह तजौ कि तजौ कुल कानि हिये न समौ सजिह सब कोई ॥

स्मारय सो परमारय को पय चित्त विचारि कहौ सुम सोई।

जाम रहे प्रभु की प्रभुता, घर मोर पतिव्रत भंग न होई ॥

१ कुन्तलसुन्दर-भक्त प्रथम भाग पृष्ठ संख्या १६१

२ मिश्रपुत्र विनोद पृष्ठ संख्या ३४६

छन्द मुनकर इन्द्रजीतसिंह अपने कसब्य के प्रति सजग हो नहीं हुए भविष्य उन्होंने प्रवीण राय को न भेजने का पूरा निश्चय कर लिया। सम्राट् अकबर को जब यह बात ज्ञात हुई तो उसने इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ रुपया जुर्माना कर दिया। अपने आग्रहदाता पर भाई हुई आपत्ति को उठाने का केशवदास जी ने बीड़ा उठाया। कहा जाता है कि इस जुर्माने को माफ कराने के सम्बन्ध में उनकी प्रथम बार बीरबल से भेंट हुई और उन्होंने बीरबल की प्रशंसा में निम्न छन्द पढ़ा—

‘पावक, पद्मी पशू नर, नाग, नदी-नद सोक रखे रंग धारी।

केशव देव अथैव रखे नरदेव रखे रचना न निवारो॥

क बार बीरबली बलबीर भयो कृतकृत्य महाव्रत धारी।

व करतापन आपन ताहि दई करतार कुषी करतारो॥”

छन्द को सुनकर बीरबल व्यत्यय प्रसन्न हुए तथा छह लाख रुपये की इच्छाओं को उस समय उनकी जेब में पड़ी हुई थी केशवदास जी को समर्पित कर दी। केशवदास जी ने उन्हें नतमस्तक होकर स्वीकार करते हुए निम्न छन्द बीरबल को सुनाया—

‘केशवदास के भान तिरुषी बिधि रंक की रंक बनाय सवार्यो।

धोये घब नहि छटो छन्द बटु तोरय के जल जाय पसार्यो॥

हू गयो रंक ते राव तहीं तब बीरबली बरबोर निहार्यो।

भूलि गयो जग की रचना चतुरानन पाम रह्यो मुख चार्यो॥”

बीरबल ने प्रगट हाकर केशवदास से कुछ मागने को कहा। उन्होंने कुछ न मागकर यही कहा कि मैं आपके दरबार में बिना रोक-टोक के जा सकूँ। बीरबल ने अपनी बुद्धिमत्ता से समय पाकर एक करोड़ रुपये का जुर्माना सम्राट् अकबर से माफ करा दिया। इन्द्रजीतसिंह की प्रथमी प्रवीण राय को दरबार में उपस्थित अवश्य होना पड़ा। दरबार में पहुँचकर प्रवीण राय ने अपनी कविता शक्ति एवं बुद्धिमत्ता के बल पर अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा की। कहा जाता है कि सबान् निम्न प्रकार हुआ —

सम्राट् — मुबन बसत तिय देह की चटक बसत केहि हेत।

प्रवीण — ममय बारि मसाल को सति सिहारे ऐत।

सम्राट् — ‘अंचे हू सुर बस किये सम हू नर बस कीह।”

प्रवीण — घब पनाल रंग करनि को दरकि पयाली कीह।

अन्त में प्रवीण राय ने प्रार्थना करते हुए निम्न दोहा सुनाया —

बिनती राय प्रवीण की सुनिये दाह मुजान।

जूठी पतरी असत हू धारी वापस स्वान।”

१ हिन्दी नवगान, पृष्ठ संख्या ४१४

२ हिन्दी नवगान, पृष्ठ संख्या ४१४ ३२

३ यो ही कथी जु बीरबल आनि जु मन में होव।

माग्यो तब दरबार में मोहि न रोने कोव। — हिन्दी नवगान पृष्ठ ४६१

४ राधाकृष्ण श्यामला, प्रथम भाग, पृष्ठ २१२

फिर क्या था 'जूठो पजरो भखत हैं यारी वायस स्वान' की चीट साकर सम्राट भकवर होग में धा गया। फसत प्रवीण राम इन्द्रजीतसिंह के यहाँ वापस चली आई।

इस जनश्रुति में सत्ताग कितना है इसका निणय नहीं किया जा सकता परन्तु इससे हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बीरबल का केशवदास जी से परिचय था और वे बंध गुणग्राही एवं दानी थे। सम्भव है कि भकवर न प्रवीण राम का भपन दरवार में बुलाया हो। भकवर का बीरबल पर अत्यन्त विश्वास तथा स्नेह था। भक्त बीरबल के कहने पर भकवर ने इन्द्रजीतसिंह का जुरमाना माफ कर दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

## ऐतिहासिक ग्रन्थ

तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में आइने भकवरी मुत्तलिब-उल्-उबारील 'मुगियात अबुलफजल' तथा 'अहामीर नामा' नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इन सब ग्रन्थों में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक धार्मिक एवं भाषिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। परन्तु वे का विषय है कि केशवदास जने दरवारी कवि का इन इतिहासों में नामो स्तस भी नहीं है। आइन भकवरा में १६ कवियों के नाम राजकवि के रूप में लिए गए हैं। इन राजकवियों के अतिरिक्त पदह कवियों के नाम और दिए हैं जो दरवार में उपस्थित नहीं होते थे परन्तु अपनी रचनाओं को सम्राट भकवर की सेवा में भेजते थे। इन सब कवियों में केशव का नाम नहीं है।<sup>१</sup>

भाषनिक ऐतिहासिक ग्रन्थों में निम्नलिखित ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं —

- १—मध्ययुग का इतिहास (डा० ईश्वरीप्रसाद)
- २—मुगलकालीन भारत (डा० आशीर्वाणीलाल श्रीवास्तव)
- ३—इलियट एण्ड हाउसन भाग II
- ४—भारत का इतिहास भाग ६ अ (कप्टेन सी० ई० सुप्रसन्न एम० ए० प्रोफेसर)
- ५—भकवर टू मोरगजब (मोरलब)
- ६—कम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग ४
- ७—बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (गोरीशान निवासी)
- ८—बुन्देलखण्ड प्रथम भाग (गोरीशानर त्रिवेदी)

यद्यप्य प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर ही लिख गए हैं। इन ग्रन्थों में भी राजनातिक रचनाओं पर विचार बल दिया गया है। जैन रतनसिंह का मारा जाना अबुलफजल का बंध इत्यादि। केशव का तो उल्लेख-भाव है। जो विवरण दिया गया है वह भी अन्तःसाध्य के आधार पर है। 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' तथा 'बुन्देलखण्ड' नामक ग्रन्थों में केशवदास जी के जीवन पर प्रकाश डाला गया है परन्तु

<sup>१</sup> आइने भकवरी पृष्ठ ३८० अनुशासक एवं क्रांति मैन नियम सन् १९३६ ई

केशव के जीवन-वृत्त सम्बन्धी विवादास्पद ग्रन्थियों को सुलझाने में ये ग्रन्थ विशेष सहायक नहीं होते।

### खोज रिपोर्ट—हिन्दी साहित्य के इतिहास

- १—खोज रिपोर्ट (भागी नागरीप्रचारिणी सभा)
- २—शिर्वांसिंह सरोज (शिवसिंह सेंगर)
- ३—माडन बनकिसूर सिटरेचर थाँप हिंदुस्तान (सर जॉज प्रियसन)
- ४—मिथबायु विनोद (मिथबायु)
- ५—हिंदी नवरत्न (मिथबायु)
- ६—हिंदी साहित्य (डा० श्यामसुन्दरदास)
- ७—हिन्दी साहित्य का इतिहास (भाषाय रामचन्द्र शुक्ल)
- ८—हिन्दी के कवि और काव्य (गणेशशंकर द्विवेदी)
- ९—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)
- १०—हिन्दी साहित्य (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)

उपर्युक्त हिन्दी साहित्य के इतिहासों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे इतिहास ग्रन्थ हैं जिनमें केशव का जीवन-वृत्त परम्परा के अनुसृत दिया गया है। खोज रिपोर्ट तथा हिन्दी साहित्य के इतिहासों में जो जीवन-वृत्त दिया गया है वह निम्न प्रकार है—

### खोज रिपोर्ट

केनवदास जी का जन्म सन् १६१२ विजयीय के सप्तमग देहरी में हुआ था। इनकी कुल परम्परा में कविता का वरदान था। ये धीरछा-नरेस के दरबारी कवि मन्त्र गुरु एवं संघी थे। बीरसिंहदेव के छोटे भाई इन्जीतसिंह के दरबार में इन्होंने बहुत सम्मान पाया। कहा जाता है कि इन्होंने अपनी नीति-बुद्धि एवं समाचातुरी से इन्द्रजीतसिंह पर अकबर के द्वारा किया गया एक करोड़ रुपये का जुर्माना माफ करा दिया था।<sup>१</sup>

### शिर्वांसिंह सरोज

इनका प्राचीन निवास देहरी था। राजा मधुनरसाह धीरछा भाते के यहाँ आए और वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। राजा इन्जीतसिंह ने इनकी गाँव सवल्ल कर दिए तब कुटुम्ब सहित थोड़े-छोटे भेदों से लगे।<sup>२</sup>

प्रवीण राम एवं अकबर सम्बन्धी जनश्रुति के सम्बन्ध में सरोजवार कहते हैं—  
“जब अकबर बादशाह ने प्रवीण राम पातुर के हाज़िर न होने उद्भूत हुक्मी और लड़ाई के कारण राजा इन्द्रजीतसिंह पर करोड़ रुपये का जुर्माना किया। तब केनवदास जी ने छिपकर राजा बीरबन मन्त्री से मुलाकात की और बीरबन की प्रार्थना में श्रियो करतार

१ सर्वे पीर दिन्नी मैनुस्क्रिप्ट्स १६०६—८, पृष्ठ ४

२ शिर्वांसिंह सरोज, पृष्ठ सख्या ३८५, ३८६

दूह करतारी यह कवित पड़ा। तब राजा बीरबल ने महाप्रसन्न होकर जुरमाना माफ कराया। परन्तु प्रवीण राय को दरबार में आना पड़ा।<sup>१</sup>

### मिथवधु विनोद

यें महाप्रसन्न ब्राह्मण कृष्णन्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म औरछे में स० १६१२ वि० के लगभग हुआ था। प्रसिद्ध कवि बलभद्र उनके भाई थे। औरछा नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के यहाँ इनका विशेष आदर था। आपने महाराज बीरबल द्वारा अकबर के यहाँ से इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ रुपयों का जुरमाना माफ करा दिया था। इनके शरीरान्त का समय स० १६७४ वि० ठहरता है।<sup>२</sup>

### हिन्दी-नवरत्न

मिथवधुओं ने मिथवधु विनोद में केवल का जन्मकाल स० १६१२ वि० माना था परन्तु इस ग्रंथ में इनका जन्मकाल स० १६०८ वि० माना है।<sup>३</sup> इस ग्रंथ में प्रवीण राय एवं अकबर वाली जनयुति सविस्तार दी हुई है।<sup>४</sup>

### हिन्दी साहित्य

केवलदास ने अपना और अपने वंश का परिचय अपने अनेक ग्रंथों में दिया है। उसके आधार पर यह विदित होता है कि रुद्रप्रताप नामक एक सुमन्गी राजा के यहाँ केशवदास के पितामह कृष्णदास मिश्र नियुक्त थे। इन्हीं रुद्रप्रताप के पुत्र मधुकरदाह हुए और इन्होंने केवलदास के पिता को काशीनाथ मिश्र का बड़ा सम्मान किया। इन्हीं मधुकरदाह के पुत्र रामदाह औरछे के राजा हुए और इन्होंने राय का सब भार अपने भाई इन्द्रजीतसिंह के ऊपर छोड़ दिया था। इन्हीं महाराज इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में केवलदास रहा करते थे।<sup>५</sup>

### हिन्दी साहित्य का इतिहास

यें सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णन्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म सन्त १६१२ वि० में और मृत्यु स० १६७४ वि० के आसपास हुई। औरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह की सभा में रहते थे। वहाँ इनका बहत मान था। इनके घराने में बराबर संस्कृत के पंडित होते आए थे। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र भाषा के अच्छे कवि थे।<sup>६</sup>

### हिन्दी के कवि और काव्य

श्री गणेशदास त्रिवेणी केवलनाम जी का जन्म स० १६०८ वि० मानते हैं।<sup>७</sup>

१ शिवमिश्र सरोज पृ० स० ३८६

२ मिथवधु विनोद प्रथम भाग पृष्ठ स० २७४

३ हिन्दी नवरत्न पृष्ठ स० ४१३ मिथवधु

४ हिन्दी नवरत्न पृ० ४१४ मिथवधु

५ हिन्दी साहित्य पृष्ठ सत्या २४६ पंचम संस्करण डा० श्यामसुन्दरदास

६ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २०७ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

७ हिन्दी के कवि और काव्य पृष्ठ १८१



भागे चतुर्विध हैं —

भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार के अनुमान इनके जन्म-काल के संबंध में किए हैं परन्तु प्रायः इन सभी अनुमानों की आधारभूत भित्ति एक ही है। इस बात को बेगव से परिचित होने वाले सभी विद्वान् जानते हैं कि उन्होंने अपनी आयु का एक बड़ा भाग विताने के बाद काव्य रचना में हाथ लगाया। मस्बूत कोई ऐसी वस्तु नहीं कि जिसमें कोई कम से कम तीस-पचास वर्ष की अवस्था से पहले इतना ज्ञान-गाम्भीर्य प्राप्त कर सके जितना कि बेगव ने किया था।<sup>१</sup>

**हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास**

जोर्ज रिपोट के अनुसार डा० रामकुमार वर्मा ने भी बेगव का जन्म-स्थान देहली तथा जन्मकाल स० १६१२ वि० के लगभग बतलाया है। छेप विवरण अतः सादर के अनुसार ही दिया गया है।<sup>२</sup>

**हिंदी साहित्य**

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जन्म मरण के मवर्तों पर विशेष महत्व नहीं दिया। उन्होंने 'रतनबावनी' को बेगवनास जी की आरम्भिक रचना अवश्य माना है—

इस पुस्तक की कुछ घटनाओं के साथ बेगव की अन्य पुस्तकों में वर्णित घटनाओं का मेल न देखकर समझा जाता है कि इसका कुछ घटा अवश्य प्रतिष्ठ है। इसमें नाम को देखते हुए छन्दों की सख्या बावन होनी चाहिए पर अभी जो पुस्तक प्राप्त हुई है उसमें यह सख्या भ्रष्ट है। इससे भी अनुमान होता है कि कुछ भाग इसका प्रक्षिप्त है। यह बेगवनास की आरम्भिक रचना है।<sup>३</sup>

उपयुक्त विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निवास जा सकते हैं—

१—जन्मभूमि सम्बन्धी विचार

२—जन्म मवर्त संबंधी नाना मत

३—अन्तःसादर के आधार पर दिया हुआ विवरण

४—निघन

१ जोर्ज रिपोट सिवातिह मरौज तथा हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में बेगवनास जी का जन्म-स्थान देहली बतलाया है और यह भी बतलाया है कि राजा मधुकरगढ़ के समय में वे औरछा आए थे। अतः साथ में इस कथन की पुष्टि नहीं होती। बेगवनास जी के पितामह ६<sup>४</sup> प्रतापसिंह के समय में भी पुराण-वृत्ति पर नियुक्त थे तथा उनके पिता बागीनाथ मिश्र मधुकरगढ़ के समय में रहे।<sup>५</sup> ऐसी स्थिति में यह कहना कि मधुकरगढ़ के समय में बेगवनास आए थे समीचीन प्रतीत नहीं होता। डा० यामगुंजर

१ दिव्य के कवि और काव्य पृष्ठमन्या १८२

२ दिव्य साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ सख्या ६६६

३ दिव्य साहित्य पृष्ठ २४५ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

४ कविप्रिया, प्रथम प्रभाव छन्द, १७-१८

दास एव आचार्य रामचन्द्र गुरुनारायण विद्वानों ने केवलनाम की जन्मभूमि प्रोत्साही मानी है।

२—'गिरासिंह सराज' म जन्म मयन १६२४ वि० दिया गया है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल डा० रामकुमार वर्मा तथा मिश्रबन्धुधर्म ने केवल 'मिश्रबन्धु विनोद' मे जन्म काल म० १६१२ वि० माना है। आग चतुर् 'हिन्दी नवरत्न' म मिश्रबन्धुभा न जन्म काल म० १ ०८ माना है। श्री गणगप्रभा द्विवेदी ने भी जन्म मयन १६०८ वि० ही माना है। परन्तु खे का विषय है कि विद्वान् संसर्गों न अपने मत के समर्थन म पुष्ट प्रमाण नहीं दिए।

३ प्राय सभी इतिहास-लेखका ने उही जीवन-सम्बन्धी घटनाभा का विशेष विवरण दिया है जिनका कि उल्लेख केवल के ग्रन्थ म मिलता है।

४ निघन के मध्य में भी विद्वाना के भिन्न-भिन्न मत हैं परन्तु प्राय सभी विज्ञान सदन १६३० वि० स स० १६८० वि० के बीच में ही केवलनाम का निघन मानते हैं।

## आलोचनात्मक ग्रन्थ

सूर और तुलसी के साथ जिस व्यक्ति का नाम आर के साथ लिया जाता है वह है आचार्य केवलनाम। मूल रूप म जन्मन सम्बन्ध मे महाकविता की कृति का मूल्यांकन करता आया है। समुद्र की 'उपमा कालिदासस्य तथा भाष सन्नि प्रयो गणा वाली प्रवृत्ति हिन्दी म भी आई। इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप निम्न उक्ति का उद्धृत की जा सकती है—

१— सूर सूर तुलसी ससी उदयन केसवदास।

अब के कवि लघोत्तम सम जहं तह करत प्रकास ॥

२— 'कविता कर्ता तान ह तुलसी केसव सूर।

कविता लेती इन तुनी, सीता बिनत भदूर ॥'

३— सुंदर पद कविगग की उपमा की बलबोर।

केवल अथ गेनीर की सूर तीन गुन तोर ॥"

४— 'कवि को न चाहत देन विदाई।

पूजे केसव की कविताई ॥

उपपन्न उक्ति का मुख्यस्थित आलोचना नहीं कहा जा सकता। आलोचनात्मक दृष्टि म केवल पर रामचरण गोस्वामी राधाकृष्णान तथा जगन्नाथन रत्नाकर ने विचार किया। केवल एव विहारी के पिता-मुन सम्बन्ध की त्वर आलोचनात्मक निबन्ध लिख गए। य सब आलोचनात्मक सामग्री प्रस्तुत करने के प्रथम प्रयास कहे जा सकते हैं। स्वर्गीय लाला मंगलानेन का काय केवलनाम के सम्बन्ध म सराहनीय है। उन्होंने आलोचनात्मक निबन्ध एव भूमिकाएँ धारि लिखकर केवल की आलोचना का प्रारंभ भाग बनाया। आलोचना के क्षेत्र में केवल के प्रति सहानुभूति पूर्ण नवीन दृष्टि

कोण नवर लालाजी अवतरित हुए। पाश्चात्य वनानिक आलोचनात्मक ढंग से लिखी हुई सबसे पहली पुस्तक प्रो० कृष्णगकर मुखन की 'केसव की काव्यकला' है। इसके पश्चात् केसव के विषय में अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रणीत हुए। इस प्रकार अब तक उल्लेखनीय ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

- १ केसव-यश रत्न की आकाशिका (स्व० लाला भगवानदीन)
- २ रामचन्द्रिका की भूमिका (श्री पीताम्बर दत्त बडध्याल)
- ३ सक्षिप्त रामचन्द्रिका की भूमिका (प्रो० जगन्नाथ तिवारी)
- ४ केसव की काव्यकला (प्रो० कृष्णगकर मुखन)
- ५ केसव एक अध्ययन (डा० सरनामसिंह शर्मा अरुण)
- ६ केसवदास एक अध्ययन (प्रो० रामरत्न मटनागर)
- ७ आचार्य केसवदास (डा० हीरालाल दीक्षित)
- ८ केसवदास (श्री चन्द्रगुप्ती पौड)
- ९ आचार्य कवि केसव (प्रो० कृष्णचन्द्र वर्मा)

स्वर्गीय लाला भगवानदीन केसव यशरत्न की आकाशिका में लिखते हैं—

केसवदास जी सनातन्य सात्त्विक भारद्वाज गोत्री मिथिलाल के थे। भारद्वा (कुन्नेल खण्ड) निवासी काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म वर्ष सन् १६१८ वि० में हुआ। इनके बड़े भाई का नाम बलमद और छोटे भाई का नाम बरूण था।<sup>१</sup>

लालाजी के अनुसार जन्म सन् १६१८ वि० है। केसवदास जी की द्वितीय रचना 'रसिकप्रिया' का रचनाकाल स० १६४८ वि० है। इस प्रकार केसवदास जी ने तीस वय की अवस्था में इस ग्रन्थ की रचना की। डा० पीताम्बर दत्त बडध्याल 'रामचन्द्रिका' की भूमिका में स्वर्गीय लाला जी की भाँति जन्म सन् १६१८ वि० ही मानते हैं<sup>२</sup> परन्तु मृत्युकाल के सम्बन्ध में वे किसी निष्पक्ष पर नहीं पहुँचते। वे लिखते हैं—

केसवदास की मृत्यु सन् १६६६ और १६८० वि० के बीच में किसी समय हुई होगी।<sup>३</sup>

महिम्न रामचन्द्रिका की भूमिका में प्रो० जगन्नाथ तिवारी लिखते हैं— केसवदास के पिता काशीनाथ मिश्र तथा पितामह कृष्णान्त मिश्र मरहट शास्त्रा के प्रकाण्ड पंडित थे और उनकी अत्यन्त अधिक विख्याति थी। इन्हीं कृष्णान्त मिश्र की तरफालीन भारद्वा नरेंद्र रत्नप्रताप जी ने अपने यहां युनावर पुराण-युक्ति पर नियुक्त किया था।<sup>४</sup>

जन्म एवं मरण के विषय को न सत हुए उहनि निश्चा है—

पंडित रामचन्द्र मुखन के अनुसार इनका जन्म स० १६१२ में और मृत्यु स०

- १ केसव-यशरत्न की आकाशिका पृष्ठ २
- २ रामचन्द्रिका की भूमिका पृष्ठ २
- ३ रामचन्द्रिका की भूमिका पृष्ठ ८
- ४ सक्षिप्त रामचन्द्रिका की भूमिका, पृष्ठ १

१६७४ के आसपास हुई थी ।<sup>१</sup>

आलोचना के क्षेत्र में लाला भगवानगीन जी के उपरान्त दूसरे व्यक्ति प्रो० जगन्नाथ तिवारी हैं जिन्होंने के०वदास जी की आलोचना में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखा है। आलोचना के क्षेत्र में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखना नितान्त आवश्यक है। सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से हमारा अभिप्राय यह नहीं कि भवगुण छोड़ दिए जाएं। प्रो० तिवारीजी न जीवन-वृत्त को संविस्तार नहीं किया काव्यगत आलोचना पर हाँ आपकी दृष्टि विशेष रूप से रही है।

प्रो० कृष्णाकर शुक्ल 'के०व की काव्यकला' में लिखत हैं—

'सूयवर्ग की गहरवार घाखा में बोरसिंह नामक एक राजा हुआ था। उनकी बत्ती सवा पीढ़ी में हर्प्रताप नामक एक राजा हुए जिन्होंने केशवनाथ के पितामह कृष्णवन्त मिश्र को अपने यहां पुराणवर्ति पर नियुक्त किया।'<sup>२</sup>

डा० सरनामसिंह 'अर्था' 'अरुण' के०व एक अध्ययन नामक पुस्तक में लिखत हैं—

महाकवि केशवनाथ का जन्म स० १६१० के लगभग घोरखा में हुआ था। इनके पिता काशीनाथ जी सनाथ कुलभूषण कृष्णदत्त जी के पुत्र थे। प्रसिद्ध कवि बलभद्र को इनका बड़ा भाई धत्तलाया जाता है। संस्कृत का विज्ञान के०व की परम्परागत सम्पत्ति थी। बलभद्र से राजा मधुकरगढ़ वायव्यपन से ही पुराणों की कथा सुना करते थे। वह महासूक्तों के केशव के कथन में कहा तक सत्य है कि उनके कुल के सेवक तक भाया नहीं बोल सकते थे।<sup>३</sup>

डा० रामरतन भटनागर केशवनाथ एक अध्ययन नामक पुस्तक में लिखते हैं—

केशवदास की जीवनी में गुप्तियां बहुत कम हैं। समसामयिक भक्त की तरह मूर्खता और तुलसीदास की भांति उन्होंने अपने जीवनवृत्त को ध्वंशकार में नहीं रखना चाहा। इसीलिए 'कविप्रिया' में के०व ने पहले दो प्रभावों में अपने आश्रयस्थानों के वर्णों का विस्तारपूर्ण वर्णन किया है।<sup>४</sup> प्रो० कृष्णवन्त ने आचार्य कवि के०व नामक ग्रंथ में वही कहा है जो अन्य ग्रंथों में कहा गया है।

प्रो० कृष्णाकर शुक्ल डा० सरनामसिंह तथा डा० रामरतन मठ नागरिक प्रो० कृष्णवन्त ने आचार्य रामवन्त शुक्ल के अन्य-भरण सम्यगी सक्ता का ही अनुमान किया है। जीवन वृत्त में अन्य माध्यम के आधार पर सत्यता दिया गया है। इन पुस्तकों का आलोचनात्मक महत्व मूल ही है परन्तु जीवन-वृत्त सम्बन्धी मामलों के लिए हम गिराग हाँ हाना पड़ता है।

१ मधुसूदन रत्नसिंह की भूमिका पृष्ठ ४

२ के०व की कालिका पृष्ठ १

३ के०व एक अध्ययन पृष्ठ १

४ केशवनाथ एक अध्ययन पृष्ठ १

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी अपने 'हिन्दी के कवि और काव्य' नामक ग्रन्थ में 'रसिक प्रिया' के रचना काल के सम्बन्ध में कहते हैं —

'इनकी भवस्था इस समय चालीस के कम वदापि हो रही हो। इसी विचारधारा के अनुसार इनका जन्म सन्वत् १६८८ वि० के लगभग माना जाता है।'

डा० हीरालाल दीक्षित केशवदास जी का जन्म 'रसिकप्रिया' का रचना के लगभग पैंतीस-छत्तीस वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १६१२ वि० में मानत हैं।'

उपयुक्त तीनों विद्वानों ने 'रसिकप्रिया' को केशव की प्रथम रचना मानकर उनकी जन्म तिथि का अनुमान लगाया है। मिश्रबन्धु तथा गणेशप्रसाद द्विवेदी दोनों ही सन् १६०८ वि० में केशव की जन्मतिथि मानते हैं। दोनों ही के अनुसार संस्कृत ज्ञान के लिए चालीस वर्ष आवश्यक हैं। डा० हीरालाल दीक्षित ने जन्म सन्वत् १६१२ वि० माना है अतः उनके अनुसार भी छत्तीस वर्ष ज्ञान के लिए आवश्यक है। हम मानते हैं कि केशवदासजी संस्कृत के बहुत अच्छे विद्वान् थे परन्तु साथ ही साथ हम यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि वे प्रतिभाशाली व्यक्ति भी थे। प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए इतने वर्ष संस्कृत के ज्ञान में नहीं लगाए जा सकते। शकरोपाय तैलस वष की भवस्था में ही जगद्गुरु की उपाधि पा गए थे। बलभञ्जाम जी ने दस वर्ष की भवस्था में ही पाश्चात् का अध्ययन कर लिया था। भारत दुर्गाबुद्धिहरिचन्द्र पतीस वर्ष की भवस्था में ही अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर अपने की हिन्दी साहित्य में अमर कर गए। सिन्दूर बत्तीस वर्ष की आयु में ही इतिहास में अमर हो गया। कीदस तथा दोली ने अष्टायुष में ही अनेकों साहित्य की प्रभावित किया। गेलीसियों ने अठारह वर्ष की भवस्था में ही पेंडुलम के सिद्धान्त का आविष्कार किया और दूरबीन तथा सुदूरबीन का बनाकर सत्तार की चमत्कृत किया। प्रतिभाशाली व्यक्तियों के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जिन्होंने अल्पायु हाते हुए भी अपने को सत्तार में अमर कर दिया।

प्रतिभा के अतिरिक्त केशवदासजी के वंश में पाण्डित्य की परम्परा पीड़िया से चली आ रही थी। 'भावप्रकाश' नामक ग्रन्थ इनके ही पूर्वज भाऊराम की रचना है। इनके पिता जी काशीनाथ मिश्र ने अपोलिप की प्रसिद्ध पुस्तक 'गीतबोध' का प्रणयन किया। कुछ लोगों की सम्मति में 'प्रसन्नराघव' के प्रसिद्ध लेखक जयदेव इनके पूर्वज थे। इनके बड़े भाई बनम मिश्र हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने 'नलसिंह' 'भागवत भाष्य' तथा 'हनुमानटक' टीका आदि की रचना की। भाषा में कविता लिखने के कारण वे मन ही मन एक प्रचार की होन भावना का अनुभव करते थे। अपने कुल के पाण्डित्य के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है—

भाषा बोलि न जानई जिनके कुल की दासः  
भाषा कवि भो मन्दमति, तिहि कुल के सबदास ॥'

१ हिन्दी के कवि और काव्य पृष्ठ १८३

२ भाषा के रचना पृष्ठ ११

३ रसिकप्रिया द्वितीय प्रभाव पृष्ठ १७

पहले का प्रसिद्धि यह है कि मिश्रवर्णुषो तथा गणप्रसाद द्विषदी ने घालीम एवं डा० हीरासाल दीक्षित ने जो छत्तीस वष मान हैं व अत्यन्त अधिक हैं।

हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि 'रतनदावनी' केवदास जी की प्रथम रचना है और उसका रचना काल म० १६३८ वि० के लगभग है। इस प्रकार तीस वष की अवस्था में केवदास ने 'रतनदावनी' की रचना की तथा तीस वष की अवस्था में 'रसिकप्रिया' की रचना की। घत केवदास जी की जन्मतिथि म० १६१८ वि० में मानना समीचीन प्रतीत होता है। भाषा भाव श्लकार तथा छन्द आदि का दृष्टि में रखत हुए 'रतनदावनी' उच्च कोटि की रचना नहीं है। इससे स्पष्ट बिम्बित होता है कि यह उस महाकवि का प्रथम प्रयास है। प० रामनरेश त्रिपाठी डा० रामकुमार वर्मा तथा कि० महोदय जन्म संवत् १६१२ वि० में मानते हैं। छत्रपुर-निवासी बाबू गोकुलदास जी के अनुसार केवदास का जन्म संवत् १५६४ वि० में हुआ था। सराजकार ने उनका जन्म म० १६२४ वि० माना है। हम केवदास जी का जन्म म० १६१८ वि० मानते हैं। स्व० साता भगवान् गौरी गौरीशंकर द्विवेदी तथा पोताम्बरलाल बडध्वान आदि विद्वानों ने भी केवदास का जन्म संवत् १६१८ ही माना है।

### निवास-स्थान एवं काव्य क्षेत्र

जैसा कि स्वयं केवदास जी ने लिखा है कि उनका जन्म प्राचीन विन्ध्यप्रदेश का मान मध्यप्रदेश की राजधानी औरछा नगर में हुआ था। उनके घर का भग्नावशेष आज भी व्यासपुर मुहल्ले में देखा जा सकता है। उसके समक्ष एक झील का पट्टा बड़ा हुआ है। प्रदेश की सीमाएँ यमुना से नमदा तक और सोन से खम्बन तक माना जाता है और यह समस्त भू भाग अधिक समय तक औरछा राज्य के अधीन था। 'मारछा' नाम पटन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब राजधानी के लिए स्थान निर्दिष्ट हुआ गया तो उस स्थान पर एक राजपूत ने कहा 'उड़छे' अर्थात् यह स्थान नीचा है। फिर कहा था उसी स्थान इसका नाम औरछा पड़ गया। टीकमगढ़ का नाम भी पहले टहरी था। परन्तु म० १८८० वि० में ब्रिजमार्जीत ने कृष्ण भगवान् के एक नाम 'रणछोर टीकम' के आधार पर गढ़गढ़ इसका नामकरण किया। बुन्देलखण्ड की भी पहले जेजा मुक्ति और 'जुह' कहत परन्तु वहाँ बहुत दिनों में बुन्देल ठाकुरों का राज्य रहा। घत 'बुन्देलखण्ड' कहते सना। बुन्देला राजा महाराज रणप्रतापसिंह ने म० १५८८ वि० में अपने राजधानी बनाया था और उसी समय केवदास के पितामह का नाम लालचन्द (कुहेर) नामक ग्राम वर्तमान राजमहान में स्थित है। निरुक्त हुए।

नृप प्रतापसिंह सु भए तिनको जनु रन दइ ।

दयावान को कल्पतरु, पुनर्निधि सोत मङ्गल ।

१ औरछा स्टेट मजिस्ट्रेट, पृष्ठ २

२ बुन्देलखण्ड का इतिहास गोरखान निवारी पृष्ठ ११४

नगर औरछो जिन रच्यो, जग में जागति कृति ॥ १  
 ओरछा की स्थिति एव महत्व के सम्बन्ध में केणवदास कहते हैं—

‘नदी बेतवे-तीर जहँ तीरथ तुगारय ।

नगर ओइछो बहु बस, घरनोतल में धम्म ॥

दिन प्रति जहँ बूनी लह, जहां बया धव बान ।

एक तहां बेसब सुकवि, जानत सकत जहान ॥ २

नगर में अनेको पंडित थे—

‘केराव तुगारम्य में, नदी बतवे तीर ।

जहोगोरपुर बहु बस, पंडित मंडित भीर ॥ ३

इस ऐतिहासिक भारछा राज्य की भूमि को प्रकृति न उदारतापूर्वक सजा रखा है। यदि कहीं बतवा (वेणवती) कंकन ध्वनि करती बह रही है तो कहीं दसारण (दगाण) की रम्य पहाडिया एव निर्भर मन को मोह लेते हैं। नहर मारती हुई बीरसागर एव मदनसागर आदि भील माना सागर की समानता करना चाहती है। केणवदास की ओरछा छटा देखिए जिस पर सारा ससार न्यौछावर हो रहा है—

‘सहू भाग बाम धन मानहु सपन धन ।

सोभा की सी सासा हंसमाला सी सरितवर ॥

ऊंचे ऊंचे अटनि पताका अति ऊंची जनु ।

कौंसिक की कौनी गगा सेतत तरंग तर ॥

आपन सुखनि भागे निगदत नरिंद भीर ।

घर घर देखियत देवता से नारि-नर ॥

केतोदास प्राप्त जहां केवल अविष्ट ही को ।

मारिय नगर भीर ओइछे नगर पर ॥ ४

गगा एवं यमुना के समान बतवा (वेणवती) का भी चित्रण देखिए—

‘‘ओइछे तीर तरंगिनि बेतवे साहि तरे नर केणव को है ।

अजुन बाहु प्रवाहु प्रबोधित देवा ज्यों राजन की रज मोहै ॥

ज्योति जगे जमना सी लगे जग लाल विलोचन पाप विछोहै ।

भूर-मुता शुभ संगम तुम तरंग तरंगिनि गगा सी सोहै ॥ ५

ऐस रम्य दुआ एव एवर्वयूष निवास को छोड़कर केणव जाते भी कहा ! परत केणवदास जो का वाक्य-शाय अधिक विज्ञात न था। मुगल दरबार में इन्जीनियर का

१ कविप्रिया, प्रथम प्रभाव छन्द १७-१८

२ रतिकप्रिया प्रथम प्रकाश छन्द ३-८

३ विज्ञान-गीता प्रथम प्रभाव छन्द ६

४ कविप्रिया, स्थानों प्रभाव छन्द ५

५ विज्ञान-गीता प्रथम प्रभाव छन्द ४

जुरमाना माफ कराने गए थे। जुरमाने के सम्बन्ध में बीरबल से मित्रता हो जान के कारण दरबार में भाना-जाना रहा होगा। कागा मथुरा तथा उज्जयपुर आदि का भासो देसा वगन इनके ग्रन्थों में मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि इन स्थानों पर कागवास गए होंगे। 'गंगातट दंड बास' स प्रतीत होता है कि केसव न गंगातट पर भी निवास किया था।

नाम

हमारे चरितनायक का वास्तविक नाम केसवनास था जिसका प्रमाण स्वयं केसवदास जी की 'कविप्रिया' में पाया जाता है—

'भाषा बोलि न जानई, जिनके कुल की दास ।

साया कवि भो मन्मथि, तिहि कुल कसवदास ॥' २

इसका प्रामाणिक काव्य रचनाओं में केसव केसव केसो केसो केसवराय, केसवदास तथा केसो केसाराय की छाप मिलती है। हिन्दी-साहित्य में केसवदास नामक कई कवि हुए। मत्र साधारण पाठक महाकवि केसवनास के साथ ही भय केसवनास नाम धारी कविया की रचनाओं का सम्बन्ध जोड़ दते हैं। परिणामस्वरूप जमुनि का कथा हनुमानचम सत्ता बालिचरित भानन्महरी रत्ननिन कृष्णलीला तथा केसव दास जी का घमा घूट आदि रचनाओं का प्रामाणिकता एवं अप्रामाणिकता में भ्रम भा सन्नेह बना हुआ है। इन केसव नामधारी कविया में प्रधान केसोराह, केसोराय-बबुभा केसव गिरि तथा केसव प्रसिद्ध हैं जो कि केसवदास के समकालीन नहीं हैं। इनके विषय में हम यथास्थान कहेंगे। केसवदास की अपन्या केसोरायया केसोराय का प्रयोग अधिक है। यह समभवत इतीति है कि ब्रजभाषा में केसव का कता भाषा-विज्ञान के आधार पर भी हो जाता है और इसका एक भ्रम कृष्ण के प्रति भा तप जाता है। दक्षिण—

"एते पर केसोदास तुम्ह भा प्रवाह बाहि ।

बहे जक लागी भागी मूल सल मूल्यो बहु ॥

माही मुख दाह दिन धसन छबोले सास ।

ऐसी तो गवारिनि तो तुमहि निबाहो नहु ॥' ३

अथवा—

"यह परिरम्भन कहाव कौन केसोराह ।

यरी सों ओ मो सों तुम राखहु दुराय क ॥

राधिक की राधिकाई कहा कहौ तोसों भानु ।

आपुनो पियारो पिउ छाप ही मनाइ क ॥" ४

केसव केसव तथा केसा की छाप का अधिपतर मिलती ही है भाष ही साथ केसो

१ विज्ञान-गीता इवकेमला प्रभन धन् ५६

२ कविप्रिया दिनेश प्रभाव धन् १७

३ रमिकप्रिया, दा-स प्रकाश धन् २६

४ विहारी की बाधिमति पृष्ठ ५६ ओ विरचनायप्रसाद सिध



बेसोराइ' का भी प्रयोग मिलता है—

“कैसो कैसोराइ, पड पड पर भेंट होति ।

बधिबो कहां से, बज भीचिन बसतु है ॥

मनि मोर घट्टिका, बजायो निसि बांसुरी सी ।

कारो छोटा काहू को है कारे सो बसतु है ॥”

**जाति**

केशवदास जी भारद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण थे और उनकी मूल्य ‘मित्र’ भी । उन्होंने अपनी रचनाओं में सनाढ्यों का बड़े उत्साह से वर्णन किया है । ‘रामचन्द्रिका’ के प्रारम्भ में ही वे लिखते हैं कि जाति के सनाढ्य ब्राह्मण जगत् में सिद्ध रूप युद्ध स्वभाव वाले मित्र उपनामधारी पंडितराज कुण्डवत्त पुष्पी मर में प्रसिद्ध हैं । उन्होंने गणेश के समान बुद्धिमान् अगाध पंडित काशीनाथ नामक पुत्र पाया । जिन्होंने सब गार्हो की विचार कर उत्तम मत का जान लिया था । उही पंडित काशीनाथ के कुल में मूल्य बुद्धि और दात केशवदास कवि उत्पन्न हुआ, जिसने श्री रामचन्द्रिका का भाषा में प्रकाशित किया ।<sup>१</sup> केशवदास ने जाति का अभिमान बूट-कूट कर भरा हुआ था । राम के राज्याभिषेक के समय सभी उत्तम ब्राह्मणों तथा ऋषियों को छोड़कर केशवदास जी ने राम के द्वारा सनाढ्यों की ही पूजा कराई है ।

‘प्रगट सब न सनोदियन के प्रथम पूजे पाइ”

रामचन्द्रिका के इक्कीसवें प्रकाश में सनाढ्योत्पत्ति के सम्बन्ध में यह छंद बड़े गण है । रामचन्द्र जी भारद्वाज से पूछते हैं—

‘कहो भारद्वाज सनाढ्य को ह । भए कहां से सब मध्य सोह

हुते सब विप्र प्रभाव भीने । तजे ते क्यों ये प्रति पूज्य कीने ।’<sup>२</sup>

भारद्वाज ने राम से कहा कि यह क्या शिव न नारायण से सुनकर मुझे सुनाई थी । वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ जिससे तुम सनाढ्यों की धड़ा से पूजा कर सको । समुद्र में नारायण की नाभि में कमल निकला और उस कमल में ब्रह्मा पैदा हुए । ब्रह्मा के मन से सनक सनन्दन सनायन तथा सनत्कुमार नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए । पुनः उन चारों के मन से जो ब्राह्मण पैदा हुए वही सनाढ्य कहलाए । उसने धारा मारनाज कहते हैं—

१ विशारो की वाग्विभूति हिन्दी-साहित्य कुटीर, उपग्राम १

२—सनाढ्य जाति सनाढ्य है जगत्सिद्ध मुद्र मुपाउ कृपणरूप प्रसिद्ध है जहाँ मित्र पण्डितराज गदेम सो मुद्र पात्रयो मुद्र वासिनाथ अगाध, अमेय मारन विचारयो जिन नाम्यो मन साध । उपयो वेदि कुन मरमति सुत कवि केशवनाम रामचन्द्र का चन्द्रिका भाषा करी प्रकाश ॥

रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द संख्या ४-५

३—रामचन्द्रिका, सत्यार्थसभा प्रकाश छन्द २३

४—रामचन्द्रिका, प्रकाशसभा प्रकाश छन्द १५

सातेरिविराज सबै लुम छाँडी, भूरेव सनादुपन के पद भाँडी ।

बीन्हि तुम्हों तिनको घर करे छटु जुग होटु सपोबल प्रे ॥<sup>१</sup>

धरम सीमा भी दर्शनीय है—

“सनादुप पूजा अथ ओषहारी अलखड अलखडल लोक धारी ।

अनेव लोकयाधि भूमिचारी, समुस भास नप दोष-कारी ॥”<sup>२</sup>

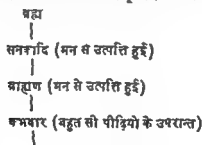
ब्रह्माजी राम से विनय करते समय भा सनादुपों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं ।<sup>३</sup>

‘रामचद्रिका’ के चौथीसवें प्रकाश में ‘सनादुप’ जिज्ञासागमन वर्णन केवल उनकी जाति का महत्त्व प्रतिपादित करता है । केशव के अनुसार सनादुप ब्राह्मणों की भक्ति जिनके मन में जागृत होगी उनके शिबजी का विमूल भी नहीं लग सकता ।<sup>४</sup> सनादुपों की वृत्ति जो हरण करता है वह सन्व के लिए नष्ट हो जाता है वह अकाल मृत्यु पाता है तथा उसे अनेक नकों का दुःख भोगना पड़ता है ।<sup>५</sup>

धी हृष पण्डितराज जगन्नाथ की गवोंक्तियों के समान केशव में व्यक्तिगत गर्वों कित नहीं नहीं है । केशव की निरभिमानता अनेक स्थलों पर द्रष्टव्य है ।<sup>६</sup>

### वक्ष-परिचय

महाकवि केशवरास न रसिकप्रिया’ रामचद्रिका वीरसिंहदेवचरित तथा विज्ञा नगीठा आदि सभी ग्रन्थों में अपना मक्षिप्त रूप से वक्ष-परिचय दिया है परन्तु कवि प्रिया’ में जो परिचय प्राप्त होता है वह अन्यत्र नहीं । ‘कविप्रिया’ के द्वितीय प्रभाव में अपने वक्ष एवं कुल गीत आदि का वर्णन केशवरास जी ने विस्तारपूर्वक किया है । ‘कवि प्रिया’ के आधार पर केशवरास जी का वक्ष-वृत्त निम्न प्रकार है—



१ रामचद्रिका इक्कीसवा प्रकाश छन्द १६

२ रामचद्रिका इक्कीसवा प्रकाश छन्द २

३ रामचद्रिका तीसरी प्रकाश छन्द १०

४ रामचद्रिका अंतीमवा प्रकाश छन्द ४५

५ रामचद्रिका उत्तरार्द्ध छन्द ४५६ पृष्ठ २३५

६ कविप्रिया द्वितीय प्रभाव छन्द ४७

राय प्रवीण के सम्बन्ध में केनवदास जी का मत है—

“राय प्रवीण कि सारदा, सुखि खि रजित भग ।  
 बोना-बुस्तक धारिनी, राजहस सुत-सग ।  
 वृषभ बाहिनी भगवुत, वासुकि ससत प्रवीन ।  
 सिब सैग सोहै सबदा, सिबा कि राय प्रवीन ॥”

केनवदास ने सिखा तो सभी को दी होगी परन्तु राय प्रवीण कवयित्री बन गई।

यह स्वाभाविक भी है। किसी अध्यापक के सभी विद्यार्थी प्रतिभा-सम्पन्न नहीं होते। कहते हैं एक बार सम्राट् अकबर ने राय प्रवीण की प्रमिद्धि के कारण उसे अपने दरबार में बुलाया। वहाँ उसने अपनी कवित्व शक्ति के द्वारा अकबर की मुग्ध हो नहीं किया साथ ही साथ अपने सतीत्व की भी रक्षा की।<sup>१</sup>

‘कूठी पतरी भलत है धारी वायस स्थान’<sup>२</sup> की चोट से अकबर होश में आ गया।

बालकन वाले शिष्यों में प्रसिद्ध पण्यतोहर पतिराम<sup>३</sup> स्वर्णकार की गणना की जा सकती है। यद्यपि यह पढ़ा निखा नहीं था तथापि कविता समझने लगा था। केनव ने पतिराम के विषय में लिखा है—

‘मूल सौल कसिबान खनि, कायस सिलत अपार।

राखि भरत पतिराम ये, सोनी हरत सुनार।’<sup>४</sup>

पतिराम<sup>५</sup> जमे न मालूम बिछने शिष्य केशवदास जी के रहे होंगे।

जहाँ तक सम्प्रदाय प्रवचन की बात है वह विषय विचारणीय है। उन्होंने ‘रसिक प्रिया’, ‘कविप्रिया तथा छन्दमाला भ रम अलंकार तथा छन्दशास्त्र की प्रमत्त विवेचना की। प्रायः हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने आचार्य केनवदास को रीतिकान का प्रथम आचार्य माना है। आचार्य केनव से पूर्व हिन्दी में काव्यशास्त्र के लेखकों में से कुछ की तो प्रामाणिकता ही गन्देहास्पद है, उदाहरण रूप में पुष्प तथा कुपाराम लिए जा सकते हैं। नन्ददास की ‘रसमञ्जरी तथा करनैस के ग्रन्थ काव्यशास्त्र की दृष्टि से विशेष महत्व पूर्ण नहीं। करनैस के ग्रन्थ का ता विवरण ही अत्यन्त है। करनैस बन्दीजन मिश्रवापु बिनोद के अनुसार नरहरि के साथ दरबार में जाया करते थे।<sup>६</sup> आचार्य केनवदास हिन्दी साहित्य के प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सस्कृत के आधार पर हिन्दी-काव्यशास्त्र के विषयों पर साप्ताहरण लक्षण ग्रन्थ लिखने की परम्परा हाथी और उन्हें पूर्ण सफलता मिली। भाग के दा सी वष तक के परवर्ती लेखकों एवं कवियों ने हो नहीं अपितु निम्नज आचार्यों ने भी बिना ‘कविप्रिया’ या ‘रसिकप्रिया’ की पढ़े कुछ लिखने का माहस नहीं किया।

१ कविप्रिया ‘प्रथम प्रभाव, छन्द ५६-६

२ हिन्दी नवरत्न पृष्ठ संख्या, ४५४

३ हिन्दी नवरत्न पृष्ठ संख्या ४५४

४ कविप्रिया बारहवां प्रभाव, छन्द १६

५ निम्नज बिनोद, भाग कृष्ठ १२४, स १६६४





रीतिवात के प्रायः सभी बबिया न केवल स प्ररणा ग्रहण का।

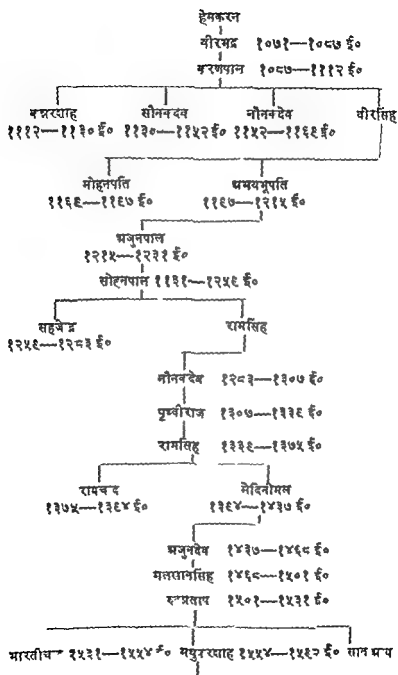
केशव के आश्रमदाता

ओरछा राज्य सम्बन्धी नृपवर्ग-वर्णन केवलदास जी ने बबिप्रिया नामक ग्रन्थ के प्रारम्भ में दिया है।

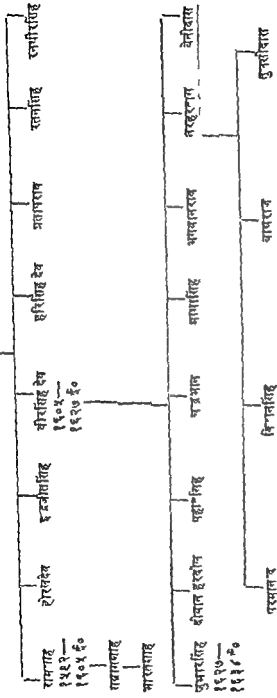
ओरछानरेश मधुकरगहक जयस्य रामगह होरिसराव नसिह रतनसेन इन्द्र जीतसिंह राजसिंह बोरसिंहदेव तथा हरिसिंह देव नामक आठ पुत्र थे। इनमें रामगह राजा हुए। यद्यपि राजा रामगह के बेटे मारि तथा अन्य बहुत व्यक्ति परिवार के थे तथापि राज-काज का सारा भार इन्द्रजीतसिंह पर था।<sup>१</sup> केवलदास जी ने इन्हीं के लिए लिखा है—

‘केसोदास जाके राम, राजु सौ करत है।’

ओरछा गजेटियर में लिए हुए वर्णन के आधार पर ओरछा राज्य का वर्णन-वृत्त भगले पृष्ठा में किया जा रहा है —

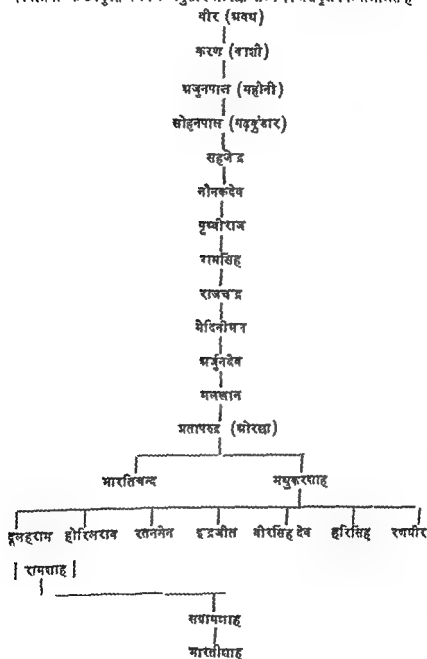


# मणुख रत्नाह

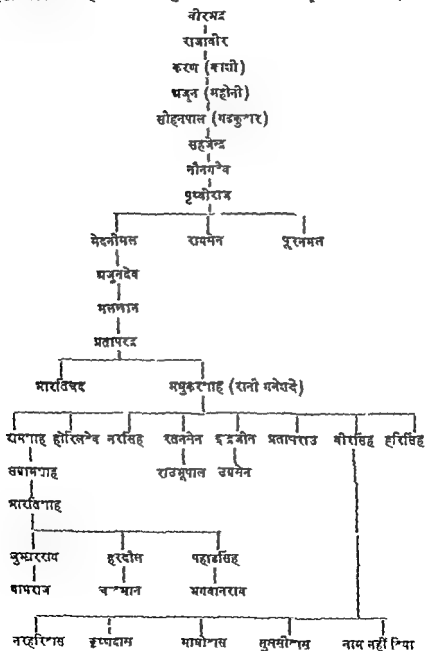




‘वविप्रिया’ के उपयुक्त वर्णन के अनुसार भोरछा राज्य का वंशवृक्ष निम्नलिखित है—



इसी प्रकार 'वीरसिंहदेवचरित' के अनुसार मोरछा राय का वंशवृक्ष निम्नलिखित है—



वीरसिंहदेव—

केगव हमहि विवेक की, महानीह को गुड।

घरणि सुभावहु होइ ज्यों जीव हमारी गुड ॥<sup>१</sup>

इन्द्रजीतसिंह तथा वीरसिंहदेव के प्रतिरिक्त रामगाह रतनसेन भमरसिंह तथा चन्द्रसेन के नाम भी आश्रयदाताओं में गिने जा सकते हैं क्योंकि सभी राजा थे और केगव दास का आदर करते थे। केगवदास ने भी इन सभी के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में लिखा है। रतनसेन की प्रशंसा में तो रतनबाबरी नामक एक अलग ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में मधुकरशाह के स्वाभिमान तथा रतनसेन की वीरता की अमिट छाप है।<sup>२</sup>

रामगाह इन्द्रजीतसिंह के ज्येष्ठ भ्राता थे। बड़ उदार एवं धार्मिक व्यक्ति थे। राजा होते हुए भी कभी राज्य के प्रपञ्च में नहीं कने।<sup>३</sup>

आपने सबके केगवदास को अपना मंत्री तथा मित्र समझकर आदर दिया<sup>४</sup>—

महाराणा प्रतापसिंह के सुपुत्र भमरसिंह राजा की प्रज्ञा में केगवदास जी ने अपने कविप्रिया नामक ग्रन्थ में कई छन्द लिखे हैं। वे बड़ दानी एवं वीर थे। उन्होंने अत्यन्त विवश होकर अधीनता स्वीकार की जिसका पदवात्ताप उन्हें जीवन पयन्त रहा। परिणामस्वरूप राज्य भार अपने पुत्र को देकर बिसौडगढ़ को छोड़कर नौबोली चल गए। तदुपरान्त बिसौड जीवन भर मापस में आए। केगवदास की उम्र पर समता देखिए—

‘ऐसे राजा राम, वज्रराम के परसुराम।

क्यों है भमरसिंह, मेरे उर भाए ह ॥<sup>५</sup>

वे बड़ दानवीर थे<sup>६</sup>—

चन्द्रसेन का ठीक-ठीक पता नहीं चलता क्योंकि किसी प्रकार का कोई दूसरा सबूत नहीं मिलता। हो सकता है मधुकरशाह के भाई चन्ददास को ही केगव ने चन्दसेन लिख दिया हो अथवा वीरसिंह के पुत्र चन्द्रमानु को ही चन्दसेन नाम से अभिहित किया गया हो। संभव है जोधपुर के राजा नरसवदेव के पुत्र ही हों जिनका कि नाम चन्दसेन था। मुगलों से वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते म० १६४२ वि० में चन्द्रसेन की मृत्यु हुई थी।<sup>७</sup> इस दृष्टि से यह केगवदास के प्रारम्भिक आश्रयदाता निश्चित होते हैं। हो सकता है कि इन सबसे भिन्न यह कोई और ही बुढ़ेला वीर हो। कोई भी हो केगवदास जी ने कवि प्रिया में उसकी तलवार के विषय में लिखा है।<sup>८</sup>

१ विशालगीता, प्रथम प्रभाव, २८, २९ तथा ३५

२ केगव पंचरत्न पृष्ठ २

३ कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ३८

४ कविप्रिया द्वितीय प्रभाव, छन्द २१

५ कविप्रिया, ग्यारहवां प्रभाव छन्द ३२

६ कविप्रिया ६८वां प्रभाव, छन्द ७५

७ टाइम मगज़ीन द्वितीय भाग पृष्ठ भरम्य २५८-२६०

८ कविप्रिया, ग्यारहवां प्रभाव छन्द ३८

इसमें सन्देह नहीं कि केव की गणना उन कृत्रिम सौभाग्यवाली कवियों में की जा सकती है जो राजतरवारों में सम्मान की दृष्टि में देख गए। इस दृष्टि से चन्द्रवरदायी तथा भूषण जी का नाम उल्लेखनीय है। परन्तु इन दोनों से केवदास जी का भान्न अधिक हुआ। यह ठीक है कि चन्द्रवरदाया एक भूषण कृष्ण पृथ्वीराज तथा शिवाजी के कृपा प्राप्त थे यद्यपि युद्ध भूमि में भी दखन रखते थे परन्तु केवदास जी को इन्द्रजीतसिंह ने गुरु के रूप में माना। यह सौभाग्य न तो वेदों के प्राप्त हुआ और न भूषण को ही। इस दृष्टि में केवदास जी का स्थान अग्रिम है।

### केव एक विहारी—

केव और विहारा के पिता-पुत्र सम्बन्ध के विषय को सार हिन्दी के विद्वानों ने अपने अपने मन प्रतिपादन किए हैं। इस सम्बन्ध का मानने और न मानने वालों के दो दल हैं—

प्रथम पक्ष के विद्वानों में उल्लेखनीय राधाकृष्णदास<sup>१</sup> जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'<sup>२</sup> गौरीशंकर त्रिपाठी<sup>३</sup> और चन्द्रबाला पांडे हैं। त्रिपाठी पक्ष का प्रतिपादन डा० 'याममुन्दर दास मायाकर' द्वारा<sup>४</sup> 'गणप्रसाद' त्रिवेणी तथा हीराचल जी दीक्षित ने किया है।

'राधाकृष्णदास ने अपने निबन्ध 'केव और विहारीलाल' शीर्षक में जा उन्होंने स० १९५२ वि० (सन् १९६५ ई०) में लिखा था इस विषय का प्रतिपादन करते हुए केव और विहारी का पिता-पुत्र सम्बन्ध स्थापित किया है और उन्होंने निबन्धसिंहसरोज डा० श्रियमन और राधाचरण गोस्वामी की मायतामा का खण्डन किया है। अपनी मायतामा की दृष्टि में राधाकृष्णदास जी ने प्रायः अपने साम्य ही का प्राशन किया है। राधाकृष्णदास जी ने इस निबन्ध में केव पिता-पुत्र सम्बन्ध पर ही विचार नहीं किया अपितु विहारी के जीवन के अन्य पक्षों पर भी प्रकाश डाला है। राधाकृष्णदास निबन्धसिंहसरोज और श्रियमन की भाति विहारा को मयूरा का बाल नहीं मानते। विहारी के 'जन्म' लियो जिजराज-कुल<sup>५</sup> दाह का उद्धारण प्रस्तुत करते हुए राधाकृष्णदास जी ने हरिचरणदास की टीका का उद्धारण किया है। राधाचरण गोस्वामी के अनुमान को उद्धृत करते हुए राधाकृष्ण जी लिखते हैं—

'गोस्वामी राधाचरण जी अनुमान करते हैं कि 'केव' (भगवान् केवराय) विहारी के पिता हैं क्योंकि मयूरा में जो भगवान् की मूर्ति है वह भी केशवदेव नाम से प्रसिद्ध है। 'राय' शब्द से वे अनुमान करते हैं कि वे भाट थे। क्योंकि 'राय' भाटों की पत्नी है और भाट जाति ब्राह्मणों में लीजिया में उत्पन्न होने के कारण 'अनुमोमो' में अपनी गणना करके अपने को निज मानते हैं। गोस्वामी जी यह भी अनुमान करते हैं कि केवराय ही विहारी

१ राधाकृष्णदासजी (जन्म केव और विहारीलाल पृष्ठ २१०)

२ विहारी-रत्नाकर-समिका

३ मुन्देश वैभव प्रथम भाग

४ केवराय अविनष्ट

५ विहारी-रत्नाकर पृष्ठ ११ पृष्ठ ४६

के विद्यापद भी ये क्याकि घोर किसी गुरु का नाम नहीं मिनता तथा यह दोहा सतसई के प्रायः अन्त में पाया जाता है ।<sup>१</sup>

इमका खडन राधाकृष्ण जी ने किया है ।<sup>२</sup>

उनके खडन का धार इस प्रकार है—

१—केदारदास जी भाग नहीं थे ।

२—दानों समकानीन थे ।

३—अम नानपन तथा युवावस्था अमग खातिपर बुन्देलखण्ड (प्रोरछा) तथा मथुरा में हुई ।

४—बालपन बुन्देलखण्ड में व्यतीत होने के कारण बिहारी की भाषा में बुन्देलखण्ड की भाषा के शब्द हैं ।

५ बिहारी ने स्वयं जानते हुए भी केदार के सम्बन्ध प्रकाशित नहीं किया ।

पिता पुत्र सम्बन्ध के दूसरे पोषक रत्नाकर जी थे । उन्होंने पिता-पुत्र की पुष्टि के सम्बन्ध में स० १६८४ तथा स० १६८७ वि० की नागरीप्रचारिणी पत्रिका में दो लेख लिखे । वे इस प्रश्न की कुछ गहराई में गए । उन्होंने लिखा है कि बिहारी के प्रथम टीकाकार कृष्णनाथ कवि ने प्रथम भए 'जिराज कुल' वाले दोहे की टीका में लिखा है—

‘बेसो जी मेरो पिता और बसोराम जी धीकृष्ण जू ।

इसी प्रकार उक्त दोहे की ‘अनवर चन्द्रिका’ की टीका में भी लिखा है कि केदार केदार राम बिहार के बाप का नाम है । रस चन्द्रिका हरिप्रकाश तथा लाल चन्द्रिका टीकाओं से बिहारी के पिता का नाम केदार ही सिद्ध होता है । साथ ही साथ यह भी सिद्ध होता है कि केदार ब्राह्मण थे और अपनी इच्छा से धार प्रज में बसे थे ।<sup>३</sup>

रत्नाकर जी ने बिहारी एवं केदार के भाव-साम्य तथा शब्द-साम्य के आधार पर सिद्ध किया है कि बिहारी ने केदार के शब्दों का अध्ययन किया था और उन्होंने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत किए हैं—

धिरजीवी जोरो जुर क्यों न सनह गभीर ।

को घटि ए बुधभानुजा के हृत्पर क बीर ॥<sup>४</sup>

यहां भाव केदार न इस प्रकार व्यक्त किया है—

“अनगने छोड़ पाप राखरे मन न जाहि

वेऊ चाहि तबकि करवा अति मान की ॥’

१ राधाकृष्ण ग्रन्थावली, निबन्ध कविकर बिहारीलाल पृष्ठ २१३

२ राधाकृष्ण ग्रन्थावली निबन्ध कविकर बिहारीलाल पृष्ठ २१३, १४

३ नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग = स० १६८४ पृ० ८७

४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग = स० १६८४ पृ० १ =

५ बिहारी रत्नाकर दोहा ३७७ पृ० २७८

तुम जोई सोई कहौ, वेऊ जोई सोई धुन  
तुम जीम पातरे बे पातरी ह कान की।  
कसे बेसोराय<sup>१</sup> काहि बरजो मनाऊ काहि,  
आपने सयाधो कीन मुनत सयान की।  
कोऊ बडवानत को छु है सोई ऐहै बीव,  
तुम बामुदेस बे ह बेटी बधमान की॥”<sup>२</sup>

जिस प्रकार कृष्णजी न विनु मधु मधुकर के हिय<sup>३</sup> जाने दाहे में भोरछा के राजा मधुकरवाह का अनुमान किया है उसी प्रकार रत्नाकर जी ने ‘पातुरराय’<sup>४</sup> शब्द से प्रमाणित किया है कि बिहारी ने प्रबोधराय का नृत्य देखा होगा। रत्नाकर जान बिहारी के जीवन-सम्बन्ध एक दोहाबद्ध निबन्ध का भा उन्मत्त किया है। उनका कथन है कि यह निबन्ध इस प्रकार लिखा गया है मानो बिहारी न स्वयं लिखा हो। उसके अनुसार बिहारी का पिता का नाम केवलास है। स्यारहवय की अवस्था में बिहारी का भ्रमने पिता के साथ जाना श्री हरिश्चामी का आश्रम देखना तथा बहा नागरीदास जी का महन्त के रूप में मुगलमित्र होना वर्णित है। रत्नाकर जी के अनुसार कुछ सन्देशात्मक बातों के होते हुए भी अधिकतर बातें सच जान पड़ती हैं। क्योंकि—

भो भरहरि नरनाह कौ बीनो बाह पहा<sup>५</sup>  
सगुन आगरे आगरे रहत आइ सप पा”<sup>६</sup>

जाति का प्रश्न भी हल हो जाता है क्योंकि चौबे भी सनादय होने हैं और मिथ उनकी ‘भक्त’ होदी है। मधुरा में तथा अन्य स्थानों पर ऐम मिथ बहुत न हैं। कुलपति मिथ ने जो यह दोहा संग्रह सागर<sup>७</sup> में लिखा है—

कबिबर मानामहि सुमिरि केसो केसोराइ।

कहौ कथा भारत की भाषा छंद बनाइ॥<sup>८</sup>

इससे भी केवलास के प्रति सन्देह है। ‘विमान-योगी’ के अन्त में केवलास आने ‘बानकनि’ शब्द के द्वारा एक से अधिक सन्मान होने का संकेत किया है।<sup>९</sup>

देवजीनन्म जी ने बिहारी सतसई की टीका में लिखा है—

१ अंगरेज-रिपोरि पत्रिका भाग ८ पृष्ठ १६५४ पृष्ठ ८७

२ नागरी-रिपोरि पत्रिका भाग ८ पृष्ठ १६५४ पृष्ठ ८७

३ सब भगि करी राखो सक ना एक नेह सिखाइ।

रस बुलंद मनन गति पतरी पातुर राइ। बिहारी-रत्नाकर, दोहा २८७

४ नागरी-रिपोरि पत्रिका भाग ८ पृष्ठ १६५४ पृष्ठ ८७

५ समानांतर कथाविवरण

६ विमान-योगी शब्दकोश प्रभाव छन्द ५६ ५७

“विप्र बिहारी सुद्ध भो, ब्रजवासी मुकुलीन ।

सातिय ही कविता निपुन, सतसया तिहि कीन ॥”

‘रत्नाकर’ जो का अनुमान है कि क्या आश्चर्य है जो यह विदुषी बिहारी की ही रची रही हो।

पिता-पुत्र ने समयव प० गौरीशङ्कर द्विवेदी ने अपने कुण्डलवक्त्र नामक ग्रन्थ में ‘जन्म स्वातिपर जानिए’ वाले दोह के सम्बन्ध में लिखा है कि ‘कुण्डल वक्त्र’ जिसमें बिहारी के वंशज राजवन् रहते हैं औरछा के राजवक्त्र न होने के कारण स कुण्डलवक्त्र से कोई सम्बन्ध न रहा। औरछा एक मयुरा में पर्याप्त अन्तर है अतः भाषा-व्यवस्था स्वाभाविक ही है।” इस प्रकार बिहारी का सम्बन्ध कुण्डलवक्त्र (औरछा) से स्थापित करके उन्हें केशव का पुत्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

गणेशप्रसाद द्विवेदी अपने हिंदी के कवि और वाक्य नामक पुस्तक में लिखते हैं—

इस बात को सभी मानते हैं कि बिहारी मायूर चौबे के और केशवदास के मित्र। इस माटी की बात पर ध्यान देने का कष्ट बढ़ाचित् नहीं उठाया गया। बिहारी की जन्म तिथि केशव के मृत्युकाल के निश्चित स० १६६ वि० मानी जाती है और फिर ‘सरोज वार के हिसाब से तो बिहारी का जन्म केशव से पूर्व ही हो चुका था।

सारंग यह है कि बिहारी को केशव का पुत्र मान सने का अभी तक हमारे पास प्रबल प्रमाण नहीं है।”

केशवदास नामक ग्रन्थ में श्री चम्बली पाठे इस प्रकार विचार प्रकट करते हैं—

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने यहां जिस मोटी बात का उल्लेख किया है वह वस्तुतः मोटी ही है। उसके मूल में परम्परा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बिहारी मित्र नहीं चौबे थे। इसका किसी के पास प्रमाण क्या! बिहारी न कब और कहा अपने को मयुरा का चौबे कहा है। फिर मयुरा के चौबों में मित्र भी तो होते हैं। रही जन्मभूमि और मुसरास की बात तो उसके साथ कुण्डलवक्त्र (औरछा) का उल्लेख ही है। फिर इतना प्रमाद क्यों! दक्षिण, ‘जन्मभूमि और मुसरास का आचार यहां दाहा है न—

जन्म स्वातिपर जानिए लख बुन्देले बाल ।

तरनाई धाई मुजब मयुरा बसि मुसरास ॥’

तो भाप लख बुन्देले बाल को क्या करेंगे! हमें कहे भी जाएंगे! नहीं ऐसा नहीं हो सकता इस पर भी ध्यान देना होगा। इससे तो भाप ही स्पष्ट हो जाएगा कि वस्तुतः

१ नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ८ १९८४ पृष्ठ ६८

२ जन्म स्वातिपर जानिए एव कुण्डलवक्त्र । तरनाई धाई मुजब मयुरा बसि मुसरास ॥  
नोट—यह दोहा बिहारी रत्नाकर में नहीं पाया गया है।

३ कुण्डलवक्त्र प्रथम भाग, पृ २२०

४ हिन्दी के कवि और वाक्य भाग २, पृष्ठ १८५, हिन्दुस्तानी एन्सेक्लोपा

प्रापके पद म बिनना पानी है ।<sup>१</sup>

द्विवेदी जी की मोटी बान का उत्तर तो पाठ जी ने दे दिया । जहाँ तक सरोजकार के कथन का सम्बन्ध है कि बिहारी का जन्म केगव से पहले हो चुका था निरान्त हो प्रसंगत है । निर्वासितसरोज म एक नहीं अनकसन-मवत् प्रसुद्ध है । अतः प्रामाणिक नहीं । दूसरे, इतिहास साक्षी है कि बीरसिंहदेव की मृत्यु सन १६२७ ई० म हुई और जबसिंह उनके परवरती थे । म जानों ही केगव एवं बिहारी का जन्म आधुनिकता से । अतः बिहारी का केगव म पूर्व होना असम्भव नहीं है तो क्या । दोष तर्कों म भी कोई विशेष बल नहीं है ।

डा० ग्याममुल्लैस ने केगव के राज हरिमेवक द्वारा प्रणीत 'कामरूप की कथा' का उद्धरण देने हुए कहा है कि बिहारी केगव के पुत्र न थे । परन्तु हरिमेवक ने अपने पितामह के ज्येष्ठ भ्राता केगव के नाम का ही उल्लेख किया है कोई प्रावश्यक नहीं था कि केगव के पुत्र बिहारी का भी वर्णन किया जाता ।

श्री मायागुरु याज्ञिक ने सन् १९८७ वि० की 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' के एक लेख म इस पिता-पुत्र सम्बन्ध के विषय म बहुत से तर्क दिए हैं उनम से उल्लेखनीय यह है कि वे बिहारी के पिता केगव को नहीं प्रियतु केमो केसोराइ नामक किसी अन्य कवि को मानते हैं । अपने कथन की पुष्टि म उन्होंने कई उदाहरण दिए हैं—

‘मेरे हरी क्लेश सब केसो केसोराइ’<sup>२</sup>

कुलपति मिथ ने 'सप्तम सागर' म लिखा है—

कविवर मातामहि भूमिनि केसो कसोराय ॥<sup>३</sup>

इसके अतिरिक्त उन्होंने नवीन कवि द्वारा विरचित प्रबोध रसमुखासागर नामक ग्रन्थ से केसो कसोराय के दो छन्द उद्धृत किए हैं जिनम कवि की छाप 'केमक केसवराय है—'

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि केगव जी ने केसो केसोराइ की छाप से भी कविता लिखी है ।

अतः याज्ञिक जी द्वारा उद्धृत छन्द श्री महाकवि केगवदास द्वारा विरचित ही हैं । केगव आचार्य अतः उनके छन्दों का प्रयोग 'रसमुखासागर' म होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । दूसरे याज्ञिक जी न केसो केसोराय कवि का न तो जन्म-मवत् ही बताया और न जन्म-भूमि ही । अतः प्रभूत प्रमाणों के आभाव म याज्ञिक जी की स्पष्टता निरर्थक हो जाती है । डा० हारानान दाक्षिण अपने आचार्य केगवगम नामक ग्रन्थ म पिता

१ केगवगम चन्द्रकाशदे पृष्ठ ६

२ अरुणा गच्छिष्य, भाग १ अ

३ नागरीप्रचारिणी पत्रिका खोज-रिपोर्ट १६ पृष्ठ ५ ई

४ बिहारीरत्नाकर, दोहा १ १ पृष्ठ ४६

५ सप्तम सागर अन्वर्गित नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ८ म १९८७

६ नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ८ पृष्ठ १९८७



पुत्र-सम्बन्ध के विरुद्ध चार कारण देते हैं—

- १ केनव एवं बिहारी का भास्पद वैषम्य
- २ बिहारी केनव के पुत्र होते तो यह बात परम्परा से प्रसिद्ध होती
- ३ केनव के वंशज हरिसेवक ने 'वामरूप की वधा' में बिहारी का उल्लेख नहीं

किया—

४ बिहारी ने स्पष्ट रूप से अपना जन्म ग्वालियर में होना लिखा है किन्तु केनव का कभी ग्वालियर में रहना प्रमाणित नहीं होता ।<sup>१</sup>

वहने की भावश्यकता नहीं कि विपक्ष के ये सभी कारण भिन्न भिन्न विद्वानों के द्वारा पूरे हो उठाए जा चुके हैं और गौरीगंजर निवेदी रत्नावली तथा चम्पती पांड आदि विद्वानों ने भासपों का निराकरण भी किया है। फिर भी डाक्टर साहब के कारणों पर विचार करना अनुचित न होगा।

१ बिहारी चौबे ये इस बात का प्रमाण बिहारी ने तो कहीं नहीं दिया। दूसरे, चौबे लोगो से भी मिथ्य होते हैं। केनव ने तो अपने को मिथ्य कहा है मगर पिता-पुत्र का भास्पद एक ही रहा। इसके प्रतिरिक्त यदि भास्पद भिन्न भी होते तब भी पिता-पुत्र सम्बन्ध में कोई बाधा नहीं। पिता-पुत्र के भिन्न भास्पदों की बात तो दूर रही ऐसे व्यक्तियों का भी अभाव नहीं जिन्होंने अपने जीवन के दो भास्पद रये।

२ जीवन उत्थान एवं पतन का मिश्रण है। जिस वंश ने पीढ़ियां से विद्वानों को जन्म दिया। कुण्डलत वागीनाथ बलभद्र केनव तथा बिहारी जैसे रत्न उत्पन्न किए वही भाग चलकर अथ पतन के गर्त में चला गया। बिहारी की मृत्यु के उपरान्त उनके वंशज 'कुटेरा पिछोर' बने गए और भाले भाले ग्रामवासी लोगो की भांति जीवन-यापन करने लगे।

३ यह तक वास्तव में सबसे पहले डाक्टर दयामगुदरदास ने उठाया था। डा० हीरालाल दीक्षित ने स्वयं ही उत्तर देते हुए लिखा है—

यावत् दयामगुदरदास जी के जन्म तक मे विरोध कम नहीं है। उपयुक्त ग्रन्थ के परिचय में बिहारी का उल्लेख न होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि केनव बिहारी के पुत्र न थे। हरिसेवक ने केनव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रमाणित करने की स्वाभाविक मनोवृत्ति के फलस्वरूप आशङ्क्य न देकर केवल उसी दाता का उल्लेख किया है जिससे सीधा उनका सम्बन्ध था।<sup>२</sup>

डा० हीरालाल जी दीक्षित में उपयुक्त कथन से हम पूर्णतया सहमत हैं। स्वीकार करते हुए भी डा० साहब ने दयामगुदरदास जी के तर्कों को अपने कारणों में गिना दिया है। हरिसेवक का उद्धृत 'वामरूप की वधा' में वंशावली देना न था। वे तो साधारण

१ आचार्य वैराग्य पृष्ठ ४८-४९

२ आचार्य वैराग्य डा० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ४५-४६

परिचय देना चाहत था। भूत विहारी की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई।

४ हम स्वयं स्वीकार करते हैं कि ग्वालियर में केशवदास स्थायी रूप से नहीं रहे परन्तु वहाँ पर उनकी सुसंराज थी। विहारों अधिकतर ननिहाल में ही रहे। भूत उनका जन्म ग्वालियर में ही हुआ होगा।

इस प्रकार विहारों के समय जन्म स्थान एवं जाति आदि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विहारी केशवदास के पुत्र थे।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों से केशव का सम्बन्ध

आश्रयदाताओं के अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जिनसे आचार्य केशवदास जी का विशेष सम्बन्ध था। वह सम्बन्ध इतना था कि केशवदास जी ने अपनी कृतियों में भी उनका उल्लेख किया है। यहाँ हम उन्हीं कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के सम्बन्ध में विचार करेंगे—

**बीरबल**

बीरबल केशवदास जी के आश्रयदाता के रूप में कहा जा सकते परन्तु वे उनके परम हितवी थे। इन्द्रजीतसिंह के जुमाना माफ कराने के सम्बन्ध में केशवदास जी बीरबल के पास भागरे गए थे और उन्होंने एक छन्द द्वारा उनकी प्रशंसा की थी।<sup>१</sup>

कहा जाता है कि उस छन्द से बीरबल पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने छह लाख रुपयों की हुडियाँ जो उनकी जेब में पड़ी हुई थी केशवदास को दी। इसके अतिरिक्त भूतबल के द्वारा एक करोड़ रुपये का जमाना भी माफ करा दिया।

**राय प्रवीण**

राय प्रवीण पातुर के सम्बन्ध में हम भ्रमण कह चुके हैं। वह केशवदास जी की प्रिय पिथ्या थी। केशव उसके गुणों पर इतने मुग्ध थे कि उन्होंने उसकी लक्ष्मी शारदा एवं पार्वती से तुलना की है। 'कविप्रिया' का प्रणयन उसी के हेतु हुआ तथा 'कविप्रिया' की प्रेरणा का स्रोत भी राय प्रवीण ही थी।<sup>२</sup>

**रहीम**

केशवदास जी का परिचय अग्रज रहीम खानखाना से भी था। भागरा जाने के कारण स रहीम जैसे काव्य प्रेमी से मिलना स्वाभाविक भी था। केशव रहीम के विषय में लिखते हैं—

“साहिबू की साहिबी को रसक बनतगति  
कोनी एक भगवत हनवन्त घोर सों।

१ दिल्ली नदरान, १९४६०

२ सविता जू कविता दर्द, ता वहाँ परम प्रकाश।  
ताके काव्य कविप्रिया कोही केशवदास।

जाको जस कसोदास, भूतस के भास पास,  
 सोहत छबीले क्षीर सागर के क्षीर सों।  
 भमित उदार भक्ति पापन विधार बार,  
 जहाँ तहाँ आदरिये मगा जू के नीर सों।  
 सतनि के आसिये को सतक के आसिये को,  
 खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सों ॥<sup>१</sup>

### टोडरमल

राजा टोडरमल ने अपनी योग्यता से गंगाह सूरि तथा अकबर महान् दोनों को ही प्रसन्न किया। अकबर के राज्यकाल में वह भूमि-कर विभाग के प्रधानमंत्री थे। सम्भवतः केशवदास जी से उनकी कुछ मटक गई होगी। उसकी व्यजना निम्न छन्द में परिमलित होती है। 'बीरसिंहदेवचरित' में दान सोभ से कहता है—

‘टोडरमल तुम मिल मरे सब ही सल सोयो।

भोरे हित बलघोर भरे दुख बीननि रोयो ॥<sup>२</sup>

अकबरी दरबार के अग्र ग्लन धबुनफजल फजो मालमिह आदिसे भी केशवदास का परिचय अवश्य रहा होगा क्योंकि केशवदास जी की रचनाओं से इनके सकेत पाए जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के सम्बन्ध में हम पूर्व ही मिल चुके हैं कि केशवदास जी से उनकी भेंट हुई थी।

### पतिराम

केशवदास जी का एक और परिचिन एवं पट्टीसी जिसे हम गिष्यत्व की सना दे चुके हैं पतिराम सुनार था। कविप्रिया में केशवदास जी ने उसके सम्बन्ध में निम्न छन्द लिखे हैं—

बाँचि न आवे तिलि कछु बलत धाँह न घाम।

अथ सुनारी धरई करि जानत पतिराम ॥<sup>३</sup>

मूल सोल बसिबान बनि काइय लिखत अपार।

राजि मरत पतिराम ये सोनो हरत सुनार ॥<sup>४</sup>

बए सुनारनि दाम रावर को सोनो हरयो।

दुख पायो पतिराम, प्रोहित बैसव मित्र सों ॥<sup>५</sup>

### कामसेना

कविप्रिया के ग्यारहवें प्रभाव में एका कवित्त द्वारा कामसेना नाम्नी राजा रामसिंह

१ महानिर् अमचरित्रा पृष्ठ ५

२ बीरसिंहदेवचरित पृष्ठ ११

३ कविप्रिया नवन प्रभाव छन्द २६

४ कविप्रिया, बारहवाँ प्रभाव छन्द १६

५ कविप्रिया, बारहवाँ प्रभाव, छन्द १३

का वन्या की उपमा कामदेव की सेना से दी गई है—

“सोहति सुकसि, मज्जुघोषा, रति, उरवसो,  
राजा राम मोहिबे को सुरति सोहाई है।  
कसरव कसित सुरनि राग रग जुत,  
ब्रजन कमल घटपद छवि छाई है।  
भकुटो कुटिल धनु, लाघन बटास सर  
भरिपल मज्जु मन तन सुखदाई है।  
प्रमुदित पयोधर सौदामिनी साथ नाथ,  
काम की सी सेना कामतेना बनि छाई है।”

चन्द्र

यह राजा वीरवस का दरवान था। कविप्रिया के उरहव प्रभाव म चन्द्र के विय में केवदास जी लिखते हैं—

सब सुख चाहो भोगव जौ पिय एकहि बार।

चन्द गहै जहं राहु कौ जयो तिहि दरबार ॥<sup>१</sup>

विठ्ठलनाथ गोस्वामी

‘कविप्रिया’ के सातहवें प्रभाव म केवदास जी गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी के सम्बन्ध म लिखत हैं—

‘हरि बुद्ध बल गोविन्द बिभु पायक सीतानाथ।

लोक्य विठ्ठल सखयर गदहध्वज रघुनाथ ॥’

मेरे मन्त्रगुरु श्री १०८ गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी मान्य ईश्वर हैं और हरि, गारुड विभु आदि सब उन्हीं के मिल्न मिलन नाम हैं।

शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ ‘वाक्यप्रकाश’ म वाक्य के प्रयोजन तथा कारणों पर विचार करते हुए ‘शास्त्रीय ज्ञान के माघ ही व्यावहारिक ज्ञान का भी महत्व प्रतिपादित किया है। व्यवहार विदे’<sup>१</sup> तथा ‘लोकशास्त्र वाक्य-अवेक्षणत्’<sup>२</sup> कहकर अपने मत को स्पष्ट कर लिया है। केव वाक्यशास्त्र के ज्ञाता थे। भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष दोनों पर केव का समान अधिकार था। राम भक्तभार एवं छन्द पर कवि ‘रसिकप्रिया’ कवि

१ कविप्रिया स्मरहर्षा प्रभाव छन्द ५

२ कविप्रिया उरहवा प्रभाव छन्द ३७

३ कविप्रिया लोचन प्रभाव छन्द १६

४ वाक्य परामर्शवृत्त ‘वक्त्रारवि’ शिरोभूषणये,

सप्त पर निवृत्तये वाक्य सीम्न सरोवरा भुज । प्रथम उल्लास श्लोक २ ।

५ ‘राक्षसिर्निपुणा लोका शास्त्र वाक्यचवेक्षणत्’

वाक्य शिखराम्यास इति हेतुनादुम्बे ।’ वाक्यप्रकाश, प्रथम उल्लास श्लोक ३ ।

जाकी जस बैसादास, भूतल के घास पास,  
सोहत छबोले धीर सागर के धीर सों।  
अमित उदार अति पावन विचार बाध,  
जहां तहां आदरिये गया झू के नीर सों।  
सत्नि के घालिये को ससक के पासिब की  
खानखाना एक रामचन्द्र झू के तीर सों ॥<sup>१</sup>

### टोडरमल

राजा टोडरमल ने अपनी योग्यता में खेरसाह मुरी तथा भक्कर महान् दोनों को ही प्रसन्न किया। भक्कर के राज्यकाल में वह भूमि-कर विभाग के प्रधानमंत्री थे। संभवतः केरावदास जी से उनकी कुछ खटब गई होगी। उसकी स्पष्टता निम्न छंद में परिलक्षित होती है। बीरसिंहदेवचरित' में गान लोभ से बहता है—

‘टोडरमल तुष मिल मरे सब ही सुरा तोषी।

मोरे हित बलबोर मरे दुल बीननि रोषी ॥<sup>२</sup>

भक्करी दरबार के भय रत्न अयुलफजल रंजी मानसिंह घांति से भी केरावदास का परिचय अवश्य रहा होगा क्योंकि केरावदास जी की रचनाओं से इनके संबंध प्राप्त होते हैं। गोस्वामी तुननीदास जी के सम्बन्ध में हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि केरावदास जी से उनकी भेंट हुई थी।

### पतिराम

केरावदास जी का एक और परिचित एवं पढ़ीसी जिसे हम गिष्यत्व की सगाई बंधुके हैं पतिराम सुनार था। कविप्रिया में केरावदास जी ने उनके सम्बन्ध में निम्न छंद लिखे हैं—

बीचि न आवे लिखि कछु देखत छहि न घाम।

अर्थ सुनारी, बरई करि जानत पतिराम ॥<sup>३</sup>

मूल तोल कसिबान बनि, काह्य लिखत अपार।

रासि भरत पतिराम ये सोनी हरत सुनार ॥<sup>४</sup>

इए सुनारनि दाम राखर को सोनी हरयो।

दुख पायो पतिराम प्राहित कसब मित्र सों ॥<sup>५</sup>

### कामसेना

कविप्रिया के आधारों पर प्रभाव में एक व्यक्ति द्वारा कामसेना नाम्नी राजा रामसिंह

१ अर्धार्ध अमचन्द्रिका छन्द ५

२ बीरसिंहदेवचरित, कृष्ण म ११

३ कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द २६

४ कविप्रिया, शारदा प्रभाव छन्द २७

५ कविप्रिया, शारदा प्रभाव छन्द २६

की वेण्या की उपमा कामदेव का सेना से दी गई है—

सोहति सुकेसि, मञ्जुघोषा, रति, उरबसो  
राजा राम मोहिबे को सुरति सोहाई है।  
कलरव कसित सुरनि राग रग भुत,  
बदन कमल पटपट छवि छाई है।  
भृङ्गटो कुटिस धनु सोवन बटास सर  
भविष्यत मज्जु मन सन सुखदाई है।  
प्रभुदित पयोधर सोदामिनी साय माय,  
काम की सी सेना कामसेना बनि भाई है।<sup>१</sup>

चन्द्र

यह राजा वीरवल का दरबान था। कविप्रिया के तेरहव प्रभाव में चन्द्र के विषय में केवदास जी लिखत हैं—

“सब सुख चाहो भोगव, जो पिय एकहि बार।  
चन्द गहै जहँ राहु को जयो तिहि दरबार ॥”<sup>२</sup>

बिठुलनाथ गोस्वामी

कविप्रिया के सोलहव प्रभाव में केवदास जी गोस्वामी बिठुलनाथ जी के सम्बन्ध में लिखते हैं—

‘हरि बृद्ध बल गोविन्द विभु पायक सीतानाथ।  
लोकस बिठुल सखधर गहदध्वज रघुनाथ ॥’<sup>३</sup>

मेरे मन्त्रगुरु श्री १०८ गोस्वामी बिठुलनाथ जी माणात् ईश्वर हैं और हरि गोविन्द विभु आदि सब उन्हीं के भिन्न-भिन्न नाम हैं।

शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश में काव्य के प्रयोजन तथा कारणों पर विचार करते हुए शास्त्रीय ज्ञान के साथ ही व्यावहारिक ज्ञान का भी महत्त्व प्रतिपादित किया है। व्यवहार विदे<sup>४</sup> तथा ‘लोकशास्त्र काव्य-शब्दशान्ति’<sup>५</sup> कहकर अपने मत को स्पष्ट कर दिया है। केवल काव्यशास्त्र के ज्ञानाथ। भाव-यश एवं कला-यश दोनों पर वैशेष का समान अधिकार था। राम भलकार एवं छन्द पर जयरा रसिकप्रिया’ कवि

१ कविप्रिया, ग्यारहवा प्रभाव छन्द ५

२ कविप्रिया तेरहवा प्रभाव छन्द ३७

३ कविप्रिया सोलहवा प्रभाव छन्द १६

४ काव्य यशमेऽपह्ने व्यवहारविशिष्टरचनये

सध पर निवृत्तये ज्ञाना सीमित तपोपदेश भुजे । प्रथम उल्लास स्तोक २ ।

५ ‘शक्तिनिर्गुण लोक शास्त्र काव्याशब्दशान्ति’

कान्य शिष्याभ्याम इति हेतुमुद्भवे । काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास स्तोक ३ ।

जाको जस बेसोदास भूतल के आस पास,  
सोहत छवोले क्षीर सागर के क्षीर सों ।  
अमित उदार अति पावन विचार चारु,  
जहां सहां आदरिये यंगा जू के मोर सों ।  
सत्नि के आतिथे को ललक के आतिथे को,  
खानखाना एव रामचन्द्र जू के मोर सों ॥<sup>१</sup>

### टोडरमल

राजा टोडरमल ने अपनी योग्यता से गंगाह सूरि तथा भक्वर महान् दोनों को ही प्रसन्न किया । भक्वर के राज्यकाल में वह भूमि-कर विभाग के प्रधानमंत्री थे । समयन केशवदास जी से उनकी कुछ खटव गई होगी । उसकी व्यञ्जना निम्न छन्द में परिलक्षित होती है । वीरसिंहदेवचरित में दान मोम से कहता है—

“टोडरमल तुम मित्त भरे सब ही सुल सोयो ।

मोरे हित बलघोर भरे, दुख बीननि रोयो ॥<sup>२</sup>

भक्वरी ग्दवार के अथ रत्न भवुलफगम फजी मानमिह आदिसे भी केशवदास का परिचय अवश्य रहा होगा क्योंकि केशवदास जी की रचनाओं से इनके सकेत पाए जाते हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी के सम्बन्ध में हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि केशवदास जी से उनकी भेंट हुई थी ।

### पतिराम

केशवदास जी का एक और परिचय एक पत्नीसी जिसे हम गिष्पत्व की सजा दे चुके हैं पतिराम सुनार का । कविप्रिया में केशवदास जी ने उसके सम्बन्ध में निम्न छन्द लिखे हैं—

कवि न आवे तिलि कछु देखत द्यौह न घाम ।

अथ सनारी बरई करि जानत पतिराम ॥<sup>३</sup>

मूल तोल कसिबान धनि काइय तिलत अपार ।

रालि मरत पतिराम ये सोनी हरत सुनार ॥<sup>४</sup>

बए सनारनि दाम राबर को सोनो हरयो ।

दुख पायो पतिराम प्रोहित बैसब मित्र सों ॥<sup>५</sup>

### कामसेना

कविप्रिया के ग्यारहव प्रभाव में एक कवित्त द्वारा कामसेना नाम्नी राजा रामसिंह

१ बर्हागीर जसचन्द्रिका छन्द ५

२ वीरसिंहदेवचरित पृष्ठ सं ११

३ कविप्रिया नवम प्रभाव छन्द २६

४ कविप्रिया, बारहवां प्रभाव छन्द ६६

५ कविप्रिया, बारहवां प्रभाव, छन्द १३

का बेगमा की उपमा कामदेव की सेना से दी गई है—

सोहाति सुकेसि मज्जघोषा, रति उरखसो  
राजा राम मोहिबे को सुरति सोहाई है।  
कसरय कसित मरनि राग रग जुत,  
बदन कमल घटपद छवि छाई है।  
मकुटो कुन्सि धनु सोचन बटाख सर  
भविषत मज्ज मन तन सुखदाई है।  
शमुदित पयोधर सोदामिनी साथ नाथ,  
काम की सी सेना कामसेना बनि भाई है।<sup>१</sup>

चन्द्र

यह राजा वीरवल का दरबान था। 'कविप्रिया के तेरहवें प्रभाव म चन्द्र के विषय म कैावणस जी लिखते हैं—

सब सुख चाहो भोगवैं औ पिय एकहि बार।  
चन्द्र गहै जहँ राहु को अयोनिहि दरबार॥<sup>२</sup>

विठ्ठलनाथ गोस्वामी

'कविप्रिया क सानहवें प्रभाव म कैावदाम जी गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी क सम्बन्ध म लिखते हैं—

हरि बड़ बल गोविन्द विभु पायक सीतानाथ।  
सोक्य विठ्ठल सस्यर गदहप्यज रघुनाथ॥<sup>३</sup>

मेरे मन्त्रगुप्त श्री १०८ गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी सानान ईश्वर हैं और हरि, गोविन्द विभु धानि सब टन्ही के भिन्न-भिन्न नाम हैं।

शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रवाण' म काव्य के प्रयाजन तथा कारणों पर विचार करत हुए शास्त्रीय ज्ञान के साथ ही व्यावहारिक ज्ञान का भी महत्व प्रतिपादित किया है। 'व्यवहार विज्ञ' तथा 'तावशास्त्र काव्य-व्यवेषणान्'<sup>४</sup> कहकर अपने मत का स्पष्ट बत लाया है। वेगव काव्यशास्त्र के पात्रा म। भाव-मञ्ज एव कन्या-मम दाओं पर वैशव का समान अधिकार था। रस प्रतकार एव छन्द पर क्रम 'रसिकप्रिया' 'कवि

१ कविप्रिया तेरहवें प्रभाव छन्द ३५

२ कविप्रिया तेरहवें प्रभाव छन्द ३७

३ कविप्रिया मोहना प्रभाव छन्द १६

४ काव्य दगन-उपदेश व्यवहारविद शिवशङ्कर

सप्त पर निव धने कन्या संस्तुत तनेपेश कुत। अपन दलनम स्तोत्र २।

५ 'शक्तिनिपुणता साक शास्त्र कान्दधनेपदान्  
कान्द शिष्यामन्त्र इति हनुमदुद्घोषे।' काव्यप्रकाश प्रथम उन्मेष स्तोत्र ३।



प्रिया तथा अन्यमाया का प्रणयन उनके शास्त्रीय ज्ञान के प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं। राजमाया पर उनका पूण अधिकार था। सस्त्रुन की विद्वत्ता तो उनकी र्वतुक सम्पत्ति थी। इस सम्बन्ध में मिथव-युधा ने अपने विचार प्रकट किए हैं—

मिथव-युधों ने तो केनात्र को माया का मामह एवं मर्मगट बतलाया है।<sup>१</sup> ज्योतिष संगीत भूगोल वयक वनस्पति पुराण आदि का साधारण ज्ञान उन्हें अवश्य था और उसी के आधार पर यत्र-तत्र अपने ग्रन्थों में इन विषयों पर प्रकाश डाला है परन्तु इन विषयों के वे आचार्य नहीं बने जा सकते। किसी कवि के किसी विषय पर दो एक छन्द को देखकर उसे उस विषय का विशेषज्ञ कहना उपहासास्पद नहीं तो क्या? विहारी के एक-एक लोहे को लेकर स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा प्रभृति आलोचकों ने उन्हें न मालूम क्या-क्या बना डाला है। बेगव के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। बेगव के सम्बन्ध में यत्र-तत्र बिखरे हुए छन्दों को लेकर यह सिद्ध करना कि वे ज्योतिष<sup>२</sup> संगीत<sup>३</sup>, भूगोल<sup>४</sup> वयक<sup>५</sup> वनस्पति<sup>६</sup> आदि के पूण ज्ञाता व समीचीन प्रतीत नही होता। एक साधारण जन भी जानता है कि जबाना बर्षा ऋतु में सूख जाता है।<sup>७</sup> प्रायः इस प्रकार के कथन प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत रूप में सभी कवियों के मिलते हैं।

इतना अवश्य है कि बेगवदास जी का ज्ञान पुराण राजनीति धर्म में बड़ा-बड़ा हुआ था। बिना व्यावहारिक ज्ञान के शास्त्रीय ज्ञान पगु है। ऐसे लोगों की वही दशा होती है जैसी कि पंचतंत्र की कथा में आए हुए कोरे शास्त्रज्ञ पशितों की हुई थी। बेगवदास जी गृहस्थ थे और गृहस्थी में व्यावहारिक पटुता का मानो आवश्यक ही नहीं था किन्तु अनिवार्य भी है। बहुत-सी बातों का उत्प्रेष उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर ही किया है जैसे बेगव का 'हृयगाला वनन देखिए—

भीरी घूटे आइतर पूछ हेततर होइ ।

ओठ दुब सब राजि सो बुरी कहै सब कोइ ॥'<sup>८</sup>

और भी—

“जा घोरे की आंस में नीले पीले किम्बु ।

तो जीव सो मास बस जो जयाव गोविन्द ॥”<sup>९</sup>

१ दिग्गी नवरात्रि पृष्ठ ४६०

२ रामचन्द्रिका पृष्ठ ४६ पृष्ठ सं १११

३ रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध, पृष्ठ सं १५८

४ रामचन्द्रिका पूर्वार्द्ध पृष्ठ सं १०२

५ रामचन्द्रिका मध्यार्द्ध, पृष्ठ सं ४१, पृष्ठ सं २८३

६ रसिकप्रिया पृष्ठ सं २८२

७ रामचन्द्रिका उत्तरार्द्ध प्रकार पृष्ठ सं ८८

८ बीरसिंहदेवचरित पृष्ठ सं ६६ पृष्ठ सं ११३

९ बीरसिंहदेवचरित पृष्ठ सं ७६, पृष्ठ सं ११४

यह धन-परीक्षा जान निजान व्यावहारिक ही है। इनका व्यावहारिक-गुणता का जादू बीरबल के सर पर चढ़कर भी बोसा।<sup>१</sup> धीरमिहदेव एवं रामगोह म राज्य के उपर घोर शत्रुता थी। अन्त में जाकर दोनों म युद्ध भी हुआ परन्तु केवल न दानोंको हा बनाए रखा।

‘राजा जोगी अग्नि जल इनकी उसटी रोति के अनुसार राजाघा को बलते देर नही नगनी। केवलान का सारा जीवन राजाघा के मध्य म ध्यनीत हुआ परन्तु कभी किसी को उन पर कुत्सि न रही। यह सब उनकी व्यावहारिक जान की ही परिचायक है। राजनीति के दाव पंच दरबार का उठना-बठना चलना बालना आदि यदि किसी को सीखना है तो केवल से सीखे। राज-दरबार म धाक जमाने के विष जिस जान बाहुल्य बावदगम्य नपुण्य चातुय बना-बुगवना की आवश्यकता थी वह सब उनम पाई जाती थी।

### स्वभाव एवं चरित्र

केवलदास स्वभाव से शान्ति-प्रिय व्यक्ति म परन्तु साप ही साप स्वाभिमानी भी। यद्यपि पद्मिनाराज जगन्नाथ तथा हिली के मुरारिगान की भाति केवल न अपनी विद्वत्ता का शिरोधार्य नहीं पीटा तथापि गोस्वामी तुमसीदास की भाति दय भी प्रदर्शित नहीं किया। तुलसी एवं केशव म यही अन्तर है कि तुलसी पहले मक्त हैं तत्परान्त कवि जबकि केशव पहले कवि थ तदुपरान्त मक्त। यही कारण है कि राम एवं उनमे सम्बन्धित पात्रा के साथ केवल ने मावुवता का परिचय नही दिया। उनका यथानय चित्रण किया है। परिणामस्वरूप ‘रामचन्द्रिका के उत्तराद्ध म विभाषण को भी घाड हाथों लिया है जिमे गोस्वामी तुमसीदास न राममक्त होने के नाने छूट दे रखी था। धाव्य का विषय है कि जिस व्यक्ति का जीवन सत्व राजाघा के सम्पर्क म ध्यनीत हुआ वह अपन स्वाभिमान की रक्षा कसे कर सका। स्वाभिमानी व्यक्ति धात्र चाहता है धन नहीं। केवलाना जी भी तेमे ही व्यक्ति थ। जब बीरबल ने मुग्ध होकर कहा कि जो कुछ मागना है वह मांगो। उस समय केवलानस जी धन राशि की भी माचना कर सकन थे परन्तु उनका उत्तर केवल यही था—

‘मांगो सब दरबार में मोहि न रोऊ कोइ।’<sup>२</sup>

उनी प्रकार जहागीर जब केवलदास जी की कविता पर मुग्ध हाथा है और कहना है कि जा कुछ मागना है वह मांगो तो उस समय भा केवल क मुग म यही निवृत्तता है—

यद्यपि हरिजू मांगिबो दियो हिये उपजाइ।

हो मांगों जगदीस म मुनो साहि सखपाइ।’<sup>३</sup>

कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों स्थान पर स्वाभिमान के कारण न ही

१ हिलीनवरत्न पृ ४६०

२ कविप्रिया शिरो प्रमाण पृ १६

३ जहागीर जयचन्द्रिका पृ १६८

उन्होंने धनराशि को दुबारा दिया।

केशवदास जी शान्ति चाहते थे। इन्द्रजीतसिंह यदि जुरमाना न देते तो भक्तर के साथ युद्ध अवश्यमावी हो जाना। परन्तु केशव ने बीरबल की सहायता में उसे माफ़ करा कर एक भयंकर युद्ध को टाल दिया। जब रामगढ़ एवं बीरसिंहदेव में चल गई तो केशव ने शान्त कराने का सराहनीय प्रयत्न किया। दोनों को समझाया। केशव संधि कराने में सफल भी हो गए थे परन्तु माता ने कुछ काम न बनने दिया।

राजाओं में रहने पर भी केशव ने साधारण व्यक्तियों की तिलांजलि नहीं दी। पतिराम सुनार तथा बीरबल के दरबान चन्द्र की अपनी कविता में स्थान देकर सदैव के लिए भयंकर कर दिया। केशवदास जी स्वभाव में ही सज्ज धर्म के शीकोर थे। कविता जीवन की व्याख्या होने के कारण उस सज्ज धर्म का प्रभाव कविता पर भी पड़ा। संभवतः उन्होंने इसीलिए मुनादी की —

भूषन दिन न बिरामहीं, कविता बनित मिल ।<sup>१</sup>

केशवदास जी स्वभाव से भ्रमणशील व्यक्ति न थे। प्रायः धीरधरा राज्य में ही रहे। कदा-कदा भ्रमण इलाहाबाद काशी उदयपुर आदि में जाना उनके कार्यों से सिद्ध होता है।

वे धार्मिक अवश्य थे परन्तु व्याख्यात्मक में उन्हें विश्व थी। मन की शुद्धता पर वे विशेष बल देते थे—

‘जग की कारण एक मन मन को जीत अजीत ।

मन को मन सुन गानु है, मन ही मन को मोत ॥”<sup>२</sup>

तथा—

“यथाशक्ति सब करत भक्ति हरि मन बल अंग ।

चित्त न तजत विकार म्हात नर यद्यपि गंगा ॥”<sup>३</sup>

कुछ विद्वानों की उनमें आतिथ्य की गंध आती है। परन्तु यह सब उन्हें अपनी जीविता के लिए करना पड़ा। राजाओं की उड़ी रोति पर नियंत्रण करने का यह सब सामन मात्र था।

रीतिवादी कविता की एक विधित्र स्थिति थी। राज्याध्यक्ष के दायित्व के कारण उनमें परिस्थितिओं में ऊंचा उठने की क्षमता नहीं थी। भवन न हाते हुए भी उन्हें भवन बनना पड़ता था रसिक न होते हुए भी उन्हें रसिकता का आह्वान करना पड़ता था। इस रसिकता से उन्हें मन को प्राप्त हुआ परन्तु साथ ही अफ़सस भी। केशवदास भी इसके अपवाद न थे। उनकी रसिकता में प्रमाणस्वरूप किन्हीं ही शब्द प्रस्तुत किए जा सकते हैं। “चंद्रवदन मृगमोचनी वाग्ना प्रसिद्ध दाहा भी उनमें से एक है। सामान्यापत्त की

१ कविप्रिया प्रथम प्रभाव, पृष्ठ १

२ विद्यानगला इषकीर्तन प्रभाव, पृष्ठ २६

३ विद्यानगला, प्रथम प्रभाव, पृष्ठ २२

प्रज्ञा को देखकर कुछ विद्वानों का विचार है कि केशवदास जी की रचि पर भी उन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा क्योंकि परिस्थिति से ऊँचा उठने का सामर्थ्य बहुत कम लोगों में होता है। वास्तव में वस्तुस्थिति ऐसा नहीं। केशवदास ने वेदशास्त्रों का वणन अपने आश्रयदाताओं की प्रयत्नियों के रूप में ही किया है। रसिकप्रिया वात्स्यायन के कामसूत्र की अपेक्षा कुछ नहीं है। भरत मुनि से लेकर धातक के आचार्य भी उस दोष में मुक्त नहीं माने जा सकते। किसी शृंगारिक लक्षण अथवा किसी एक छन्द को लेकर चरित्र पर सन्देह करना उनके साथ आचार्य करना है। केशव का व्यक्तित्व महान था। उनके महान व्यक्तित्व का छाया दरबार के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही जीवनो पर खूब पड़ी। अपनी प्रतिभा से उन्होंने सारे दरबार का धनावरण बहिष्कृत कर दिया यहाँ तक कि वेदशास्त्र भी काव्य रचना में निपुण हो गई। केशव के चरित्र से प्रभावित होकर जीवन की अपवित्रता से हटकर पवित्रता तथा पातिव्रत्य को अपनाने लगी। 'नव रत्न नवधा भक्ति स्थों' नवरत्नराय सुगामित होनी थी। केशव की प्रिय शिष्या राय प्रवीण ने चरित्र-वृत्त के द्वारा भवहार महान् को करारी हार दी थी।

### निधन

जिस प्रकार ने केशवदास जी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं उसी प्रकार से उनके निधनकाल के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न मत हैं। प्रायः विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के अनुसार ही मरुतुवाल स्वीकार कर लिया है। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया। श्री गणेशदास द्विवेदी मिश्र वंशु श्री रामनरेश बिपठी तथा डॉ० हीरालाल दासित सं० १६७४ वि० में निधन मानते हैं। लाला भगवानदास तथा गौरीनाथ द्विवेदी आदि विद्वान् सं० १६८० वि० में निधन मानते हैं। इनके अतिरिक्त श्री चम्पली पाठ तथा अम्बिकादास व्यास सं० १६७७ विक्रमी में निधन मानते हैं। अन्तःसाम्य के आचार्य पर 'जहाँगीर-जमशुद्धि' का प्रणयन सं० १६६६ वि० में हुआ। यह रचना केशवदास की अन्तिम रचना है। 'विज्ञानगीता' से ही केशवदास जी का मन वैराग्य के प्रति झुकने लगा था। साधारण पाठक प्रश्न कर सकता है कि वैराग्य के उपरान्त जहाँगीर जमशुद्धि लिखने की आवश्यकता क्या थी। नाम में प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ में जहाँगीर के यश का वणन होगा परन्तु वास्तव में उद्यम और भाग्य का सङ्घर्ष है। यश-वणन धन के लिए किया जाता है परन्तु 'जहाँगीर-जमशुद्धि' में विनिर्दिष्ट होता है कि उस अवस्था में पहुँचकर वे 'जगदीश' के अतिरिक्त किसी से माँगना नहीं चाहते थे। उनके उपरान्त उन्होंने दोष जीवन आध्यात्मिक जगत में विचरण करते हुए व्यतीत किया। भीतिना को पूर्ण रूप से तिलाज्जित देने के कारण अपना जहाँ उल्लेख भी नहीं किया। सं० १६६६ में केशवदास की आयु ५१

१ कविप्रिया प्रथम प्रभाव सूत्र ४७

२ जहाँगीर जमशुद्धि सूत्र १२८

वष की थी अतः बुढ़ावस्था का प्रारम्भ ही समझना चाहिए। परन्तु केशवदास जी के सम्बन्धित प्रसिद्ध दोहे से प्रतीत होता है कि सफ़ेद बालों के कारण से ही भृगुलोचनियों ने वाया कहा था। उनके सफ़ेद बाल साठ वष से ऊपर ही हुए होंगे। अतः केशवदास का मृत्युकाल स० १६८० वि० के लगभग मानना उचित प्रतीत होता है। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रत-योगि से केशव का उद्धार किया था। यद्यपि इस जनश्रुति में कोई विशेष सार नहीं तथापि इतना माना जा सकता है कि केशव की मृत्यु तुलसी के कुछ दिन पूर्व हुई होगी। अतः केशव का मृत्युकाल स० १६८० वि० के लगभग मानना ही समीचीन होगा। श्री चन्द्रबली पाठ अपने केशवदास नामक ग्रंथ में केशव का निधनकाल स० १६७० वि० में मानते हैं।<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में हम यही कहना है कि स० १६६६ वि० में जिस व्यक्ति का स्वास्थ्य इस योग्य है कि वह एक ग्रंथ का प्रणयन कर सके उस व्यक्ति का मृत्युकाल स० १६७० वि० बिना किसी आधार के मानना उचित नहीं प्रतीत होता। दूसरे स० १६७६ वि० में मथुरा में केशवदेव के मन्दिर का निर्माण वीरसिंहदेव ने कराया था। सम्भव है केशवदास जी की देख रेख में इस मन्दिर का निर्माण-कार्य हुआ हो। मन्दिर का नामकरण केशवदेव होना इस बात का द्योतक है कि केशवदास जी का इस मन्दिर से अवश्य सम्बन्ध था। निर्माण के उपरान्त केशवदास जी ने सम्भवतः भजन-पूजन करते हुए वही अपनी जीवनलीला समाप्त की हो। अतः स० १६७६ के उपरान्त ही केशवदास जी का निधन हुआ होगा। स० १६७४ वि० में मृत्यु काल मानने के लिए अनुमान का अवलम्बन लिया गया है। गौरीगढ़र जी द्विवेदी तथा लाला भगवानदीन जी ने भी केशव का मृत्युकाल स० १६८० वि० माना है। अतः केशवदास जी का निधन लगभग ६२ वष की अवस्था में स० १६८० वि० में हुआ।

## द्वितीय परिच्छेद

### केशव की रचनाएँ

केशवदासजी की रचनाएँ प्रायः प्राप्त हैं एवं रचना मात्र भी अप्राप्त है जो कि सन्देहास्पद नहीं आ सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ केगव-नामधारी अन्य कवियों की रचनाएँ हैं जिन्हें प्रायः साधारण पाठक महाकवि केशवदास की ही रचनाएँ मान लेते हैं। इन सबका वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

#### (अ) महाकवि केगवदास की रचनाएँ—

- १ रतनबावनी
- २ रसिकप्रिया
- ३ नलनिख
- ४ बारहमासा
- ५ रामचन्द्रिका
- ६ कविप्रिया
- ७ छन्दमाला
- ८ वीरसिंहदेवचरित
- ९ विज्ञानगीता
- १० जहागीर जसचन्द्रिका

#### (ब) सन्देहास्पद रचना—

- १ रामालङ्कृतमञ्जरी

#### (स) केगव-नामधारी अन्य कवियों की रचनाएँ—

- १ केगवन्दास जी का प्रभो भूट
- २ जैमिनी का कथा
- ३ हनुमान ज-मलीला
- ४ वासि चरित्र
- ५ भानन्दलहरी
- ६ रससलित
- ७ कृष्णसीता
- ८ संगीतरत्नाकर पर भाष्य

अब हम प्रत्येक रचना के सम्बन्ध में छात्र रिपोर्टों विषय बाल तथा टीकाओं का विवरण देंगे।

## रचनाएँ— रतनबावनी<sup>१</sup>

स्रोत्र रिपोर्ट सन् १९३० ई०

रतनबावनी—बेगवदास मिश्र कृत

पृष्ठ संख्या १६

छन्द संख्या ३५०

स्थान—राजकीय पुस्तकालय दतिया

रतनबावनी बेगवदाम जी की प्रथम रचना है। इस ग्रंथ में अन्य ग्रंथों की भांति बेगवदाम जी ने रचना-बान नहीं दिया। अतः अन्तःसाक्ष्य के अभाव में बाह्य साक्ष्य का आधार पर ही इस कृति को प्रथम रचना सिद्ध कर चुके हैं। यह एक बीररस प्रधान ग्रंथ है। इसमें औरछा के राजा मधुकरसाह के पुत्र रतनसेन की बीरता का वर्णन है। राजकुमार रतनसेन पिता की आज्ञा पाकर युद्ध के लिए भक्तवर बादशाह के विरुद्ध तत्पर होता है। विप्रवेश में साक्षात् परमेश्वर उसे समझाने का प्रयत्न करते हैं कि यदि प्राण हैं तो बहुत-सी प्रतिज्ञाओं का निर्वाह कर सकोगे। परन्तु रतनसेन अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। धर्माज्ञान युद्ध हुआ। चार सहस्र सेना मर गई भी व्यक्ति जीवित नहीं बचा। साथ ही साथ रतनसेन भी बीरगति का प्राप्त हुए।

इस ग्रंथ में कल्पना का प्राधान्य है। ऐतिहासिक दृष्टि से रतनसेन की मृत्यु शाही सेना की ओर से लड़ते-लड़ते सन् १६३७ में हुई थी।<sup>१</sup> इस पुस्तक की कुछ घटनाएँ बेगव की अन्य पुस्तक में वर्णित घटनाओं से मेल नहीं खाती हैं। नाम की दृष्टि में रचित हुए इसमें ५२ छंद होने चाहिए परन्तु जो पुस्तक प्राप्त हुई है उसमें ६८ छंद हैं। अतः प्रतीत होता है कि कुछ अक्षर प्रामाण्य है।

रतनबावनी में बीररस का पूर्ण परिपाक पाया जाता है। भक्तवरदामी की शही का अनुसरण किया गया है। इस ग्रंथ में भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य पाया जाता है। यह बेगव की प्रथम एवं सफल रचना है।

## रसिकप्रिया

रसिकप्रिया<sup>२</sup>—स्रोत्र रिपोर्ट सन् १९२६ २८ ई०

पत्र ७६ आकार ८" X ३ पंक्ति प्रति पृष्ठ ३२

छन्द १८६६

रचना बाल स० १६४८ वि०

लिपिकाल स० १७३७

शक्ति-स्थान धानन्द भवन पुस्तकालय

१ अश्ली नागरीप्रचारिणी सभा स्रोत्र रिपोर्ट पृ० स० ११

२ कुम्हारनाथ का संपिण्ड इतिहास पृ० १३२, गोरखान निवास

३ बाली ना स० सभा स्रोत्र रिपोर्ट III सं० २०१

- बाकखाना बिसवा डिसा सीतापुर  
रसिकप्रिया<sup>१</sup>— सोन रिपोट सन् १६२६ २८  
दो हस्तनेम समय स० १७३७ (सन् १६८०)  
रचनाकाल स० १६४८  
ये हस्तनेम अब तक की सभी प्रतिभों में प्राचीन हैं।  
रसिकप्रिया<sup>२</sup>— सोन रिपोट सन १६०३  
बेगवत्समिग्रह  
छन्द-सख्या १६२०  
स्थान—पुस्तकालय महाराजा बंगारस  
रसिकप्रिया<sup>३</sup>— सोन रिपोट १६१७ १६१६ ई०  
रि० न० ६६ अ बैरावदासकृत  
पृष्ठ-सख्या ६८  
छन्द-सख्या १०३२  
स्थान—सठ बंगालकर, धनूपगहर (बुलन्गहर)  
रसिकप्रिया<sup>४</sup>— बैरावदासकृत  
रि० न० ६६ ब पृष्ठ-सख्या ५० अङ्कित  
छन्द-सख्या १३३०  
रसिकप्रिया<sup>५</sup>— पृष्ठ-सख्या ३४  
सोन रि० न० ८७ छन्द-सख्या ५०६  
प्रतिलिपि-काल सप्त १७७४ वि०  
स्थान—म० महावीरसाद दीक्षित  
पोस्टमास्ति—बन्दमाना फतेहपुर

‘रसिकप्रिया’ बैरावदासजी की नित्य रचना है। इस ग्रन्थ की रचनाकाल के सम्बन्ध में बैरावदासजी प्रथम प्रकाश में ही कहते हैं—

सबत सोरह स बरष बीते अठतातेस।

कार्तिक सुदि तिथि सप्तमी बारबरनि रचनीस ॥”<sup>६</sup>

“अति रति गति मति एक करि, विविध बिबेक बिलास।

रसिकन की रसिकप्रिया कीनी बैरावदास ॥”<sup>७</sup>

१ कारा ना प्र ममा सोन रिपोट म २ १० वि

२ कारा ना प्र ममा सोन-रिपोट, पृ स ६

३ कारा ना प्र ममा सोन-रिपोट, पृ स १७८

४ कारा नागरप्रियादि ममा सोन-रिपोट, पृ स १७८

५ कारा नागरप्रियादि ममा सोन रिपोट पृ म० १७८

६ रसिकप्रिया प्रथम प्रकाश छन्द ११

७ रसिकप्रिया प्रथम प्रकाश छन्द १५



सर्वन् सोलह सौ अठतालीस कातिन सुदी सप्तमी चन्द्रवार क दिन प्रीति तथा बुद्धि को एकत्र करके विविध प्रकार के गाना से भरी हुई 'रसिकप्रिया' की केदारदाम न रसिक व्यक्तियों के लिए रचना की। इस ग्रन्थ का प्रणयन द्वाजीतमिह की प्रेरणा से ही हुआ।<sup>१</sup>

इस ग्रन्थ में रस विवचन किया गया है। रस का पूरा भोग राधा एवं कृष्ण में ही दिखाया गया है। यद्यपि द्वा होने नवरस का वर्णन किया है तथापि मूल प्रतिपाद्य शृंगार रस ही है—

“नचहूँ रस के भाष बहुत तिनके भिन्न विचार।

सबको केदारदास' हरि नायक हूँ समार॥”<sup>२</sup>

केदार को लोक-भर्यादा का भी ध्यान था क्योंकि वे स्वयं स्पष्ट रूप से कवि समुदाय से क्षमा-याचना करते हैं—

‘राधा राधा रमन के कह्ये यथा मति हास।

दिठई केसरदाइ' की, छमिषी कवि कविराव॥”<sup>३</sup>

शृंगार का रस राजत्व सिद्ध करने के लिए उद्धान सभी रसों का समावेश शृंगार में कर दिया है। भिन्न रसों का तो कहना ही क्या रीति भयानक बीमत्स आदि घमिन्न रसों का भी शृंगाररम्य वर्णन किया है। सयोग और वियोग के वर्णन के साथ-साथ केदार ने लगभग प्रत्येक का प्रच्छन्न और प्रकाश दो भागों में विभाजित किया है। प्रतीत्य प्रकाश में नायक के लक्षणों और उसके अनुकूल दस दस धृष्ट नायक प्रकारों का वर्णन है। तीसरे प्रकाश में नायिकाओं की जाति के अनुसार भेद किए गए हैं। इसमें पद्मिनी चित्रणी गतिनी और हरिणी स्वकीया परकीया सामाया फिर स्वकीया व मुग्धा मध्या प्रीडा परकीया के ऊँडा अनुडा भेद किए गए हैं। केदार ने सामाया का वर्णन नहीं किया। इसी प्रकार स्वकीया के मुग्धा मध्या व प्रीडा के चार चार भेद किए गए हैं। चौथे प्रकाश में दण्ड के साक्षात् चित्र स्वप्न और वषण नायक चार भेद किए गए हैं। पाचवें में दम्पति चट्टाया तथा स्वमदूतत्व दोनों का प्रच्छन्न एवं प्रकाश में विभाजित किया गया है। इसमें नायक एवं नायिका के मिलने के स्थान एकाग्रता गिनाए गए हैं। छठवें प्रकाश में भावों एवं हावों का वर्णन है। भाव को विभाव अनुभाव स्थायीभाव सात्त्विक भाव और व्यभिचारीभाव में विभाजित किया है। विभाव का आनन्दन एवं उगीपन में वर्णन करते हुए आनन्दन व शीत तथा उगीपन के मात स्थान वर्णन हैं। स्थायीभावों में रति हास नायक नायिका उल्लाह भय निन्दा तथा विस्मय आठ ही भावों का उत्पन्न किया है निर्द्वेष का नहीं। सात्त्विक भाव रतम्भ स्वेच्छ रोमांच स्वरमय वय विवर्णता मधु एवं प्रसाप में विभाजित किए गए हैं। व्यभिचारीभावों की गम्या तीम तथा हावा की

१ रसिकप्रिया प्रथम प्रकाश खंड १३

२ रसिकप्रिया प्रथम प्रकाश खंड १४

३ रसिकप्रिया, छठवाँ प्रकाश, खंड ५७

मर्यादा तरु निधारित की है। सातवें प्रकार में छष्ट नायिकाधा के भेद बतलाए गए हैं। आठवें प्रकार में विप्रलम्भ शृंगार के पूर्वानुराग करना मान एवं प्रथम नामक भेद किए हैं। फिर अमिताया विन्ना गुण कथन स्मृति उद्देश्य प्रलाप उच्चा व्याधि तथा मरण नामक दस दशाओं का वर्णन किया है। नवम प्रकार में मान तथा उसका गुण लघु और मध्यम भेद किए गए हैं। दशम प्रकार में मान-भावन तथा साम-दाम भेद प्रणति-उपशान प्रसंग-विध्वंस नामक छ. भ. किए गए हैं। एकादश प्रकार में करुण-विरह-तपण शृंगार प्रकार में सखी तथा उसका साथ दासी नाइन भातिन तमोतिन चुड़िहारिन मुनारिन रामजनी सन्यासिनी और पटइन नामक दस भ. किए गए हैं। त्रयोदश प्रकार में सत्ताजन की निम्ना विनय मानना विनाना शृंगार करना मुक्ता तथा उलाहना देना नामक सात शायों का वर्णन है। चतुर्दश प्रकार में हास्य करण वीर, मयानक वीरमय भ्रमर रीति शम शेष रसों का वर्णन है। हास्य के मन्त्रहाम कन्होस अतिहास तथा पट्टिहास नामक चार भेद किए हैं। पञ्चम प्रकार में वसि तथा उसका केशिकी भारमटी सात्त्विकी एवं माग्ना नामक चार भ. किए हैं। सातहव प्रकार में अनरम तथा उसका प्रत्यनीक नीरस अभिमान तथा विरस नामक पांच भ. का वर्णन है।

यह प्रथम सस्कृतग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। अतः सम्भव है कि एक मात्र मौलिकता का दूतवाक्य पाठक की निराश होना पड़े। किन्तु इसमें एक आचार्य की जागरण-चनना का प्रयास अवसर मिला है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह रचना महत्त्वपूर्ण है। केवल के समय तक हिन्दी में रस-शब्दों का प्रायः अभाव ही था। इसीको दृष्टि में रखकर केवल ने इस ग्रन्थ की रचना की। हिन्दी-साहित्य का एक नई निगाह में मोड़ने का प्रथम इसी प्रयत्न का है।

## रसिकप्रिया की टीकाएं

सुखविभासिका सत्रस प्रसिद्ध टीका है। इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रसन्नचन्द मसन १९११ ई० में तथा श्री वैकुण्ठर प्रसन्न बम्बई में सन् १९३१ ई० में हो चुका है। यह टीका सरदार कवि द्वारा विरचित है। टीकाकार ने अपना परिचय प्रारम्भ में ही कुछ छान्दा में दे दिया है। काशीनाथ ईश्वरीनारायणप्रसादसिंह की भांति ॥ सन्तिपुर-निवासा सरदार कवि ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया—

रसिकप्रिया भूषण रसो कवि कृत आनन्दधन ।<sup>१</sup>

छिद्र बना था—

पर सिर आइस भूषकी मन मह माजि धनद ।

रसिकप्रिया भूषण रसो जस राका को खद ।<sup>२</sup>

इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में टीकाकार कहते हैं—

१ सुखविभासिका इतिविज्ञा दन् १५, पृ. ५० ३

२ सुखविभासिका इतिविज्ञा दन् १५, पृ. ५० ३

‘सिख धृग मगनो ग्रह सुपुन, रव गनेस को साल,  
जेठ सुक्ल बसमी सुगुर, करी प्रथम सुक्ल मास।’<sup>१</sup>

अर्थात् समत् १६०३ वि० की ज्येष्ठ शुक्ल दशमी बृहस्पतिवार को रचना हुई।

“कहु कहु नारायण कियो, या को नितक धनूप।”<sup>२</sup>

बहुवर नागयण को सहायता को भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है।

इसके अनन्तर आगरा निवासी भूरत मिश्र ने जोरावरप्रकाश तथा ‘रसप्राहक चरित्र’ नामक दो टीकाएँ लिखीं। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ मैसूर के रामलालहरि चौधरी यादहार बोसी (भयुरा) के यहाँ देखी हैं। ‘जोरावरप्रकाश’ का प्रतिलिपि-काल सन् १८६१ ई० और ‘रसप्राहकचरित्र’ का प्रतिलिपि-काल सन् १८१० ई० है।<sup>३</sup>

खोज रिपोर्ट के अनुसार एव ‘रसिकप्रिया’ की टीका का प्रणयन बाजिद के पुत्र कामिभ ने किया है। ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या १४४ तथा छन्द-संख्या ४१५८ है। परन्तु आश्वय का विषय है कि टीका का रचना-काल खोज रिपोर्ट के अनुसार सन् १६४८ वि० दिया गया है जबकि ‘रसिकप्रिया’ का रचना-काल भी १६४८ वि० है।<sup>४</sup> श्री नरसी निधि जनुबेदी ने भी सन् १६५२ में ‘रसिकप्रिया’ पर एव टीका लिखी है। टीका अपने उग की ठीक है तथा विद्याभिया के लिए विगण उपयोगी है।

## नलशिख

खोज रिपोर्ट सन् १६०३ ई०<sup>५</sup>

केवदास मिश्रकृत

पृष्ठ-संख्या १६

छन्द-संख्या ३००

स्थान—पुस्तकालय महाराजा, बनारस

‘नलशिख’ केवदाम जी की तृतीय रचना है। खोज रिपोर्ट के अनुसार इसका रचना-काल सन् १६५७ है। स्वर्गीय साता भगवानदीन जी ने इस शेषक माना था परन्तु वास्तव में भाषा भलकार तथा छन्द आदि पर विचार करने से यह ग्रंथ केवकृत ही सिद्ध होता है, जिसका विवरण आगे दिया जाएगा। केव की ग्रंथ कृतियों की भाँति इस कृति में भी बुन्देलखण्डी भाषा का शब्द-व्यंजन-विस्तरे पाए हैं। ‘नलशिख’ भारतजीवन प्रसन्न वाणी से प्रभावित हुआ है। इसके सम्पादन जयन्तायनाम रत्नाकर हैं। रत्नाकर जी इन ग्रंथ की भूमिका में लिखते हैं—

१ मूलविनायिका हस्तलिखित छन्द १७, पृ० सं० ३

२ मूलविनायिका, हस्तलिखित छन्द २०, पृ० सं० १

३ हस्तलिखित प्रतियाँ रामलालहरि चौधरी, यादहार बोसी भयुरा

४ बारा नागरप्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट सन् २०१० वि०

५ बारा नागरप्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट पृ० सं० २१

इस पुस्तक की सभा-कविता-कथा ने कविप्रिया के पन्नों में प्रभाव म उड़ान कर दा है। यह हस्तलिखित पुस्तक म० १७२४ वि० की है। कविप्रिया की प्राचीन प्रतिमा में 'नवगिरि' नाम कवि हैं ही नहीं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि किमा व्यक्ति ने 'कविप्रिया' में हा मिला दिए हैं।<sup>१</sup>

'कविप्रिया' के प्रसिद्ध टीकाकार सरदार कवि भी पन्नों में प्रभाव के प्रारम्भ म लिखते हैं—

'नवगिरि' प्राचीन पुस्तक न म नाही मिलन परन्तु हमारे जान के-व धोड़ एम कविता बनावनहार धान नही धानें लिखियतु हूँ।<sup>२</sup>

हो सक्ता है कि के-व ने अपनी प्रिय गिफ्ट प्रवीणराज की उपमा-कार सम भात हुए प्रसंग-व 'नवगिरि' बचन की पुनरावृत्ति कर दा हो।

इसके अतिरिक्त 'नवगिरि' का चमकसो भगवान' वाला छन्द 'रत्नकविप्रिया' म कुछ पाठ ने से पाया जाना है। 'गङ्गा-साम्प' एवं 'माव-साम्प' की दृष्टि से 'कविप्रिया' एवं 'वीरसिंह' चरित म कुछ छन्द समान हैं। उदाहरण—

गोरे गोरे धति धमल धमोल तेरे

सलित कपोल सियौ, मन क मुकुर हूँ।<sup>३</sup>

"कलित सलित सावण्य कसोल।

गोरे गोरे धमल कपोल।"

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'नवगिरि' के-व-रासजी की कृति है। के-व रासजी को 'नवगिरि' लिखन का प्रेरणा 'भलकार-गोखर' (१३ मरीचि) म मिली है। के-व के प्रयुक्त उपमाना म 'भलकार-गोखर' की स्पष्ट छाप है। 'नवगिरि' म उन्नालित बातों का बचन है—

१ पं २ जावक ३ जेहरो ४ नूपुर ५ गति ६ जानु ७ कति = रोमराजि ८ उराज ९ भुज ११ गजरा १२ धमली १३ मन्त्री १४ श्रीवाम्भूषण १५ मृग १६ चिबुक १७ भधर १८ दल १९ बाणी २० हास्य २१ मुखगण २२ ताम्बूलराग २३ नासिका २४ नकमाता २५ नेत्र २६ नेशाजन २७ भू २८ कपोल २९ कणभूषण ३० मुरिया ३१ भाव ३२ सामपून धलक ३४ बनी ३५ के-व-रास ३६ साणी ३७ समस्त भूषण ३८ प्रभगवीरम ३९ सम्पूर्ण श्री भूति बचन

रामचन्द्रिका

सोज-रिफाट सन् १९० ई०

१ नवगिरि मूद्रिका पृष्ठ १ मन्त्रांक अगस्त्यायाम 'रत्नाकर', भरतजीवन प्रेम कथा

२ कविप्रिया पृष्ठ ४८ प्रभाव सरदार कवि भूज

३ नवगिरि पृष्ठ २०, मन्त्रांक अगस्त्यायाम 'रत्नाकर' भरतजीवन प्रेम कथा

४ वीरसिंहचरित, पृष्ठ १३३

रामचन्द्रिका<sup>१</sup>—केसवदास मिथकृत

छन्द-संख्या ३४१०

स्थान—पुस्तकालय महाराजा बनारस

खोज रिपोर्ट सन् १९२६ २८ ई०

रामचन्द्रिका<sup>२</sup>—ओरछा निवासी केसवदासमिथ कृत

कागज देसी पत्र ८८ आकार १० X ६॥

पंक्ति (प्रतिपृष्ठ) सोलह परिमाण आठ सौ साठ छन्द (गणित रूप)

प्राचीन पद्य विविध भागरी

प्राप्ति-स्थान—प० दुर्गाप्रसाद तिवारी

ग्राम माठधा

जिला उन्नाव

केसव की चतुर्थ रचना 'रामचन्द्रिका' एक सुन्दर महाकाव्य है। केसवदासजी ने प्रारम्भ में लिखा है कि इसकी प्रेरणा उन्हें बाल्मीकि से स्वप्न में मिली<sup>३</sup>—

उन्होंने 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ म १६५८ वि० कातिक मास शुक्ल पक्ष वधवार को किया। जसा कि ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही लिखा है—

'सोह स भट्टावना, कातिक सुदि बुधवार।

रामचन्द्र की चन्द्रिका सब सीनी बखतार॥'<sup>४</sup>

इसमें रामचन्द्रजी का यग नाना छन्दों में अपूर्व सफरता के साथ वर्णित किया गया है। प्रगाढ़ पाण्डित्य की छाँप इस ग्रन्थ में प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। भाषा भाव एवं श्लोकार भाषा सभी दृष्टियों में यह रचना उत्कृष्ट है। यह ग्रन्थ उत्पत्तीस प्रकाशों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भ में गङ्गा-सरस्वती-वन्दना के उपरान्त कवि ने श्री रामचन्द्र जी की बन्ना की है। यग-परिचय रचना-काल तथा रचना का कारण स्पष्ट करके क्या का प्रारम्भ किया है। रामचन्द्र जी की उत्पत्ति के उपरान्त शङ्खवाक्छा का चित्रण नहीं किया। महर्षि विश्वामित्र अयोध्या में आते हैं और राम एवं लक्ष्मण को साथ में ले आते हैं। वहाँ ताड़का का वध होता है। धनुष-यग का समाचार पाकर राम एवं लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र जी जनकपुर पहुँचते हैं। राम धनुष तोड़ते हैं और सीता जी उन्हें यरमासा पहना देती हैं। जनक की लगन-प्रतिष्ठा पाकर राजा दशरथ बाराण सजावर मिथिला में आ पहुँचते हैं और बड़े समारोह के साथ राम आदि का विवाह हो जाता है। इस प्रकार बीस प्रकाशों में राम-कथा चलती है और ग्रन्थ का पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है। पूर्वार्ध की आधिकारिक वस्तु प्रायः बाल्मीकि रामायण तथा गुणसीदास का

१ काशी नागरीप्रचारिणी सभा ओरछा रिपोर्ट पृष्ठ संख्या १६

२ काशी नागरीप्रचारिणी सभा, ओरछा रिपोर्ट संख्या २१०

३ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश पृष्ठ ७, १, १, १८

४ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश पृष्ठ ६

क 'रामचरितमानस' क समान हा है यद्यपि बीच-बीच में प्रासंगिक वस्तुएं 'अध्यात्म रामायण' हनुमन्नाटक तथा 'प्रमन्नराधव' से ली गई हैं। 'गनी' में भी संस्कृत के प्रयोगों का आश्रय लिया गया है। यदि कहीं काश्मिरी जैसी उक्ति या भी भ्रष्टा लग रहा है तो अन्यत्र माध का भाव-द्रावा परिलक्षित होता है। शायद 'उत्तराद्ध' में कवि ने अपनी उबर कल्पना से अधिक काम लिया है। उत्तराद्ध में दो प्रकार के प्रकरण हैं—एक तो राम-कथा से संबद्ध और दूसरे राम-कथा से असंबद्ध। राम भरत विद्याधर अयोध्या-प्रवेश विनयात्मक राम राज्य-वर्णन रामचन्द्र-वध सीता-वनवास कुतूहल-जन सवणामुर-वध लव-लक्ष्मण युद्ध राम-साता मिलन रामचन्द्र राक्षसनिर्गम राम-नाम की महत्ता चौगान अयोध्या की राजधानी गणनागर छप्पन प्रकार के भोजन वसन्त चंद्र गितनत कृत्रिम सरिता जनांगण स्वान मन्वासा मधरा-माहात्म्य तथा रामचन्द्रिका का माहात्म्य आदि प्रातः हैं। निश्चित रूप से कविवर्य जो न पूवाद्ध की अपना उत्तराद्ध में अधिक मौनिकता का परिचय दिया है।

## रामचन्द्रिका की टीकाएं

रामभक्ति प्रकाशिका (हस्तलिखित)

पृष्ठ-संख्या १४१

छन्द-मदरा, ००

प्रतिलिपि-काल स० १८७४ वि०

स्थान—राजकीय पुस्तकालय बनारस।<sup>१</sup>

यह टीका स० १८७२ वि० में श्री जानकीप्रसाद शर्मा विरचित है। यह कोई सुबोधिनी टीका नहीं बल्कि किन्तु शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है। कुतूहलाना के अनुसार सरला कवि ने 'रामचन्द्रिका' पर भी टीका लिखी थी परन्तु उसका स्रोत रिपा में उल्लेख नहीं है। इस प्रकार 'रामभक्ति प्रकाशिका' ही एकमात्र उपलब्ध प्राचीन टीका है। स्व० साया भगवानगीत जा ने 'केशव-कौमुदी' के नाम से रामचन्द्रिका की टीका लिखी।

## कविप्रिया

साय रिपा सन् १९००

कविप्रिया—कविवर्यस मिथुन

छन्द-मदरा ११४०

स्थान—बाबू कृष्णवल्लभ वर्मा

हेमरवाग, ससनऊ।

१ मसठ न मर्ग इस प्रश्न की उत्तरके पुस्तकालय बनारस में दख है

२ शायी न्याय-कारिणी तथा सो रि, पृष्ठ ४६

स्रोत रिपोर्ट १९१७ १९१९ ई०

रिपोर्ट नंबर ६२ (ब) कविप्रिया<sup>१</sup> ग्रन्थ

पृष्ठ-संख्या २१

छन्द-संख्या ६६३

स्थान—शिवलाल याजपेयी

असनी फतहपुर

रिपोर्ट नंबर ६६—कविप्रिया<sup>२</sup>

केगवदासकृत

पृष्ठ-संख्या १२६

छन्द-संख्या १६६७

स्थान—भारती प्रयाग

स्रोत रिपोर्ट सन् १९२६ १९२८

कविप्रिया<sup>३</sup>—रचयिता केगवदास औरछा बुन्देलखण्ड

कागज देसी

पत्र ११६ आकार १४ $\frac{३}{४}$ " × ६ $\frac{३}{४}$ "

पत्र प्रतिपृष्ठ १०

परिमाण (अनुष्टुप्) २१७६ पृष्ठ

रूप प्राचीन पद्य

लिपि नागरी

रचना-काल स० १९५८ (सन् १९०१ ई )

लिपिकाल स० १९१० (सन् १८५३ ई०)

प्राप्ति-स्थान—राज पुस्तकालय प्रतापगढ़ राय

हाथर प्रतापगढ़

कविप्रिया<sup>४</sup>—रचयिता केगवदास औरछा बुन्देलखण्ड

कागज देसी पत्र १०४

आकार ८ × ४" पत्र प्रतिपृष्ठ ३२

परिमाण (अनुष्टुप्) १६६४ पत्रित

रूप प्राचीन पद्य

लिपि नागरी

रचना-काल—स० १९५८ (सन् १९०१ ई०)

१ कारी नागरीप्रचारिणी सभा रो रि० पृष्ठ स १७८

२ कारी नागरीप्रचारिणी सभा, रो रि पृष्ठ स १७८

३ कारी नागरीप्रचारिणी सभा, रो रि० १९२६ २८ ई०

४ कारी नागरीप्रचारिणी सभा, रो रि०, १९२६ २८ ई०





प्रतिरिक्त केतव की सब रचनाओं की तिथियाँ परसमग्र रूप से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केतवदास जी यदा-कदा कविप्रिया के छन्दा की रचना करते रहे होंगे। जब उन्होंने उन छन्दा का पुस्तकाकार रूप दिया उस समय उन्होंने इस दोहे की रचना की। इस प्रकार हम इस तिथि की 'कविप्रिया' की समाप्ति तिथि मानते हैं। प्रथम प्रभाव में ही 'कविप्रिया' की रचना का कारण बतलाते हुए केशवदास जी लिखते हैं कि रमा शारदा तथा शिवा के समान गुणवाली कवयित्री प्रवीणराय के लिए (उसे शिक्षा देने के लिए) हम ग्रन्थ की रचना की है।<sup>१</sup>

संस्कृत के काव्य शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ प्राप्त थे परन्तु हिन्दी में सम्भवतः इस विषय पर कोई सुबोध और सरल रचना नहीं थी। मुकुमार बुद्धि वाले बालक बालिकाओं के लिए यह सम्भव नहीं कि संस्कृत के उन ग्रन्थों को पढ़ें और फिर कविता का अभ्यास करें। इसी परिस्थिति पर ध्यान देकर केतवदास जी ने कविप्रिया की रचना की तथा अपराध के लिए कविगण से क्षमा-याचना भी की।<sup>२</sup>

केतवदास जी ने कविता के अलंकार आदि विविध गुणों को विचारपूर्वक चुनने और समझने के उपरान्त कविता की शोभा इस कविप्रिया का प्रणयन किया—

अलंकार कवितानि के, मुनि मुनि विविध विचार।

कविप्रिया 'केतव करी कविता को तिंगार ॥'<sup>३</sup>

'कविप्रिया' में सोलह प्रभाव हैं। प्रारम्भ के दोनों प्रभावों में कवि ने संस्कृत परम्परा का अनुसरण किया है। प्रथम में गणेश-वन्दना तथा नृपवर्णन है। केतव काव्य में दोष की उसी प्रकार हेय समझते हैं जिस प्रकार गगानन्द के घट में मदिरा की छत्र बूँद भी निश्च होनी है। वास्तव में कविता बनिता एवं मित्र अल्पदोष के कारण ही निम्न नीय बन जाते हैं।<sup>४</sup>

चौथे प्रभाव में कवि भेद कवि रीति और शृंगारो का वर्णन है। पाचवें प्रभाव में काव्यालंकारों का प्रारम्भ होता है। अलंकारों के सात भाग दिए गए हैं—एक तो सामान्य और दूसरा विषय। छठे प्रभाव में वर्णालंकार का निरूपण किया गया है। सातवें एवं आठवें प्रभाव में अमरा भूमि भूषण (प्राकृतिक दृश्य) तथा रामधी भूषण का वर्णन है। यही काव्य के वास्तविक अलंकार हैं। केतव ने इनकी मर्यादा ३७ रखी है परन्तु अवान्तर भेद से यह संख्या बहुत बढ़ जाती है। सोलहवें प्रभाव में विषय सकार का वर्णन है। इस अलंकार के वर्णन में केतवदास जी अमरवल्गु की दाय्यवल्गु सतावृत्ति से प्रभावित हैं। प्रधानतया यह ग्रन्थ अलंकार शास्त्र में सम्मिलित रहता है। परम्परा से केतवदास अलंकारवादी न रहे जाते हैं। सम्भवतः इसका उत्तरदायित्व कविप्रिया

१ कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ६१

२ कविप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द १

३ कविप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द २

४ कविप्रिया तृतीय प्रभाव, छन्द ५

की निम्न पंक्ति पर ही है—

भूषण बिनु म विराजही कविता बनिता मिस ॥<sup>१</sup>

केजव की इस प्रथम पूरा सफरता मिली है। इस रचना तक आते आते केजव दास जी एक प्रौढ़ आचार्य बन गए हैं।

टीकाए

१ कविप्रियातिसक—धीरकृत

पृष्ठ-संख्या १६३

छन्द-संख्या ६४५०

प्रतिनिविन्धार सन् १८८० ई०

स्थान—राजकीय पुस्तकालय दतिया

राजा धीरकिशोर की आज्ञानुसार सन् १८८३ में धीर कवि ने टीका का प्रणयन किया।

२ काशिराजप्रकाशिका<sup>१</sup>

पृष्ठ-संख्या १३५

छन्द-संख्या २५००

स्थान—राजकीय पुस्तकालय बनारस

इस टीका का प्रणयन सरदार कवि ने अपने पिछे नारायण की सहामता से काशिराज महाराज ईश्वरीनारायणसिंह की आज्ञानुसार किया था। यह टीका सन् १८८६ ई० में नवलकिशोर प्रसन्न लखनऊ से छपा चुकी है। इन्हीं सरदार कवि ने 'रसिक प्रिया' की टीका लिखी थी।

३ कविप्रियाभरण<sup>२</sup>—हस्तलिखित

अ—प्रथम प्रति पृष्ठ-संख्या १४६

छन्द-संख्या ६

स्थान—राजकीय पुस्तकालय बनारस

ब—द्वितीय प्रति पृष्ठ-संख्या २०३

छन्द-संख्या ७५१२

प्रतिनिविन्धार सन् १८८३ ई०

स्थान—प० रामवर्ण उपाध्याय कदावा

इस टीका का प्रणयन सन् १८३५ ई० में कविवर हरिवरणास ने किया था। यह भारवाड़ में कृष्णगढ़ के महाराज बहादुर के आश्रय में था।

१ कविप्रिया प्रथम प्रकाश छन्द १

२ आचार्य पद्मावत पृष्ठ ६६ का हस्तलिखित

३ कविप्रिया मराठी पृष्ठ ३६६ हरिवरणास

## ४ कविप्रिया सटाक

पृष्ठ-संख्या १०००

छन्द-संख्या २२५०

प्रतिनिधि-काल स० १८५६ वि०

स्थान—जुमसविगोर मिथ

गघीनी (सीतापुर)

यह टीका मूरत मिथ द्वारा लिखी गई है। जिस प्रकार से सरदार कवि ने कवि प्रिया तथा 'रसिकप्रिया' दोनों की टीका लिखी है उसी प्रकार इन्होंने भी रसिकप्रिया तथा कविप्रिया दोनों की टीका लिखी है।

५ डा० हीरानाल दोक्षित ने नाजिर सहज की टीका की दो हस्तलिखित प्रतियो का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> वे प्रतियां उन्होंने राजकीय पुस्तकालय बनारस में देखी हैं। एक खटित है तथा दूसरी पूरा। सबक न एक प्रतिलिपि मथुराल पुस्तकालय गया में देखी है। वह निम्न प्रकार है—

कविप्रिया— रचयिता केदारनाथ मिथ

अवस्था अच्छी

प्रारम्भ का एक पृष्ठ नहीं है।

पृष्ठ संख्या ८५ आकार ६ × २"

प्रतिपृष्ठ २८ पंक्तियां लिपि नामरी

टीकाकार—महजराय

रचना-काल स १८३४

प्रतिलिपिकर्ता दिनेश

प्रतिलिपि रचना-काल स० १८८३ वि०

स्थान—मन्सूला पुस्तकालय गया

इस ग्रंथ के टीकाकार नाजिर सहज हैं। टीका का नाम चंद्रिका टीका है। ग्रंथ का मूल लिखन के उपरान्त टीका और उदाहरण लिए गए हैं। ग्रंथ के अन्त में टीकाकार टीका के सम्बन्ध में लिखते हैं

केदार सोरह भाग गुन सुवरन भय सुकुमार ।

कविप्रिया के ज्ञानियहु ये तोलहु शृणार ॥

सहजराय-कृत चंद्रिका सति चंद्रिका समान ।

साक्षरही संशय तिमिर, प्रतिबिन करत प्रथाम ॥

## ६ कविप्रिया—टीकाकार नाजिर महज

प्रतिलिपिकार बरनसिंह राजपूत गयावासी

पृष्ठ-संख्या ११ प्रति पृष्ठ पंक्ति १५

<sup>१</sup> आचार्य केदारनाथ, पृष्ठ १, डॉ. हीरानाल दोक्षित

प्रतिनिधि य० १६०० वि० चतुर्थ पुस्तक पन्थी गुरुवार

म्यान—मुन्नुनाय पुस्तकालय, गया

भाषा—प्रथम चित्रानुसारवर्णनम्—

केवल चित्र कवित्त के बहुत परम विधि ।

अन्त—

कामधनु है आदि यह कल्पवृक्ष पश्यत ।

यह पुन नहीं है । अन्त के 'इति धोनाग्रसहजरायविग्विनाया कविप्रियाटीकाया सहजरायचन्द्रिकाया चित्रानुसारविवरण नाम धोनाग्र प्रकाश' ।

प्राचीन टीकाओं में निश्चिन्त रूप में सरगार कवि की टीका सबसे मुन्नर थी परन्तु चक्रमापा में हान के कारण आज के पाठक के लिए अधिक लाभप्रद नहीं थी । इसीको दृष्टि में रखत हुए स्व० साता भगवान् ने 'प्रियाप्रकाश' के नाम में 'कविप्रिया' की टीका लिखी । सभी दृष्टियों से यह टीका मुन्नर बन रही है । स्वर्गीय साता जी बड़े विद्वान् एवं कवि के समर्थक थे । केवल के लिए उन्होंने जितना काम किया उनका मात्र एक विसी न नहीं किया । इसके लिए हिन्दी-साहित्य सब उनका ऋणी रहा । किन्तु इतना कि मैं देह कहा जा सकता है कि साता जी अनेक म्यानों पर कवि का मुन दृष्टि से दूर हो रहे हैं । सन् १९५२ में सड़मीनिधि चतुर्वेदी ने 'कविप्रिया' पर टीका लिखी है । लखनऊ में अनेक म्यानों पर समझ का अच्छा प्रयास किया है ।

छन्दमाला

यह तक केवलसा जी के सम्बन्ध में यह अनुमान किया जाता था कि उन्होंने छन्द सम्बन्धी ग्रन्थ का प्रणयन अवश्य किया होगा । अनुमान था उचित था या क्योंकि जिस आचार्य ने इस एवं अन्तकार पर 'रमिकप्रिया' एवं 'कविप्रिया' जैसे पाठ्यपुस्तक ग्रन्थों का प्रणयन किया हो वह विद्वान् जिस महत्त्वपूर्ण काव्याय को जिस प्रकार तिलाजलि दे सकता था ? मुन्न भी सब बिनाया रहनी थी परन्तु परितोष न हुआ । यन्त्र-रत्न राम चन्द्रिका का ही छन्द-सम्बन्धी ग्रन्थ समझकर मन का सन्तुष्टि किया करता था क्योंकि केवलसा जी ने स्वयं ही स्वीकार किया है —

'रामचन्द्र' की चन्द्रिका भरत ही यह छन्द ॥ १

गोप-काय के सम्बन्ध में सन् १९५३ में मैं मामग्री एक्क बन्ने के लिए बनारस गया । वहाँ मधुरा के प्रसिद्ध साहित्यकार पंडित जवाहरलाल चतुर्वेदी से भेट हुई । उन्होंने केवल-विरचित 'छन्दमाला' नामक पुस्तक का पता हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय में बनवाया । लेखक ने प्रयाग आकर उस हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपि की । उन दिनों ही विष्णुनाथप्रसाद मिश्र केवलग्रन्थालय का सम्पादन कर

सम्पूर्ण प्रथम प्रकाश एवं द्वितीय प्रकाश के प्रारम्भ तक गान एवं लोभ का विवाह चलता है। गेय द्वितीय प्रकाश में विष्णुवासिनी द्वारा वीरसिंह के वध का वर्णन है —

“वंश बलान्यो सबल गुन, बहु विक्रम उत्साह ।

वीरसिंह जिहि पुर बस तह दोऊ जन आहु॥”<sup>१</sup>

लोभ एवं दान की जिज्ञासा जागरित होती गई और विष्णुवासिनी देवी वृत्तान्त सुनाती रही। वीरसिंह द्वारा अफ़जलिया का वध भववर का वीरसिंहदेव पर क्रोधित होना आक्रमण करना वीरसिंह द्वारा मुगलबाहिनी को छड़ाना और फिर हराना भववर की आश्चर्यमय मृत्यु सलीम की कृपा में वीरसिंहदेव का राजा होना आदि विष्णुवासिनी देवी ने दान एवं लोभ में वृत्तन किया। वीरसिंहदेव के राजा बनने पर बड़ माई राजा राम शाह से ठग जाना स्वामाधिक हो या क्योंकि वे पहले से राजा थे। रामशाह एवं इन्जीत सिंह एक और थे और वीरसिंहदेव तथा रावप्रताप दूसरी बार। संधि बनाने का भी प्रयत्न किया गया। गोपाल खवास के प्रयत्न असफल होने पर केशवदास मगद तथा पामर पर संधि का उत्तरदायित्व सौंपा गया। बैरागिय ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ मध्यम मार्ग निवाला कि जीवन-व्यस्त राजा रामशाह राज्य करें परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त वीर सिंहदेव राजा बनें। परन्तु रानी कल्याण ने पुत्रों की ममता व कारण स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप युद्ध छिड़ गया। पर्याप्त जन-संहार होने के उपरान्त विजयश्री वीरसिंहदेव का हाथ रही। वे सारे देश के राजा बने तथा औरछा जहांगीरपुर बना।

देवी ने कहा—

दान लोभ तुम सब सुनो बहू नृपति को भेष ।

वीरसिंह अति देखि जे, नर देवनि को देख ॥<sup>२</sup>

इतना बहवर दान कुछ कहने ही वाला था कि देवी अन्तर्धान हो गई—

“लौनों कहन बछ जब दान, छु गई देवी अन्तर्धान ।

दान लोभ तब दोऊ भले देखत जहांगीरपुर चले ॥”<sup>३</sup>

भव पद्महर्षे प्रकाश में दान और लोभ जहांगीरपुर चल पड़ते हैं। मार्ग में बार सागर एवं बैतवा का वर्णन करते हुए नगर में पहुँचते हैं। नगर का बाजार आदि देवदार हयगाला की ओर जाते हैं। वहाँ जाकर लोभ दान से घोड़ा की जाति जानना चाहता है। फिर क्या था दान ने ज्ञान का पूरा-पूरा परिचय दिया। तदुपरान्त राजा की मित धर्म का वर्णन है। श्रीमान मन्दिर प्रभानी नरसिंह वन-वाटिका ब्रीह-गिरि जन केति मन्त्र-महोत्सव दरबार आदि का वर्णन बड़ा तमयता के साथ किया गया है। ऊपर दोनों ने सब कुछ देख लिया तो वीरसिंहदेव में मिलत है और विष्णुवासिनी की पूरी कथा बतलात है। वीरसिंहदेव दोनों के विवाह का इस प्रकार निणय देने हैं—

१ वीरसिंहदेवचित द्वितीय प्रकाश अन्तिम पौदा

२ वीरसिंहदेवचित चतुर्था प्रकाश पृष्ठ १११

३ वीरसिंहदेवचित चतुर्था प्रकाश पृष्ठ ११२

‘सन्तति सदा समान सुम देहु सेहु हरि देत भग।

दान लोभ दोऊ जने, देव-देव साये सुमग ॥”<sup>१</sup>

तदुपरान्त दान न राजा व क्षीम का समझकर राजनीति की शिक्षा दी। राज नीति की शिक्षा के साथ-साथ राजधर्म तथा कर्म पर भी दान का व्याख्यान हुआ। उसने बाँ रानी पावती के साथ राजा का राज्याभिषेक होता है। विजय, उत्साह बराबर भय भ्रान्त भाव्य पराक्रम प्रम सत्य सञ्चार, ज्ञान साम उद्यम तथा धन में धन न आशीर्वाद दिया। अभिषेक की विद्या समाप्त होने पर वीरसिंहदेव सिंहासन न उतरे और धर्म का पांव पकड़ लिया। तदुपरान्त दान बरतना की पावना की—

और चरित सन्तन सुनन सुख की बस मसाय।

मो डर बसहु बड़ाय जो जहाँगौर की साय ॥”<sup>२</sup>

बरतान दान के उपरान्त धर्म अन्तर्धान हो गया और साथ ही साथ वीरसिंहदेव चरित का अवसान भा।

### विज्ञानगीता

सौत्र-रिपोट सन् १६०० ई०

विज्ञान गीता<sup>३</sup>—बैंगणदास मिश्रदृत

छन्द-सख्या १४८७

स्थान—बाबू कृष्णबल्लेव शर्मा

केसर बाग लखनऊ

विज्ञानगीता<sup>४</sup>—

सौत्र-रिपोट सन् १६१७—१६१६ ई०

पृष्ठ-सख्या ८४

रि० न० ८२ अ—द्वन्द्व-सख्या १११८

प्रतिलिपि-काल स १६४८ वि०

स्थान—पुस्तकालय राजा बलरामपुर, बि० गोंडा

सौत्र-रिपोट १६२६—२८

विज्ञानगीता<sup>५</sup>—

रचयिता बैंगणदास मिश्र

पत्र ८८ आकार ८" X ४"

पक्षि प्रतिपृष्ठ १८

१ वीरसिंहदेवचरित, वैजयंता प्रकाश, छन्द २

२ वीरसिंहदेवचरित सेतुसुखा प्रकाश छन्द १३

३ अशो नागरायचरितसमा खो रि०, पृष्ठ सं० ११

४ अशो नागरायचरितसमा खो रि पृष्ठ न १७८

५ अशो नागरायचरितसमा खो रि , पृष्ठ न २१०

परिमाण १६७२ छद (लण्डन)  
 रूप जीर्ण पत्र  
 लिपि नागरी  
 रचना-काल स० १६६७ वि० सन् १६१० ई०  
 लिपिकाल स० १७०५ वि० सन् १६४८ ई०  
 प्राप्ति-स्थान—श्री राजप्रसाद मिश्र  
 ग्राम जमजीवनपुर  
 बाकधर भोमन  
 जिला सीरी

विज्ञानगीता<sup>१</sup>—

पत्र १८० आकार ८" X ६"  
 पक्षित २४ प्रतिपृष्ठ  
 परिमाण १८२० अनुष्टुप् पूण  
 रूप प्राचीन लिपि नागरी  
 रचनाकाल स० १६६७ वि० सन् १६१० ई०  
 लिपिकाल स० १६०१ वि० सन् १८४४ ई०  
 प्राप्ति-स्थान—श्री सकराप्रसाद धक्कपी  
 ग्राम एक बाकधर बोटरा  
 जिला सीतापुर

सोज-रिपोर्ट के अनुसार 'विज्ञानगीता' के दो हस्तलेख प्राप्त हुए हैं—

प्रतिलिपि-समय स० १७०५ सन् १६४८ ई०  
 रचनाकाल स० १६६७ वि०

सोज-रिपोर्ट के अनुसार इस ग्रंथ का हस्तलेख भव तक सभी प्रतियों में प्राचीन है। विज्ञानगीता में केणवदासजी ने विवेक द्वारा मोह का दमन धीरे प्रबोध का अजन प्रतिपादन किया है। सस्कृत के प्रसिद्ध रूपक 'प्रबोधचन्द्रोदय' भीमद्भागवत श्रीमद् भगवद्गीता आदि ग्रंथों की दृष्टि में रखते हुए इस दासनिष्ठ ग्रंथ का प्रणयन हुआ है। इसका रचनाकाल स० १६६७ वि० है—

“सोरह स बीते धरष विमल सतसटा पाद ।

भई ज्ञानगीता प्रगट, सब ही को सलबद ॥”<sup>२</sup>

सम्पूर्ण ग्रंथ में दृक्वीक्ष प्रभाव है। प्रारम्भिक बारह प्रमावा में महामोह एवं विवेक के पुद्गल का वर्णन है। शेष ती प्रमावों में ज्ञान विज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। प्रारम्भ में रामचरितमानस से तुलना की जा सकती है। मानस में भारद्वाज के ग्रन्थ का

१ काशी नागरोप्रकारिणी समाख्ये रि, पृष्ठ स० २१

२ विज्ञानगीता समय प्रभाव, पृष्ठ १३

समाधान करने के विचार से यागवल्क्य निब-यावती का प्रसंग लेते हैं। वीरसिंहदेव प्रश्न करते हैं—

“यथागस्ति सब करत भक्ति, हरि मन सब भंगा।

चित न तजत विकार म्हात नर पछापि मया ॥”

केशव इस प्रकार उत्तर देते हैं—

घोर भोग पनेग तुम मोहि जु सुभी नाथ।

सोई धीनिब को निवा, सुभी हे नृपनाथ ॥”

पार्वतीजी ने शिवजी से प्रश्न किया—

‘कहिय किहि भौति विकार नसाव।

तिब जीवतहीं परमार्नद पाव ॥”

शिवजी ने उत्तर में कहा—

“जब विवेक हति मोह को होइ प्रबोध समुक्त।

सबहों जानो जीव का जग में जावन-मुक्त ॥”

शिवजी के उत्तर की व्याख्या श्री ‘विज्ञानगीता’ है। प्रथम प्रकाश में ब्रह्म वंग तथा राजवंग सक्षय में वर्णित है। द्वितीय प्रकाश में काम और रति की मन्त्रणा है। तीसरे प्रकाश में दम्भ एवं ग्रहणार काशी विजय का विचार करते हैं। चौथे प्रकाश में महामोह मेला सजाकर बतलाते हैं। पाचवें एवं छठवें प्रकाश में कालिनाथ एवं उमका रानी में विचार-विनिमय होता है। कालिनाथ अपनी विजयो एवं चमू का बणन करता है और रानी काशी का माहात्म्य बहती है। सातवें एवं आठवें प्रकाश में कमल चारवाँ की कालि स बातचीत तथा शक्ति एवं कल्याण का बणन है। नवें प्रकाश में राजधम द्वारा महामोह युद्ध का उद्योग किया जाता है। दसवें प्रकाश में वर्षा एवं गरुड का सुन्दर बणन है। ग्यारहवें प्रकाश में विवेक स्तोत्रों के द्वारा अपने देवताओं को प्रसन्न करता है। बारहवें प्रकाश में विवेक एवं महामोह में पार युद्ध होता है जिसमें महामोह पूणरूप से पराजित हो जाता है। ‘रामचरित्र’ एवं ‘वीरसिंहदेवचरित’ की भाँति इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में भी कथावस्तु निश्चित गति में चलती है अन्य बणन का प्रधानता हा जाता है। सत्रहवें प्रकाश में माया और चौदहवें प्रकाश में गुणदेवता का बणन है। पन्द्रहवें प्रकाश में भक्त शुद्धि विवेक तथा पूजा का बणन है। सारहवें प्रकाश में राजा शिखिध्वज तथा उसकी रानी चूडाला की कथा है। सत्रहवें अठारहवें तथा उन्नीसवें प्रकाश में भक्त ज्ञान विज्ञान प्रज्ञा एवं वसि की कथा है। बीसवें प्रकाश में योग की सात भूमिकाएँ वर्णित हैं। अन्तिम प्रकाश में केशवदासजी ने स्वमतानुसार योग का बणन किया है।

१ विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव छन्द २८

२ विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव छन्द २६

३ विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव, छन्द २१

४ विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव छन्द ३२



जहांगीर-जस चद्रिका<sup>१</sup>—

सोज रिपोट सं० १६०३ ई०

बेगवदास मिश्रकृत

पृष्ठ-संख्या ३०

छन्द-मर्या ४४०

स्थान—मुस्तवाज महाराजा बनारस

जहांगीर जस-चद्रिका<sup>२</sup>—

बेगवदास मिश्रकृत

छन्द-संख्या २०० सम्पूर्ण

रूप प्राचीन

पृष्ठ १८

रचनाकाल सं० १६६६ वि०

लिपिकाल सं० १६८६ वि०

प्राप्ति-स्थान—भायागवर यात्रिक महाहालय फांसी नागरी  
प्रचारिणी सभा

'जहांगीर-जस चद्रिका' बेगवदास की प्रथम रचना है। इस ग्रन्थ के रचना  
काल के संबंध में बेगवदासजी स्वयं लिखते हैं—

'सोरह स उनहतरा, माह भास विचार।

जहांगीर सक साहि की, करी चद्रिका कार ॥'<sup>३</sup>

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ भी वीरसिंहदेवचरित की भांति चलता है। वीरसिंहदेव  
चरित मदान एवं सोम के विवाद से कषावस्तु प्रारम्भ होती है। तदुपरान्त विष्णुवासिनी  
देवी निमग्न के लिए उन्हें वीरसिंहदेव के पास भेजती है। ठीक उसी प्रकार 'जहांगीर  
जस चद्रिका' में उद्यम एवं भाग्य के विवाद से कषावस्तु प्रारम्भ होती है। तदुपरान्त  
गिबजी निमग्न के लिए उन्हें सम्राट जहांगीर के पास भेज देते हैं। इस प्रकार दोनों प्रांगण  
जाते हैं। राजधानी की छटा का अवलोकन करते हैं। दरबार में जाकर अनुपम अनुपा  
सन का साक्षात्कार करते हैं। सामन्त दरबार में निविद्यत क्रम से बढ़ रहे हैं। बाद  
शाह के प्राते ही सबकी गिबिलता दूर हो जाती है। सम्राट विहासन पर विराजमान  
हैं। बन्दीजन विरुदावली का गान कर रहे हैं। भवसार देवदर ब्राह्मण-वेद्य में दोनों पटु  
जाते हैं। प्रविहारी सूचना देता है। सम्राट की आज्ञा से रामनाम लेने के लिए भेजे जाते  
हैं। सम्राट के समीप पटुधवर प्राणीवर्ति देते हैं। सम्राट प्रमत्त होकर रामनाम के प्रति

१ फांसी नागरीप्रचारिणी सभा, मो० रि पृष्ठ सं ६१

२ सोरह न स्वयं यह ग्रन्थ यात्रिक महाहालय में देखा है।

३ जहांगीर जस-चद्रिका, छन्द २

सकेत करते हैं। परिणामस्वरूप रामदास विप्रों से कहते हैं कि आपपर सम्राट प्रसन्न हैं। आपकी जो कुछ इच्छा हो, वह भाग लीजिए। इसपर दोनों विप्र अपने वास्तविक रूप में आ जाते हैं। उनकी दिव्य रूप की आराधना होती है। प्रश्न हुआ कि उद्यम एवं भाग्य में कौन बढ़ा है? प्रश्न का उत्तर देते हुए सम्राट कहते हैं—

“उद्यम भाग प्रति उदित मति मुनि सबस प्रमान।

जग में उद्यम कम ये, मेरे जान समान ॥

करम कले उद्यम करे, उद्यम कमहि पाय।

एक कम दुहुनि को कौनो विधि सुखाय ॥”

सम्राट के निर्णय की समझने भूरि भूरि प्रशंसा की। मारा वायुमंडल आनन्दमय हो गया। उद्यम एवं भाग्य दोनों ने जहांगीर से वर मागने को कहा। उसने मागा कि आप लोग सुखपूर्वक मेरे राज्य में निवास करो। उसी समय केदारनाथजी की कविता पर मुग्ध होकर जहांगीर ने कुछ मांगने को कहा। उन्होंने बराबरपूण इस प्रकार उत्तर दिया—

‘यद्यपि हरिजू मांगिबो बिपो हवैं उपजाय।

हौ मांगी जगदीश प मुनो साहि सुखाय ॥”

इस प्रकार अन्तिम काव्य का व्यवसान हो जाता है। तदुपरान्त केदारनाथजी का भी कोई पता नहीं चलता।

## सदिग्ध रचनाएँ

### रामालंकृतमजरी

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त ‘गिरासिंहसरोज’ में ‘रामालंकृतमजरी’ नामक ग्रंथ का भी उल्लेख है। उन्होंने तथाकथित ग्रंथ के दो छन्द उद्धृत किए हैं—

‘अदवि मुजाति मुलच्छनी मुखरन सरस सुवृत्त।

भूपन बिन न बिराजहीं, कविता बनित मिल ॥’

तथा

प्रकट सख में भय जहें अधिक चमकृत होइ।

रस भर व्यर्थ बहून ते बलकार कहि सोइ ॥”

इस ग्रंथ का उल्लेख किसी भी स्रोत रिपोर्ट में नहीं मिलता और न किसी विद्वान ने ही ऐसे प्रमाण दिए हैं जिनसे यह सिद्ध हो सके कि यह काव्य की कृति है। ‘गिरासिंहसरोज’ के आधार पर ही सद्यजीवितसिंह सूरान्त शास्त्री तथा गोविन्ददासजी ने

१ गहांगीर-जम-चन्द्रिका छन्द सं १ ६ ६

२ गहांगीर-जम-चन्द्रिका छन्द सं १ ६ ८

३ गिरासिंहसरोज पृष्ठ संख्या ६१

४ गिरासिंहसरोज पृष्ठ संख्या ६२

इस केशवदासजी का ग्रंथ मान लिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा गौरीशंकर द्विवेदी ने 'रामानुजकृतमजरी' की केशवकृत नहीं माना। कुछ विद्वानों के मत में यह ग्रंथ छन्द शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाला था परन्तु 'छन्दमाला' के मिलने से उस धारणा का भाग्य भाग्य ही रह गया। सेखक को इसी ग्रंथ की छाज में 'छन्दमाला' भ्रमण प्राप्त हुई परन्तु रामानुजकृतमजरी नहीं। इस सम्प्रति उपयुक्त प्रमाणों के अभाव में इसे हम केशवकृत नहीं मान सकते। परन्तु हमारा विश्वास है कि यह ग्रन्थ भी 'छन्दमाला' की भांति एक दिन प्रकाश में आएगा।

### केशवदासजी का अमी-घूट

इस ग्रंथ का सोज-रिपोट में वर्णन नहीं मिलता परन्तु यह केशवदास द्वारा विरचित ही बताया जाता है। यह ग्यारह पृष्ठों का छोटा-सा ग्रंथ है जिसमें केवल ७८ छन्द हैं। यह ग्रंथ चौथी बार बेलवेडियर प्रिंटिंग वर्कस से सन् १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ है। इस सस्वरण की भूमिका में केशव के 'जीवनचरित्र' के विषय में यह कहा गया है—

'परमभक्त केशवदास जाति के बनिया थे। घारी साहब के चेते और बुल्ला साहब के गुरुभाई थे। जिनके पुनीत गुरु-पराने में गुलाब साहब भीखा साहब और पलटू साहब सरीखे साधु प्रकट हुए। इस हिसाब से उनके जीवन का समय सवत १७५० विजयमी से १८२५ वि० ठहरता है।'

इससे स्पष्ट है कि उक्त ग्रंथ के र्ण केशव आचार्य केशव से भिन्न हैं जो किसी निगुण संप्रदाय से संबद्ध हो सकते हैं। विषय-वस्तु के विनोपण से भी यह स्पष्ट है जैसे 'गुरुमहिमा' आदि।<sup>१</sup>

विज्ञानगीता का एक छन्द पाठभेद से केशवदास जी का अमी घूट में मिलता है। हो सकता है कि भ्रम का भाग्य यही हो। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ प्रसिद्ध है। यह छन्द निम्न प्रकार है—

‘निजि जासर वस्तु विचार सदा  
गुण साध हिये बरना धन है।  
अथ निषह सपह धम क्या  
निषरिप्रह साधन की गुन है।  
कह 'कैसे' भीतर भोय जगे,  
इत बाहर भोगमई तन है।  
भग हाथ भए जिनके तिनके,  
धन हो घर है घर हो धन है।’<sup>२</sup>

१ केशवदासजी का अमी-घूट, धारम में जीवनचरित्र, प्रकाशित १९५१ ई०

२ केशवदासजी का अमी-घूट पृष्ठ ८१, छन्द १

३ केशवदासजी का अमी-घूट, पृ० सं० ११ तथा विज्ञानगीता, पृ० ४६, पृ० १२१ पाठभेद से

# जमिनि की कथा\*

खोज-रिपोर्ट सन् १६१७-१६१६ ई०

पृष्ठ-संख्या १५६

छन्द-मह्या १११८

प्रतिलिपिकाल स० १६४८ वि०

स्थान—मामा नन्दलाल मुत्तही कथरा छत्रपुर

आदि—श्री गणगाय नमः । श्री सरस्वतीदेव्य नमः ।

श्री पुरगुरुवे नमः । अथ जमिन की कथा लिख्यते ।

दोहा—विघन विनाशन नवहरण, सम्बोदर उपदेस ।

धम कथा सुभ मंजरी निर्वाहो सुख वेस ॥

अन्त—लघुमति गूढन म कह्यो जो सों अछर सार ।

केसव पर निमु करि कृपा, सुकवि संवारनहार ॥

“इति धा बहामारते अस्वमेध के पद्य ने जमुनि कृते प्रधान केसोराइ बिर  
बिनायो फलस्तुति बनयो नाम सरसठयोध्याय” ।

इस ग्रंथ के रचयिता ने अपनी छाप ‘प्रधान केसोराइ’ रखी है । केसवदामजी के प्रामाणिक ग्रंथों में ‘प्रधान केसोराइ’ की छाप कहीं दृष्टिगत नहीं होती । यह अन्य जमिनि के प्रसिद्ध ग्रंथ अस्वमेध का हिन्दी रूपान्तर है । ग्रंथकार के अनुसार इसका रचनाकाल स० १७५३ वि० है । खोज-रिपोर्ट सन् १६०५ के अनुसार कसकराम भाषव दास के पुत्र तथा मरलीधर के भाई थे ।<sup>१</sup> खोज-रिपोर्ट १६१० ई० के अनुसार इनका जन्म सन् १६८२ वि० में हुआ था ।<sup>२</sup> छत्रसाल (सन् १६४६ १७३१) ने इन्हें एक ग्राम दिया था । केसवदासजी ने स्वयं अपने पिता का नाम काशीनाथ तथा आनामो के नाम बलभद्र तथा कल्याणदास बनया है । अतः स्पष्ट है कि यह कोई अन्य ‘प्रधान केसोराइ’

१ काशी का प्र० सभा खोज रि १६१७-१६१६ ई०

२ ‘Translation of the Jaimini Ashwamedha by Kesava Rai S/o Madhava Dass and brother of Murlidhar He mentions one Lala Narsingh as his patron and says that he was the God son of Chhatrasala In another place he mentions that a village was given to him by Chhatrasala (1649 A. D 1731 A D ) From this fact it is certain that he flourished in the time of Chhatrasala He composed this work in Sambat 1753 (1796 A D ) which also corroborates the fact noted above.

—Search for Hindi Mss year 1905

३ He was born in 1682.

—Search for Hindi Mss 1910

हैं। छत्रसाल के सम्बन्ध से यही निष्पन्न निकलता है कि ग्रन्थकार छत्रसाल के समकालीन थे और इस प्रकार रचनाकास भी ठीक प्रतीत होता है। 'सिधसिंहसरोज' में भी एक प्रधान केशवराय का उल्लेख है। कुछ भी हो इस ग्रन्थ के रचयिता महाकवि केशवदास कदापि नहीं हैं।

**हनुमान जन्म-लीला\***

खोज-रिपोर्ट १९१० ११ ई०

पृष्ठ-संख्या ४५

छन्द-संख्या ५००

स्थान—प० भानुप्रताप तिवारी चुनार

**बालि चरित्र\***

पृष्ठ-संख्या ६

छन्द-संख्या ६२

स्थान—भानुप्रताप तिवारी चुनार

ये दोनों ग्रन्थ महाकवि केशवदास की कृतियां नहीं हैं। किसी अन्य केशव नाम धारी कवि ने इनकी रचना की होगी। खोज रिपोर्ट के उद्धरणों की भाषा महाकवि केशव दास की भाषा से नितान्त भिन्न है। खोज-रिपोर्टकार के अनुसार इनका रचयिता बयल सठ का केशवराय बबुआ है।

**भानन्दसहरी\***

खोज-रिपोर्ट १९१० ११ ई०

केशवगिरिकृत

पृष्ठ-संख्या १९

छन्द-संख्या २१

स्थान—प० रघुनाथराम गायपाट बनारस

प्रारम्भ—ओ गणेशाय नमः । अथ भानन्दसहरी प्रारम्भः ।

बोहा—यह भानन्द समुद्र की लहरें अवरप्पार ।

सो कछु हों अवनन करी, केव नति अनसार ॥

अन्त—यह भानन्दसहरी रक्षित, वायक अमित अनन्द ।

ज्वर उषाता बुल को हरनि, कहत केवभानन्द ॥

पढ़े श्लोक का कविस को, ताकी ज्वर तत्काल ।

नागहि दावर कृपा तें, रह अणदेव रपास ॥

इति श्री भानन्दसहरी कविसनो समाप्तम् ।

१ कारी नागरीप्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट पृष्ठ म २३३

२ कारी नागरीप्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट, पृष्ठ स० ३३४

३ कारी नागरीप्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट १२१ ३३

इस ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं ज्ञात गया है। जगद्गुरु शंकराचार्य के 'मानन्द महरी' नामक प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ का यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा-रूपान्तर है। कवि ने इस में अपनी छाप 'केशवगिरि' दी है। महाकवि केशवदास ने अपने ग्रन्थों में इस छाप का कहीं भी प्रयोग नहीं किया। हमके प्रतिरिक्त खोज रिपोर्ट के उद्धरणों की भाषा की घतकार एवं दृश्य-वर्णन की दृष्टि से महाकवि केशवदास की कविता से तुलना कर तो दोनों में महान् अन्तर प्रतीत होता है। अतः यह रचना महाकवि केशवदास की नहीं हो सकती।

रससत्तित

खोज रिपोर्ट १९१०-११ ई०

रससत्तित<sup>१</sup>—रचयिता केशवराय

पृष्ठ-संख्या ३६

छन्द-मत्स्या ८७७

स्थान—५० शिवदुनारे दुवे हुनेनगञ्ज फतहपुर।

भाव—श्री गणेशाय नमः

राधावर धनस्याम को ध्यान करो कर जोरि।

ना ध्यावे जो जन तिहें तन मन बहुत निहोरि ॥

अन्त—अथ शृंगार सजग है अ प्रिया पीय।

कीरति जेहि भाऊ ताहि बहुत शृंगार रस।

पण्डित कवि समुप्राप्त।

बोहा—विधि विधि है शृंगार रस कहत सुकवि मन धानि।

करनी प्रथम सजोग को

॥

यह ग्रन्थ किसी 'केशवराय' नामधारी कवि की रचना है। इसका विषय नायिका भेद है। इस विषय पर महाकवि केशवदामजी ने 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। जिसमें इस विषय का अत्यन्त सूक्ष्म विवचन है। इतने सुन्दर ग्रन्थ की रचना करने के उपरान्त केशवदासजी द्वारा 'रससत्तित' जमा साधारण कौटि का ग्रन्थ रचने की सम्भावना करना नितान्त अयोग्य है। दूसरे दानों ग्रन्थों के शृंगाररस के लक्षणों में अन्तर है। तीसरे 'रसिकप्रिया' में शृंगाररस का सम्पूर्ण प्रारम्भ यह है जबकि 'रससत्तित' में अन्त में जाकर लिया गया है। खोज रिपोर्टकार ने इस ग्रन्थ का रचयिता बुद्धेलखण्ड निवासी केशवराय जम सकत् १६८२ वि० को जतलाया है। इस ग्रन्थ का रचयिता कोई 'केशव' नामधारी अन्य कवि ही है न कि धाचार्य केशव।

कृष्णसीता

खोज-रिपोर्ट सन् १९२ -२२ ई०

कृष्णसीता<sup>२</sup> अनु—रचयिता केशव उवाहार

१ काशी नागप्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट सन् १९११ ११ ई

२ काशी नागप्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट सन् १९२० २२ ई

पृष्ठ-सख्या ३६

छन्द-सख्या ६४८

स्थान—पं० निवप्रसाद मिश्र मौजमाबाद फतहपुर

आदि—श्री गणेशाय नमः

विघ्नहरण अंगारण-गारण गणपति गिरिजानन्द ।

सिधिवायक ध्यावत मुम्हें, भित्त फिकिर के फन्व ॥

भगत—तुम एक सरन असरन तुम दोन के दुसहरन ।

गजराज ननिका सारि सारी अहित्या नारि ॥

सुनि द्रोपदी को टर

॥

विषय—परिहार वस-वर्णन कृष्ण का धाम चरित कृष्ण का मही खाना, वाली बह में बूढ़ना मगोदा का प्रेम-वर्णन कृष्ण का भासन बुराना, गायियो के उपालम्भ, राधाकृष्ण विहार-वर्णन तथा कृष्ण प्रयात-वर्णन ।

वस-वर्णन के अन्त में कवि सिद्धता है—

ससत जहाँ धारो बरन, चहू ओर है नाँव ।

निकट उजहरा के बसत भेटनवार शुभ गाँव ॥

बस्तावर के हुकुम तें कवि बेगव बरि प्यार ।

कही कृष्णसीसा मुखद, निज ब्रिध क अनुसार ॥

इति वस वर्णन ।

संगीत रत्नाकर पर भाष्य<sup>१</sup>

संगीत रत्नाकर शारंगदेव (सन् १२१०-४७ ई०) की प्रसिद्ध रचना है । पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी में बेगव ने इस ग्रन्थ पर भाष्य लिखा । भाष्य की भाषा आदि की दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि यह रचना महाकवि बेगव की बदायि नहीं ।

उपयुक्त सभी ग्रन्थों के रचयिता आचार्य बेगवेंतर बेगव नामधारी कवि हैं ।

महाकवि बेगवदास की रचनाओं का बाल जम इस प्रकार दिया जा सकता है—

१	रसनवावनी	रचनाकाल	सं० १६३८ वि० से १६४० तक
२	रसिकप्रिया	रचनाकाल	सं० १६४८ वि०
३	नरसिख	रचनाकाल	सं० १६५७ वि०
४	बारहमासा	रचनाकाल	सं० १६५७ वि०
५	रामचरित्रा	रचनाकाल	सं० १६५८ वि० कालिक मुक्तपदा
६	कविप्रिया	रचनाकाल	सं० १६५८ वि० कास्मून मुक्तपदा

१ संगीत कवियों की हिन्दी रचनाएँ पृष्ठ सं० २६

लेखक—जमिन्दार जगदीश

साहित्य मदन विमिटेड इलाहाबाद

७	छन्दमाला	रचनानाम	सं० १६५६ वि०
८	वीरसिंहदेवचरित	रचनानाम	सं० १६६४ वि०
९	विज्ञानगीता	रचनाकाव्य	सं० १६६७ वि०
१०	जहांगीर-जस चरित्रिका	रचनाकाव्य	सं० १६६६ वि०



## तृतीय परिच्छेद केशवकालीन परिस्थितियाँ पूर्व-पीठिका

### (क) राजनीतिक

केशव (स० १६१८-१६८० वि०) का समय सत्रहवीं शताब्दी है। उस समय राजनीतिक सामाजिक धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रों में विशिष्ट और महान प्रतिभाओं ने जन्म लिया। अकबर का दरबार रत्नों से जगमगा उठा। साहित्याकाश में सूय 'चन्द्र और उद्गुन अनुपम ज्योति विकीर्ण करने लगे। भक्ति भावावेगमूलक धर्म जहाँ कृष्ण-काव्य में मधुर रस वनकर छलक उठा वहाँ मध्यकालीन जीवन-मूल्य तथा सामाजिक आदर्श पर्याप्तगुक्त राम-भाष्य की लोक-मुलम गौरी में ठलकर सम्राट की पुनर्ध्व वस्या में योगदान देने लगे। अकबर की सहिष्णुता, जहांगीर का 'पाय और नूरजहाँ की सुव्यवस्था ने देश में उस स्वर्णयुग का सूत्रपात किया जिसमें कला साहित्य और संगीत की वह प्रवाह परम्परा स्थापित हो सकी जो औरंगजेब की बर्ना विरोधी प्रवृत्ति में टकराने तक प्रसृणवनी रही।

अकबर १४ फरवरी सन् १५५६ में १७ अक्तूबर सन् १६०५ तक सम्राट रहा।<sup>१</sup> चन्द्र की दुबलता और अस्त व्यस्तता के कारण राजनीतिक व्यवस्था समाप्तप्राय थी। बाबुल कश्मीर जोधपुर मालवा भोरछा बीजापुर और गोम्रा स्वतन्त्र हो गए थे।<sup>२</sup> जनता दुर्मिन्न महामारी आदि दबी प्रकोपों से उत्पीडित थी।<sup>३</sup> अतः अकबर का मार्ग जटिल और कटपकीण था। अकबर ने अपनी विजया से साम्राज्य की अभिवृद्धि की सधि और राजनीतिक विवाहा से साम्राज्य की सुरक्षा की तथा धार्मिक सहिष्णुता में शासित हिन्दू बहुमत को 'पाय' मुस्लिम अल्पमत के पक्ष में रखा।<sup>४</sup> अकबर के पश्चात् जब जहाँगीर सिंहासनासीन हुआ<sup>५</sup> तो उसने अपने पिता के पन्धियों पर ही चलना थपकर समझा। मेवाड़ और बागडा की विजयों से<sup>६</sup> साम्राज्य अभिवृद्धि का योगदान पूर्ण किया।

१ An Advanced History of India (2nd Ed.), R. C. Majumdar Page 457

२ भारतीय साहित्य की रूपरेखा, द्वितीय भाग पृ ३३ (चतुर्थ संस्करण)

३ इलिफंट शिखर स्तम्भ भाग ६

४ भारत का बृहद् इतिहास पृ० ४६९, अनेक पाठ्य

५ ४ अक्तूबर, १६०५ ई०—भारत का इतिहास भाग ३, बाबर ईसवीयण ५ = ६

६ भारत का साहित्य की रूपरेखा भाग २ औरंग श्यामी

उसकी विलासवृत्ति से कुछ दुर्बलता भी आई जिसने अन्तकालहों को जन्म दिया। पर नूरजहाँ ने शासन की दुर्बलता को बढ़ने नहीं दिया। दिल्ली साम्राज्य से अनेक प्रतिभाएँ सम्बद्ध थीं। अकबर की गुणग्राहकता ने प्रतिभाओं का प्रोत्साहन भी दिया और मरक्षण भी पर अनेक कवि-संगीतज्ञ अकबर के परिकर में सर्वथा युक्त रहे। इनमें से कुछ तो 'सरनु कहा सीकरी सों धामु' और नाहिन रह्यो मन में ठौर गानेवासे निरालम-निस्सग भक्त थे जो राजनीतिक वातावरण में पड़कर अपनी प्रतिभा और साधना की एकागी नहीं बना देना चाहते थे। दूसरी ओर ऐसी प्रतिभाएँ थीं जो दिल्ली-केन्द्र से सम्बद्ध होना अपने स्वाभिमान, राष्ट्रप्रेम और जायभिमान के विरुद्ध समझती थीं। ये बताकर उन की सामंतों के पास रहकर अपने को कृतकृत्य समझते थे जिनमें कुछ जाय्यभिमान 'प था और अत्यन्त दुर्बल होते हुए भी अपने स्वाभिमान की रक्षा में तत्पर थे। केगवदासजी का दिल्ली से कभी सीधा संबंध नहीं रहा। वे आज्ञा और छा के मध्य में एक सुदृढ़ स्तम्भ बने रहे। और छा जैसे राज्यों में एक मनोबैज्ञानिक संधप था। एक बार कुन्दलखण कं अमर बीरा की यशोगाथा दिल्ली की दासता के नीचे बसमसा रही थी दूसरी ओर पराजय और विनाशता विलास विनोद में परिणति होज रही थी। केगव की प्रतिभा द्विमुनी रही। एक ओर बीरता के अवशिष्ट स्फुटियों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से 'रतनबावनी' और 'वीरसिंहदेवचरित' की रचना चल रही थी दूसरी ओर वह विलास-विनोद की अगम्य साम्राज्ञी साहित्य-अनीत-कला की रसिकों को गिना देन में समान था। इस प्रकार समस्त राजनीतिक संधप कविबाणा में अभिव्यक्ति पा रहा था। साथ ही दिल्ली और छा राज्य के बीच विलास-विनाश की प्रतिद्वन्द्विता भी चल रही थी यदि कोई 'राय प्रवीण कला-सौन्दर्य के दास में उमगन लगी तो कभी भी उस अवनत को मचन उठा। कभी-कभी यह एक आन्तरिक संघर्ष का कारण बन गई। केगव जैसी प्रतिभाओं का उपयोग ऐसे संधपों को टालकर धातव्यदाता सामंत की सुरक्षा करने में भी हो सकना था। वीरसिंहदेव ने यदि बाप-बेटे की अनबन का लाभ उठाकर भेद-नीति से सत्सीम का विद्रोह प्राप्त किया तो केगव उनके चरित्र की गहराई अविन लगे। इस प्रकार केन्द्र और अर्धो नरथ राज्यों में जो बाह्य मधुर और अन्तरगत कटु प्रतिक्रियारमक संबंध रहता था केगव के काव्य में उसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि सुन पड़ती है।

और छा राज्य से केगव का साधा सम्बंध था। यह राज्य तत्कालीन राष्ट्रीयता और जात्यभिमान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। और छा राज्य के माध्यम से ही केगव दिल्ली में संबद्ध थे। एक समय में और छा की सीमाएँ उत्तर में यमुना और दक्षिण में नर्मदा पश्चिम में अजमेर तथा पूरब में ठास तक थीं। यह क्षेत्र वीरसिंहदेव की बीरता का सोहा मान चुका था। भारताब्द की मृगु के उपरान्त मधुकरसाह सन् १५५४ में

भोरछा की गद्दी पर बैठे। इस धर्माभिमानि स्वतन्त्रता प्रिय वीर का भक्तर से सघर्ष हुआ। भक्तर ने इसके दमन के लिए एक विंगल सेना भेजी। इस वीर के अदम्य साहस ने इस अभियान को असफल कर दिया। इसके पश्चात् दो मुगल अभियान भोरछा पहुँचे। सन् १५६१ में मुराद के सम्मुख पराजित होकर राजा भक्तर की भोर पलायन कर गया। वहाँ इस स्वामिमानी ने भक्तर की दासता में जीवन-यापन करने की अपेक्षा मृत्यु का प्राणिगत श्रेयस्वर समझा। सन् १५६२ में इनकी स्वामाविक मृत्यु हुई।<sup>१</sup> मधुकरशाह का नाम उन राजाओं के साथ गौरव के साथ लिया जाता था जो भाजीवन भक्तर के विरुद्ध मघप करते रहे।

मधुकरशाह के आठ पुत्र थे। भक्तर ने रामशाह को भोरछाधिपति स्वीकृत किया। राज्य का प्रबंध भार इन्द्रजीतसिंह के कंधों पर था। मधुकरशाह का स्वामिमानी रक्त वीरसिंहदेव की रणों में दौड़ रहा था। उसके मन में भक्तर के विरुद्ध विद्रोह की भाँति सुनगन लगी। भक्तर इस क्रांति-स्फूर्ति को कैसे सहन कर सकता था। रामशाह को उसे पकड़ने की आज्ञा मिली। भीतर ही भीतर इन्द्रजीतसिंह और प्रतापराव उसके समर्थक थे। वीरसिंहदेव ने दलिया के भासपास का प्रदेश भी छीन लिया। भक्तर द्वारा प्रपित दीनतला ने रामशाह की सहायता से इस स्वतन्त्रता के सनानी को पकड़ने की चेष्टा की पर वह विफल-मनोरथ हुआ। सलीम से मिल करके वीरसिंहदेव ने अपनी नीति-कुशलता का परिचय दिया। सलीम की इच्छानुसार जब वीरसिंहदेव ने मयलफडल का दण्ड कर दिया तब भक्तर ने उसके दमनार्थ सेना भेजी। वीरसिंहदेव उस सेना को छावाता रहा। अन्ततः भक्तर की आकस्मिक मृत्यु ने वीरसिंहदेव को न केवल सबदों से मुक्त किया अपितु उसके माग को भी प्रशस्त कर दिया। जहाँगीर तो उसका मित्र था ही। केगव की लेखनी वीर साहसी और नीति निष्णात वीरसिंहदेव के स्वतन्त्रता प्रेम को चित्रित करने के लिए मचल उठी। भक्तर के विरुद्ध वीरसिंहदेव के क्रिया-कलापों की योगाया वीरसिंहदेवचरित काव्य बनी। यह भी स्वामाविक था कि वीरसिंहदेव के सहायक मित्र जहाँगीर से भी केगव का संबंध हो। उनके आश्रयगता वीरसिंहदेव के विकास में जहाँगीर का जो योग था वह महत्वपूर्ण था। फलतः जहाँगीर की भासा में 'जहाँगीर-जस चरित्र' की रचना हुई।

दिल्ली और भोरछा के बीच हुए समयों से ही केगव का संबंध नहीं था वे भारछा के गृह-बलहा को भी घात कर रहे तथा शक्ति विभाजन को रोक्कर शक्ति को संगठित करने की चेष्टा करते रहे। वीरसिंहदेव और रामशाह के बीच राज्य को लेकर गृह बलहा की संभावना होने लगी थी। अन्त में इस घान्तरिक बलहा को टालने की प्राणपण से चेष्टा की।<sup>२</sup> इन्द्रजीत तो उह गुरु मानते ही थे<sup>३</sup> वीरसिंहदेव और रामशाह भी उनका

१ भोरछा स्टेट गेनेरल भाग ६

२ वीरसिंहदेवचरित दशम प्रकाश

३ कविप्रिया, २१३०

सम्मान करते थे। बीरसिंहदेव ने उनके पुत्रा की भी वृत्ति दी।<sup>१</sup> इस प्रकार बेगव राज नीतिक प्रणों का सुलभान में भी सक्रिय भाग सने रहे।

### (ख) सामाजिक

समाज दुहरे गायन की चक्की में पिस रहा था। केन्द्र और सामन्त दोनों के विलास का मूल्य जनता की चुकाना पड़ता था। सामन्त-मुलम गोपण ने जनता की धार्मिक शक्ति की था। इस प्रकार दरबार सम्यता विनास बमब और मुन का केन्द्र बन गया था निरीह जनता की दशा दयनीय थी।<sup>२</sup> उच्चवर्ग विलास-मग्न था। दरबारा में नृत किया का जमपट लगा रहता था। झकवर का दरबार भी घपवा नहीं था।<sup>३</sup> भाज की दृष्टि से मध्यमवर्ग नहीं था यदि था भाता निष्क्रिय। निम्नवर्ग जीवन भार ढो रहा था। सती बालविवाहों से समाज पीडित था।<sup>४</sup> हिन्दू-मुसलमानों में कुछ मेलजोल भी हो जाता था। दोनों ही के उत्सव मनाए जाते थे।<sup>५</sup> गिम्हा की उन्नति विगोपण उच्चवर्ग में हा थी। उच्चवर्ग की स्त्रिया भी गिम्हा होनी थी।<sup>६</sup> मन्दिर और मस्जिदों की धार्मिक गिम्हा के साथ-साथ विद्यालयों की गिम्हा भी झकवर और जहागीर के प्रोत्साहन से प्रवृत्त हो रही थी। सामान्यतः निम्नस्तरीय जनता उपक्षित थी। उसके जीवन का यथाय विवरण भी अप्राप्य है। झत दरबारी कवियों का प्रतिभा भी जन-जावन की गहराई में न पठकर दरबारी सस्कृति विलास और बमब के चित्रण में मग्न रहती। दरबार-मुक्त कवियों ने प्रभावही जन-जीवन से कुछ पपक बनाए रखा। बेगव के काव्य में सांस्कृतिक चित्रण तो हैं ही पर जन-जीवन के साथ उनका निजा सपक न हाने पर भा समाज के यथाय चित्र उनके काव्य में प्रभाव मिल जात हैं।

### (ग) धार्मिक

मुसलमानों की कट्टर धार्मिक नीति ने हिन्दू जनता में जा विज्ञान और निर्याग उत्पन्न की थी वह झकवर की सहिष्णुता से घुलने लगा। जहा राजनीतिक विवाहों से उसने राजपूतों में व्याप्त प्रतिहिंसा और कटता की मन्त्री मबत्तने का प्रयत्न किया वहाँ 'दीन-ए इलाही' धार्मिक नेमाओं की मिटाकर दोनों धर्मों में सद्भावना और एकता जाने का प्रयत्न दिखाई देता है। जजिया कर से हिन्दुओं को मुक्त करना उसकी सहिष्णुता और उदारता का प्रमाण है। जून सन् १५७८ में पनहपुर सौकरी के प्रधान इमाम को हटाकर एक धार्मिक इमामे आदिन नियुक्त किया गया। झकवर ने स्वयं 'खुनवा'

१ विशानगता (मवन् १६५१-मस्करत), पृ ८ ११२

२ मुगलकालीन भारत, डॉक्टर आरजिन्गपण पृ ३ २२६

३ भारत-ए-अकबरी (शाकनन का अनुवाद), भाग १ भारत १५, पृ ४४

४ बर्नर इबल पृ २१५

५ मुगलकालीन भारत डॉ आरजिन्गपण पृ २६२

६ Studies in Moghul India, J. N. Sarkar Pp 299

७ Mediaeval India, Lane Poole Pp 261-62

पदा।<sup>१</sup> मधुलकडल ने भी भक्तर के उदार धार्मिक विचारों का समर्थन किया।<sup>२</sup> वीरवल भी 'दीन-ए इलाही' में सम्मिलित हुए। जहाँगीर इतना दूरदर्शी तो नहीं था पर उसने पुरानी घमाघता की पुनरावृत्ति नहीं की। हिन्दू राजाओं में से कुछ धर्म के प्रश्न पर घटस से। भोरछा के मधुकरगाह कट्टर धार्मिक थे।<sup>३</sup> वीरसिंहदेव और इंदजीतसिंह भी धर्मध्वज थे। इस प्रकार तत्कालीन गण्टीयता का धर्म भी एक भग बन गया था।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सबसे सशक्त आन्दोलन भक्ति-आन्दोलन था। इसमें एक और वर्ण भेद के विरुद्ध क्रान्ति को धापी मिली तो दूसरी ओर दशान धर्म और सांस्कृतिक धोष से प्रायः गून्व जनता को एक नई दृष्टि मिली। ज्ञान और याग की शुष्क-दुरुह भूमि क्रमशः छूटने लगी और जनमानसानुकूल उपासना लोकप्रिय होने लगी। डॉ० प्रियसन प्रभृति कुछ विद्वानों ने इसे एक आक्रामक आन्दोलन मानकर ईसाइयत की देन समझा।<sup>४</sup> शुक्लजी के अनुसार पराजित और हताश हिन्दू जनता ने धर्म और स्वतन्त्रता के लिए सहनेवाले राजाओं का जब हतप्रभ देखा तब 'पौरुष में हताश' जाति के लिए भगवान की शक्ति और बरुणा की ओर ध्यान से जाने के प्रतिरिक्त माग ही क्या था? 'इसके सम्बंध में डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—मुसलमानों के भ्रष्टाचार के कारण यदि भक्ति की धारा को रुकड़ना था तो वहने सिंध और फिर उत्तर भारत में प्रकट होनी चाहिए थी पर वह दक्षिण में हुई।<sup>५</sup> भय विद्वानों ने भी इसका समर्थन किया है।<sup>६</sup> वस्तुतः भक्ति दक्षिण में ही प्रादुर्भूत हुई। इसका कारण न तो ईसा इयत का प्रचार था और न मुसलमानों का भ्रष्टाचार। सांकर प्रभृत की प्रतिनिधता के रूप में भक्ति-सम्प्रदायों ने जन्म लिया जिनकी आधारशिला व्यक्त भयवा अभ्यवत रूप से 'आदिपार' एवं आत्मवार भक्तों का साहित्य थी। वसपि के.व. का सीधा सम्बंध भक्ति आन्दोलन से नहीं था पर वह भी सम्भव नहीं है कि किसी व्यापक सामाजिक आन्दोलन से कोई प्रतिभा नितान्त अछूती रह जाए। के.व. की 'रामभक्ति' चाहे रूपत भक्तिप्रथम न हो फिर भी उसमें ऐसे स्थला का भी अभाव नहीं जो भक्तिभाव से प्रेरित हों। भक्ति आन्दोलन की रामभक्ति-शाखा के प्रमुख सम्प्रदायों का सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत न होगा।

१ Journal of Indian History (1930) P 323

२ आईन-ए अकबरी भाग १ पृ० स १६४

३ बुल्लरसरा का इतिहास मोरेनाथ तिवारी पृ० स १२६

४ हिन्दी साहित्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० स २०

५ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० स ६

६ हिन्दी साहित्य पृ० स ८८-८९

७ मूर और उनका साहित्य पृ० स १२४ डॉ० हरनारायण राय

८ भागवत महात्म्य अध्याय १, श्लोक ४८ ४९ व ५०

## रामानुजाचार्य का श्रीसंप्रदाय

दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में नाथमुनि तथा यमुनाचार्य द्वारा प्रवर्तित श्रीसंप्रदाय से रामानुजाचार्य (१०१६-११३७ ई०) का संबंध है। 'श्रवणम्' में संकलित 'मानवार्' तथा 'आदिपार' गीता ने इस संप्रदाय की भक्ति की रूपरेखा स्पष्ट की। उन्होंने धर्म के मायावाद का खण्डन करके जीव की स्थिति में सत्य की भावना उपस्थित की क्योंकि 'गाकर' भ्रष्टतवाद भक्ति या उपासना का सुदृढ़ भासवन उपस्थित न कर सका था। मुक्ति का एकमात्र साधन भक्ति है। उन्होंने वेदोक्त कर्मकाण्ड पर भी दल दिया किन्तु प्राधान्य भक्ति को ही दिया है। यथाय ज्ञान ईश्वर की ध्रुवस्मृति या निरन्तर स्मरण को कहते हैं। यही ध्यान उपासना ध्येय भक्ति है।<sup>१</sup> शंकराचार्य के भ्रष्टतवाद में जीव का पारंपर्य नष्ट होकर उसका ब्रह्म-रूप हो जाना ही मुक्ति है, किन्तु रामानुजाचार्य ईश्वर के अनवरत ध्यान के लिए अपनी आत्मा का रहना आवश्यक समझते हैं। समस्त प्रकार के अज्ञान और बंधनों से मुक्त हो जाने पर मुक्तात्मा पूर्वज्ञान और भक्ति के साथ ब्रह्मचिन्तन का असीम आनन्द अनुभव करता है।<sup>२</sup>

### आचार्य रामानन्द

हिन्दी-साहित्य को प्रभावित करनेवाले धर्माचार्यों में रामानन्द का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उत्तरी भारत में रामभक्ति का जो प्रचार हुआ उसका एकमात्र श्रेष्ठ आचार्य रामानन्द को ही है।<sup>३</sup> उनका जन्म विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के अन्त तथा चौदहवीं के आरम्भ में हुआ था।<sup>४</sup> उनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—

१ वेदान्त-सूत्रों पर आनन्दभाष्य

२ रामाचन-पद्धति

३ वण्णव-महाद्वय भास्कर

उन्होंने अपनी उपासना के लिए वैकुण्ठवामी विष्णु का स्वरूप न चुनकर लोक लीला विस्तारी भवतार राम को चुना तथा अनन्य भक्ति को मोक्ष का एकमात्र पथ अभ्यवहित साधन प्रपत्ति को मोक्ष का हेतु और कम की भक्ति का अर्थ बदलाया। ब्रह्म ही जगत का निमित्त-कारण है, और साथ ही उपादान-कारण भी। जीवों में परस्पर भेद होता है। जीव कर्ता भोक्ता जाना तथा नित्य है। उन्होंने 'मायावाद' का खण्डन किया। निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का मण्डन सुन्दर तरीके द्वारा किया गया है।<sup>५</sup> रामानुजाचार्य के श्रीभाष्य में संतुष्ट होकर उन्होंने स्वयं 'आनन्दभाष्य' रचने की आवश्यकता समझी।

१ श्रीभाष्य १-१

२ श्रीभाष्य ४-४

३ यक्षी द्वाविष्ट उपजी साथ रामानन्द ।

परगट किया कबीर ने साग दोष नौ धड ॥

४ हिन्दी-साहित्य डॉ. इन्दारीप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १३

५ आनन्दभाष्य १-१-१

दिया। मध्वाचार्य अवतार के प्रथम पोषक थे।

### विष्णुस्वामीसम्प्रदाय

विष्णुस्वामी (जन्म १२६० ई०)<sup>१</sup> शुद्धाद्वैतसम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इस सम्प्रदाय को 'छन्दसम्प्रदाय' भी कहते हैं। 'भविष्यपुराण' और 'पद्मपुराण' में छन्दसम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णुस्वामी का उल्लेख है।<sup>२</sup> बल्लभसम्प्रदाय के एक ग्रन्थ 'सम्प्रदायप्रदीप' के द्वितीय प्रकरण में विष्णुस्वामी को विष्णु का अवतार कहकर उन्हें धराधाम पर भक्ति प्रचार के लिए अवतीर्ण यन्त्राया गया है।<sup>३</sup> सात्त्विक दृष्टि से विष्णुस्वामी ने उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है जिनका भाग्ये चसकर बल्लभाचार्य ने किया। इस ग्रन्थ के अनुसार विष्णुस्वामी ने बहुत समय तक भक्ति मार्ग का प्रचार किया और भक्ति को मुक्ति से भी अधिक महत्ता दी।

विष्णुस्वामीसम्प्रदाय सात्त्विक दृष्टि से 'बारवरी' सम्प्रदाय के समान ही था। ये मध्वाचार्य के अनुयायी माने जाते हैं। उन्होंने अद्वैतवाद को भाष्यरहित मानकर शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। विष्णुस्वामी ने कृष्ण को अपना आराध्य माना है। उन्होंने 'वेदान्तसूत्रगीता' और 'भागवतपुराण' का आधार लेकर अपने सम्प्रदाय का प्रतिपादन किया।

### निम्बार्काचार्य

निम्बार्काचार्य (जन्म ११६२ ई०)<sup>४</sup> द्वैताद्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक थे। उनके सम्प्रदाय को सनकसम्प्रदाय अथवा इस सम्प्रदाय भी कहते हैं।

सम्प्रदाय में उनकी विष्णु के सुदगानधर का अवतार माना जाता है। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने राधाकृष्ण की भक्ति को उत्तरी भारत में बहुस्वपूज स्थान दिया। उनके 'वेदान्तपरिजातसौरभ' तथा 'दशलोकी नामक' दो ग्रन्थ अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनके प्रतिरिक्त पञ्चीस स्तोत्रों का स्तोत्र है जिसका नाम 'सविद्यानिर्दिशय श्री कृष्ण स्तोत्रराज' है।

निम्बार्काचार्य ने पांच शय पदार्थ बतलाए हैं—उपास्य का रूप उपास्य का

१ An Outline of the Religious Literature of India J N Ferquher Pp 235

२ वैष्णवधर्म का सविष्णु इतिहास पृष्ठ २३५

३ यथा भागवती सृष्टि रिवतो भवति चैतदा।

श्रीनाम्ने ममशब्दविष्णुः सात्त्विक सत्त्वनि स्वयम् ॥

तन्माभिरय जना सर्वे भक्तिभावा भवन्ति हि।

भगवन्नाम्ने कथीरुर्ना यथाश्रित्य भवन्ति च ॥

तस्य धा विष्णुस्वामिनः कथयिष्यन्ति विचार समवन्ति

देविम मन्त्र० प्र०, १५० इकरण पृष्ठ २५

४ वैष्णवधर्म पक्ष २ शोकाय पृष्ठ ६३

स्वरूप कृपाकृत भक्तिरस तथा फलप्राप्ति में विरोधी तत्त्व । इन्हीं पांच<sup>१</sup> विषया में भक्तमत उनके सभी सिद्धान्त निहित हैं । वे जीव (चिन्) एवं जगत् (प्रकृत) को ब्रह्म नहीं मानते हैं । दोनों में बस एक पक्षी भयवा दीपक और ज्योति का सा सम्बन्ध निश्चिन करते हुए उन्होंने जीव तथा ब्रह्म में अर्थात्भी भाव माना है । दोषरहित एवं कल्याण गुणरणि शीकृष्ण ही उनके परब्रह्म हैं ।<sup>२</sup> भक्ति पर उन्होंने विशेष बल दिया है । राधा की उपासना को बिनाय महत्त्व प्रदान करते हुए हरिव्यासदेवजी कहते हैं—प्रम और माधुम की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्वानिनी योपीस्वरूपा शक्तिमों से परि वेष्टित कृष्ण एकाउ भाव से उपासना करने योग्य हैं । शीकृष्ण ही उक्त सम्प्रदाय के इष्टदेव हैं ।<sup>३</sup> स्नान न हाने के कारण निम्बाक राधाकृष्ण के प्रतिरिक्त अन्य किसी देव की नहीं मानते हैं । उन्होंने 'नममुक्ति तथा 'सद्योमुक्ति'<sup>४</sup> दो प्रकार की मुक्ति मानी है । उन्होंने 'प्राकृत' 'अप्राकृत तथा 'वाल नामक तीन ध्वनि पन्थ मान हैं ।<sup>५</sup> मनुष्य का गति एकमात्र शीकृष्ण के चरणारवि<sup>६</sup> ही है । भक्त की भावना के अनुसार ही भगवान उमें प्राप्त होते हैं तथा उसके बटों का निवारण करते हैं । धत कृष्ण ही एकमात्र उपाम्य देव हैं ।<sup>७</sup> भगवान की कृपा का पत्र ही सबस्व है । पत्र ही प्रभु की धरण प्राप्ति करना है ।<sup>८</sup>

### वल्गभक्तसम्प्रदाय

यद्यपि दार्शनिक दृष्टि से वल्गभावायजी (१४७८-१४३० ई०)<sup>९</sup> का सम्प्रदाय

- १ उपासक्य मनुष्यमकस्य च कृपाकृत भक्तिरसस्तन परम् ।  
विरोधिनो रूपमैकान्तलेख्यमान्थी अपि पञ्च साधुभिः ॥  
—निम्बादित्य दशरत्नोकी हरिव्यासदेव श्लोक १
- २ स्वभावोऽपासकमन्त्रोऽप्यस्योक्त्याणुलैक्यरामम् ।  
ब्रह्मकिं ब्रह्म परं बरेय्य ध्यायेत् कृष्ण कमलेषण हरिम् ॥  
—निम्बादित्य दशरत्नोकी हरिव्यासदेव श्लोक ४
- ३ वपभानुर्वावृष्टिः कृष्ण स्वक सौगन्ध्याव निरुपमेकान्त्रेण मयत्प्राप्तिभिर्दुष्क  
नीयमित्यथ ।  
—निम्बादित्य दशरत्नोकी हरिव्यासदेव श्लोक १
- ४ निम्बादित्य दशरत्नोकी—आ हरिव्यासदेव
- ५ अप्राकृत प्राकृत रूपक च वालस्वरूप तद्वैतन मतम् ।  
मायामानादियप्रभाव्यं शुक्लादिनेत्रचममेऽपि तत्र ।  
—निम्बादित्य दशरत्नोकी, श्लोक ३
- ६ नान्य गति कृष्णारवि सस्यते ब्रह्मशक्ति शक्तिरात् ।  
मत्तोऽद्योपासुचिन्तविषयाश्चिन्त्यराक्ते रविचिन्त सारायात् ॥  
—निम्बादित्य दशरत्नोकी श्लोक ८
- ७ कृपाकृत च सप्रतिष्ठाभानुलैक्यमित्येकम् ।  
—निम्बादित्य दशरत्नोकी, श्लोक ३—
- ८ वल्गभक्तिविषय



‘शुद्धावत महानाता है परन्तु उनके मत का आचरण-यदा पुष्टि याग (The Path of Divine Grace) के नाम से अभिहित किया जाता है। पुष्टि का अर्थ है ‘पोषण’ अथवा अनुग्रह। यह पुष्टि चार प्रकार की है

१ प्रवाहपुष्टि—ससार म रहते हुए भी भक्ति प्रवाह रूप से हृदय में होती रहे।

२ मर्मांगपुष्टि—ससार के मुक्तों से अपना हृदय खींचकर श्रीकृष्ण का गुण मान।

३ पुष्टिपुष्टि—श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त होने पर भी भक्ति की साधना अधिकाधिक होती रहे।

४ शुद्धपुष्टि—केवल प्रेम और अनुराग के आधार पर श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त कर हृदय में श्रीकृष्ण की अनुभूति हो। यह अनुभूति हृदय को श्रीकृष्ण का स्थान बना दे और गौ गोप यमुना आदि के सम्बन्ध में उसे श्रीकृष्णमय कर दे।<sup>१</sup>

उन्होंने ‘शुद्धपुष्टि’ को ही अपने मत का चरम स्वरूप माना है। इसके अनुसार जीव का राधाकृष्ण के साथ मोलोक में निवास पा जाना ही के साधक समझते हैं। ‘बल्लभ दिग्विजय’ के अनुसार बल्लभाचार्यजी ने बीरासी ग्रन्थों की रचना की।<sup>२</sup> परन्तु सम्प्रदाय में तीस से अधिक ग्रन्थ नहीं मिलते।

वैष्णवधर्म के आचार्यों में बल्लभाचार्य ने हिन्दी-साहित्य को सबसे अधिक प्रभावित किया। भागे चलकर महाप्रभु बल्लभाचार्य के अनुयायी पुष्टिभार्गीय अष्टछापी भक्त कविया ने हिन्दी-साहित्य के भण्डार में अक्षय वृद्धि की।

### राधावल्लभ सम्प्रदाय

हितहरिवंशी (१५०२-१५५२ ई०)<sup>३</sup> पहले मध्यसाम्प्रदायी थे। कुछ समय के उपरान्त वे निम्बाक स्वामी की श्रीकृष्णभक्ति-मदति का अनुसरण करने लगे। कहा जाता है कि जगन्नाता राधा ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए। अतः उन्होंने उपासक बन गए और धुन्दावन में आकर राधावल्लभ का एक मन्दिर बनवाया। उन्होंने गान और व्रम के साधना का सज्जन कर प्रेमभक्ति-मार्ग का प्रचार किया तथा सुगत-स्वरूप उपासना पर विशेष धन दिया। पूरक वैष्णव आचार्यों की भांति वेणव का आधार लेकर उन्होंने किसी मत या वाद का प्रतिपादन नहीं किया।

विधि नियम का त्याग राधाचरण की प्रधानता कुंज-केतिरत दर्शित की गवानी बक्षस एवं सरस भाव अनन्य दाम भाव तथा महाप्रसाद की निष्ठा आदि इस सम्प्रदाय की मुख्य विशेषताएँ हैं।<sup>४</sup>

हितहरिवंशी के लिखे हुए ग्रन्थ हैं—‘राधागुणानिधि और श्रीहितचतुरांगी।

१ दिने साहित्य का भारतीयनामक इतिहास भा० रामजुआर वर्मा पृ० ३०४

२ बल्लभभक्तिग्रन्थ, पृष्ठ ५६

३ राधावल्लभसम्प्रदाय विद्वान और साहित्य का विवेक प्रकाशक, पृ० ३२४

४ मदनमाल भक्तिचतुरांगसम्पाद निष्क-रूपका नागम पृष्ठ ६५



तीन माने गए हैं—पुरुषावतार, गुणावतार तथा भीमावतार।<sup>१</sup> भगवान की तीन शक्तियाँ मानी गई हैं—अनुराग शक्ति, बहिरंग शक्ति तथा तटस्थ शक्ति। माया दो प्रकार की मानी गई है—द्रव्य माया तथा गुण-माया, जोकि त्रयश्च जगत् का उपादान तथा निमित्त-कारण होती है। जीव को अनुरूप और निरय माना जाता है। मुक्ति शक्ति के द्वारा ही होती है। उनके अनुयायी उन्हें कृष्ण का अवतार मानते हैं तथा गौरींग भगवा गोरखद्व के नाम से पुकारते हैं। उनकी भावमयी गोलोक-सीला चार भावों से सम्बन्ध रखती है, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य। इन्हीं चार भावों का सामञ्जस्य प्रेमभक्ति है। कीर्तन करते हुए वे कहते थे—

न धनं न ज्ञनं न सुखरीं कवितां वा जगदीश कामये ।

मम ज-मनि ज-मनीसखरे, भवसाधुभक्तिरहेतुकी स्वदि।<sup>२</sup>

अतः मम की माधुर्य भावना ने भागे चलकर हिन्दी के भक्ति-साहित्य को बहुत ही प्रभावित किया।

### हरिदासों या सखीसम्प्रदाय

सखीसम्प्रदाय भी बल्लभसम्प्रदाय की भाँति प्रारम्भ में भक्ति का एक साधन माना था किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं था। उसके प्रवक्ता स्वामी हरिदास जी थे।

‘भक्तमास के उत्सव से ज्ञात होता है कि उनका नाम ‘मासधीर’ था तथा उनकी छाप ‘रसिध’ थी। वे सखी भाव से राधाकृष्ण की उपासना किया करते थे।<sup>३</sup> संगीत कला में निपुण होने के कारण व्याप्तिसम्य पुरुष थे। कहा जाता है कि भक्तवरी दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन उन्हींके शिष्य थे।

स्वामी हरिदासजी ने ब्रजमाया में साधारण सिद्धान्त तथा ‘रस के पद नामक दो ग्रन्थ बनाए। भक्ति भाव का तो इन ग्रन्थों में प्रतिपादन हुआ ही है साथ ही साथ बाल्य सीष्ठव भी दर्शनीय है। उन्होंने किसी दार्शनिक वाद का प्रतिपादन नहीं किया। राधा कृष्ण की उपासना का केवल सखी भाव से प्रचार किया। स्वामी हरिदासजी का ही बनवाया हुआ इस सम्प्रदाय का ‘वाकेशिहारीजी का मन्दिर मृदावन में आज भी प्रसिद्ध है। सद्धान्तिक दृष्टि से यह मत निम्बार्न मत से मिलन-जुलने के कारण उत्तीक प्रसिद्ध माना जाता था परन्तु अब उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। उसमें भक्ति भावना पर विशेष बल दिया गया है। सत्य तो यह है कि भावुक कलाकार से हम दार्शनिक वाद की भाँति भी नहीं करनी चाहिए। भागे चलकर इस सम्प्रदाय की दो शाखाएँ हो गई—एक तो स्वमुखी शाखा और दूसरी तत्सुखी शाखा।

१ तत्पुत्रावतारम्, श्लोक २३, पृष्ठ १७

२ श्री वैष्णव-चरितम्, भाग ३, पृष्ठ १२७

३, भक्तमास, भक्तिगुण-रमणाद लिखक-रूपकमा, वायादास, पृष्ठ ३०७

भक्ति भावापन्न इस सभी घणवा हरिदासीसम्प्रदाय ने भी हिन्दी के भक्ति साहित्य को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। भारतीय भक्ति-साधना की ये विविध धाराएँ समय-समय पर भक्ति-साध को अनवरत रूप से सिध्द करती रहीं और परवर्ती भावुक कवियों की भाव भूमि को उबर बनाती रही। उपयुक्त भक्ति-साधना के कतिपय प्रमुख सम्प्रदायों के महिम्न उल्लेख का उद्देश्य यही है कि आचार्य केशव भी अपनी भक्ति भावना एवं रसिकता के लिए अपने इन पूर्ववर्ती भक्ति-सम्प्रदायाचार्यों तन् तन् परम्पराओं तथा भावुक भक्त कवियों के ऋणी हैं।

तत्कालीन समाज और संस्कृति का केशव के काव्य में प्रतिबिम्ब कवि की कला का स्वरूप उसकी परिस्थितियों पर बहुत कुछ निर्भर है। अपने चाप आर के दातावरण का कवि की कला और उसके आत्म पर अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ता है।<sup>१</sup>

### (क) राजनीतिक

केशव का जीवन राजदरबारों में व्यतीत हुआ। 'रामचन्द्रिका' में राम के चरित्र चित्रण पर तत्कालीन राजाओं की जीवनचर्या का पूरा-पूरा प्रभाव है। सीता को प्रमत्त करने के लिए वे घम-भयान्ता का ध्यान ही नहीं रखते। वन में चलते चलते एक जगह पर अपने अवन से सीता की हवा करते हैं और बीच-बीच में सीता 'बचल बाँ दुगचल' से कटाव करती हैं। राम के अवयुगीन राजाओं की भाँति कभी घण्टाला एवं शृंगाराला का नियोजन करते हैं तो कभी सज्जपत्रकार गिरार खेसने जाते हैं तथा कभी रनिवास में स्थियों की जलजीवा देखते हैं तो कभी सीता की दासिया का 'नखनित सुनकर आनन्द' लेते हैं।

दरबारी वातावरण में प्रभावित होकर ही केशवजी ने राजा दशरथ के दरबार में घानेवाले व्यक्तियों की भूमिधारी 'भोगविलास' बतलाया है।<sup>२</sup> पशुओं के महानुद्ध की चर्चा तथा नदों की कलावाजी का उल्लेख भी किया है।<sup>३</sup>

राजा जनक के दरबार पर भी केशवकालीन दरबारों का प्रभाव स्पष्ट है।<sup>४</sup>

एवम के अयनगुह वा वणन करते हुए केव सिखन हैं—

पिये एक हाता गुहै एक माता।

बनौ एक माता मय चित्रमाता।

कटू कोकिसा कोक को कारिका को।

पडाव मुवा ल मुकी सारिका को ॥<sup>५</sup>

१ गुजरी की कथा का मन्दिर, पृष्ठ १५

२ रामचन्द्रिका दिव्य प्रकाश अन्ध १

३ रामचन्द्रिका दिव्य प्रकाश अन्ध ३

४ रामचन्द्रिका गुह्य प्रकाश अन्ध १६

५ रामचन्द्रिका वेदार्थ प्रकाश अन्ध ५१

सम्प्रदाय	प्रवक्तृ
१ रससम्प्रदाय	भरतमुनि
२ भक्तिकारसम्प्रदाय	भामह
३ रीतिसम्प्रदाय	वामन
४ ध्वनिसम्प्रदाय	धनानन्दवधन
५ वक्ताकितमम्प्रदाय	भाचार्य कुन्तक

### रससम्प्रदाय

रससम्प्रदाय सबसे प्राचीन सम्प्रदाय माना जाता है। इसके सवप्रथम व्याख्याता नाट्यशास्त्र के रचयिता भाचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि भरतमुनि से पूर्व लोग रस से अपरिचित थे, जनश्रुति तो नन्विन्देश्वर की प्रथम रसाचार्य मानती है।

भरत के विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगादसनिष्पत्ति<sup>१</sup> इस सूत्र को लेकर रसानुभूति के सम्बन्ध में भट्टसात्त्वट श्री लघुव भट्टनायक तथा भमिनवगुप्त ने गम्भीर विवेचना की परन्तु इन भाचार्यों में भमिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद ही सर्वमान्य हुआ।

स्वायीभाव और विभावादि में वस्तुतः व्यङ्ग्य-व्यञ्जक सम्बन्ध है। अर्थात् विभावान् के संयोग से व्यञ्जना नाम की एक प्रतीति<sup>२</sup> क्रिया उत्पन्न होती है उसीके प्रतीति विभावानु-व्यापार अर्थात् साधारणीकरण द्वारा सामाजिकों की वासना जागरित हो जाती है वही रस की अभिव्यक्ति है। भमिनवगुप्त द्वारा रस सिद्धांत इस प्रकार पूर्ण प्रतिपादित होकर काव्य और नाटक दोनों क्षेत्रों में प्रचलित हुआ। तदनन्तर भानुदत्त ने 'रसमञ्जरी' में विरचनाय ने 'साहित्यदर्पण' में रस का प्रतिपादन किया। विश्वनाथ ने तो वाक्य रसात्मक काव्यम्<sup>३</sup> कहकर रस की काव्य की आत्मा धारित किया। भाचार्य सम्मट ने काव्य की परिभाषा तद्गोपी क्षणायी सगुणावनसङ्गती पुन क्वापि<sup>४</sup> ने रस का नाम तो नहीं लिया परन्तु उन्होंने रस ध्वनि को ही उत्तम काव्य बतलाया। इसी प्रकार वेणव के परवर्ती पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयाप्रतिपादक' दास्य काव्यम्<sup>५</sup> में रस दास्य का प्रयोग नहीं किया परन्तु 'रमणीय दास्य' से रस स्पष्ट व्यञ्जित होता है। कुछ भाचार्यों ने शूमार को रसरत्नत्व प्रदान कर उसके भेद उपभेद कर नायक-नायिकाओं के ऊपर विस्तारपूर्वक लिखा। भाग चण्णर रूप गास्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में भक्ति रस का प्रतिपादन किया। इस रस को उन्होंने शान्त दास्य मध्य वासन्त्य एवं माधुर्य भागा में विभाजित किया, परन्तु ये सभी भाग केवल वर्ण के लिए ही मान गए

१ भरतनाट्यशास्त्र कण्ठसूत्र भाष्य श्लोक ३२ की शक्ति

२ साहित्यदर्पण प्रथम परिच्छेद, सूत्र १

३ काव्यप्रकाश प्रथम उत्पत्ति, पृ० १

४ रसगोपधर प्रथम भाजन, पृ० ४

ह। केवल की 'रसिकप्रिया' में इस सम्प्रदाय का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

### अलंकारसम्प्रदाय

रससम्प्रदाय की भाँति अलंकारसम्प्रदाय का भी बीज भरत के 'नाट्यशास्त्र' में ही मिलता है। इस ग्रंथ में केवल उपमा रूपक दीपक एवं यमक का उल्लेख है। पर मुख्य वस्तुएँ एवं यथानिव विवेचन उपस्थित करनेवाला सबसे पहला ग्रंथ भामह का 'काव्यालंकार' है। भामह का यह ग्रंथ इतना मुख्यवस्तुयुक्त है कि इसे प्रथम ग्रंथ मानने में आश्चर्य होना है। निस्सन्देह इससे पूर्व अलंकार-परम्परा प्रचलित थी। स्वयं भामह ने भी मघादिन भाद्रि का साक्षर उल्लेख किया है। भामह ने अलंकारों की संख्या अष्टाशीस मानी है। उन्होंने अलंकारों को ही काव्य का प्रधान अंग माना है। उन्होंने रस और भाव का स्वतन्त्र भक्तिवत् न मानकर उनका 'रसवत्' ऊजस्वित आदि अलंकारों में ही अन्तर्भाव किया है। उन्होंने अलंकार का भी प्राण बकोविन को माना।

भामह के उपरान्त दूसरे आचार्य दण्डी हुए। अलंकार की परिभाषा देते हुए वे अपने ग्रंथ 'काव्यादर्श' में लिखते हैं—

काव्यगोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते ।<sup>१</sup>

दण्डी ने अलंकारों की संख्या पत्तीस मानी है। आचार्य दण्डी ने भामह की वक्तव्य के स्थान पर 'अनिर्णय' को अलंकार की धारणा माना है। उक्त आचार्य के उपरान्त उद्भट ने 'अलंकारसारमण्ड' की रचना की। उनका विवेचन भामह के सिद्धान्तों पर ही आधारित है। अलंकारशास्त्रियों में उद्भट का स्थान सर्वप्रथम है। समन्वय की भावना लिए हुए भाष्य अलंकारसम्प्रदाय के अधिक समीप हैं। उन्होंने अलंकारों की संख्या पचास से ऊपर मानी है। उद्भट ने भामह आदि की भाँति रसवत् भाँति को अलंकार नहीं माना। भामह से उद्भट तक का समय इस सम्प्रदाय का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

आचार्य मम्मट ने अलंकारों को उचित गौरव देते हुए भी उनकी अनिवार्यता का निषेध किया। उन्होंने अलंकारों की संख्या सत्तर मानी है। मम्मट के उपरान्त रसिक ने 'अलंकारसर्वस्व' की रचना की। अलंकारों के वर्गीकरण की दृष्टि से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। परवर्ती आचार्य कोई भौतिक योग तो न दे सके परन्तु ध्वनि का सिद्धांत स्नेहिलाने तथा अलंकार-मात्राज्य का संस्थापित करने का भरमस्फुर प्रयत्न रसिक भोज राजशेखर जयदेव विद्याधर आदि सभी विद्वानों ने किया। जयदेव ने मम्मट पर साक्षात् व्यंग्य करते हुए घोषणा की—

भङ्गीकरोति यः काव्यं गंधार्थायितसह हृत्तो ।

असौ न मम्यते कल्पादनुपममनलह वृत्तो ॥<sup>२</sup>

१ काव्यादर्श अध १, पृष्ठ २

२ कर्त्ताशोक प्रथम अध्याय श्लोक =

इन आचार्यों ने भलकार की सख्या तो बढ़ाई परन्तु भलकार का भाव्य पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है इस बात पर गहरा विवेचन नहीं किया। इस दिशा में कुन्तल ग्यय तथा जयदेव ने प्रयत्न अवश्य किया परन्तु यह प्रयत्न भलकारसम्प्रदाय की प्रवेशा वक्रोत्तिसम्प्रदाय के अधिक समीप बैठता है।

तात्पर्य यह है कि आचार्य केशव के पूर्व भलकारसम्प्रदाय की संस्कृत-परम्परा साहित्यशास्त्र की बहुत कुछ दे चुकी थी। हिन्दी में संस्कृत-साहित्य के भलकारों की जाने और उनके सपन समावण की चेष्टा की जा रही थी। आचार्य केशव को उन चेष्टागीतों में मूर्धन्य मानना चाहिए। 'कविप्रिया' संस्कृत-भलकारसम्प्रदाय और हिन्दी भलकार शास्त्र की जोड़नेवाली महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

### रीतिसम्प्रदाय

भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में रीति का स्पष्ट विवेचन तो नहीं किया परन्तु गुणों का विवेचन अवश्य किया है। भरत के उपरान्त भामह ने रीति को कोई महत्त्व नहीं दिया। उन्होंने रीति के लिए काव्य शब्द का प्रयोग किया है। भामह के उपरान्त दण्डी मध्यमि भलकारवादों के तथापि उन्होंने गुणों को अधिक महत्त्व दिया है और इसीलिए उन्होंने दो मार्गों की चर्चा की है—

इति चतुर्थाध्यायस्य प्राणावशगुणा स्मृताः ।

एषां विषयस्य प्राणां दुःपते गौडवामनि ॥१॥

दण्डी ने माग और चतुर्णु शब्दों का प्रयोग किया है। भक्त स्पष्ट है कि मार्गों की सख्या दो और गुणों की सख्या दस मानी है। यही माग रीति नाम से अभिहित होते हैं। आचार्य वामन ने रीतिसम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। उन्होंने दण्डी के दो मार्गों के स्थान पर तीन रीतियों की सत्ता स्वीकार की—वैदर्भी गौडी पांचामी। वैदर्भी में दस गुणा का समावेश रहता है। गौडी में भोज और कान्ति का पांचासी में माधुय और रीतुमाय का। वामन के उपरान्त इन्द ने एक चौथी रीति 'लाटी' का आविष्कार किया। कुतब ने देगानुसार रीति विभाजन का तीव्रशब्द में विरोध किया। रीतियों को उत्तम मध्यम और अधम मानना भी उन्होंने ठीक नहीं समझा। क्योंकि काव्य तो कवि-प्रतिभाजन्य है। कुतब ने रीति के स्थान पर 'माग शब्द' का ही प्रयोग किया है। 'मार्गों की रचना गुण के अनुसार सुकुमार और विविध—दो भेदों में विभाजित की गई है।

कुतब के उपरान्त भोज ने मागपी और अवन्तिका दो नवीन रीतियाँ की उल्लासना करत हुए रीति की संख्या छ तक कर दी है। विशिष्ट पदरचना रीति। और पदरचना के इस विशिष्ट का विभिन्न गुणों के संलेपन पर धारित माना है।

हिन्दी में रीति को विशेष महत्त्व न मिला। केवल यद्यपि मुख्यतः भलकारवादी नहीं थे किन्तु उनका सिद्धान्तवाक्य था—

अदपि सुजाति सुतगन्धनो सुवरन सरस सुवसः ।

भूयन् विभू म विराजहो विविता विनिता मित ॥ १

वेशव ने रीति का अधिक महत्त्व नहीं दिया ।

### वक्त्रोक्तिसम्प्रदाय

यद्यपि वक्त्राक्तिसम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य कुन्तल ही थे तथापि यह विचार परम्परा बहुत दिनों से मन्द वेग के साथ चली आ रही थी । वक्त्रोक्ति 'गल्प' दो भाषों में व्यवहृत होता है एक अलंकार-विशेष के रूप में और दूसरा उक्ति की वक्त्रता अथवा असाधारणता के रूप में । कुन्तल ने वक्त्रोक्ति को व्यापक अर्थ में लिया है । बाण रामहृदण्डी एवं वामन ने भी वक्त्रोक्ति की चर्चा की परन्तु इतना व्यापक अर्थ में नहीं जितने कि कुन्तल ने । रामहृ और हण्डी ने वक्त्रोक्ति का चित्रित अर्थ का रूप दिया । परवर्ती हड़ट आदि आचार्यों ने वक्त्रोक्ति का असाधारण नहीं माना । केवल एक आचार्य वामन ने इसकी गणना अलंकारों में की । आचार्य कुन्तल ने वक्त्रोक्ति को अलंकार मानने का सर्वथा खंडन किया है । प्रथम उन्नेष में वक्त्रोक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—

गो विवक्षितार्थक वाचकोन्नेषु सत्स्वपि ।

अथ सहृदयाह्लादकारिस्वस्वमनुस्वर ।

उमावेतावलङ्कायो तपो पुनरलङ्कृति ।

वक्त्रोक्तिरेव वदाम्यभङ्गो वणितिरुच्यते ॥ १

इस प्रकार कुन्तल वक्त्रोक्ति को ही काव्य की आत्मा मानते हैं । तृतीय एवं चतुर्थ उन्नेषों में क्रमशः काव्य-वैचित्र्य, वस्तु-वैचित्र्य तथा प्रकरण-वैचित्र्य की वक्त्रता पर विचार किया गया है । पी० बी० बाणे के अनुसार वक्त्रोक्ति को अलंकारात्मक ही एक शाला समझना चाहिए । उसे एक अलग पूर्ण सिद्धांत के रूप में सम्मानित नहीं होना चाहिए । क्योंकि स्वाभाविक उक्ति में भी यदाकदा रसात्मकता होती ही है । भाग्य चलकर स्वयं का प्रयत्न सराहनीय रहा क्योंकि उन्होंने कुन्तल के वक्त्रोक्ति-सिद्धान्तों का ही मानकर अलंकारों की परीक्षा की । केवल पर वक्त्रोक्तिसम्प्रदाय का कुछ प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है । वे वक्त्राक्ति को काव्य का प्राण ही नहीं मानते परन्तु उन्होंने इसका अलंकार रूप में पक्ष-पक्ष प्रयोग किया है । केवल वे सम्मानों में वक्त्रोक्ति मरो पड़ी है । अतः वक्त्रोक्तिसम्प्रदाय का केवल पर अप्रत्यक्ष प्रभाव अल्प स्वीकार किया जा सकता है ।

### ध्वनिसम्प्रदाय

ध्वनिसम्प्रदाय के आचार्य 'ध्वनिवार' माने गए हैं और उनकी व्याख्या करने वाले भाग्य-वधन को भी उगना ही महत्त्व दिया गया है । यहां तक कुछ विद्वान् न उन शाला को एक ही ध्वनि माना है । ध्वनिवार से पूर्व भी ध्वनि-सिद्धांत स्वीकृत था

१ कविप्रिया शीर्षार्थ प्रभाव १००

२ वक्त्रोक्ति नीतिव्य कुन्तल प्रथम उन्नेष वक्त्रोक्ति १ १



इसका प्रमाण ध्वन्यालोचन के प्रारम्भ में ही मिलता है।<sup>१</sup>

आनन्दवर्धन सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने ध्वनि को एक सावर्भौम एवं गवमाय सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। इस सिद्धांत पर पूणतया प्रकाश डालते हुए काव्य की आत्मा ध्वनि को माना। ध्वनि-सिद्धांत ऐंद्रिय आनन्द से उदासीन था। भलकार एवं रीति सिद्धान्त काव्य के बला पक्ष को ही छूकर रह गए थे। 'ध्वन्यालोच' में ध्वनि सिद्धांत का प्रतिपादन तो किया ही गया। साथ ही उस भलकार रीति गुण दाप आदि को भी ध्वनि व अन्तर्गत माना गया है। व्यंग्याप की महत्ता के आधार पर काव्य की तीन श्रेणियाँ की गई हैं ध्वनि-काव्य गुणीभूत-काव्य और चित्र-काव्य। जिसमें अभिधेयार्थ की अपेक्षा व्यंग्याप की प्रधानता है वह ध्वनि जिसमें व्यंग्याप गौण है। वह गुणीभूत व्यंग्य और जिसमें केवल-मात्र चमत्कार ही वह चित्र-काव्य कहलाता है। ध्वनि स्वयं वस्तु, भलकार और रस तीन प्रकार की होती है। इन तीनों में रसध्वनि श्रेष्ठ है। इस सिद्धान्त में अभिनवगुप्त ने 'लोचन' की रचना करके महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस सिद्धान्त का विरोध भी हुआ। आनन्दवर्धन के उपरांत भट्टनायक ने व्यञ्जना का विरोध करते हुए भाववत्प और भोजवत्प दो काव्य शक्तियों की उद्भावना की। भट्टनायक के बाद कुन्तल और महिम भट्ट जैसे विद्वानों ने ध्वनि सिद्धान्त का विरोध किया। पूर्ववर्ती आचार्यों में भम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में ध्वनि की विस्तृत विवेचना की और ध्वनि के भेद १० × ५५ माने। विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में काव्य रसात्मक काव्यम्।<sup>२</sup> कहकर ध्वनि की अपेक्षा रस का अधिक महत्त्व दिया। पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने 'रस गंगाधर' नामक ग्रन्थ में विद्वनाथ का तीव्र विरोध किया। यद्यपि के.व. ने इस सम्प्रदाय पर न तो कोई स्वतंत्र ग्रन्थ ही रचा और न उसका बड़ी स्पष्ट समर्थन हा किया तथापि उनके काव्य में और विशेषतया सवादों में ध्वनि चमत्कार स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

१ ध्वन्यालोचन प्रथम अध्याय ध्व १

२ साहित्यदर्पण भाषाया निरुक्त्या ध्व ३

## चतुर्थ परिच्छेद

### केशव का जीवन-दशन

#### जीवन दशन का स्वरूप

प्राणी अपने जन्म के क्षण से ही इस नामरूपात्मक जगत के सम्पर्क में आकर सुख-दुःखमयी नाना अनुभूतियों का भण्डार भण्डार स्थापित करने लगता है। ये अनुभूतियाँ उसे धीरे धीरे अन्तर्गत उभयार्थक जगत् में प्राप्त होती हैं और कालान्तर में बढ़मूल होकर सत्कारा एवं प्रवर्तित की धाराओं का निर्माण करती हैं। इन्हीं अनुभूतियों एवं तत्त्व सत्कारा के आधार पर प्राणी जगत् के नामरूपा के प्रति अपने में बुरे होने की भावनाओं का उनके प्रति आकर्षण विकर्षण का आरोप करने लगता है। प्राणीजगत् में मानव अधिक चेतनागोल अधिक मन्दनगोल एवं अधिक ज्ञानवान् होता है। दार्शनिक हमें बताते हैं कि उसके चेतन्य पर अज्ञान का आवरण अथवा प्राणियों की अपेक्षा अधिक चेतना और कम मतिमान होता है। उसके आवरण में सत्य का प्रकाश अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसी कारण नामरूपात्मक अद्वैत जगत् के सम्पर्क से निष्पन्न होनेवाला उसका अनुभूत्यात्मक अन्तर्जगत् वही अधिक व्यापक होता है। अथवा यों कहिए—वह जगत् के समान ही उसका यह अन्तर्जगत् भी विविध एवं अनन्त होता है। यह अनुभूतियाँ और तत्त्वस्वरूप तब ही सीमित नहीं रह जाते और भी आगे बढ़ता है। उसकी चेतना उसके ज्ञान-क्षेत्र के विस्तार के साथ उसकी विचार-शक्ति की परिपक्वता के साथ इस वहिर्जगत् एवं अन्तर्जगत् के रहस्य को समझने के लिए आगे बढ़ना चाहती है। यह क्या है? और यह क्या हुआ? की जिज्ञासा का उसमें उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वस्तुतः यह किमिद? और कथमिद? की प्रश्नात्मिका तब ही उसे अन्य प्राणि-वर्ग से अलग करती है। यह जिज्ञासा 'स्व और स्वतन्त्र' समस्त जगत् को उसकी चेतना के समान एक प्रत्यक्ष के रूप में सा रखती है। इस समस्त दुःखमान एवं अनुभूतमान के भीतर किमिद? और कथमिद? का जिज्ञासा के साथ आने का ही नाम दशन है। और कोई भी 'दग्ध' या 'ज्ञान' किन्ता ही वस्तुपरक ज्ञान हो वह दृष्टा के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से भी प्रभाविता होता है। हमारे व्यक्तिगत ज्ञान-अज्ञान की सीमाएँ हमारे 'ज्ञान' की रूपरेखाएँ सींचती हैं। इस व्यक्तिगत विज्ञान के साथ मानवी बुद्धि 'जीवन रहस्य' को क्या है और कैसे है की जिज्ञासा के साथ समझने का ही प्रयत्न नहीं करती बल्कि एक पद और आगे बढ़कर 'क्या' होना चाहिए (कीदृश भवेत्) की खोजना भी करती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का एक ही दृष्टिकोण बनता है जिसमें किमिद? कथमिद? से लेकर कीदृश भवेत् की कहानी

गुपी रहती है। जीवन के प्रति व्यक्ति के व्यक्तिगत दृष्टिकोण को हम 'जीवन-दर्शन' कहते हैं। वास्तव में इस अंगत में एक-दूसरे से परिचय पाने का सही अर्थ है उसके जीवन-दर्शन को जानना जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को समझना।

केशव के ठीक ठीक परिचय के लिए उनके जीवन दर्शन का विश्लेषणात्मक पूर्ण अध्ययन अपेक्षित है। किन्तु हमारी सीमाएँ हमें बाध्य करती हैं कि हम धर्म पक्षों के समान ही इस पक्ष पर भी अपने को सीमित करके ही चलें तथा कुछ मोटे तथ्यों को जान कर ही काम निवालों। यदि दर्शन भक्ति एवं धर्म के विषय में ही हम उनके दृष्टिकोण का सामान्य बोध हो जाए तो भी हम उनके व्यक्तित्व के बहुत कुछ समीप पहुँच सकेंगे। दर्शन, भक्ति एवं धर्म का क्षेत्र

शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि दर्शन भक्ति एवं धर्म तीनों का क्षेत्र अलग अलग दिखाई पड़ता है तथापि वे एक सूत्र में अनुस्यूत हैं। दर्शन में बुद्धि की तथा भक्ति में 'हृदय' की प्रधानता होती है। भक्ति एक व्यक्तिगत अनुभूति है। यही व्यक्तिगत साधना जब सामाजिक घरातल पर उतर आती है तब वह व्यक्तिगत-मात्र न रहकर लोक-मुखी हो जाती है। तब उसे हम धर्म कहते हैं। लोक के दो पक्ष हैं एक व्यवस्था और दूसरा परम्परा। सृष्टि के आदि में ही मानव में बिम्ब में एक व्यवस्था पाई है, और उस महनी व्यवस्था के पीछे उसने एक महती नैतिक शक्ति की कल्पना की है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म का साध्य नैतिक है और साध्य के धर्म में एक व्यवस्था है। अपने अनुरूप किन्तु अपने पूर्णतम रूप में साध्य की कल्पना करके अपने को उससे अनुरूप बनाना मानव-जीवन की एक सुलभवृत्ति है। इससे विश्व में नैतिकता का प्रचार होता है। धर्म की नैतिकता का दूसरा पक्ष साधन है। यत्र और यति वर्ण आधम जाति-माति के भेद पूजा-याग रोडा-नमाज मंदिर-मस्जिद दाढ़ी चोटी धोनी-याजामा, तीर्थ-देवी-प्रेता न जाने कितने रूपों में इस पक्ष का प्रस्फुटन होता है। व्यवस्था और परम्परा के विनाश के साथ उनके समुन्मयन एवं भवनयन के साथ धर्म का स्वरूप नाना रूपों में परिवर्तित हो जाता है। यह धर्म का समन्वित रूप है जिसका बहुत दर्शन है तथा भावोद्भक्त भक्ति है। भारतीय जीवन-दर्शन में ज्ञान उपासना एवं कर्मकाण्ड ये तीन शास्त्र स्वीकार किए गए हैं। किन्तु भारतीय जीवन-दर्शन सार्वभौमिक का दृष्टिकोण लेकर ही बना है। दर्शन मानना से सजीव और कर्म से सन्निवृत्त बनना है।

### केशव का जीवन-दर्शन

आचार्य केदारनाथ के साहित्य में भी हम दर्शन भक्ति एवं धर्म तीनों का विवेकीय दर्शन होना है। यह त्रिवेणी समन्वित्व का एक विवेकपूर्ण विज्ञानगीता में प्रवाहित हुई है। केशव का दृष्टिकोण भी समन्वयवादी है अतः स्वस्थ भारतीय है। केदारनाथ के समान दार्शनिक हैं न तुलसी के समान भक्त न वेङ्कटेश के समान धार्मिक। केशव का समस्त साहित्य एक आचार्य की आध्यात्मिक धर्मव्यक्ति है और उनका आचार्य केवल आध्यात्मिक का ही आचार्य नहीं दर्शनशास्त्र, भक्तिशास्त्र एवं धर्मशास्त्र का भी

आचार्य है। 'रामचन्द्रिका' 'कविप्रिया' 'रसिकप्रिया' और 'विज्ञानगीता' काव्य-साहित्य ही की सम्पत्ति हैं तथापि केशव के आचार्यत्व के अन्य पक्ष भी मुखर हो उठ हैं। फिर भी केशव प्रथम आचार्य हैं पीछे कुछ और।

केशव का दान भक्ति एवं धर्म अध्ययन प्रसूत है। यह नहीं कि दाकर के समान उनकी बुद्धि ने दार्शनिक मिद्धान्तों के नष्ट द्वार खोले हों और यह समझना भी भूल होगी कि केशव तुलसी के समान 'भीतर तक' भीगे निराल भक्त हों। अतः केशव का दान और भक्ति स्वानुभूतिमूलक होने की अपेक्षा अध्ययन प्रसूत ही अधिक है। अपनी ठलठी अवस्था में भले ही उनके मिद्धान्त उनकी अपनी अनुभूति में उतरे हों। धार्मिक होने की अपेक्षा तो 'रसिक' रूप में वे अधिक प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः एक दरबारी कवि से इन सब धर्मों में स्वानुभूति की आशा करना भी नहीं चाहिए। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि इन विषयों में सम्बन्धित उनकी कविता में भावुकता न हो। 'रामचन्द्रिका' में ही अनेक स्थल ऐसे मिल जायेंगे जिनकी अनुभूति की बसोटी पर कसकर कोई भी यह नहीं कह सकता कि उन स्थलों में एक भक्त की अनुभूति नहीं है। किन्तु ऐसे स्थलों के विषय में भी यही कहना अधिक सगत है कि 'भक्त' की भावुकता कवि की भावुकता द्वारा लाई गई है। यह तो सभी जानते हैं कि कवि की भावुकता कितनी सघन होती है, कि कवि जो कुछ कहा होता नहीं बन सकता, उसकी भावुकता उसका भी विधान कर सकती है। पर चाहे स्वानुभूति का अभाव भले ही हो उनके साहित्य की दार्ष्टीय पठनूमि सुदृढ़ अध्ययन पर आधारित तथा सामग्रस्यवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप है। हो सकता है केशव चाह अपने कहे रास्ते पर स्वयं न चले हों पर आप देखें उनके उसपर चले जा सकते हैं।

तुलसी के समान केशव भी धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे। केशव की चिन्तन भूमि भी अन्तःवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह बहुत स्पष्ट है। कारण है केशव का आचार्य तुलसी के आचार्य से अधिक मुखर है।

### अद्वैतवाद

अद्वैतवाद के अनुसार एक ब्रह्म के अतिरिक्त किसीकी भी वृत्तक सत्ता नहीं। ब्रह्म एक अद्वितीय अखण्ड निगुण निर्विशेष सत्ता है। अतन्त्र एवं आनन्द त्रिसक्त स्वरूप है। यह सत्ता अर्थात् मनसगोचर—मन बाणी की अगम अगोचर है। इसे प्रत्यक्ष चैतन्य या शुद्ध ब्रह्म कहा जा सकता है। सांख्यवादिनिषद् ने इसे सकल भेद रहित 'सुरीय' कहा है। वास्तव में इस सत्ता में जगत् व पीछे एक असीम सत्ता की स्वीकृति प्रत्येक भारतीय आस्तिक दान में मिलती है। नाम भेद भले ही हो। यही शुद्ध ब्रह्म अज्ञान के सम्पर्क में आकर मिश्र-मिश्र रूपा में आता है। वेदान्तसार के अनुसार 'शुद्ध चैतन्य का सयोग अज्ञान के व्यष्टिगत एवं समष्टिगत रूपों से होता है। जगत् की कारण मूल्य एवं स्थूल तीन प्रकार की सत्ता हमारी तक-बुद्धि निश्चित करती है। अज्ञान की इन्हीं तीन स्थितियों के साथ एक ही चैतन्य सम्पूर्ण होकर भिन्न भिन्न नामरूपों को प्राप्त करता है। अतः जीव और जगत् के सभी भेद अज्ञान-प्रसूत एवं मिथ्या हैं। ईश्वर भी समष्टिगत सात्त्विक अज्ञान के

सम्पन्न म आए हुए शुद्ध चेतन का नाम है। इस प्रकार भद्वैतवाद के अनुसार ब्रह्म के दो रूप हमारे सामने आते हैं निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्म जीव और जगत के भेद सब भ्रमज्ञान के प्रपञ्च हैं। तब प्रश्न उठता है कि भ्रमज्ञान का स्वरूप क्या है? भद्वैतवाद सत्ता को तीन रूप में समझाने का प्रयत्न करता है—

१ तात्त्विक या पारमार्थिक

२ व्यावहारिक

३ प्रातिभासिक

रस्ती में सप की शुक्ति में चादी की प्रतीयमान सत्ता तात्त्विक नहीं प्रातिभासिक-मान है, जोकि रस्ती और शुक्ति के नान के साथ समाप्त हो जाती है। जगत् की सत्ता भी कुछ-कुछ ऐसी ही है। आत्मा को अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान जब तक नहीं होता तब तक ही ईश्वर जीव जगत के भेद हमारे ज्ञान में आते हैं। किन्तु मिथ्या ज्ञान को एक बिन्दु पता है जो प्रत्येक भ्रमात्मक ज्ञान को होती है। जब तक हम यह तत्त्व-बोध नहीं हो जाता कि यह वस्तुतः सप नहीं रस्ती है तब तक हम सर्प का नान वास्तविक ही समेगा। आत्म बोध न होने तक जगत् हमारे लिए एक सत्य है। हम न उसकी सत्ता में इनकार कर सकते हैं न उसके द्वैत से। यह उसकी व्यावहारिक सत्ता है। इसी व्यावहारिक द्वैत में भक्ति का भी स्थान है। भक्ति बिना उपास्य-उपासक के द्वैत के सम्भव नहीं सकती। अतः तात्त्विक दृष्टि से तो जब द्वैत मिथ्या है तो भक्ति भी भ्रमज्ञान की ही एक प्रभूति है किन्तु तत्त्वबोध तक जैसा कि कहा गया है द्वैत अनिवार्य है और इस व्यावहारिक सत्ता की मान्यता में इस प्रपञ्च में यदि कुछ सुन्दरत्व है यदि कुछ प्राण है तो 'भक्ति' अतः भद्वैतवाद तात्त्विक दृष्टि से नहीं व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि में भक्ति का एवं साधना की दृष्टि में योग एवं कर्म का समावेश कर लेता है। शकर स्वयं अनेक भक्ति-स्तोत्रों के रचयिता हैं जिनकी भावुकता से कोई इनकार नहीं कर सकता। भिन्न भिन्न दशना में ब्रह्म के निगुण-सगुण रूपा के विषय में जगज्ज-ने भेद है किन्तु मामा के दृष्टिकोण के प्रति पर्याप्त भिन्नता है। किन्तु सामान्य वादी साहित्यकार तक के सत्य को अनुभूति का सत्य बनाने का प्रयत्न करता है अतः उसका काम स्थूल मनभेदी में ऊपर उठना है। अब हम सत्य में वेगव के ब्रह्म जीव जगत् और शुक्ति के विषय में विचार जानने का प्रयत्न करेंगे।

दशन

शकर के अनुसार वेदान्तज्ञान का प्रतिपादक है—भाषाजन्म अनेकत्वबुद्धि को समाप्ति और अखण्ड एकरूप की उपलब्धि। अथवा श्री विद्यानमोता द्वारा यही प्रतिपादित करने का उद्देश्य रखते हैं—

जीवो बाह्य इतिगम भांति भांति माया मनु।

सोपि अनेक भाव, देवो बाह्य एक साहि॥

जोयी चाहै काल इहु देहु, चाहै रह्यो गेहु ।

सोई तो सुनाव सुन गुन जानगीतिवाहि ॥<sup>१</sup>

सोपिब अनेक भाव देख्यो चाहै एक ताहि द्वारा केगव ने अपने भूत का स्पष्ट प्रतिपादन किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के दो माग हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति।<sup>१</sup> गीता में निष्काम क्रम का ही प्रतिपादन है। वेदान्तसार में 'उपरति' की व्याख्या प्रवृत्तिमूलक भी है और निवृत्तिमूलक भी।

वेदान्त के ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या की प्रतिध्वनि भी केगव में सुस्पष्ट है—

एक ब्रह्म साचो सदा, भूठो यह संसार।<sup>२</sup>

**ब्रह्म (निगुण)**

ब्रह्म के दो रूप 'पर' और 'अपर' केगव को माय हैं। पर रूप वणनातीत अनि वचनीय है। उसका सवेन भर दिया जा सकता है। वह भी नकारात्मक पदावली के द्वारा। उसका आदि-अंत नहीं वह अगुण अरूप अमय है। वह अद्रुय ही नहीं अस्तुत्य भी है। ब्रह्मा विष्णु महेद्य भी उसका 'योसि सोसि' कहकर ही वणन करते हैं—

जाको भाहीं आदि अंत अमित अबाधि पुत

अकल अरूप अज अित में अतुर है।

अमर अजर अज अदभुत अखण अण

अभ्युत अनामय अुरसना ररतु है।

अमल अनग अति अक्षर अक्षय अण

अस्तुत अदृष्ट देखिबे को परसतु है।

विधि हरि हर बड कहत जोसि सोसि,

बगोराइ ता कह प्रणामहि करतु है ॥<sup>३</sup>

विभिन्न भारतीय ज्ञान ऋस सत्ता की विभिन्न नामा से पुकारते हैं। माध्यमिक घौड़ों में भी परिवर्तनशील नामरूपात्मक सत्ता के पीछे एक परसत्ता की स्वीकृति पाई जाती है। उनका द्रुय भाग बनकर तो बन्धक दाना से प्रभावित होकर स्पष्ट ही एक निष्प सत्ता के अग्र में गृहीत होने लगा। 'गवागमों न गविन के सयोग से परे निवानात्र सत्ता के रूप में इसे माना है। वणव-मन्त्रा एव भागमा में विष्णु से भी परे इस सत्ता को 'महाविष्णु' नाम दिया गया है। तात्पर्य यह कि इस सत्ता की स्वीकृति प्रत्येक भारतीय आस्तिक दान में किसी न किसी रूप में मिलती है। भन् नाम-मात्र का है। केगव की सामञ्जस्य बुद्धि का यही निष्कर्ष है—

१ विद्वान्गता प्रभाव १ दृ २

२ निवर्तनानामेतेषां तद्वर्तनिकविधयेव उपमणमुपरति ।

अथवा विद्वानां कर्मणां विविधा परिचयः ॥ वेदान्तसार पृ २

३ विद्वान्गता गेखवा प्रभाव दृ २

४ विद्वान्गता अठारहवा प्रभाव दृ २

कह एक सत्ताँ गिजे, तूय एक, कहे काल एक महाविष्णु एक ।

कह भय एक परब्रह्म जानो प्रभापुण एक सत्ता तूय मानो ॥<sup>१</sup>

यहाँ पर सत्ता समस्त विशेषणों से रहित है, शब्दा शुन्य है । बस हमका रूप है ज्योतिमय ।

### ब्रह्म (सगुण)

जब यह निर्विण्य सत्ता माया भयवा या कहिए सृष्टि प्रपञ्च के सम्पर्क में आती है तो हमने गुणों का आरोप होना स्वाभाविक है। यह रूप स्थूल-सूक्ष्म-जगत् का नियामक अन्तर्यामी सर्वव्यापक सबस आदि विशेषणों से युक्त हो जाता है। ब्रह्म की इस दशा को भद्वत्तवाद सगुण ब्रह्म कहता है। यही अवस्था जनसामान्य का ईश्वर है। छुट जान की दृष्टि से यह सत्ता भी व्यावहारिक है अतः इस अवस्था और पर अवस्था के ब्रह्म में कोई मौलिक अन्तर नहीं। दोनों की एक ही सत्ता है। वेगव का कथन है—

बाह्य भीतर व्यापक जोहै एक निरोह निरजन सोहै।

दूतरे और न जाकहैं बन्की, एक विदानर रूप अकर्मो।<sup>२</sup>

इस प्रकार केगव अन्तवाद के अनु रूप निर्गुण-सगुण ब्रह्म के दोनों रूप मानकर दोनों में समैद स्वीकृत करते हैं।<sup>३</sup> इन दोनों रूपों में उपासना भविष्य एव लोक-व्यवस्था के लिए सगुण ब्रह्म का रूप ही उपयोगी है। अतः भक्त उन्मे ही ग्रहण करके चलता है। 'रामचन्द्रिका' में ब्रह्म के सगुण रूप का इस प्रकार उल्लेख हुआ है—

सकल शक्ति उन्मानिय अक्षुभ्त जोति प्रकास।

जातें जग को होत है उत्पति भिति अक्ष नास।<sup>४</sup>

ब्रह्म की निर्गुण सत्ता जिस लक्ष उपासना के लिए हृदय में लाई जाती है उसी दशा इत की स्थापना हो जाती है किन्तु भद्वत्तवाद व्यावहारिक बुद्धि की उस समय तक सत्य मानता है जब तक पूरा भद्वत्त की उपलब्धि न हो जाए। भक्तों की भावना है कि यह सगुण सत्ता धर्म की ग्मानि दूर करने के लिए, तथा भक्ता की रक्षा के लिए रूप धारण करके इस लोक में भवतरित भी होती है। वेगवदासजी की मान्यता है कि वही शक्ति राम के रूप में अवतरित हुई।

तुम आदि मध्य अवसान एक । अक्ष जीव जग समभी अनेक ॥

तम ही जु रची रचना विचारि । तेहि कीन भांति समर्थो मुरारि ॥

मख जानि अभिपत मोहि राम । मुनिय जो कह्यो जग ग्रहनाम ॥

तिनके अनेक प्रतिविम्ब जात । तेहि जीव जानि जग में कृपात ॥<sup>५</sup>

१ विद्वानगीता बसकी प्रभाव पृष्ठ ४८

२ विद्वानगीता, अष्टावर्षा प्रभाव, पृष्ठ १८ १९

३ निर्गुण एक तुम्हें जग जानै एक मध्य गुणरूप बचानै । —रामचन्द्रिका १/१५

४ रामचन्द्रिका प्रवारी २५, श्लोक १५

५ रामचन्द्रिका प्रवारी २५, पृष्ठ १२

विश्वामित्रजी की प्रायना पर ध्यासपुत्र के समान गुद वमिष्ठ न ब्रह्म के अनेक सत्त्व-तत्त्व का विवेचन उपयुक्त पक्षियों में किया है।<sup>१</sup> वसिष्ठ के इस तत्त्व विवेचन में स्पष्ट अन्तर्भाव की 'सर्व सत्त्विक ब्रह्म' की भूमि में प्रविष्टा है।

वमिष्ठ को तो समस्त जीव तत्त्विक दृष्टि से 'राम' ही दिखाई देते हैं। और वे जगत की भी ब्रह्म से भिन्न कोई अपनी सत्ता नहीं मानते। अतएव एक माया का दपण-भात्र है जिसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव-रूप में दिखाई देता है। इसीमें जीवों की अनेकता का रहस्य है। नाना प्रतिबिम्बों के आधार पर आधारभूत विम्ब अनेक पोंडे ही हैं। जीव के अनेकरूप की व्याख्या प्रतिबिम्बबानी इय पर होने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदाव्यवहारिक रूप में विनिष्ठा-तत्वाद जसी कोई चीज नहीं मानत।

उसीके 'अद्भुत भाव' से विष्णु से लेकर परमाणु तक नाना नामरूपारमक जगत की सृष्टि हुई है—

ताके अद्भुत भाव से भए सरूप अपार ।

विष्णु ध्यान परमान से उपजत सगो न बार ॥<sup>२</sup>

यह अद्भुत भाव क्या है? जिससे यह समस्त सृष्टि उद्भूत होती है। अन्तर्भाव की दृष्टि में यह त्रिगुणात्मिका माया की समष्टि से उपजित अतन्त्र-रूप है। इस उपाधि के रजोगुण की प्रधानता से सृष्टि की रचना सत्त्व की प्रधानता से पालन एवं तम की प्रधानता से सहार होता है। इन्हीं शक्तियों का हम भावना या कल्पना के क्षेत्र में ब्रह्मा विष्णु महेश कहते हैं।

इक है जो रजोगुण रूप तिहारो । तेहि सत्वि रखी विधि नाम बिहारो ॥

गुन सत्त्व धरे तुम रसत आकों । अब विष्णु कहै सिंगरो जग ताकों ॥

तुमहीं जग रजसरूप सघारो । कहिये तिन भव्य समोपन नारो ॥<sup>३</sup>

यहां भी वेदाव्यवहार की शब्दा को निमून करते हुए चलते हैं। जो त्रिगुणात्मिका माया है वह अपने सगुण ब्रह्म से भिन्न नहीं। भाग और भाग की शक्ति दो नहीं। गुण और गुणी पृथक् नहीं। हां इतनी-सी बात है कि इस गुण-सम्पत्ति से अनेकरूपता आ गई है। इन गुणमयी माया से रहित निरुपाधिक अतन्त्र ही असंख्य ब्रह्म है।

तुमहीं गुनरूप गुनी तुम ठाए ।

तम एक ते रूप अनेक बनाए ॥<sup>४</sup>

इस महाधार अक्षर ब्रह्म का वेदाव्यवहार विज्ञानगीता में इस प्रकार वर्णन करते हैं—

१ ध्यास-पुत्र के समान गुद बुद्धि जनिष्ट ।

इस को अनेक मन्त्र-मन्त्र ॥ ब्रह्मनिष्ठ ॥

—रामचन्द्रिका प्रकरण २४ सूत्र ३

२ रामचन्द्रिका प्रकरण २५, सूत्र १२

३ रामचन्द्रिका प्रकरण २, सूत्र १७, १८

४ रामचन्द्रिका प्रकरण २, सूत्र १७



अजन्म है अमर्तु है, अग्रेय जसु सनु है ।

अनादि अन्त हीनु है, अु भिरय हो नषीनु है ॥<sup>१</sup>

इतना ही नहीं उसका नास्तिक रूप माया से शून्य है—अमाय है—अमेय है ।

अरूप है अमेय है अमाय है अमेय है ।

निरीह निबिकार है, सुमध्य अघ्यहार है ॥

अकृत म अर्णद्वि त्व, अग्रेय जीव मण्डि त्व ।

समस्त गणित मुक्त है, सुदेव देव मुक्त है ॥<sup>२</sup>

यह निरीह निबिकार अकृतम, अणन्द रूप कभी समस्तशक्तिमुक्त (सगुणब्रह्म) और कभी अग्रेयजीव-मण्डित दिखाई पड़ता है । उस सबका कारण है 'अघ्यहार' अघ्यारोप शुद्ध चैतन्य ब्रह्म में माया एक उसकी कृति का आरोप ।<sup>३</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि बेगव के ब्रह्म विषयक विचारों में शुद्ध अद्वैतवादा की स्पष्ट छाप है ।

जीव

वही विगुद्ध चैतन्य जब माया के मलिन आवरण में आच्छन्न हो जाता है तब अल्प अनीद्वर सुख दुःखभोक्ता जीव कहलाता है । वह कर्ता भोक्ता बनकर ऊँची नीची माना मोनियो में फिरता है । वेदान्त की यह मान्यता श्री बेगवदासजी को स्वीकृत है—

उपजत माया संग ते जीव होत बहुरूप ।

उत्तम मध्यम अधम सब मुनि लोखे भवभूप ॥<sup>४</sup>

उपभुक्त पवित्रियों में इन्हीं मायाभि पुरुरूप र्वयत् की स्पष्ट प्रतिध्वनि है । बेगव ने माया की विज्ञानगीता में महामोह कहा है । इस महामोह के सम्पर्क से वह सुवर्ण जैसा शुद्ध चैतन्य किस प्रकार मलिन हो जाता है उसका स्वर्णिम प्रकाश कैसे चला जाता है इसका दिग्दर्शन कवि बेगव ने बड़ी मुद्दर काव्योचित शैली से किया है—

महामोह संग जीव यों मोहहि मर्म समत ।

लोह लिप्त ज्यों वनक-वण लोहाई छै जात ॥<sup>५</sup>

बेगवदास ने ब्रह्म को सबजीवमण्डित कहा है ।<sup>६</sup> अन्त उठता है यह जीव

१ विज्ञानगीता, पन्द्रहवाँ प्रभाव, श्लोक ३६

२ विज्ञानगीता पन्द्रहवाँ प्रभाव श्लोक ४ ४१

३ अमर्त्यने १३ श्री सारांगधरमुन्यनम्भारोरोऽप्यारोप ।  
बस्तु सन्निधानमन्यदय अर्थ । अज्ञानान्निधानमन्यदयमस्तुतेऽस्तु ॥

—वेदान्तसारा १०२

४ विज्ञानगीता, पन्द्रहवाँ प्रभाव श्लोक १६

५ विज्ञानगीता पन्द्रहवाँ प्रभाव श्लोक २६

६ अकृत म अर्णद्वि त्व अग्रेय जीव मण्डि त्व ।

—विज्ञानगीता पन्द्रहवाँ प्रभाव श्लोक ४१

मण्डित ब्रह्म का रूप किस ढंग का है। दूसरे शब्दों में ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध क्या है ?

देव अरूप अनेक है कहै निरौह प्रकाश।

सब जीव मण्डित कही, कसे कणवदास ॥<sup>१</sup>

उसका उत्तर मन्नावदाम इस प्रकार देने हैं—

ज्यों आकाश घट घटनि में पूरण लीन न होइ।

यों पूरण सदेह में रहै कहै मुनि सोइ ॥<sup>२</sup>

आकाश एक अखण्ड एवं सर्वव्यापक है। किन्तु यदि उसे किसी घट की सीमाओं में आवद्ध आकाश की दृष्टि से कह तो घटाकाश कह सकते हैं। और ये घटाकाश अनेक हो सकते हैं। किन्तु तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर ये भेद आकाश के नहीं घटों के हैं। घटस्व उपाधियों के हैं। इसी प्रकार जीव नाम ही मायारूपी उपाधि सम्पन्न का है। आधारभूत अनुपहित अतएव ता गुड एवं अखण्ड है। वदान्त के ये सिद्धान्त हैं—एक अखण्डैवाद् दूसरा प्रतिबिम्बवाद। प्रस्तुत उदाहरण में केवल अखण्डैवाद् का सहारा न लेते हैं। पूर्ववर्ती उदाहरण में उन्होंने प्रतिबिम्बवाद के द्वारा इसी अतात्त्विक सम्बन्ध की व्याख्या की है।

वत्समाचार्यजी ने अग्निस्फुलिंग के उदाहरण में माध्यम से ब्रह्म में जीव के भाविर्भाव-तिरोभाव का सिद्धान्त सामने रखकर इस सम्बन्ध की व्याख्या की है। किन्तु केवल वत्सम जैसे ही मूल और अणु के उदाहरण को लेकर उसकी मायावादी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

उपजत ज्यों चित रूप से जीवन तिहि विधि जात।

रवि से उपजत अंशु ज्यों रविही मास समान।

उपजत माया संग से जीव होत बहुरूप।<sup>३</sup>

यह जीव (जीवन) उस अनन्य-सत्ता (विष्णु) से जिस प्रकार उत्पन्न होता है उसी प्रकार समाप्त हो जाता है। मूल की निरण मूल से ही उत्पन्न होकर मूल में ही समा जाती है। तो प्रश्न उठता है यह उत्पत्ति और विसय क्या है। केवल का उत्तर है 'उपजत माया संग से' तब विसय का उत्तर अपने-आप मिल गया। जिस प्रकार उत्पत्ति हुई तिहि विधि जात' उसी प्रकार समाप्ति अर्थात् माया के नाश पर पुनः अतएव मात्र की स्थिति। इसी प्रकार रामानुज के अगांभी भाववाले उदाहरणों को लेकर भी केवल ने उनकी मायावादी व्याख्या प्रस्तुत की है—

ज्यों रस रूप सुगन्धमय, पुष्प सदा गुलरराउ

पुष्प में जानत जानिये ताको तनिक प्रभाउ।

१ विज्ञानगीता पन्द्रहवा प्रभाव अन्द ४३

२ विज्ञानगीता पन्द्रहवा प्रभाव अन्द ४४

३ विज्ञानगीता पन्द्रहवा प्रभाव अन्द १८-१९

मन को रूप भरूप है, असो है भावाश ।

बढ़त बढ़ाए बुद्धि के, घटत घटाए भास ॥<sup>१</sup>

मन जिनके हाथ है उन्हें सयास की गृह-स्यास की आवश्यकता नहीं—

मन हाथ सदा जिनके तिनके धन ही घर है घर ही मन है ।<sup>१</sup>

भट्टतवाद के अनुसार चित्त माया या भ्रान्त की ही एक कृति है। अतः यही बंधन का प्रधान हेतु है। किन्तु मुक्ति के लिए भी उसी चित्त की अपेक्षा है। निमित्त चित्त 'मह ब्रह्मास्मि' की अनुभूति करने समझाकार हो जाता है। सभी वह स्थिति प्राप्ति है कि चित्तवृत्ति प्रवण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए तयार हो। इस अवस्था में पदुष कर, ब्रह्म का दर्शन करके चित्तवृत्ति भ्रान्त का नाश कर देती है और चूँकि वह स्वयं भ्रान्त की एक कृति थी अतः उसका भी नाश हो जाता है। इस प्रकार मुक्ति के लिए भी चित्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य उपकरण है। केनव भी यही मानते हैं। स्वयं और नरक, बंधन और मुक्ति सब कुछ मन की ही ग्रन्थि के विभिन्न रूप हैं—

स्वयं नरक बंधन मुक्ति, मानो मन की नाथ ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार बंधन-मोक्ष चैतन्य के घन नहीं उपाधि-रूप मन के है जो माया की प्रकृति है। ज्ञान के द्वारा इसकी निवृत्ति हो जाने पर धारमरूप की उपलब्धि हो जाती है।

जगत

भट्टतवाद की दृष्टि से यह जगत् प्रपञ्च उसी ब्रह्म का विवर्त है। शुद्ध चैतन्य भ्रान्त की सत्त्वप्रधान समष्टि के सम्पन्न म आकर ईश्वर-नामधारी होकर इस जगत् की सृष्टि करता है। अतः ब्रह्म भ्रान्तों की प्रधानता से इस जगत् का उपादान-कारण भी है और स्वकीय चैतन्य भ्रान्त की प्रधानता से निमित्त-कारण भी। इसी प्रकार इस जगत् का मय भी उसी अपने कारणरूप ईश्वर म हो जाता है। यह जगत् प्रपञ्च हमारे सामने तीन रूपों में प्राता है। प्रथम कारणरूप में जबकि इसमें कोई सूक्ष्म-स्थूल अवयवों का विकास नहीं हुआ। दूसरा सूक्ष्मावस्था में यह अवस्था स्थूलभूत के पूर्व की है। तीसरा स्थूल पाँच भौतिक जगत् यह इसकी स्थूलतम अवस्था है। इस प्रकार हम तीनों दशाभा की अव्यक्त और व्यक्त या दृश्य और अदृश्य के भीतर से सबते हैं जिनकी उत्पत्ति और रूप का स्थान भ्रान्त की समष्टि से उपहित ईश्वर चैतन्य है। केनव जगत की इसी दशा निक स्थिति का इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

शुद्धावृण्य सबहु है, यहै मुक्ति जिय जान ।

जाते उपगयो साहि भित्त भनत ज्वाल परिमान ॥<sup>३</sup>

१ विद्यानगीता इक्कीसवाँ प्रभाव छन्द २

२ विद्यानगीता, इक्कीसवाँ प्रभाव छन्द ४३

३ विद्यानगीता इक्कीसवाँ प्रभाव छन्द २३

४ विद्यानगीता चौदहवाँ प्रभाव छन्द ४८-४९

इस जगत् का मिथ्यात्व उन्होंने ठीक प्रकटीत पदावली में अनेकत्र स्पष्ट किया है। रज्जु-मय के युक्ति रजन के तथा स्वप्न आदि के अनेक उदाहरण यत्र-तत्र देकर उन्होंने इसकी प्रसारता नहीं मिथ्यात्व सिद्ध किया—

माया दरगन सुम कह्यो, ताके सब विसास ।  
पुत्र कतत्रनि आदि ब भूढो सब संसार ।  
जाको बेखो स्वप्न सो साँघो ग्रहविचार ॥<sup>१</sup>

यह समस्त नामरूपात्मक जगत् जिसमें जीवों की विभिन्न मोनियाँ श्वपच-कीट और राजा रक के नाना भेष सब हो तो माया की कृति है—

जम मरण तरो मृषा श्वपच कीर नृपवेष ।  
भूढो सिंगरो नाउ है माया कम अलेख ॥<sup>२</sup>

यह जगत् मूढा है—

भूँढो है रे भूँढो जग राम की दोहाई ।  
बाहू सचि को बनायो ताते साँघो सो लगतु ह ॥<sup>३</sup>

किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इसका स्थिति माननी पड़ती और इस अवस्था में तत्त्वज्ञान से पूर्व इससे छुटकारा मिलना बड़ा कठिन है।

मरनहि जीव न तजहाँ मरि मरि जम न भजहाँ ॥<sup>४</sup>

और इस अवस्था में यह जग दुःख-जाल है—

जग माँझ है दुखजाल सुख है कहाँ यहि काल ॥<sup>५</sup>

इस दुःखजालवाले जग में जीव एक मन के बन्धीमूढ हाकर ही पड़ता है—

जग को कारण एक मन ।  
मन को जीनि भनीति ॥<sup>६</sup>

## माया

तब यह प्रश्न उठता है कि इस तमाम बखेड की जड़ माया का क्या स्वरूप है ? केवल ने इसे माया भ्रमज्ञान महामाह समृति आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया है। जिसके सम्पर्क में अधिकारी ब्रह्म जगदीश बनकर विकारप्रस्त हो गया है वह प्रेम या माया है। काली रात्रि के अंधकार में रस्सी प्रतीत होनेवाला सप विकार है—

१ विद्यानगन तेरहवाँ प्रभाव छन्द ८३-८४

२ विद्यानगन तेरहवाँ प्रभाव छन्द ८५

३ विद्यानगन चौदहवाँ प्रभाव छन्द ६

४ रामचन्द्रिका चौदहवाँ प्रभाव छन्द १

५ रामचन्द्रिका तेरहवाँ प्रभाव छन्द १२

६ विद्यानगन दसवाँ प्रभाव छन्द १६

अधिकारी जगदीश है भ्रमही से सविकार ।  
केसव कारी रजनि में लुप्त सप विकार ॥<sup>१</sup>

यह स्वप्न रूप भी है—

सतति माम कहावति माया,  
जानतु तावर्ह मोह की जाया ।  
सभ्रम विभ्रम संतति जाकी ।  
स्वप्न समान कथा सब ताकी ॥<sup>२</sup>

यह माया अनिवचनीय भी है, क्योंकि न तो इसे सत् ही कहा जा सकता है न असत् । सत् इसलिए नहीं कि ज्ञान द्वारा इसका नाश हो जाना है— ज्ञाननिवृत्त्य । असत् इसलिए नहीं कि जब तक इसकी व्यावहारिक सत्ता है यह इसकी स्पष्ट प्रतीति होती है । श्रुति म श्रुति का ज्ञान न होने तक रस्मी म रस्ती को न जानने तक रजत और सप का कौन भूटा बहे । अतः इस दृष्टि में 'भावरूप है 'अनिवचनीय है ।

माया सत्त्व रजस् तमस् तीनों गुणों से युक्त है । जिसने द्वारा हम देव चुके हैं विष्णु ब्रह्मा और महेन्द्र की मृष्टि होती है । भद्रेतवाद ने भी माया का यही रूप स्वीकृत किया है । वेदान्तसार के अनुसार माया का स्वरूप है—

सदसद्भ्यामनिवचनीय त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चिदिति ।<sup>३</sup>

केसव ने भी माया का यही स्वरूप माना है । यह बड़ी दुरन्त है—

सबही सबको सर्वदा माया परम दुरन्त ॥<sup>४</sup>

बस यदि इसका नाश सम्भव है तो विवेक के द्वारा । ज्ञान के द्वारा माया की निवृत्ति होकर प्रामाण्यरूपीय मुक्ति ही तो मुक्ति है ।

मुक्ति

विवेक का परिशुद्ध चित्त ही बढ़कर ब्रह्म-साक्षात्कार करके अज्ञान की समाप्ति म सहायक होता है । चित्त स्वयं अज्ञान की ही एक इति है और अपने कारण रूप अज्ञान के लक्ष्य हो जान पर उसका भी नाश होकर केवल शुद्ध ब्रह्म-मात्र शेष रह जाता है । यही अवस्था मुक्ति की है । यह अवस्था सांख्य अणान्त बौद्ध और जैन दर्शनो के अनुसार इस शरीर के रहत रहते भी प्राप्त हो सकती है क्योंकि जब तत्त्व ज्ञान हो गया तो फिर शरीर के बाधन उस मुक्त जीव के लिए बाधन नहीं रह जाते । इस अवस्था का जीवन मुक्ति कहा गया है और शरीर-त्याग ने पंचात् की अवस्था की विदेहमुक्ति <sup>५</sup>

१ विज्ञानगीता सत्रहवां प्रभाव छन्द ३४

२ विज्ञानगीता तेरहवां प्रभाव छन्द २८

३ वेदान्तसार १ २

४ विज्ञानगीता तेरहवां प्रभाव छन्द २६

५ तुलबर्षा साग आगे जीवन्मुक्त ।

साग कर होनि है अनि विदेहमुक्त ॥ —विज्ञानगीता, सत्रहवां प्रभाव छन्द ६

विदेह राजा का प्रयाग हमे जा जनकादि के लिए भिन्नता है यह आपचारिक रूप में जावन मुक्त के लिए ही है। केनव ने जीव-मुक्त का बड़ा विस्तार के साथ वर्णन किया है—

आरे उपारि समस्त ग्रहतद कचन कांच म ओ पहिचाने ।

आसक ज्यों भव भूतस भें भव आरुन से जड़ जगम जाने ॥<sup>१</sup>

‘उपने’सहस्री में जीव-मुक्त की दशा का इस प्रकार चित्रण है—

सुपुप्तवज्जाग्रति यो न पश्यति

द्वयञ्च पश्यन्नपि चाद्वयत्व तः ।

तथा च कुर्वन्नपि निश्चिद्यञ्च यः

स आत्मविनाश इतोह निश्चय ॥

केनव भी इसी प्रकार हम दशा का वर्णन करते हैं—

आहिर ह अति सुख हिए हू

आहि न लागत कम किए हू ।

आहिर भूड़ स अस्त सयानी ।

ताकह जीवनमुक्त बलानी ॥<sup>२</sup>

### कम-मुक्ति

यह जीव-मुक्ति दीपवालीन साधना से प्राप्त होती है। सहस्रों वर्षों में दापक की ‘जोति’ के समान कम-पूर्वक जीव-मुक्त होता है अतः यह कम-मुक्ति भा कहा गई है—

कम कम सबको छाड़िये ममता प्रभुमति मुक्त,

अहंकार परिहार क हूय जीव-मुक्त ॥<sup>३</sup>

इस साधना में जप तप योग समाधि सबका उपयोग है।<sup>४</sup> प्राणायाम भी इसमें अभिप्रेत है।<sup>५</sup>

वासना का उच्छेद राग-द्वेष का नाश क्रोधादि से छटकारा प्राप्त कर विवेक हाना भी आवश्यक है—

हृदय उस सों वासना सता न तपटति जाहि ।

राग दोष फल ना फल मत्पु न मार ताहि ॥

उरसि विवेक समुद्र को डस न बाढ़व कोरु ।

ताको तन को मत्पु प होइ न कबहू सोपु ॥<sup>६</sup>

१ विज्ञानगीता श्वशीमवा प्रभाव छन्द ३२

२ उपनिषद्गीता ८.५, १३

३ रामचन्द्रिका पञ्चमर्षा प्रकाश छन्द १

४ विज्ञानगीता श्वशीमवा प्रभाव छन्द ३

५ विज्ञानगीता चौहर्षा प्रभाव छन्द ॥ ४

६ विज्ञानगीता पन्द्रहर्षा प्रभाव छन्द ६

७ विज्ञानगीता, पन्द्रहर्षा प्रभाव छन्द ६-७

यह ज्ञान-भाग यह साधना-मक्ष बड़ा फटिन है तब सामान्य जीव क्या करें। भावुक लोग ने ऐसे मनुष्यों के लिए एक सरलतम कर्म-निवासा है भक्ति का। भक्त भगवान के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का भाग केनव को भी भाग्य है और उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों के समान ही भक्ति के सिद्धान्तों का भी बड़ा विस्तार के साथ वर्णन किया है। और हम यह पूरा भी ही दिखा चुके हैं कि व्यावहारिक सत्ता की स्वीकृति में भक्तिगत द्रव्य भद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त पर कोई प्रभाव नहीं डालता।

### भक्ति

भागवत एवं अध्यात्मरामायण के समान केनव भी नवधा भक्ति<sup>१</sup> मानते हैं।<sup>२</sup> उन्होंने नवधा भक्ति के प्रत्येक प्रकार में एक-एक रस की स्थिति मानी है। श्रवण में श्रद्धाभूत स्मरण में वरुण दास्य में कीर्तन पादमेवन में भयानक वन्दन में वीर श्रवण में शृंगार सत्य महास्य कीर्तन में रौद्र और आत्मनिवेदन में आन्तरम का भाविर्भाव होता है।<sup>३</sup>

### महत्त्वानुभूति

भक्ति के क्षेत्र में पर और अपर ब्रह्म का भेद मिट जाता है भक्त केनव के राम और परब्रह्म में अन्तर नहीं रहता। भक्ति में यह आराध्य के महत्त्व की अनुभूति बड़ी उपयोगी होती है —

पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान,  
परिपूरन बतावैं न बतावैं और उचित कौं  
वरसन देत जिन्हें वरसन समझ न,  
नेति नेति कहैं वेद छांटि भेद जचित कौं ॥<sup>४</sup>

सम्पूज समार में उसकी 'योनि प्रवाणित है।<sup>५</sup> यद्यपि वे मूलतः रूप रंग से परे हैं —

रूप न रंग न रस विनोय अनादि अनन्त जु बरन पाई।<sup>६</sup>

और उस पूज ब्रह्म-उपोति का न दर्शन सम्भव है न वणन।

- १ श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादमेवनम्।  
अर्चन वन्दन दारुण सत्यमात्मनिवेशनम् ॥

—भागवत अध्याय ७ श्लोक ५।२३

- २ नवधाम भिन्न स्थिति नृप नवधा यति प्रमाण। दानव मानव देवगण भक्तकर्मण हरिमानु।

—विज्ञानगंगा उन्नीसवा प्रभाव छन्द ३८

- ३ शीतल श्रद्धाभूत शरण श्री सुमिरण कल्याण। सद्दिन जुगुप्सा वासना पाद भजनमय मानि  
वन्दन वीर शृंगार माँ अर्चन मरण मशाय रौद्र कीर्तन सम सद्दिन आत्मनिवेद प्रशाम।

—विज्ञानगंगा उन्नीसवा प्रभाव, छन्द १२४

- ४ रामचन्द्रिका प्रकाश १ छन्द ३

- ५ आगन माँकी योनि अग एक रूप भव-छन्द। —रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द २१

- ६ रामचन्द्रिका प्रकाश ६, छन्द १८

## निश्छल आराधना

राम के सगुण रूप का निश्छल ध्यान ही पूजा की विधि है, यह विधि केवलदास जी ने शंकरजी के मुख से कहलाई है—

पूजा यहै उर भानु निर्व्याजि परिय ध्यानु ।

यो पूजि घटिका एक, मनु किये अज्ञ भनेक ॥<sup>१</sup>

## अनयता

वस आराध्य का ध्यान ही भक्तों के लिए सब कुछ है। उनका योग धर्म कम सब कुछ वही है। अनयता भक्ति की प्रथम और अन्तिम आवश्यकता है।

जिय जान यहई जोग । सब धर्म कम प्रयोग ।

सम रूप पूजि प्रकास । तब भएहुम से दास ।<sup>२</sup>

यह भक्ति की व्यक्तिगत साधना की स्थिति है। इस भक्तिरस की भागीरथी में दुख बह जाते हैं ।<sup>३</sup>

## नाम आधार

तुलसीदासजी ने 'बलि म वेदज नाम आधार' कहकर नाम-महत्त्व का प्रतिपादन किया था। केवल न भी भक्ति के इस सम्बन्ध का महत्त्व दिखाया है ।<sup>४</sup>

भक्तों का यही सबस्व है उन्हें और से क्या काम—

राम नाम सत्य धाम

और नाम कौन काम ॥<sup>५</sup>

जब प्राणा को वेद पुराण जब तप तीर्थ ब्राह्मण-पूजा गोसेवा किसी धर्मरूप का सहारा न रहे तब ससार से उद्धार का एकमात्र उपाय है 'राम नाम' ।<sup>६</sup>

## वर्णाश्रम निरपेक्षता

इस भक्ति पर पुरुष और स्त्री ब्राह्मण और शूद्र सभीका अधिकार है—

रामचन्द्र चरित्र कों जो सन सदा चित लाय ।

साहि पुत्र कस्तन सपति देत औरघुराय ।

जग बान भनेक तीरथ हान की कस होइ ।

मारि का भर विप्र सत्रिय बस्य सूद नु कोइ ॥<sup>७</sup>

१ रामचन्द्रिका पञ्चम्या प्रकारा छन्द ३

२ रामचन्द्रिका पञ्चम्या प्रकारा छन्द ३१

३ रामचन्द्रिका पञ्चम्या प्रकारा, छन्द ३४

४ रामचन्द्रिका छन्दोक्त्या प्रकारा छन्द ४८

५ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकारा छन्द ६१

६ रामचन्द्रिका छन्दोक्त्या प्रकारा, छन्द ८

७ रामचन्द्रिका, उन्नालाम्या प्रकारा छन्द ३८



यह ज्ञान-भाग यह साधना-भाग बड़ा बटिन है तब सामान्य जीव क्या करें। भावुक लोगों ने ऐसे मनुष्यों के लिए एक सरलतम कम निवास है 'भक्ति का। भक्त भगवान के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का मार्ग वेशव को भी माय है और उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों के समान ही भक्ति व सिद्धान्तों का भी बड़ा विस्तार के साथ वर्णन किया है। और हम यह पूरा मही दिखा चुके हैं कि व्यावहारिक सत्ता की स्वीकृति में भक्तिगत द्वैत भक्तवाद के मूल सिद्धान्त पर कोई प्रभाव नहीं डालता।

### भक्ति

भागवत एवं अध्यात्मरामायण के समान केवल भी नवधा भक्ति मानते हैं।<sup>१</sup> उन्होंने नवधा भक्ति के प्रत्येक प्रकार में एक-एक रस की स्थिति मानी है। श्रवण में प्रथमतः स्मरण में चरण दास्य में बीभत्स पादसेवन में प्रपन्नक वन्दन में वीर ध्वन में शृंगार सख्य में हास्य कीर्तन में रोम और आत्मनिवेदन में शान्तरस का आविर्भाव होता है।<sup>२</sup>

### महत्त्वानुभूति

भक्ति के क्षण में परम और शरीर ब्रह्म का भेद मिट जाता है भक्त वेशव के राम और परब्रह्म में भिन्न नहीं रहता। भक्ति में यह धाराध्य के महत्त्व की अनुभूति बड़ी उपयोगी होती है —

पूरन परान अथ पुरुष पुरान  
परिपूरन अतावै न बतावै और उक्ति की  
बरतन डेत जिहें बरतन समुध न,  
नेति नेति कहै वेश छाड़ि भेद जुक्ति की ॥<sup>३</sup>

सम्पूर्ण भगार में उसकी ज्योति प्रकाशित है।<sup>४</sup> यद्यपि वे मूर्त रूप रंग से परे हैं —

रूप न रस न रस विनोय अनादि अनन्त जु बंदन माई।<sup>५</sup>

और उस पूरा ब्रह्म ज्योति का न दान सम्भव है म वर्णन।

१ नवधर्मेन विधाय श्रवण पादसेवनम्।

अर्चन वन्दन शरण मायगात्मनिरोचनम् ॥

—भक्तवत्सल अध्याय ७, श्लोक ५।२३

२ नवरस विभिन्न साधि नृप नवधा यन्ति प्रमानु दानव मानव जेवण भक्तकर्मण हरिमानु।

—सिद्धान्तसार अजीमक प्रकाश पृष्ठ ३८

३ श्रीकृष्ण भक्तुल भक्तुल मां सुमिरण कल्या काति सहिज जुगुप्सा दासना पाद भजनमय मानि वन्दन वीर शृंगार मां भवन मम मगम रीति कानन सम सहिज आत्मनिरे प्रसाय।

—विज्ञानयोग अन्तर्गता प्रमाण पृष्ठ ३६४०

४ रामचरित, प्रकाश २ पृष्ठ ३

५ भागवत भाषी ज्योति अग एक रूप स्वयन्द ॥ —रामचरित, प्रथम प्रकाश पृष्ठ २१

६ रामचरित, प्रकाश ६, पृष्ठ १८

## निश्छल आराधना

राम के सगुण रूप का निश्छल ध्यान ही पूजा की विधि है यह विधि केगवदास जी ने दादरजी के मुख से कहलाई है—

पूजा यहै उर आनु निर्याज धरिय ध्यानु ।

यो पूजि घटिका एक, मनु किये जत अनेक ॥<sup>१</sup>

## अन्यता

बस आराध्य का ध्यान ही भक्ता के लिए सब कुछ है। उनका योग धम धम सब कुछ यही है। अन्यता भक्ति की प्रथम और अन्तिम आवश्यकता है।

जिय जान यहई ओग । सब धर्म कम प्रयोग ।

सम रूप पूजि प्रकास । सब भए हम से दास ।<sup>२</sup>

यह भक्ति की व्यक्तिगत साधना की स्थिति है। इस भक्तिरस की भागीरथी में दुःख बह जाते हैं।<sup>३</sup>

## नाम आधार

तुलसीदासजी ने बलि में केवल नाम आधार कहकर नाम-महत्त्व का प्रति पालन किया था। केगव ने भी भक्ति के इस सम्वल का महत्त्व दिखाया है।<sup>४</sup>

भक्तों का यही सवस्व है उन्हें और से क्या काम—

राम नाम सत्य धाम

और नाम कौन काम ॥<sup>५</sup>

जब प्राणी को वेद पुराण अप तप तीर्थ ब्राह्मण-पूजा गोसेवा किसी धमरूप का सहारा न रहे तब ससार से उद्धार का एकमात्र उपाय है 'राम नाम'।<sup>६</sup>

## वर्णाधम निरपेक्षता

इस भक्ति पर पुत्र्य और स्त्री ब्राह्मण और शूद्र सभी का अधिकार है—

रामचन्द्र चरित्र कौं ओ सन सब चित्त साय ।

ताहि पुत्र कसत्र सपति बेत औरधुराय ।

जत बान अनेक तीरथ गहन कौ फल होइ ।

मारि का नर विप्र क्षत्रिय बस्य शूद्र नु कोइ ॥

१ रामचन्द्रिका पञ्चीमर्षा प्रकाश, छन्द ३

२ रामचन्द्रिका पञ्चीमर्षा प्रकाश छन्द २१

३ रामचन्द्रिका पञ्चीमर्षा प्रकाश छन्द ३४

४ रामचन्द्रिका पञ्चीमर्षा प्रकाश छन्द ६६

५ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ६१

६ रामचन्द्रिका पञ्चीमर्षा प्रकाश छन्द ८

७ रामचन्द्रिका, उन्नासीमर्षा प्रकाश छन्द, १८

## धम

यह भक्ति निष्काम हो सब तो कहना ही गया । किन्तु जबसामान्य प्रवृत्ति-भारी होता है । उसे निवृत्ति भाग पर साने का एक उपाय तो है उसकी प्रवृत्ति को जमा डालना दूसरा है उसकी प्रवृत्ति को उदात्त करने निवृत्ति पर साना । हमारे यहाँ भक्ति का यह पौराणिक धरातल है जिसमें अनेक फलों की प्राप्ति द्वारा लोक की प्रवृत्ति को सत्यपथ पर डाला गया है । केनव की भी यही स्वीकृति है—

असेव पय पाप के बसाप आपने कहाइ,  
विदेह राज क्यों सदेह भरत राम को कहाइ,  
सहे सुभक्ति लोक सोक अत मुक्ति होहि ताहि ।  
पढ़ कहै सुन गुन नू रामचन्द्र चरित्रवाहि ॥<sup>१</sup>

यह आश्वासन भक्तगिरोमणि तुलसी ने भी दिया था ।<sup>२</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि केनव की भक्ति लोक-पक्ष-समन्वित है । लोक-समन्वित भक्ति ही मच्चे अर्थों में धम कहलाती है ।

## बाह्याधार

इस प्रकार की भक्ति में धम की अनेक बाह्य मायताएँ स्थान पा लेती हैं । पूजा पाठ स्नान-स्तीर्ण कमराण्ड की विविध मायताएँ, देवी-देवता गीता-ग्रन्थ गंगा गोदावरी सभी समाविष्ट हो जाती हैं । इस सबका चाह कोई दार्शनिक उपयोग न हो । किन्तु ये अन्मास-भाग के पड़ाव हैं । इसी कारण तुलसी के व्यापक हृदय ने इन मायताओं को अपने भक्ति-भाग में स्थान दिया था और यही कारण है कि केनव ने भी अपने भक्ति-पथ को असंकुचित रखते हुए सभी लोक मान्यताओं को समाविष्ट कर लिया है । कुछ न सही तो चित्त गुडि में इनका योगदान रहता है । ये वीरसिंह को उपदेष्टा देत हुए विमानगीता में कहते हैं—

आदि देव पूजि पुंज राम नाम तीजई,  
गहन वान घम वन दग्ध दांडि कीजई ।  
सत्य बोलिय सब विपत्ति संपवानि सो ।  
राज राज वीरसिंह चित्त दाढ़ होइ सो ॥<sup>३</sup>

## ब्राह्मण पूजा

केनव व अनुमार हरिभक्ति में ब्राह्मण भक्ति साधन बनकर उपयोगिनी मिट होती है—

१ रामचंद्रिका उज्जयिनीया प्रकाश इन्द्र ३६

२ रामचरितमानस नवमकिशोर प्रेम नवम सर्कारण १६४०, उपरबाण्ड, पृ० १ ४१

३ विमानगीता, दशकर्मका प्रमाण, इन्द्र ४५

ब्रह्मभक्ति कोह मपति, उपनि पर हरिभक्ति  
साते पहिले ही तुम्ह हो सिल अं द्विजभक्ति ॥<sup>१</sup>

ब्राह्मणों के साथ गोपूजा भी हिन्दूधर्म का एक प्रधान अंग बन चुकी है—

यद्गुणान् अनायनि दे अरु हर द्विज माइनि ॥ दिन पाई पर ॥<sup>२</sup>

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी ने भक्ति-स्तोत्र लिखे हैं उसी प्रकार केजव दासजी ने भी भक्ति स्तोत्र लिखे हैं जिनमें कृष्ण का भक्त हृदय मुखरित हो उठा है। गंगा-सम्बन्धी स्तोत्र देखिए—

गिरध्वज की चन्दिना चाह हाने,  
महापातकी ध्वात घाम प्रपाणे।  
छणो दुग्धभावे अर्नगावि अगे  
ममो देवि गगे नमो देवि गगे ॥<sup>३</sup>

गंगा-महत्त्व भी इसा प्रकार कहा गया है।<sup>४</sup> इसी स्तोत्र-पद्धति पर विदुमाधव की स्तुति भी का गई है।<sup>५</sup>

शासिग्राम की पूजा पर भी बन दिया गया है—

पूजा शासिग्राम की करि दोष्ट्य उपचार,  
बदन आठहुँ अंग ते करत हुतो तिहि काल ॥<sup>६</sup>

### अवतारवाद

धर्म में सभी अवतारों की भी मान्यता है। गीता के अनुसार अवतार का हेतु है 'धर्म-संस्थापना'।<sup>७</sup>

केजव के आराध्य भी इसी हेतु से नाना अवतार धारण करते हैं—

मरजादहि द्योत जानत जाकों। तबहीं अवतार धरो तुम ताकों।

तुम मोन ह्व बैदन कों उयरो जू। तुमहीं घर कछुप बैष धरो जू।

यहि भीति अनक सरूप तिहारे। अघनी मरजाद के काज सवारे।<sup>८</sup>

### कृष्णभक्ति

कृष्ण का भक्ति में तुलसी के लोकमगत विधायक राम की तो पूण स्थान मिला ही है मूर के लोकरजव कृष्ण का भा सभावना हुआ है। कृष्ण के कविप्रिया एवं रसिक

१ विद्यानगीता उर्नीमवा प्रभाव छन्द ७७

२ विद्यानगीता छन्दवा प्रभाव छन्द २

३ विद्यानगीता स्यारहवा प्रभाव छन्द ४

४ विद्यानगीता स्यारहवा प्रभाव छन्द ४८

५ विद्यानगीता, स्यारहवा प्रभाव छन्द २३

६ विद्यानगीता आठवा प्रभाव छन्द ४६

७ भक्तसंगमश्रीका चतुर्थ अध्याय श्लोक ७

८ रामचन्द्रिका नीमता प्रभाव छन्द १६ २१

प्रिया के उदाहरणों में गोपी-कृष्ण के भावुक शृंगारी रूप को ही विस्तृत रूप में दिखाया गया है। यद्यपि वहाँ उनका चित्रण किसी भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा के लिए नहीं हुआ शुद्ध वाध्यात्मक रूप में ही हुआ है। यह ठीक है कि राधाकृष्ण का यह रूप लोक-वाह्य ही है किन्तु इस लोक-वाह्य रूप की प्रतिष्ठा हम देखते हैं केशव सपहले मूर द्वारा ही हो चुकी थी। कृष्ण के शृंगारी रूप के दूसरे भक्ति-सम्बन्धी पक्ष को भी भस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

### निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि केगवनामजी ने भक्ति को बड़े व्यापक घरातल पर प्रतिष्ठित किया है जिसमें विनाल हिन्दूधर्म अपनी समस्त मायताओं के साथ प्रतिपन्नित हुआ है। एक ओर योग की प्रक्रियाएँ भक्ति-गुडि के लिए साधन रूप में स्वीकार की गई हैं तो दूसरी ओर पूजा जप स्नान दान धर्मवाण्ड सभी कुछ बित-गुडि में सहज समझा गया है। भक्ति द्वारा विवेक और विवेक द्वारा भक्ति का पोषण होता है। भक्ति सरस एवं सरलतम पथ है जिसकी कृपा से जीव मुक्ति-पथ की ओर सहज ही बढ़ सकता है।<sup>१</sup> इस प्रकार वे भक्ति को स्पष्ट ही साधन कोटि ही में मानते हैं।<sup>२</sup>

यहाँ हमें मूर तुलसी और केशव के दृष्टिकोण का अन्तर मिल जाता है। केगव के ध्यान में भक्ति को यद्यपि पूर्ण स्थान मिला है किन्तु उससे अधिक उहाने ज्ञान और विवेक की महत्त्व दिया है जबकि मूर-तुलसी में ज्ञान विवेक के महत्त्व की स्वीकृति होते हुए भी उनकी कठिनाता और अपनी भव्यता के आधार पर भक्ति को प्रमुपता दी गई है। अतः मूर-तुलसी भक्त जानो हैं केगव ज्ञानी भक्त। मूर-तुलसी भक्त कवि हैं केगव कवि भक्त। मूर-तुलसी भक्ति के कवि हैं केगव भक्ति के व्याख्यान।

फिर भी हम देखते हैं कि केगव का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक है। उसमें दान भक्ति एवं धर्म का बड़ा व्यवस्थित एवं सुन्दर सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है। उनके धर्म को भक्ति ने हृदय दिया है दान ने ज्ञान और इस सामञ्जस्य में हिन्दूधर्म के सब कुछ को अपने अनुरूप उचित स्थान प्राप्त हुआ है। केगव का यह जीवन दान वस्तुतः मुनीय कालीन भारतीय सस्कृति का जीवन-दान है।

१. कीरमि नुपमइ मणि, मैं बरपा हरिमकि  
बाहि मुने सखमा सुमति कोई पाप विरकि।  
भायो मोह विदेक ज्यों पाइ कोष को भव।  
स्वां गुन भनी शत्रु सब राजदीरसि॥

—विद्यामता, प्रभाव इरलीगरी, पृष्ठ, ५२-५३

२. भक्तियोग को भक्तिइ इहि बिधि साधन साधु।  
होन पार ममार व यन्ति अनन भगाधु॥

—विद्यामता, वीरगाँव प्रभाव पृष्ठ ५१

## पञ्चम परिच्छेद

### केशव का आचार्यत्व

#### आचार्यत्व का क्षेत्र

यो तो केशव के पूर्व ही हिन्दी में साहित्यशास्त्र के कई भगा रस नायिका भेद भलकार पर भलग भलग कुछ काम हुआ था किन्तु उसके सभी भर्गों को लेकर सागोभाग निरूपण हिन्दीसाहित्य में सर्वप्रथम आचार्य केशवदास द्वारा ही हुआ । वे इस दृष्टि से हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं । आचार्यत्व-सम्बन्धी उनकी तीन रचनाएँ हैं—‘रसिकप्रिया’ ‘कविप्रिया’ एवं ‘छन्दमाला’ । ‘रसिकप्रिया’ रस-सम्बन्धी ‘कविप्रिया’ भलकार-सम्बन्धी एवं ‘छन्दमाला’ छन्द-सम्बन्धी रचना है । इन ग्रन्थों के विषय विवेचन से ही केशव के व्यापक आचार्यत्व के क्षेत्र का अनुमान हो सकेगा ।

#### रसिकप्रिया

इसमें सोलह प्रभाव हैं जिनके नाम तथा विषय विवेचन का क्रम इस प्रकार है—

प्रभाव	नाम	विषय
१	प्रच्छन्नप्रकाशसयोगवियोगवर्णनम्	‘रसिकप्रिया’ की रचना का उद्देश्य । नवरस में शृंगार का नायकत्व । शृंगार के दो भेद—सयोग वियोग । दोनों के दो प्रकार प्रच्छन्न एवं प्रकाश ।
२	धनविधनायकप्रच्छन्नप्रकाशवर्णनम्	नायक के चार प्रकार—सुखी दमिण दाठ और घट्ट उनके प्रच्छन्न प्रकाश एवं भेद ।
३	स्वकीया-परकीयाभिन्नेवर्णनम्	नायिका-जाति-वर्णनम् जिसमें पद्मिनी चित्रणी गतिनी हस्तिनी आदि नायिकाओं के भेद किए गए हैं ।
४	चतुर्विधानप्रच्छन्नप्रकाशवर्णनम्	साक्षात् दशन चित्र दशन स्वप्न दशन श्रवण दशन । नायक एवं नायिकागत प्रच्छन्न प्रकाश रूप से दशन भेद ।
५	श्रीराधाकृष्णचेष्टादात्मिलनवर्णनम्	नायक-नायिका की विभिन्न चेष्टाएँ एवं उनके विभिन्न मिलन-स्थान ।

प्रभाव	नाम	विषय
६	राधिकाकृष्ण हावभाववर्णनम्	भाव का सामान्य लक्षण एवं भेद विभाव— आलम्बन उद्दीपन अनुभाव—स्वामी, सात्त्विक, ध्वनिधारी आदि रस-सामग्री तथा हावा के लक्षण तथा भेद ।
७	अष्टनायिकासयोगशृंगारवर्णनम्	नाट्यशास्त्र की प्रणाली पर नायिका की अवस्था के आधार पर स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद व उनके प्रच्छन्न एवं प्रकाश रूप । गुणों के आधार पर उत्तमा मध्यमा तथा अधमा नामक तीन भेद ।
८	विप्रलम्भशृंगारपूर्वाभिरामवर्णनम्	विप्रलम्भ के चार भेद—पूर्वाभिराम कहण मान एवं प्रवास । पूर्वाभिराम का सविस्तार वर्णन एवं तद्भव अभिलाषा चिन्ता दश दशाएँ ।
९	विप्रलम्भशृंगारमानवर्णनम्	मान के तीन भेद—गुह लघु मध्यम, मायक-नायिकागत प्रच्छन्न प्रकाश रूप ।
१०	विप्रलम्भशृंगारमानमाधनवर्णनम्	मान मोचन के उपाय—साम दान, भेद प्रणीत उपेक्षा प्रसंग विध्वंस । इनके नायक-नायिकागत तथा प्रच्छन्न प्रकाशगत भेद ।
११	विप्रलम्भशृंगारवर्णनप्रवासवर्णनम्	बहण रस प्रवास विरह उसके भेदोपभन्ग ।
१२	शलीजनवर्णनम्	घाई आदि सखियों का वर्णन ।
१३	शलीजनकर्मवर्णनम्	शिक्षा विनय आदि कर्म ।
१४	नवरसवर्णनम्	शृंगारेतर रसों के शास्त्रीय लक्षण एवं शृंगार में उनका अन्तर्भाव ।
१५	चतुर्विधविविधवृत्तिवर्णनम्	वैदिकी भारती आर्यरी एवं सारवती ।
१६	अनरसवर्णनम्	प्रत्यनीक नीरस आदि रसदोष ।

### कविप्रिया

इसमें भी सोलह प्रभाव हैं जिनका विषय क्रम इस प्रकार है—

प्रभाव	नाम	विषय
१	राजवर्णनम्	कविप्रिया की रचना-तिथि, राजा इन्द्रजीत सिंह का वर्णनम् कविप्रिया का रचना उद्देश्य ।

प्रभाव	नाम	विषय
२	कविविशेषणनम्	केवल वा र्चन-वक्ष
३	कविसङ्ख्येयवर्णनम्	काव्य म निदायना का अनिवायता घघ बधिर पगु नाग मृतक आदि काव्य-दोष अगण होन रम यतिमय व्यय अपार्थ क्रमहीन कणकट पुनरुक्त देशविरोध कालविरोध निगम-विराध पाय-आगम विरोध वर्णन ।
४	कविव्यवस्थावर्णनम्	उत्तम मध्यम अधम तीन प्रकार के कवि कवि रीतिया एव कवि प्रसिद्धिया ।
५	वेदान्तिवर्णनम्	काव्य म अलकार का स्थान अलकार के दो भेद—सामान्य विनोय । सामान्य के चार भेद—वण वण्य भूथी राजथी । वर्णालकार के सात भेद—देव पीत कुण्ड अरुण धूमर नील एव मिथ ।
६	वर्णालकारवर्णनम्	सम्पूर्ण आवत आदि अष्टाईस प्रकार के वण्य विषयो जाति गुण क्रिया द्रव्यात्मक की तालिका ।
७	भूथीवर्णनम्	देश नगर वन बाग गिरि आश्रम सरिता सरोवर पङ्क्तु आदि प्राकृतिक वण्य विषय ।
८	राज्यथी वर्णनम्	राजा रानी मंत्री सपाम आखेट आदि राज-सम्बन्धी वण्य-विषय ।
९	विनिष्ठाकारवर्णनम्	स्वभावोक्ति विभावना हेतु विरोध विनोय उत्प्रेक्षा ।
१०	विनिष्ठाकारवर्णनम्	आक्षेप एव उसके भेद शिक्षाक्षेप बारह भासे की छली पर ।
११	विनिष्ठाकारवर्णनम्	क्रम गणना । एक से दस तक गणना के भेद । आक्षेप प्रमा-क्षेप उसके भेद मूत्र नेश निदाना रसवत उसके भेद अर्थान्तरयास व्यतिरेक अपहृति ।
१२	विनिष्ठाकारवर्णनम्	वक्रोक्ति अयोक्ति व्यधिकरणोक्ति सहोक्ति व्याजस्तुति निदा अमिन पर्यायोक्ति एव युक्त ।



प्रभाव	नाम	विषय
१३	विशिष्टाक्षरवर्णनम्	समाहित सुसिद्ध प्रसिद्ध, विपरीत, रूप- प्रहेलिका एवं परिशुत।
१४	विशिष्टालक्षरवर्णनम्	उपमा एवं उसके भेद।
१५	तन्मशिलवर्णनम्	समस्त वनिताद्यो का विभिन्न उपमाओं के साथ निरूपण। यमक और उसके भेद।
१६	चित्रवाक्यवर्णनम्	चित्रवाक्य एवं उसके भेद।

## छन्दमाला

वैसे ही वैशेषदासजी ने अपने वाक्यों में स्वयं अपने प्रकार के मात्रिक एवं वाणिज्य छन्दों का प्रयोग किया है। किन्तु साधारण-विवों की शिक्षा देने की दृष्टि से उन्होंने 'छन्दमाला' में एकाक्षर से लेकर २६ अक्षर पादवाले ७६ वाणिज्य छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। मात्रिक छन्दों की रचना में सामान्य विद्यार्थी को बड़ी कठिनाई होती है। उनके गण नियम भूल जाते हैं तथा उन गणों में परस्पर शत्रु मित्र उदासीन का भगल भ्रमगल का भ्रम होता है। अपनी छन्दमाला में आचार्य केशव ने वह सब बचाकर कालिक आवश्यकताओं को समझाया। वाणिज्य छन्दों में भी उन्होंने पहल से लेकर षोडशाक्षर पादवाले छन्दों के ही अधिक भेद दिखाए हैं या फिर कुछ बड़े छन्दों के। २६ अक्षरों से अधिक पादवाले छन्दों का सामान्य नाम दण्डक देकर उदाहरण स्वरूप केवल एक ३२ अक्षर के भ्रमगोलर को दिखा दिया है। इन समस्त छन्दों के लक्षण दोहा में तथा उदाहरण अपने अपने छन्दों में दिए गए हैं। इन छन्दों को हम इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं—

१ एकाक्षर	१ श्री
२ द्व्यक्षर	२ नारायण
३ त्र्यक्षर	३ रमण
४ चतुरक्षर	४ तरणिजा ५ मन्त्र
५ पञ्चाक्षर	६ माया
६ षष्ठाक्षर	७ मातङ्गी ८ सोमरात्री ९ सार, १० बिजोहा ११ मयान १२ गुल्फा।
७ सप्ताक्षर	१३ कुमारललिता १४ प्रमाणिका
८ अष्टाक्षर	१५ मल्लिका १६ नगस्वरूपिणी १७ मन्त्रमोहिनी १८ बापक १९ गुरगम
९ नवाक्षर	२० नागस्वरूपिणी २१ सोमर
१० दशाक्षर	२२ हरिणी २३ समुत्तमति २४ सोमर, २५ संयुता
११ एकादशाक्षर	२६ अनुकूला २७ मुण्डप्रयात २८ श्वर्या २९ उपेक्षया

- १३ द्वादशाक्षर ३० मोतियदाम ३१ तोटक ३२ सुदरी ३३ मोदक  
 ३४ भुजगप्रयाग ३५ लामरस ३६ द्रुतविलम्बित  
 ३७ कुसुमविचित्रा ३८ चन्द्रप्रह्ला ३९ मालती  
 ४० श्यास्वनित ४१ प्रमिताक्षरा ४२ सम्बिणी  
 ४३ त्रयोदशाक्षर ४४ पञ्चवटिका ४५ तारक ४६ कमहस  
 ४७ चतुदशाक्षर ४८ हरिलीला ४९ वसन्ततिलका ४८ मनोरमा  
 ४ पञ्चदशाक्षर ४९ मालती ५० सुप्रिय ५१ निर्गुणानिका ५२ चामर  
 ५ पाण्डवाक्षर ५३ नारायण ५४ मनहरण ५५ ब्रह्मरूपक  
 ६ सप्तदशाक्षर ५६ रूपमाना ५७ पृथ्वी  
 ७ अष्टादशाक्षर ५८ चचरी  
 ८ एकोनविंशाक्षर ५९ करणा ६० मूल  
 ९ विंशाक्षर ६१ गीतिका  
 १० एकविंशाक्षर ६२ धम  
 ११ द्वाविंशाक्षर ६३ मदिरा  
 १२ त्रयोविंशाक्षर ६४ विजय ६५ मुधा ६६ वसुधा  
 ६ चतुर्विंशाक्षर ६७ माधवी ६८ चन्द्रकला ६९ अमर-कमल  
 ७ मकरन्द ७० गगोदक ७१ तन्वी  
 १३ पञ्चविंशाक्षर ७३ विजया ७४ मदन मनोहर ७५ मानिनी  
 १४ विंशाक्षर ७६ हार  
 १५ २६ अक्षरों से अधिक के पदावाले छन्द का सामान्य नाम ७७ दण्डक  
 ३२ अक्षर अनगणेश्वर

## रसिकप्रिया

केसव की इन सीमा रचनाओं के सम्बन्ध विषय-विवेचन से उनके आचार्यत्व के क्षय का सहज अनुमान हो सकता है। इनमें उन्होंने विभिन्न काव्यांगों पर प्रकाश डाला है। माया का कार्य और कवि की योग्यता कविता का स्वरूप और उसका उद्देश्य कवियों के प्रकार काव्य रचना के ढंग कविता के विषय वचन के प्रकार, काव्य-दोष भलकार, रस विभिन्न वृत्तियाँ आदि काव्यांगों का समावेश उनके विवेचन में मिलता है। रसिक प्रिया काव्य रसिकों के लिए रची गई है जिसमें सामान्य रसिक पाठक भी कविता के शास्त्रीय सौन्दर्य का भान द उठा सकें किन्तु 'कविप्रिया' की रचना कवि शिक्षा के लिए हुई

१ दिल्ली-ग्रन्थालय का इतिहास डॉ॰ भीमसेन मिश्र पृष्ठ ५५

२ रसिकों की रसिकप्रिया की नीचे संज्ञा

—रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द १२

है और प्रवीणराय जस काव्य सिद्धांतियों की प्रतीक है।<sup>१</sup> कविप्रिया में केशव ने भीतिसिधे कवियों के लिए वर्णन-पत्र बताया है।<sup>२</sup> और 'रसिकप्रिया' द्वारा रसिकों को रस रीति का परिचय<sup>३</sup> फिर भी 'रसिकप्रिया' के काव्य सिद्धान्तों का उपयोग कवियों के लिए भी है।<sup>४</sup> केवल वर्णन पत्र दिखाने तथा रस रीति का परिचय कराने के उद्देश्य से रची गई इन पुस्तकों में विस्लेषणार्थक एवं मौमासात्मक भाषायात्वं नहीं पाया जाता। उसकी भाषा स्पष्टता ही नहीं थी और उसके लिए संस्कृत के लक्षण-श्रृंगों का द्वार खुला था। किन्तु इन सिद्धान्तों का गिद्यक बितने गहरे में है और उसका अध्ययन कितना व्यापक एवं गहरा है इन बातों का पता हम अवश्य ले सकते हैं। केशव के काव्य-सिद्धान्त संस्कृत-काव्य शास्त्र की पृष्ठभूमि में ही अवतरित हुए हैं। अतः डॉ० मणीरथ मिश्र का यह कथन यथार्थ है कि उनके मत से सहमति और विरोध की बात नहीं उठती।<sup>५</sup> किन्तु बात इतनी ही नहीं है। केशव ने केवल प्राचीन मतों की उद्धरण ही नहीं की उनके विषय में निजी दृष्टिकोणों से हेरफेर भी किए हैं। अतः जहां केशव प्राचीन मान्यताओं से मेल नहीं खाते एवं आलोचक की दृष्टि में उन स्थलों का अधिक महत्व होना चाहिए।

'रसिकप्रिया' में केशव शृंगार की रसरंजिता प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। अतः समस्त लक्ष्य-पदार्थों के लक्षणों में उन्होंने आवश्यकतानुसार एक हलकी मोड़ देकर अपने उद्देश्य की सिद्धि की है। इस दृष्टिकोण के कारण केशव के लक्षण परम्परा प्राप्त लक्षणों से कहीं-कहीं भिन्न हो गए हैं। केशव अपने इस उद्देश्य को प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देते हैं। रस विषय में आचार्यों की अनेक बौद्धिक स्फुरणए हैं विविध विवेक विलास।<sup>६</sup> ह अनेक रस भेद नाना स्थायी लक्षारियों का योजना तथा विभिन्न रीति-वृत्तियाँ। केशवदासजी अपनी बुद्धि के अनुरूप उन सभी विवेक-विलासा को शृंगार की स्थायी वृत्ति रीति की गति के अन्तर्भूत करके प्रदर्शित करना चाहते हैं। इसी कारण रसिकप्रिया रीतिवासीन शृंगारी रसिकों की गीता है।<sup>७</sup>

१ लविना जू कविता हई ताई परम प्रकास।

ताके काव्य कविप्रिया कीन्ही केसवरास ॥

—कविप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द ६१

२ बरतन पत्र कथाय पै दोन्हो बुधि-अनुसार।

—कविप्रिया सोनहरा प्रभाव छन्द २०

३ बाँ रसि मनि अति धरै आन मय रस रीति।

—रसिकप्रिया सोनहरा प्रभाव, छन्द १६

४ जेने रसिक प्रिया बिना देखिय तिन दिन मीन।

तौ हो भाग्य कवि सबै रसिकप्रिया बिा होन ॥

—रसिकप्रिया सोनहरा प्रभाव छन्द १५

५ हिन्दा काव्यशास्त्र का इन्विज्म डॉ० मणीरथ मिश्र, पृष्ठ ५४

६ अति रति मति अति एक करि विविध विवेक विनाम

कन को रसिकप्रिया कोना वेमबगाम ॥

—रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द १२

७ रस परमाथ सबै, रसिकप्रिया की रति।

—रसिकप्रिया, सोनहरा प्रभाव छन्द ११

केदाव को सभी रसों की पूज्य एवं स्वतन्त्र सत्ता स्वीकृत है।<sup>१</sup> वे इस विषय में भरत-परम्परा के पूज्य अनुयायी हैं। चौदहवें प्रभाव में भी केदाव ने सभी रसों का शृंगार में अन्तर्भाव दिखाकर प्रसंग प्राप्त शम का एक स्वतन्त्र उदाहरण उपलक्षण-पद्धति पर देकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वे भोज की भांति सभी रसों का मूल शृंगार को नहीं मानते। हा शृंगार को उस व्यापक क्षमता की वे घोषणा करने हैं जिसमें सभी रसों की समाई है। यही शृंगार का रसराजत्व है, जिसके लिए 'रसिकप्रिया का निर्माण हुआ है।'<sup>२</sup>

केदाव रस ध्वनिवादियों के समान ही काव्य में इसकी महत्ता स्वीकार करते हैं। रस काव्य का आत्मभूत तत्त्व है।

ज्यों बिनु डोढि न सोभिज, लोचन सोल विसास ।

ज्योंही केसव सकल कवि, बिनु बानी न रसास ॥<sup>३</sup>

काव्य रचना में सबप्रथम आवश्यकता है वक्ष्य भाव में तन्मयी होने की उसकी भावना की। इसीसे केदाव को कवि से रस के प्रति तीव्र रुचि अपेक्षित है। केदाव काव्य रचना-पथ-मार्गों से साग्रह माग करते हैं—

सातें रुचि सों सोचि पछि कौज सरस कविस ।

केसव स्याम सज्जन को सुनत होइ बस चित्त ॥<sup>४</sup>

केदाव विष्णुनाथ जैसे धुंध रसवादियों के समान 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' के समर्थक नहीं। ध्वनिवादियों के अनुरूप रस को सर्वोपरि स्थान देते हुए भी विशिष्ट भ्रम को ही काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं। इसी कारण नीरस चित्रकाव्य को भी वे काव्य कह सकते हैं। वे अथहीन काव्य को ही मूलक कहते हैं।<sup>५</sup> रस को भी व विभावा-नुभावसंचारी के संयोग से व्यञ्जित स्थायी मानते हैं।<sup>६</sup> यह मान्यता भी अभिनवगुप्त के आधार पर है। उनकी दृष्टि में काव्य शब्द और भ्रम के सामंजस्य में है कोई शब्दों में नहीं। इसीलिए अर्धरहित गन्द-काव्य को उन्होंने मूलक कहा है। यह भावना मम्मट के निदान्त समीप है।<sup>७</sup> इस प्रकार उनके समय तक जो ध्वनिवादी मायताएँ स्थिर हो चुकी

१ रसिकप्रिया, प्रथम प्रभाव, छन्द १५

२ नवदू रस के भाव ॥ तिनके भिन्न विचार, सबको 'केसव' कहि जायक है मगार ॥

—रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव, छन्द १६

३ रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द १३

४ रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द १४

५ शृंगार कथाएँ अर्थ बिनु 'केसव' सुनहु प्रवीन ।

—रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव, छन्द ७

६ भिन्न निभाव अनुभाव बुनि संचारी हैं अनूप ।

भ्यंग करि फिर भाव जो सोई रस मुख रूप ॥

—आचार्य कवि केदाव श्री कृष्णचन्द्र बना पृ २२२

केदाव ने रसिकप्रिया में रस को विभाव अनुभाव संचारीभावों द्वारा प्रकाशित स्थायीभाव कहा है।

—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास का० मंगिरय मिश्र पृ १७

७ तद्गोरी शङ्गाओं सगुणावनमज्जती पुनः क्वापि । —काव्यप्रकारा प्रथम अल्लाम भूत १

हैं उनका वे भादर करते हैं ।

शृंगार के परम्परा प्राप्त संयोग एवं वियोग दो भेद केशव को मान्य हैं ।<sup>१</sup> इसके साथ ही वे लगभग प्रत्येक को प्रच्छन्न धीर प्रकाश दो भागों में बांटते हैं । नायक-नायिका एवं अन्तरंग सखियों तक ही जिसकी जानकारी सीमित रहे उसे प्रच्छन्न शृंगार तथा वा अनसाधारण की जानकारी में आ जाण वह प्रकाश शृंगार कहा गया है ।<sup>२</sup> हमारे विचार से सामग्री द्वारा स्थायीभाव की अभिव्यक्ति अथवा अभिव्यक्ति से इन भेदों का कोई सम्बन्ध नहीं जसाकि कुछ विद्वानों ने समझा है ।<sup>३</sup> इन भेदों का आधार कोई भनो वैज्ञानिक नहीं ।

**नायक भेद**

दूसरे प्रभाव से पाँचवें प्रभाव तक शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका भेद का विस्तार है । नायिका भेद रीतिवालीन आचार्यत्व एवं कविता का एक विशिष्ट अंग बन गया था । केशव के पूर्व से ही उसपर अलग स्वतन्त्र ध्येय मिले जा रहे थे । केशव ने नायक को प्राचीन आचार्यों के समान ही उदात्त एवं सलित गुणों से युक्त माना है । उनके अनुसार नायक अभिमानी स्वाधी तन्म कोककला प्रवीण अथ्य क्षमावान सुन्दर धनी शुचि शक्ति कुलीन होना चाहिए ।<sup>४</sup> नायक के इन सामान्य गुणों में केशव ने किसी आचार्य का अनुवाद नहीं किया । यत्र-तत्र धनजय<sup>५</sup> तथा विश्वनाथ<sup>६</sup> को आधार अवश्य माना है ।

- १ ध्रुम संयोग वियोग पुनि है शिंजार की भाति ।  
पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि, दोऊ द्वे-द्वे भाति ॥

—रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द १८

- २ सो प्रच्छन्न संयोग भर, कहै वियोग प्रमान ।  
जानै पीठ मिया कि सखि होत नु निनदि समान ॥

—रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव, छन्द १६

- सो प्रकाश संयोग भर कहै प्रकाश वियोग ।  
अपने-अपने बिछ में जानै मियरे सोम ॥

—रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव छन्द २१

- ३ यथाय में प्रच्छन्न का तो रस की सखा ही प्राप्त नहीं होती क्योंकि स्थायीभाव अब विभाव अनुभाव एवं स्यादीभावों द्वारा व्यक्त होता है तभी रस-दरा तक पहुँचना है ।

—हिन्दी काव्यशास्त्र बर हनिदास पृ० ६८

- ४ अभिमानी स्वाधी तन्म कोककलानि प्रवीण अथ्य क्षमी सुन्दर धनी शुचि-शक्ति सदा कुलीन ।  
ये गुण केवल आसु में भोव नायक जानि अनुकूल दख सदा धृष्ट पुनि औदधि लाहि बरयनि ॥

—रसिकप्रिया द्वितीय प्रभाव छन्द १, २

- ५ नेत्र निर्मल तो मधुरस्वामी दस प्रियवर ।  
रक्तचोक शुचिशोभा कंचरा स्थितो युवा ॥

दूरधुस्वाहृष्टिपकाकथापानममन्त्रिः ।

रसो दूरधर लेखनी शारवचसुरचार्मिक ॥ —रासूरक रीति प्रकाश रत्नोक्त १, २

- ६ स्वाधी कुला कुलीन सुभीको रूपवीनोत्पारी ।

दधेऽनुरक्तचोकराजे जो वैदग्ध्य हीनकाव् जेठ ॥

—सदाशिव-वन्द्य ११५

नायिका-सम्बन्ध से उन्होंने भी धनुकुस, दस, दश और धृष्ट चार प्रकार के नायक माने हैं। उन्होंने धीरोदात्त आदि के अलग भेद नहीं किए।

नायिका भेद

सीसरे प्रभाव से नायिका भेद प्रारम्भ होता है। केणव ने नायिका भेद चार आधारों पर किया है जाति कम अवस्था तथा प्रवृत्ति। नायिका भेद के विषय में केणव ने भरत के 'नाट्यशास्त्र' धनञ्जय के 'दशरूपक' विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' तथा भानुजित के 'रसमञ्जरी' आदि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से ही सहायता नहीं ली अपितु वात्स्यायन के 'कामसूत्र' को भी आधार बनाया है। 'कामसूत्र' के उपयोग के कारण केणव का नायिका भेद अधिक कामशास्त्रीय एवं पूर्ण हो गया है। जाति के आधार पर उन्होंने पद्मिनी चित्रिणी शशिनी एवं हस्तिनी नामक चार भेद किए हैं। इनका उल्लेख कल्याणमल्ल के मनोरम में भी पाया जाता है। केणव के लक्षण शास्त्रीय हैं। एवं उदाहरणों में सामान्य है। इसके अनन्तर केणव नायिका के सामाजिक सम्बन्ध के आधार पर तीन भेद करते हैं—स्वकीया परकीया एवं सामान्या। उनमें सामान्या का विवेचन धनुचित्त समझकर केणव ने छोड़ दिया है। रीतिकान्त का प्रारम्भ ही तो था भागे चलकर इसका भी विस्तार विवेचन होने लगा था। स्वकीया मुग्धा मध्या एवं प्रौढ़ा तीन प्रकार की होती हैं। मुग्धा के नववधू नवयौवना, नवत धनगा एवं सजायाया चार भेद किए

१ अ—स्थला पिङ्गल कुन्तला च हृद् मुकुटं दूरात् वा बर्जिता  
गौरांगी कुटिलांगुली चरणयोः स्नोन्मल्लम्बरा ।  
विभ्रमैश्च मद्राभ्युत्थिता निज तोषं धुरां मन्त्रा ।  
दुःसाध्या सरवेति गर्भरक्षा रक्षोपिका हस्तिनी ॥  
आ—यून अगुरी चरन मुख अक्ष मकुटि करि बोन ।  
मन्न सन्न रं कभरा मं चालि चित्त लेल ॥  
स्वे मदन-बल दिग्द-भद गैवित भूरे वेस ।  
अति तीक्ष्ण मद्रु होम तन मनि हस्तिनि हम भेस ॥

—धनगरा पृ ३ ४१७

—रसिकप्रिया, तीसरा प्रभाव छन्द ११ १२

१—सब देह भई दुरमभई अति अथ रई मुख बाधत कैसे ।  
कतु साज से सोन विमल से हैं नुति तावन केसव बोन भनेसे ॥  
अति अये मलिनी नगिनी तखि के करिनी के कपोलनि मंडित ठेसे ।  
द्विदि द्योषि के रसिसिरी बस पाप निरै-यं राज विरामत बैसे ॥

—रसिकप्रिया प्रभाव २, छन्द १३

२ ता नायक की नायिका अथवा तीन प्रमान। स्त्रीया परकीया अथवा स्त्रीया परकीया न ॥

—रसिकप्रिया, तृतीय प्रभाव छन्द १४

३ सपति विपति को भरत हू सग पक अनुहारि ।  
ताहि सुकीया आनिये मन-कम-बचन विचारि ॥  
मुग्धा मध्या प्रौढ़ गति, निजकी सीनि विचारि ।  
एक एक की आनियहु पारि पारि अनुहारि ॥—रसिकप्रिया, छन्द १५ १६

हैं।<sup>१</sup> मध्या के भी आस्त्र-योजना, प्रगल्भ-वचना, प्रादुर्भूत-मनोवेग एवं सुरति विचित्रा तथा प्रौढ़ा के समस्तरस-भेदिता चित्र विभ्रमा, अत्याशान्ता-नायका एवं सुभ्या-पति भेद होते हैं।<sup>२</sup> मध्या नायिका के भीरा भयीरा एवं भीरा भयीरा<sup>३</sup> तीन भेद किए गए हैं। इसके साथ ही सात बहि रतियाँ<sup>४</sup>—आतिगन, चुम्बन आदिसंघात सात भन्तर रतियाँ<sup>५</sup>—स्थिति तिरक आदि घोड़ा शृंगारो<sup>६</sup> तथा सुरतान्त का भी सांकेतिक वर्णन है जिसमें कामसूत्र एवं काव्यशास्त्रों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। इन्हीं भावस्थायताओं को ध्यान में रखकर बेगव ने अपने नायक में कोकला प्रवीण गुण होना बताया है। यह सब ज्ञात स्वकीया का है। इसके उपरांत परकीया के दो भेद ऊँठा एवं भनूढ़ा किए गए हैं।

सातवें प्रभाव में नाट्यशास्त्र की प्रणाली पर नायक-संबंध से अवस्थानुसार नायिकाओं के आठ भेद—स्वाधीनपतिरिक्ता, उत्तमा वासकसज्जा अभिसंधिता लक्षिता प्रोपितप्रेयसी विप्रलम्भा एवं अभिसारिका किए हैं। ये भेद और इनके लक्षण सङ्कृत भाषाओं से परस्परगत प्राप्त हैं। इनके प्रच्छन्न-प्रकाशमय भेद दिखाए गए हैं। बेगव ने अभिसारिका के प्रमाभिसारिका गर्वाभिसारिका कामाभिसारिका तीन भेद किए हैं जो उनके अपने हैं। अभिसार को उल्टे स्वकीया एवं परकीयागत भी दिखाया है।

बीमा आधार प्रकृति का है। बेगव ने इस आधार पर उत्तमा मध्यमा एवं अधमा तीन प्रकार की नायिकाएँ और दिखाई हैं। यह वर्गीकरण नायिका की मानिनी प्रकृति के आधार पर है जो उसके स्वभाव से सम्बंध रखता है।

इन नामों एवं लक्षणों में से अनेक विभिन्न भाषाओं से ज्यों के त्यों मिल जाते हैं कुछ में यत्किंचिन् अन्तर पाया जाता है जिसे बेगव ने वहीँ तो एक से अधिक भाषाओं के लक्षणों को मिलाकर और वही अपनी कल्पना से दिया है। किन्तु इनके विषय में डॉ० भगी रय मिश्र की सम्मति ठीक ही है कि नाट्यशास्त्र की दृष्टि से इनका कोई विशेष महत्त्व

- १ नवलक्षू नववीदना नवनमनना नाम ।  
लम्बा लिये जु रति करे लज्जाप्राय सुखाम ॥ —रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द १७
- २ मध्या आस्त्र योजना प्रगल्भवचना आनि ।  
प्रादुर्भूत मनोवका सुरति विचित्रा आनि ॥ —रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द ३२
- ३ सुनि समस्तरस-भेदिता चित्र विभ्रमा आति ।  
अति आश्रमिता नायका सुभ्यापति सुख आनि ॥ —रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द ५
- ४ सिंगरी मध्या तीन विधि भीरा और अर्धर ।  
भीराभीरा तीसरी बरनत हैं कवि भीर ॥ —रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव, छन्द ७५
- ५ आतिगन, चुम्बन वरम वरन, नग रद-दान ।  
अधर-दान सो जानिये बहिरनि सात सुखान ॥ —रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द ४१
- ६ विनि, तिरक सनमुस विमुग अथ अरथ, उषान ।  
सात भन्तरनि समुभिजे केसरसर सुखान ॥ —रसिकप्रिया, तृतीय प्रभाव छन्द ४२
- ७ देखिए रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव, छन्द ४३

नही ।<sup>१</sup> कुल मिलाकर केराव ने तीन सौ भाठ प्रकार की नायिकाएँ दिखाई हैं । प्रच्छन्न प्रकाशगत भेद से केराव सबव विस्तार करते चले हैं ।<sup>२</sup> द्रष्टव्य यह है कि केराव ने सामान्या को तो नितान्त छोड़ा ही है साथ ही साथ परकीया के भी अधिक भनौपभेद नहीं किए । स्वकीया पर ही पूरा रूप से विचार किया है । नायिका भेद के प्रसंग में ही चतुष एव पञ्चम प्रभाव में दान चेष्टा एव मिलन-स्थान का प्रसंग आता है । दान चार प्रकार के बताए गए हैं—प्रत्यक्ष दान चित्र दान स्वप्न दान श्रवण दान । एक-दूसरे को देखकर 'सकाम शरीर होने में इन दानों का उपयोग है ।' मन में विभाव-मल के ही भय हैं । नायकगत एव प्रच्छन्न तथा प्रकाश भेद से इनके उपभेद किए गए हैं । इनका उन्मेष भी संहृत भाषाओं ने किया है ।<sup>३</sup> दान-श्रवण के फलस्वरूप सङ्कराग नायिकाओं में रति प्रकाशनात्मक<sup>४</sup> चेष्टाओं का उदय होता है । नायिका के आश्रयत्व की ध्यान में रहकर इन चेष्टाओं का स्थान अनुभाव का है और प्रतिक्रियास्वरूप नायक में जो रति जागरित होनेवाली है उसकी दृष्टि से ये चेष्टाएँ विभाव के भगभूत उद्दीपन कहाएंगी । जब इन सामान्य उपायों से मिलन सफल नहीं होता तो नायक-नायिका स्वयं-दूतत्व पर उतर आते हैं ।<sup>५</sup> किन्तु यह उपाय नायिकाओं में से केवल ऊँचा द्वारा ही होता है<sup>६</sup> प्रनूडा के लिए तो सखियों ही उपाय हैं ।<sup>७</sup> फिर प्रथम मिलन के स्थान बताए गए हैं । दासी सखी दाई का घर कोई अन्य मूला घर रात्रि श्रत्यन्त भय उत्तव, व्याधि के बहाने निमन्त्रण या वन विहार में नायक-नायिका को मिलन अवसर

१ हिन्दी काव्यसारत्र का इतिहास पृष्ठ ६८

२ देखिए रसिकप्रिया सप्तम प्रभाव

३ वे गोज दरमें दरत होईं सकाम शरीर ।

दरमन चारि प्रकार को वरनन हैं कवि भीर ॥

एक जु नज्जे देखिए दुने दरमन चित्र ।

ताने सपनें देखिये चौधे भवननि मित्र ॥

—रसिकप्रिया चतुष प्रभाव, छन्द १, २

४ मयथाईरानाश्रयिनिव सङ्करागयो,

दराविरोधो योऽप्राप्तौ पूर्वगत सङ्ख्यते ।

अथान्तु अनेकव दूतसिखीमुखाद्

इन्द्रमाने च विने च साचास्व स्वने च दर्शनम् ॥

—सुहृदित्यर्पण, १।१६२ ६३

५ पिय सों प्रगटन प्रीति यह बिनने करे जगार ।

ते सब किमोहास भव करने सबनि मुनार ॥

—रसिकप्रिया पञ्चम प्रभाव छन्द ४

६ ओ क्यों हूँ न मिले कहूँ कैसेना दोऊ ईठ ।

तो तब करने भावही बुधिरूप होन बसीठ ॥

—रसिकप्रिया पञ्चम प्रभाव छन्द १३

७ ऊँ पुनि यहि भाति करि बहु बिधि दिननि बनाइ ।

आपुन ही तें लाज तजि पियहि मिलि अकुलाइ ॥

—रसिकप्रिया पञ्चम प्रभाव छन्द १६

८ अधिक प्रनूडा साथ सँ पिय ये भाव न आप ।

क्यों हूँ करि सखियै कहैं ताके उर को ताप ॥

—रसिकप्रिया पञ्चम प्रभाव छन्द २२



मिलता है ।<sup>१</sup>

केतव के इस सांगोपांग नायिका भेद-वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने 'रसिकप्रिया' में शृंगार को किम प्रकार विस्तार देने का प्रयत्न किया है। आज के युग में चाहे इन शृंगारिक अर्थों का कोई महत्त्व न हो किन्तु रीतिकाल की सीमा की संकल्पितियाँ यही थे। उनका गम्भीर विनियोग करनेवाला बड़ा आश्चर्य नहीं था, उनका सांगोपांग भेद करनेवाला अधिक प्रसिद्धा मानन था। केतव का आचार्यत्व इस बसीटी पर भी सरा है।

शृंगार के दो भेदों संयोग एवं वियोग, में प्रायः आचार्य लोग संयोग के भेदों में नहीं पड़ें। वास्तव में उसके परस्पर अवलोकन-आसिगन आदि के आधार पर न जाने कितने भेद किए जा सकते हैं। अतः वे उसका एक भेद गिनना परान्द करते हैं।<sup>२</sup> केतव दासजी ने भी संयोग के भेद नहीं किए किन्तु उसका व्यापक विस्तार नायिका भेद के माध्यम से अवश्य प्रस्तुत कर दिया है।

प्रियतम एवं प्रियतमा के बिछड़ने पर विप्रलम्भ शृंगार होता है।<sup>३</sup> यह लक्षण परिचयात्मक-मात्र है। विप्रलम्भ केतव के अनुसार चार प्रकार का होता है। पूर्वानुराग, भान करुण एवं प्रकाश। नायक-नायिका के परस्पर दृशन होने पर अनुराग तो उत्पन्न हो जाता है किन्तु फिर न मिलने पर पूर्वराग विप्रलम्भ होता है।<sup>४</sup> इसी पूर्वराग के प्रसंग में केतव ने अनिमित्त चिन्ता गुण-व्यय स्मृति, उद्वेग प्रलाप, उमाद व्याधि, जड़ता एवं मरण-इस विरह-दशाएँ गिनवाई हैं। आचार्य विवनाथ ने भी इनका उत्तेज पूर्वराग के ही प्रसंग में किया है। इनके भी नायक एवं नायिकागत प्रत्यक्ष प्रकाशक्य हैं। एक-एक के चार भेद किए गए हैं किन्तु अजर-अमर नायक की मरण दशा का उदाहरण उन्होंने नहीं दिया।<sup>५</sup> सामान्यतः भी उसका नियोग है।<sup>६</sup>

१ कभी लदेनी थाय मर मूने पर निति आर ।

अति मय कानक व्याधि मिय म्योते तु बन-विहार ॥

इन ठौरनि ही होतु है प्रथम मिलन सकार ।

पेसव राजा रंक की रनि राखे करार ॥

—रसिकप्रिया, पंचम प्रकाश, द्वन्द्व १४ १५

२ तत्र शृंगारस्य द्वौ भेदैः संयोगो विप्रलम्भश्च । तन्नाथ परस्परदृश्येकनामिहनाथरामपरिचुम्ब  
नाघनन्नावादपरिचयेष्वेक एव गण्यते ।

—का० प्र ५० १

३ विरुराग प्रीतिम प्रीतिम होतु नु रस मिहि ठौर ।

विप्रलम्भ सिंगार कदि बरनन कदि निरगौर ॥

—रसिकप्रिया आठवाँ प्रकाश, द्वन्द्व १

४ देरिप हारिष्य-वर्षा १११६६

५ माने तु किम्बदन्त ये वरम्यो आर न मिल ।

अजर अमर अत कदि कही केने देग परित्र ॥

—रसिकप्रिया, आठवाँ प्रकाश, द्वन्द्व १५

६ देरिप हारिष्य-वर्षा, १११६६

विप्रलम्भ का दूसरा भेद है मान । स्नेहाधिक्य से अभिमान का जन्म होता है और उससे मान होता है ।<sup>१</sup> यह बुरा लक्ष मध्यम सीन प्रकार का होता है जोकि नायक नायिका के प्रच्युत प्रकाश भेद से प्रत्येक चतुर्विध हो जाता है । दसवें प्रभाव में इस मान को छद्माने के उपाय बताए गए हैं । साम दाम भेद प्रणति उपेक्षा एव प्रसंग-विध्वंस मान-मोचन के उपाय हैं । दण्ड से रस-हानि होती है ।<sup>२</sup> विवनाश ने भी छः उपायों का उल्लेख किया है ।<sup>३</sup>

तृतीय कृष्ण-विरह है । सामान्यतः कृष्ण विप्रलम्भ सब होता है जब नायक नायिका में से एक की मृत्यु हो जाती है किन्तु मिलन की आशा बनी रहती है और दय योग से मिलन हो जाता है ।<sup>४</sup> किन्तु राधा राधारमण के विषय में केवल इस प्रकार के कृष्ण विप्रलम्भ की कल्पना नहीं कर सकते थे । अतः वे अपने कृष्ण-विरह का लक्षण इस प्रकार गेते हैं कि जब मुख के सभी उपाय छूट जाएं, उम निराशा में कृष्ण का उदक स्वभावतः ही हो जाता है, वही कृष्ण विप्रलम्भ है ।<sup>५</sup> द्रष्टव्य है कि यह कृष्ण विप्रलम्भ मुख-उपायों के प्रभाव में आया है न कि प्रिय-नाश से जो कि कृष्णरस का क्षय है । 'रसिकप्रिया' का एक विशिष्ट उद्देश्य होने के कारण ऐसे ही स्थलों में केशव के लक्षण संस्कृत-भाषाओं से भिन्न हो गए हैं और यही उनकी मौलिकता है ।

चतुर्थ प्रवास-विरह है जो प्रिय के परदेशगमन पर होता है ।<sup>६</sup> इसकी चार अवस्थाएँ होती हैं—विभ्रम धनिद्रा मय एव विरह-निवेदन ।<sup>७</sup> बारहवा प्रभाव में केशव ने सभी-जनों का वर्णन किया है जिसमें पादजनी नाइन नगी पड़ोसिन मासिन आदि

१ बुरा प्रेम प्रताप तें, उपनि परतु अभिमान ।  
छाकी छवि के मोम तें केसव कहियत मान ॥

—रसिकप्रिया, नवम प्रभाव, छन्द १

२ साम दाम भनि भेद पुनि प्रणति उपेक्षा मानि ।  
पुनि प्रसंग-विध्वंस अरु दण्ड होइ रस-हानि ॥

—रसिकप्रिया दसवां प्रभाव छन्द २

३ देखिए साहित्यमण ३१२०५

४ देखिए साहित्यदर्पण, ३१२११

५ छूटि जात केसव जहां मुख के सबे उपाय ।  
कान्हा रस उपजन तहां आपुन तें अनुपाय ॥

—रसिकप्रिया बारहवां प्रभाव, छन्द १

६ 'केसव कौनहु जान तें पिय परदेसहि जाइ ।  
छापी कहत प्रवास सब कनि-कोविद समुझाइ ॥

—रसिकप्रिया, बारहवां प्रभाव, छन्द १

७ रसिकप्रिया, २११२४

हैं<sup>१</sup> जिनमें रीतिकाल की कुट्टिनियों का केशव ने अच्छा दिग्दर्शन कराया है। तेरहवें प्रभाव में भी यही विषय चलता है जिसमें दिखाया गया है कि ये सखियां किस प्रकार अपने काम बनाती हैं—

सिखा विनय मनाइबो, मिलिबो करि सिंगार ।

भुकि अरु बेइ उराहनो, यह तिनके व्यवहार ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार शृंगार के स्थूल भगों का वर्णन समाप्त होता है। चौदहवें प्रभाव में शृंगार की व्यापकता एवं रसराज की प्रतिष्ठा है जिसे हम आगे देखेंगे।

पन्द्रहवें प्रभाव में वृत्तियों का वर्णन है। वृत्तियां चार होती हैं—वैशिकी भारती भारमटी एवं सात्वती। केशव के अनुसार वृत्ति रस-वर्णन की होती है। इन वृत्तिओं का मूल भी भरत का 'नाट्यशास्त्र' है किन्तु वहां इनकी व्याख्या अभिनय के सम्बन्ध से ही हुई है। दशरूपककार ने भी विभिन्न रसों के विभिन्न प्रकार के अभिनयों से वृत्तियों का सम्बन्ध जाहा है और नायक के व्यापार की वृत्ति कहा है।<sup>३</sup> परन्तु केशव का दृष्टि कोण पाठ्य-काव्यपरक है अतः उन्होंने इन वृत्तियों का सम्बन्ध रसाभिनय के स्थान पर रस-वर्णन से जोड़ दिया है। संस्कृत भाषायों ने ऐसा नहीं किया। केशव के अनुसार हास्य, वरुण एवं शृंगार कोमल रसों का सम्बन्ध वैशिकी से है जिसमें सरल वर्ण होते हैं। वीर अवभुत हास्य मध्यम कोटि के रसों का सम्बन्ध भारती से है। रीति भय घीमत्स कठोर रस ममकादि के सङ्गादम्बर के साथ भारमटी में आते हैं तथा मदभुत, वीर शृंगार (शान्त प्रय-स्पष्टताप्रसादगुण) के साथ सात्वती में।<sup>४</sup> केशव ने इन वृत्तियों के जो उदाहरण दिए हैं उन सबमें भी शृंगार भगी रखा गया है।

सोलहवें प्रभाव में प्रत्यनीव<sup>५</sup> नीरस<sup>६</sup> विरस<sup>७</sup> दुःखान<sup>८</sup> एवं पात्रा

- १ भाई बनी नारन नदी प्रगट परोसिनि नारि ।  
मालिनि बरनि सिलिनी सुदिहरी, सुनारि ॥  
रामजनी मन्दासिनी, पट्ट पट्टा की बाल ।  
केमव नायक नायिका, सरती बरहि सन काल ॥

—रसिकप्रिया बारहवां प्रभाव छन्द १

- २ रसिकप्रिया, तेरहवां प्रभाव, छन्द १

- ३ दशरूपक, द्वितीय प्रकार छन्द ४७

- ४ रसिकप्रिया, पन्द्रहवां प्रभाव छन्द १ २ ४, ६, ८

- ५ अहं निगार बीभत्स भय, वीरहि बरनै कोर ।

रीति सु कला मिथत हा प्रयनोके रस कोर ॥

—रसिकप्रिया, सोलहवां प्रभाव छन्द १

- ६ अहं दम्पती मुद मिले सदा रहै यह रीति ।

कपट करै लपटाय तन मीरस रस की प्रीति ॥

—रसिकप्रिया सोलहवां प्रभाव, छन्द ४

- ७ अहं सोक महि भोग को बनतु है कवि कोर ।

'केमव' नाम दुनाम सो लही विरम रस कोर ॥

—रसिकप्रिया सोलहवां प्रभाव, छन्द ६

- ८ एक कोर अनुकुल अहं दुखी है प्रसिभूत ।

'केमव' दुःखान रस सोभिनि लही मन्मथ ॥

—रसिकप्रिया, सोलहवां प्रभाव छन्द ८

दुष्ट<sup>१</sup> नामक पाच रसदोष बतसाए गए हैं। जहाँ परस्पर विरोधी रसों का वर्णन हो वहाँ प्रत्यनीक मन में कष्ट के साथ प्रेम प्रकाशन में नीरस गीत के प्रसंग में भोग के वर्णन पर विरस रीति के लिए नायक-नायिकाओं में से एक के अनुकूल दूसरे के प्रतिकूल होने पर दुःखान, पोष्य के विरोधी पक्ष के पोषण में पात्रादुष्ट दोष होता है। कम्पन एवं हास्य बीमत्स से मय शृंगार वीर भयानक में सतत वैर होता है।<sup>२</sup> बीमत्स से मय शृंगार से हास्य वीर से भद्रमुत क्रोध से कर्णरस की उत्पत्ति होती है।<sup>३</sup> ये मायताए भरत के अनुकूल ही हैं।<sup>४</sup>

## कविप्रिया

प्रथम तथा द्वितीय प्रभावों में वन्दना एवं वग-परिचय के पञ्चात तृतीय प्रभाव से 'कविप्रिया' का वास्तविक प्रारम्भ होता है। 'कविप्रिया' की रचना केशव सामान्य शिक्षा धियों के लिए कर रहे हैं। इस विषय में प्रारम्भ से ही उनका मौलिकता का दावा नहीं सामान्य हेर फेर की बात दूसरी है।<sup>१</sup> वने काव्यपथ के पथिकों के लिए इसका उपयोग महान है।<sup>२</sup> गेय प्रभाव में काव्य-गोपों पर विचार किया गया है।

### काव्य में दोष

केशव दोषों के प्रति अत्यन्त सतक हैं। चौबे-से दाव से भी काव्य इस प्रकार दूषित हो जाता है जैसे एक बूढ़ भदिरा से गंगाजल का पूरा घट दूषित हो जाता है।<sup>३</sup> केशव पाच

१. बेसो जहाँ न भूनिष तैसो करिए पुष्ट ।  
बिनु विचार जो करनिष सो रस पात्रादुष्ट ॥

—रसिकप्रिया सोनइया प्रभाव छन्द १०

२. किम्व करना हास्य कहुँ अरु बीमत्स सिंगार ।  
बरनन वीर भयानकहि सनत वैर विचार ॥

—रसिकप्रिया, सोनइया प्रभाव छन्द १२

३. मय अपने बीमत्स तैं अरु सिंगार तैं हास्य ।  
'किसव' भद्रमुत वैर तैं करना कोप प्रकास्य ॥

—रसिकप्रिया, सोनइया प्रभाव छन्द १३

४. शृंगारादि भवेद्यास्यो रोगाच्च करयो रस ।  
वीरश्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्भीमलाञ्छ भयानक ॥

—नाट्यशास्त्र, छन्दों का व्याप्य छन्द ४

५. समुक्तै माला मालकनि बरनन पथ अगाध ।  
कविप्रिया 'किसव' करी, क्षमिऔ कथ अपराध ॥

—कविप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द २

६. कठमाल अ्यों कविप्रिया कठ करहु कविराज ।

—कविप्रिया, तृतीय प्रभाव छन्द ३

७. राखत रच म दोषजुन कविता कविता मित्र ।  
मरक बाला होत कथो गगाप अथवित्र ॥

—कविप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द ४

काव्य-दोष गिनाते हैं—अथ अधिर, पगु नग्न तथा मृतक । काव्य-अथ के विरुद्ध वर्णन करने में अथ दोष होता है । शब्द विरोधी अधिर छंद भगवासा पगु अतकार-हीन नग्न एवं अथहीन काव्य मृतक होता है ।<sup>१</sup> काव्य की पुरुष-रूप में कल्पना करके रीति, अलंकार, गुण एवं दोषों का सम्बन्ध उसके साथ स्थापित करता कोई नई बात नहीं । मम्मट, विरचनाय आदि ने इस प्रकार का अलंकारिक विवेचन किया है ।<sup>२</sup> राजशेखर ने भी काव्य की पुरुष रूप में कल्पना वही सुन्दरता से निभाई है । किन्तु इस आधार पर दोषों का वर्गीकरण करना केशव की मौलिकता है । दोषों का यह स्पष्ट वर्गीकरण है । पथ विरोधी अथ दोष म देश विरोध काल विरोध लोकव्याय धामम विरोध कवि प्रसिद्धि विरोध जैसे दोषों को समझना चाहिए । शब्द विरोधी पगु के अन्तर्गत हीनत्रय कर्णवट पद पदांश एवं शब्दोप आदि आते हैं । छन्द विरोधी पगु में यतिभंग ध्वन आदि सभी दोष कहे जा सकते हैं । नग्न दोष के केशव ने दो भेद किए हैं—हीनालंकार एवं हीनरस । तात्पर्य यह है कि अलंकार-सम्बन्धी एवं रस-सम्बन्धी दोषों के होने पर काव्य की नग्न कहना चाहिए । यह दृष्टव्य है कि केगव ने रस-दोष एवं अलंकार-दोष दोनों को एक कोटि में रखकर नग्न कहा है । इसका यह तात्पर्य निवासना भूल हांगी कि केगव रस और अलंकार को एक ही दर्जे का समझते हैं । वे रसवादियों के समान केवल रस को काव्य की आत्मा नहीं कहते अपितु ध्वनिवादियों के समान विविध अर्थ को काव्य की आत्मा मानते हैं अतः अव्यंशित काव्य को मृत कहते हैं । हीनरसवाला काव्य मृतक तो नहीं कहा जा सकता नग्न शरीर की भांति यह गहिन हो सकता है । उसकी उपादेयता ही कम हो सकती है ।<sup>३</sup> इधर केगव अलंकार का बहुत व्यापक अर्थ लेते हैं जिसमें वक्ष्य एवं वर्णन गली दोनों आते हैं । इस दृष्टि से अलंकार-दोष एवं रस-दोष दोनों को एक कोटि में रखना समीचीन कहा जा सकता है । प्रचलित अलंकारों की दृष्टि से काव्य की नग्न कहना तो ठीक लगता है किन्तु रस-दोषों की दृष्टि से नहीं । दूसरी बात मृत दोष के विषय में है । अथहीन को ही मृतक कहना ठीक है हीन अर्थ को नहीं ।

- १ अथ अधिर अथ पगु नग्न मृतक मतिमुक्त ।  
अथ विरोधी पथ की, अधिर छ सधरविरह ।  
शब्दविरोधी पगु नग्न नग्न मु भूषणहीन ।  
मृतक कहने अथ विनु, कल्पन तुलनु भरीन ॥

—कविप्रिया, लीप प्रभाव पृष्ठ ६, ७

- २ काव्यस्य शब्दाधीन शरीरं रसरवासा गुणा शौर्यान्विता काव्यत्वादिकं रीतिवैचल्य-  
सम्भानान्निगु अलंकाराश्चकटक मुवदभाविन् ।  
—साहित्यदर्पण १ । १३

- ३ नहि कटासुवेभादयोरलंकारतत्त्वं व्याहन्तुभोरा  
दिन्तु उपादयन्तुभ्यमेवकनु म् ॥

—साहित्यदर्पण, प्रथम परिचये

भोज<sup>१</sup> आदि ने भलकार-दोषों को मान्यता दी है किन्तु परवर्ती भाषाओं ने भलकार-दोष नहीं माने जैसे मम्मट, विश्वनाथ<sup>२</sup> इत्यादि। उन्होंने उनका अन्तर्भाव अन्य दोषों में ही करके दिखाया है। उनके अनुसार दोष पाँच प्रकार के होते हैं—पदगत पदाश्रित, वाक्यगत अश्रित एवं रसगत। केवल न प्राचीन तथा नवीन सभी भाषाओं के दोषों को लेकर नया वर्गीकरण उपस्थित किया है।

आलोचक केवल के इस दृष्टिकोण को ठीक न समझ सकने के कारण इन दोषों की सख्या घगले दोषों से जोड़ते हैं। केवल ने तो यह सामान्य वर्गीकरण किया है जिसमें सभी दोषों का समावेश किया गया है। यों तो दोष अनेक हैं किन्तु परिचयाप केवल कुछ दोषों को दिखाते हैं। उन्होंने भगण, हीन रस यतिभग व्यय अपार्य हीन क्रम कणकट पुनरक्ति देग विरोध जान-विरोध लोकन्याय भागम विरोध—ग्यारह दोष दिखाए हैं।<sup>३</sup> इस प्रकार आदय के रूप में केवल ने सब प्रकार के दोषों से सिध हैं। भगण दोष के जानने के लिए वार्णिक छन्दो के गुणों को जानने की आवश्यकता है। केवल उनका परिचय देते हैं उनके देवता उनको जाति फलफल आदि का विचार दिखाते हैं जोकि पिगल एवं वृत्त रत्नाकर के आधार पर होने के कारण शास्त्रीय है। 'रसिकप्रिया' की भाँति 'कविप्रिया' में पाँच रस-दोषों का उल्लेख है।<sup>४</sup> केवल ने वर्गीकरण का ठीक आधार न समझने के कारण प० कृष्णदाकर सुक्ल डा० गरीरम मिश्र प्रो० कृष्णचन्द्र वर्मा आदि आलोचकों ने सब मिलाकर केवली दोषों की सख्या छठारह मानी है और

१ हीनोपम मवेत्त्वान्यदधिकोपममेव च।

भिन्नलिङ्गोपम भिन्नवचनोपमेव च ॥

— (प्रकार द्वारा भोज)

२ दस्य दृष्यलकारदोषाणां नैव समान ॥

—साहित्यदर्पण ७/७

३ भगण न कीजै हीनरस अरु केवल अतिभग।

व्यय अपारय हीनक्रम, कविकुल तजहु प्रसंग।

बर्नप्रयोग न कनकटु मुनहु सकल कविराज।

सर्वे अर्थ पुनरक्ति के द्यौइहु सिगरे सान।

देमविरोध न बरनियै जानविरोध निहारि।

लोकन्याय भागमन के, सनो विरोध विचारि ॥

—कविप्रिया, स्तंभ प्रभाव छन्द १४, १५, १६

४ प्रत्यनीक नीरस विरस केवल दुःस्थान।

पात्रादुष्ट कविच ॥ करहि ॥ सुकवि बखान ॥

—रसिकप्रिया, सोलहवाँ प्रभाव छन्द १

५ केवल नीरस विरस अरु दुःस्थान विषय।

पात्र नु दुष्टान्त्रिक को, रसिकप्रिया में जान ॥

—कविप्रिया, तृतीय प्रभाव छन्द ५६

उलटी-सीधी आलोचना भी की है।\*

### कवि भेद

चौथे प्रभाव में वेशव तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख करते हैं—उत्तम, मध्यम एवं अधम। गुण-कम-स्वभाव के आधार पर उनकी मतियां भी तीन प्रकार की होती हैं।<sup>१</sup> अपने उदाहरण में केशव ने यक्ष-कवियों को उत्तम, मानव-कवियों को मध्यम एवं सदोष काव्य-कविओं को अधम कहा है।

### कवि रीतियां

सत् को असत् एवं असत् को सत् मानकर कवि वणन करते हैं। न होने पर भी उसका वणन करते हैं<sup>२</sup> और होने पर भी उसकी उपेक्षा। जैसे प्रत्येक सागर के वणन में रत्नों का उल्लेख साधारण-से सरोवर में भी हूँ एवं कमलों का वर्णन घाटि। छारे कृष्णपक्ष में अधरा ही मानना तथा समस्त शुक्लपक्ष में चंद्रिका की ही कल्पना करना।<sup>३</sup> इसके अतिरिक्त अनेक कवि नियम हैं जैसे चन्दन का मलय पर ही वणन और भोजपत्रा का हिमालय पर ही वणन<sup>४</sup> करना इत्यादि। ये कवि-सिद्धांत एवं व्यवस्था के विषय हैं जिन्हें केशव ने 'वाक्यकल्पसत्तावृत्ति एवं अलंकारसत्तर'<sup>५</sup> से लिया है।

### अलंकार-वणन

काव्य में अलंकारप्रियता के कारण वेशव को प्रायः अलंकारवादी कहा जाता है। रस विवेचन के प्रसंग में हम दिखा चुके हैं कि किस प्रकार ध्वनिवादी भाषायों के साथ रहकर काव्य में रस की समीपरी सत्ता स्वीकार करते हैं। काव्य में अलंकारों का

१ केशव की काव्यकला, कृष्णराकर शुक्ल

द्विनी काव्यशास्त्र का इतिहास भा० श्रीराम मिश्र, पृष्ठ ५८-५९

भाषाव कवि केशव कृष्णचन्द वर्मा पृष्ठ १५९

केशव पद अभ्युपन, भा० सरनामसिंह 'अरुण

२ केशव तीनिशु लोक में त्रिविध कविनि के तात ।

मनि पुनि तनि प्रकार की बरनन मति अकान्त ॥

उत्तम मध्यम अधम कवि उत्तम हरि-रसलील ।

मध्यम मानव मानमनि दोषनि अधम प्रवीन ॥

—कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव अन्ध १, २

३ सींची बान म बरनही झूठी बरननि बानि ।

एकनि बरनन नियम करि कवि-मग विविध बखानि ॥

—कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव अन्ध ४

४ केमनास प्रकाश छव चन्द के फल फूल ।

शुक्लपक्ष की मोन ज्यो, शुक्लपक्ष तम तूल ॥

—कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव अन्ध २

५ देसिप कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव अन्ध ११ से १६ तक

६ देसिप अलंकारोद्यत, मरीचि १५, पृष्ठ ८०-८१





का पंचम प्रभाव म उल्लेख किया गया है।

२ छठ प्रभाव में वर्णालिखारों का वर्णन है। इनमें विभिन्न गुणवासी वस्तुओं की तालिकाएँ हैं जैसे सम्पूर्ण आवन और कुटिन आदि।

३ सातवें प्रभाव में देश नगर वन-भाग सरित सरोवर मृग, पक्ष पद्मस्तु आदि प्राकृतिक उपादानों का निरूपण है।

४ आठवें प्रभाव म राजा रानी भगी सेनांग आदि राजकी सामग्री का वर्णन है।

इस प्रकार केशव ने वक्ष्य-वस्तुओं के चार भाग कर दिए हैं। इन वस्तुओं का सबसे काव्य-निष्ठा से है और इनका आधार 'वाक्यकल्पसतावृत्ति' तथा 'भक्तिकार-शेखर' हैं। यमे कहीं कुछ वस्तुएँ छोड़ दी गई हैं और वहीं बढ़ा दी गई हैं। 'वाक्यकल्पसतावृत्ति' म भूमी और राजकी का उल्लेख नहीं था किन्तु केशव ने उनके वर्गीकरण में इनकी स्थान दिया है। क्योंकि यह तो सामान्य शिक्षा का विषय है, आचार्यत्व का नहीं। विविष्टा सकार हमारे प्रचलित भक्तिकार हैं जिनके सक्षण एवं उदाहरण नवें प्रभाव से लेकर चौदहवें प्रभाव तक दिए गए हैं। केशव ने कुल सैंतीस भक्तिकारों पर विचार किया है। प्रायः केशव ने दबड़ी भासह उद्भट एवं कव्यक को ही आधार बनाया है। उन्होंने प्राचीनों का सम्मानकरण नहीं किया तथा भाव-यक्तानुसार परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किए हैं। उनसे सभी हेरफेर नगरीर शास्त्रीय विवेचन के योग्य हैं।

पाँदहवें प्रभाव म नक्ष-शिक्ष-वर्णन एवं यमकालकार का निरूपण हुआ है। चौदहवें प्रभाव म केशव ने उपमा के साईस भेदों का निरूपण किया है। अतः पाँदहवें प्रभाव में उन्होंने प्रसंगवा नक्ष-शिक्ष के माध्यम से प्रत्येक धन के अनेक उपमान जुटाए हैं। वास्तव में इस वर्णन को उपमा का ही वर्णन समझना चाहिए। यमक के भी अनेक भेद दिखाए गए हैं। सोलहवें प्रभाव में चित्र-वाक्य के भेद हैं।<sup>१</sup>

'कविप्रिया' की उपयोगिता पर स्वयं केशवदास का विश्वास है—

सुखरत-जटित पदारथनि भूषन भूषित मान।

कविप्रिया है कविप्रिया कवि की जीवन प्रान ॥<sup>२</sup>

### आचार्यत्व की पृष्ठभूमि

केशव के इस व्यापक वाक्यशास्त्रीय क्षेत्र पर दृष्टिपात करने में यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वे हिन्दी-साहित्य के प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने वाक्यशास्त्र पर सर्वांगीण

१ केशव चित्र समुच्चय में सूत्र परम विचित्र।

ताके सुंदर के कने करन ही सुनि मित्र ॥

अथ कथं विन विचित्र अति रमणीय असार।

बहिर अथ वन अथन के अनिजत अथन विचार ॥

—कविप्रिया श्लोकार्थ प्रभाव, पृष्ठ १२

२ कविप्रिया, श्लोकार्थ प्रभाव पृष्ठ ८६

विचार किया। किन्तु उनके भाषायत्व के स्थान के विषय में आज मतभेद है। डाक्टर मंगीरय मिश्र ने ठीक ही लिखा है कि—

“अपने समय में और सम्पूर्ण ऐतिहासिक में वैश्व का स्थान एक भाषाय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। न केवल भाषार्थ बनूँ कवि के रूप में भी वैश्व की प्रसिद्धि हिन्दी साहित्य के रसिकों के बीच भाषुनिकवास के प्रारम्भ तक रही। अतः उसी प्रभाव और प्रसिद्धि की परम्परा को स्थापित रखनेवालों जानता के लिए यह एक आश्चर्य की बात हुई कि हिन्दी-साहित्य के भाषाय की ख्याति में वर्तमान समय की आलोचना द्वारा इतना बढ़ा लगेगा।”

वैश्व की प्रतिष्ठा का पादप भाषाय शुक्ल की लौह-सेखनी के आघात से फिर नहीं बन सकता। इसका कारण इस युग का बदलता हुआ दृष्टिकोण ही है। मध्यकाल में आलोचना के मानदण्ड संस्कृत-साहित्य के थे अतः मध्यकाल आलोचना एवं मान्यता के लिए संस्कृत-साहित्यशास्त्र का परिशीलन करता था। आज आलोचना के मानदण्ड बहुत बदल गए हैं। अतः आज का आलोचक उन शास्त्रीय मान्यताओं की उपेक्षा कर स्वयं ही अध्ययन करता है। यह कगला वैश्व इसलिए है कि उसे मध्यकालीन साहित्य की आलोचना करनी है। किन्तु उसका गंभीर अध्ययन न होने के कारण उसकी आलोचना उथली रह जाती है। दूसरा आलोचक भी प्रथम की आलोचना के आधार पर आलोचना कर देता है। यही क्रम चलता रहता है। यही बात वैश्व के लिए हुई। शुक्लजी के उपरान्त अधिकांश आलोचक वैश्व के दोष दिखाने में ही प्रवृत्त रहे हैं। वस्तुतः मत्त तो यह है कि प्रायः आलोचकों ने वैश्व के भाषायत्व को गंभीरता से समझने का प्रयत्न नहीं किया। आज युग बदल रहा है। युग स्वयं आकाशु होकर अपने हृदय से पूछने लगा है कि संस्कृत के अनुशीलनकाल में तो वैश्व की मान्यता उच्च शिखर पर थी और आज उसने विपरीत क्यों है? वैश्व में खोटा है या आलोचना में इसका आज निगम होना चाहिए। आज आवश्यकता इस बात की है कि वैश्व के भाषायत्व के लिए उनके एक-एक शब्द को लेकर परखा जाए, संस्कृत-साहित्यशास्त्र की सभी स्थापनाओं के समक्ष उन्हें रखकर तोना जाए और तब कुछ उनके विषय में निगम दिया जाए। इस प्रबन्ध के कलेवर में इतना न तो सम्भव है और न हमारे विषय के अनुरूप इसकी यहां भरोसा है फिर भी हम भाषायत्व के दो प्रधान अंगों—रस एवं अलंकार के विषय में वैश्व के भाषायत्व का मूल्यांकन करने का प्रयत्न करेंगे। निम्न स्थावीपुताव्याप्त स इन दो आख्याओं का भाषायत्व हमें उनके समस्त भाषायत्व की प्रौढ़ता-अप्रौढ़ता का अनुमान करा सकता है।

### रस निरूपण

अब हम अपनी योजना के अनुसार प्रथम ‘रसिकप्रिया’ के रस-विवेचन-सम्बन्धी छंदे तथा चौदहवें प्रमाणों को लेते हैं। इसमें निम्न विषय आते हैं भाव का सक्षण भावों

के प्रकार, विभाव-लक्षण एवं भेद, अनुभाव सात्त्विक भाव स्थायीभाव व्यभिचारीभाव शृंगारैतररस (हास्य वन्धन, रौद्र धीर भमानक, धीमत्स अद्भुत शान्त) ।

## भाव

केशव के अनुसार भाव का लक्षण इस प्रकार है—

आमम सोचन वचन मग प्रगटत मन की बात ।

ताही सों सब कहत हूँ भाव कविनि के तात ॥<sup>१</sup>

मुख नेत्र वचन आदि साधन मनोदशा या चित्तवृत्ति को प्रकट करते हैं । काव्य क्षेत्र में उसी चित्तवृत्ति को भाव कहते हैं ।

इस लक्षण में मुख नेत्र वचन आदि का वचन उपलक्षण-रूप में ही समझना चाहिए । मुख विभिन्न भूविकारादि चेष्टाओं एवं भावस्थितियों के द्वारा जीवन ग्रहणमा सजलता आदि विकारों के द्वारा एवं वाणी विभिन्न रूप धारण करके किस प्रकार मानव के मनोगत भावों को प्रकट करती है यह सर्वविदित है । संक्षेप में शरीर चेष्टादि जिन्हें शास्त्रीय पदावली में अनुभाव कह सकते हैं भाव प्रकटन के मार्ग ही तो हैं । इन्हीं मार्गों से जिन मनोदशाओं का प्रकटन होता है वे ही केशव की वाणी में 'भाव' हैं । शास्त्रीय भाषा में इसी बात को भी कहा जा सकता है कि अनुभावों के माध्यम से जिन मनोविकारों का वचन किया जाता है वे भाव कहलाते हैं । भाव की यह व्याख्या अनुभावों के माध्यम से है रसा के सम्बन्ध से नहीं ।

केशव के इस भाव-लक्षण को कई आलोचकों ने अस्पष्ट विलक्षण आदि विरोधों से विभूषित किया है । अतः यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ प्रमुख आचार्यों के भाव-लक्षणों को लेकर केशव के इस लक्षण की परीक्षा की जाए । रस-सम्बन्धी विषयों के निर्णय के लिए रसवाद के प्रमुख आचार्यों को लेना ही उचित होगा यों तो सृष्टि साहित्यशास्त्र आचार्य-परम्परा से भरा पड़ा है ।

यह प्रश्न उठता है कि किसके भावों का लक्षण दिया जाए । भाव वास्तविक रामादि आश्रय-पानों के हो सकते हैं कवि के हो सकते हैं अनुकर्ता नट आदि के हो सकते हैं तथा सामाजिक (दशक पाठक जोता) बन हो सकते हैं । इन दशा में व्यवस्था पत्र आचार्य किसके भावों का लक्षण करें ! लक्षण विधान के लिए वास्तविक रामादि मूल पानों के भावों को तथा नटगत भावों को छोड़ा जा सकता है क्योंकि मूल पानों में भाव वास्तविक रूप में चाहे कुछ भी रहे हों परन्तु बाह्य में अब तो उनका यही रूप है जो कवि द्वारा अनुप्राप्त या विलीन है अथवा प्रस्तुत काव्य में दिखाई पड़ता है । इस प्रकार कविगत एवं बाह्यगत भावों में भी अन्तर नहीं रहता क्योंकि कविगत भावों का प्रतीक ही तो बाह्यगत भाव है । इसी प्रकार नटगत भावों का भी कोई प्रतीक महत्त्व नहीं क्योंकि नटगत भावों की सीमा दशाएँ हो सकती हैं । प्रथम तो नट की अपनी निजी भाव

स्तिपति विषये काव्य-नाटक का काव्य सम्बन्ध नहीं। दूसरी अभिनय के अंग में काव्यात्मक भावों के प्रभावों की स्थिति। इन अंगों में भी वे नविगत भयवा काव्यात्मक भावों से भिन्न नहीं होते नष्ट हो जाते हैं। तीसरा प्रस्तुत भावों की वैसी ही अनुभूत्यात्मक स्थिति जहाँकि सामाजिक की होती है—इस अंग में वह सामाजिक से भिन्न नहीं होता। इस प्रकार लक्षण-विधा का लिए प्रमुखतया दो व्यक्ति सामने आते हैं—कवि एवं सामाजिक। कविता तथा काव्यगत भावों का अन्तर्भाव करके भा देखा जा सकता है क्योंकि कवि कभी तो निरपेक्ष दृष्टि में भाव-विधान करता है कभी सापेक्ष दृष्टि में। उनकी सापेक्ष दृष्टि हो किसी पात्र के शील या चरित्र के विषय में प्रायः सामाजिक की सम्मति स्थापित करता है। हम देखेंगे कि स्वयं प्रस्तुत-भाषायों के भाव-सम्पन्न में जो व्यक्तिगत अन्तर पाया जाता है उनमें इन दृष्टिकांशों का पर्याप्त हाथ है। एक दूसरा दृष्टिकोण और है जो भाव-लक्षणों में अन्तर प्रस्तुत करता है। जिसका आधार ही दृष्टि काव्य के व्यापक रूप पर है ता किमात्र दृश्य-मात्र पर। इनके अनिरिक्त कोई पात्र-मात्र पर दृष्टि जमाकर भावार्थ को लक्षण करना है। इसी कारण एक की दृष्टि अभिनय-मक उपांगन पर अधिक होगी ता दूसरे की वर्णनात्मक सामग्री पर अधिक। अब हम विभिन्न भाषायों के भाव लक्षणों की धार सुविधा में बत सकते हैं।

भरतमुनि

भरतमुनि ने भाव का लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

वागवसस्त्वोपेतान्काव्यायान्भावयन्तीति भावा इति ।<sup>१</sup>

अर्थात् वाचिक आंगिक सात्त्विक विभिन्न साधना से उपस्थित किए जानेवाले काव्यात्मक भावों का भावने<sup>२</sup> करानेवाला उपांगन भाव कहलाता है—भाव की यह व्याख्या उस विभावने-शक्ति के माध्यम से की गई है जिसके द्वारा काव्याधीन रसादि सामाजिक का अनुभूति का विषय बनता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विभावने-शक्ति का सम्बन्ध काव्याधीन न जाड़ा गया है। अतः काव्यगत भावों पर विचार करते हुए अभिनय के उपांगनों पर दृष्टि रखी गई है।

भरत ने आनुबन्ध इन्द्रोक्तों के रूप में दूसरे प्रकार से भी भाव का लक्षण किया है—

वागवसस्त्वोपेतान्काव्यायान्भावयन्तीति भावा इति ।

कवेरन्तगत भाव भावयन्भावा उच्यते ॥<sup>३</sup>

१ नाट्यशास्त्र भरतमुनि पृष्ठ १४

२ भावने शब्द का अर्थ भरत इस प्रकार करते हैं—

भूयति करणे भावु तथा च भावित्वा भाविन कृतफिक्कनयन्तरम् ।

लोकेषु च विद्वद्भ्यो ज्ञानेन कथ्येन रसेन वा सत्यं च भाविनिनि ।

—नाट्यशास्त्र पृष्ठ १०४१५

तत्पर्य यह कि भावने का अर्थ है करना या भावित्वा करना ।

३ नाट्यशास्त्र पृष्ठ १०५

वाचिक, भांगिक सात्त्विक अभिनय के द्वारा कवि के अन्तर्गत भावों का भावना करनेवाले तत्त्व भाव हैं। स्पष्ट है यहाँ सब कुछ वही रखते हुए दृष्टि काव्यगत भावों की अपेक्षा 'वचिगत भावों पर रखी गई है। फिर भी भरत काव्यगत और वचिगत भावों की भलग भलग करने नहीं देखने। एक ही बात को दोनो दृष्टियों से कहकर वे दोनो की एकता ही दिखाते हैं। भानुवर्य यलोका के भिसे-जुने घनन से यही बात स्पष्ट होती है।<sup>१</sup> हाँ उनकी दृष्टि शुद्ध अभिनय काव्य पर ही है।

### घनजय

प्रायः भरत का ही अनुगमन करनेवाले घनजय का दृष्टिकोण भाव के सम्बन्ध में कुछ भ्रम था। उन्होंने भाव-तक्षण में वचिगत या काव्यगत भावों पर हाँ ध्यान नहीं रखा अपितु भावक सहृदय के भावों पर भी रखा है। उनका तक्षण इस प्रकार है—

सुखदुःखवाचिकभावभावस्तदभावभावनम्।<sup>२</sup>

इसपर धनिक की टीका इस प्रकार है—

धनुःकार्याधिपदेनोपनिबध्यमान सुखदुःखादिरूपभविस्तदभावस्य भावकचेतसो भावर्त वास्तवं भावः।<sup>३</sup>

धर्मात् काव्य में मूल शान रामादि का सहारा पकड़कर सुख-दुःखादि भावों का संविधान किया जाता है। अभिनय-कौशल से या काव्यशक्ति के प्रभाव से भावक सहृदय का चित्त सद्भाव या 'तद्वैतान' हो जाता है और वैसे ही भावों की घनमूर्ति करने लगता है। क्योंकि काव्य के माध्यम से छाए हुए भाव भावक के हृदय की छपने की रंग में भावित या वासित कर देते हैं। इसी भावन की प्रिया व कारण इन्हें भाव कहते हैं।

घनजय और धनिक के भाव-तक्षण का मूल तात्पर्य वही है जो भरत का। किन्तु दृष्टिकोण भेद से उनकी परिभाषा भिन्न हो गई है। काव्य में वचिगत मूल पात्रों के भाव हैं जिनकी वस्तुता वचि न की है वे सहृदय की भाव स्थिति धरने रूप में ही कर देते हैं। इस 'तद्वैतान भावने' की शक्ति जिनमें है वे 'भाव सत्ता के धारिणी हैं। धनिक की भाषणा हुई कि वही भरत की चान्दायनी से भिन्न चान्दायनी हान के कारण कोई भाषण न करे। अतः उन्हें स्पष्ट कहना पड़ा कि यह भेद कोई मौलिक नहीं दृष्टिकोण-मात्र का

- १ विभावैरुक्तो मोक्षो कनुभावेणु गन्धर्वे ।  
बागलप्रतामिनो ॥ भाव इति सज्जि ॥  
बागलप्रतामिनो सार्वनामिनो न ।  
कोत्तमन भाव भावयन्भाव उच्यते ॥  
नानाभिनयमनन्ताभावयन्ति रत्नानिमान् ।  
यन्नायन्तामी भावा विवेका सादृशयोगि ॥

—नारदसूत्र १८१ ५

- २ दशरूपक चतुर्थ प्रकाश दृ-४

- ३ दशरूपक, दोशकार धनिक, चतुर्थ प्रकाश दृ-४ की टीका

है।<sup>१</sup> घनजय की दृष्टि सहृदय पर है तथा उसकी व्याख्या के लिए उन्होंने काव्यगत सुख दुःखादि भाव-क्षणन को पक्का है। जबकि भरत ने अपने लक्षण के स्पष्टीकरण के लिए प्रागिक वाचिक आदि अभिनय के उपादानों को अपनाया था। वसु भट्ट देखने से यह स्पष्ट है कि घनजय की परिभाषाएँ भी अभिनेय काव्य को लक्ष्य बनाकर ही चली हैं।

मम्मट

भावाय मम्मट ने भाव का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

रतिदेवादिबिषयया अभिषारी तयाजित । भावः श्रोत्रम् ॥<sup>२</sup>

अपान देवादि-विषयक रति और विभावानि सामग्री से अभिव्यजित संचारी (भाव) कहलाते हैं।

वास्तव में मम्मट का यह 'भाव-सामाग्री' का लक्षण नहीं। यह 'भाव-ध्वनि' का लक्षण है एवं पारिभाषिक है जिसे कि उन्होंने सूत्र बयालीस 'रसभावतदामास भावगान्त्वा दिरक्रमः'<sup>३</sup> की कारिका में क्रम प्राप्त व्याख्या के प्रमग में दिया है।

विश्वनाथ

विश्वनाथ ने लक्षण इस प्रकार किया है—

नानाभिनयसम्बद्धान् भावयन्ति रसान् यतः ।

तस्मान् भावाः समी श्रोता स्यामि संचारि सात्त्विका ॥<sup>४</sup>

यह भाव-लक्षण भरत के आनुवक्ष्य श्लोक का ही रूपान्तर है। भरत के लक्षण में भाव-क्षेत्र की परिधि स्पष्ट नहीं की गई थी। विश्वनाथ ने उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है। स्यामी संचारी सात्त्विक समी जोकि विभिन्न अभिनय-सम्बद्ध रसों का भावन कराते हैं 'भाव' कहलान के अधिकारी हैं। विश्वनाथ का दृष्टि यहाँ स्वतंत्र एवं मौलिक नहीं। उन्होंने भरत की अभिनेय काव्यपरक दृष्टि को ही अपना लिया है। यह ठीक है

१ यत्तु रसान्भावपरीतिनाम इति कवेरुत्पन्न भाव आशयभावा इति ॥ तन्भिनयकान्ययो प्रवर्तमानस्य साक्षात्कृत्य प्रवृत्तिनिमित्तकथनम् ।

—इत्युक्तं चतुर्थ प्रकारा द्दम् ४ की टीका

इत्यत्र पठितं सुगोप्यार्थमी की व्याख्या है—

ननु स्यात् किं रूपकचेतसो भावनाद् भावत्वं मन्वस्येति प्राचीनैस्तु रसान् भावयन् भावः केहेतुत्वाभावात्कथान्भावा—कविद्वन्द्वभावात्कथे च भावस्य भावत्वमुक्तमिति प्राचीने विरोधः प्रोक्त इत्यादिभिरुक्त्या मया हि रसिकमुनेषु मन्व-इत्यस्याय उक्तं प्राचीनानां तन्भाव एवाभिव्यञ्जयितुं भावा नक्त काव्यन् भावतन्कोभिलष इत्येव काव्याभिनययो प्रवर्तमानस्य (शेषकस्य) भावस्यास्ति विरुद्धमेतत् विरोधः । काव्यस्य रसभावकर्तृ अभिनयस्य च कविद्वन्द्वभावात् भावत्वं सुस्पष्टमेव ।

—इत्युक्तं चतुर्थ प्रकारा द्दम् ४ की टीका

२ काव्यप्रकारा चतुर्षु उक्तानि सूत्र ४८

३ काव्यप्रकारा चतुर्षु उक्तानि सूत्र ४८

४ साहित्यदर्पण टीका परिच्छेद, श्लोक १-६

कि विन्वनाथ के वाक्य की परिधि में दृश्य एवं श्रव्य दोनों प्रकार के वाक्य आते हैं और उन्होंने अपने साहित्यरूपण में विभिन्न अभिनयों को लिया भी है परन्तु कुछ पाठ्य वाक्यगत भावों के ऊपर इस लक्षण को ठीक-ठीक समाने के लिए कुछ न कुछ ऊपर से जोड़ना ही पड़ता है।

उपयुक्त सभी लक्षणा में भरत का ही अनुकरण लिया गया है। भरत का लक्षण यद्यपि पर्याप्त रूप में व्यापक है तथापि उसकी अपनी सीमा है। एक तो उसमें दृष्टि की अभिनयपरकता प्रधान है तथा अपेक्षित पूर्ण विस्तार नहीं है क्योंकि रस मात्र के सम्बन्ध में उनकी व्याख्या हुई है। उन्होंने अपनी दूसरी परिभाषा 'वाक्यार्थान् भावयन्तीति भावा' के वाक्यार्थ को भी रसों तक सीमित कर लिया है। रसान् भावयन्तीति भावा को यदि मान लिया जाए तो जो रस का भाव बन कराते हैं वे तो भावद्वय परन्तु जहाँ भाव स्वतन्त्र रूप में ध्वनित होकर भाव ध्वनि के रूप में प्रकट है वहाँ तो वह रस का भाव बन करानेवाला नहीं स्वयं भावित होनेवाला है। तब उसे भाव कैसे कहेंगे! इस सीमा-संकोच का कारण यही कहा जा सकता है कि लक्षण निर्माण में भरत की दृष्टि स्थूल रस व्यञ्जनाद्या पर ही अधिक थी। सूक्ष्म भाव ध्वनियाँ पर दृष्टिपात तो ध्वनि-सिद्धान्त को व्यापक एवं सुदृढ़ प्रतिष्ठा के उपरान्त ही हो सके।

### जगन्नाथ

पद्मिनीराज जगन्नाथ ने पूर्ववत् के रूप में दो भाव-लक्षण उपस्थित किए हैं—

१ विभावानुभावाभिन्नत्वे सति रसव्यञ्जकत्वम् ।<sup>१</sup>

अर्थान् विभाव अनुभाव को छोड़ रस-व्यञ्जक उपादान भाव है।

२ रसामिव्यञ्जकत्वणाविषयवित्तवृत्तित्वम् तत्त्वम् ।<sup>२</sup>

रस को अभिव्यञ्जक अवस्था का विषय बनानेवाली चित्तवृत्ति भाव है।

प्रथम लक्षण में उन्होंने दोष दिखाया है प्रथम रूप से ध्वयमान भाव में अभिव्यक्ति।

उपयुक्त भरत ध्वनि के लक्षण इसी बात के हैं। दूसरे में यह दाप है कि वही-वही भाव भी अनुभाव रूप में आ जाता है तो उसमें इस लक्षण की सभी बातें पूरा आगयीं। क्योंकि अनुभाव रसामिव्यञ्जक अवस्था के विषय होता है और चित्तवृत्ति रूप के हैं ही। अतः इस प्रतिष्ठापति में यह लक्षण समीचीन नहीं। इस प्रकार उन्होंने अपना भाव-लक्षण इस प्रकार दिया है—

३ विभावविषयव्यञ्जमान र्हर्याद्यन्तमत्वं तत्त्वम् ॥<sup>३</sup>

विभावार्थ से व्यञ्ज्यमान र्हर्यादि तृतीय या चौथी भावा में कोई रूप। पद्मिनीराज के विवरण की मूर्धमता में कोई मन्त्र नहीं किन्तु उनके दृष्टिबोध में भ्रम है। उनकी

१ रसगोषध पृष्ठ ७४

२ रसगोषध पृष्ठ ७५

३ रसगोषध पृष्ठ ७५

दृष्टि शुद्ध काव्यात्मक भावों पर है। वे भाव का उल्लेख भाव ध्वनि के प्रयोग में कर रहे हैं। काव्य में भाववृत्ति काव्य में विभावादि किसी न किसी सामग्री से सदा व्यज्यमान हो जाकर आती है। उद्धा नारा उसके कथन से तो यह बोध-क्षेत्र की वस्तु हो जाती है अनुभूति-क्षेत्र की नहीं। इस प्रकार विभावादि सामग्री से व्यज्यमान रूप प्राप्ति चित्तवृत्तियां भाव कहमान की अधिकारिणी हैं। यह उनका ध्येयमा पर निर्भर है कि वे स्थायी बनती हैं या मधारा ध्वय प्रधान रहना हैं या मौलिक पुनः व्यञ्जक बनती हैं या ध्वनि। मम्मट ने व्यञ्जित भाव को सामान्य रखा था किन्तु उनका भाव व्यञ्जित-मधारा-मात्र था। परंतु उनका अभिचारी तयाजिन पारिभाषिक बन गया था। किन्तु पंडितराज ने भाव की व्यज्यमानता-मात्र पर दृष्टि जमाई। अतः उनका मौलिक सुनी रही। इसी सत्ते दृष्टिकोण के कारण वे भावों को स्थायी मधारी सात्त्विक रूप में ही नहीं अनुभाव और विभाव के रूप में भी लिख सके यह हम आगे देखेंगे।

कैव ने भावों के विषय में अपना दृष्टिकोण पंडितराज के समान ही व्यापक रखा है। उन्होंने भी आचार्य जगन्नाथ के समान शुद्ध पाठ्य-काव्यगत भावों को ही लक्ष्य बनाया है। 'मन की बात या चित्तवृत्ति प्रकाश या व्यज्य हैं और उनकी व्यञ्जक सामग्री है—मानन मोहन वचन मग।' यहाँ देखना यह है कि पंडितराज ने व्यञ्जक सामग्री के लिए विभावादि 'ग' रखकर उसकी सीमा बहुत खोल दी थी जबकि भरतादि ने अनुभावोत्पत्ति को ही लिया था। किन्तु भरत विवनाथ प्राप्ति न भी जिन अनुभावों को लिया वे अभि नय के अंग बन गए। कैव ने उह अयनाकर उनकी अभिनयगतता को धूर कर वचनारम कना का परिचय देना लिया। लोक में भी हम किसीके भावों का ज्ञान उनकी मुखकृति उनकी चेष्टा अथवा नत्र-विकार एवं उनकी वाणी से ही करते हैं। काव्य में भी यह भावों बोध ही अनुभावोत्पत्ति विचारों से होता है और वाचवृत्ति तदेकानता अथवा 'तद्भाव भावने' की प्रथम सीढ़ी है। अतः अभिनय काव्य का ध्यान छोड़कर यदि विचार करें तो मनोगत भावों के प्रकाश य वाह्य विचार ही टहरत हैं जिन्हें कैव ने 'मानन नाहन वचन मग' कहा है। जब इनके विधान में काव्य में मनोगत दत्ता अथवा चित्तवृत्तियों की व्यञ्जना होनी है तो सगण के लिए इनका सङ्ग्राह लेना उचित ही था। यह पूछा जा सकता है कि कैव ने इह सीध-सीध अनुभाव नाम में क्या नहीं कह दिया? वान यह भी अनु भाव 'ग' से प्रायः वाह्य चेष्टाभावाही ग्रहण किया जान उगा है किन्तु कैव को अनु भाव 'ग' में वाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के इन्द्रिय-विकार ग्राह्य हैं जसाकि हम अनुभावों पर विचार करने हुए आगे देखेंगे। व नावा की भी अनुभाव-रूप में मानते हैं। अतः उहाने अनुभाव जम व्यापक शब्द का प्रयोग न करके उत्तमन से बचाया हा है। काव्य में विभिन्न मुखकृति के विचारों व वचन से प्रकटित होनेवाली चित्तवृत्तियां भाव हैं। कैव के इस सगण में भरत वनत्रय विवनाथ मम्मट एवं स्वयं पंडितराज जगन्नाथ



से अधिक व्यापकता है। मरत एव विश्वनाथ भावा के व्यञ्जक स्वरूप को देखते हैं मम्मट पारिभाषिक व्यञ्जित रूप को जगन्नाथ व्यञ्ज्यमान रूप को। किन्तु कैवल्य के भाव लक्षण म व्यञ्जित व्यञ्जक एव व्यञ्ज्यमान सभी भाव आ जाते हैं। कैवल्य के लक्षण की विशिष्टता म ही उसकी गहराई का रहस्य है। सामान्यतया देखने पर भी वह लक्षण सीधा एवं सरल है। काव्य में कवि-वर्णित चित्तवृत्तियाँ भाव हैं। उनका वचन से कथन नहीं होता, अनुभावों से प्रकाशन होता है। ऊपरी सरलता एव परिचायकता शिक्षण की है। अन्तर की गहराई एव प्रौढ़ आचार्य की।

## भावों के प्रकार

कैवल्य ने भावा को पाँच प्रकार का माना है—

भाव सु पंच प्रकार के, सुनि विभाव धनभाव ।

भाई सात्त्विक कहत ह, व्यभिचारी बबिराव ॥<sup>१</sup>

अर्थात् कवि लोग भावा का पाँच प्रकार से विधान करते हैं। विभाव-रूप में अनु भाव-रूप म स्थायी-रूप म सात्त्विक रूप म एवं व्यभिचारी के रूप म। कैवल्य की यह मान्यता भी हिन्दी के प्रौढ़ आचोचका को बड़ी अटपटी प्रतीत हुई है। स्थायी और व्यभिचारी तो भाव बहे जाते हैं। 'सात्त्विक भी सात्त्विक' भाव के नाम से पुकारे जाते हैं। किन्तु विभाव और अनुभावों को भाव पहना एक विचित्र बात है। और विनोय रूप से उस समय जबकि आचार्य विचिन्ताय भी तीन प्रकार के ही भाव मानते हैं।<sup>२</sup> अतः विभाव और अनुभाव रूप में भी भाव आत हैं या नहीं इसपर थोड़ा विचार करना आवश्यक है। इसके निष्पत्ति में पंडितराज जगन्नाथ का विवेचन अत्यन्त गह्रायक होगा।

पहले तो इस विषय में विभाव शब्द का ध्य समझ लेना चाहिए। यहां विभाव का अर्थ यह नहीं कि आलम्बन एव उद्दीपन-रूप म जसो रस निष्पत्ति के तिर स्थिति अर्थात् तत् है वसी स्थिति हो। केवल किसी भाव के जागरण के निमित्त कारण हो जाना भी विभाव कहला सकता है। हाँ यदि आलम्बन अथवा उद्दीपन-रूप म भी स्थिति प्राप्त जाए तो कोई रोग थोड़ा ही है।<sup>३</sup>

आचार्य जगन्नाथ ने भाव ध्वनियों के प्रसंग म अनेक ठेके उल्लेख दिए हैं जहाँ एक भाव कारण रूप होकर दूसरे भाव को जन्म देता है। वह काय-रूप भाव का व्यञ्जित

१ रसिकप्रिया दृष्टवां प्रभाव ध्वन २

२. मातृमित्रमन्त्रालय आचार्य १५५५ ७१ ।  
उपमा भावा सभी मोक्षणा रसिकप्रियाविश्व ॥

—साहित्य-वेद, ३ । १८३

३ विभावमन्त्रमभिचारिणो निमित्तकारण नामान्यम् । न तु रसस्यैव सारस्यमनोदग्ने प्रवेदिने । यदि तु कश्चित् सम्भवति न कार्यते ॥

—रसमन्त्राभर ५४७१

हाकर भाव-ध्वनि कहताएगा विन्तु कारण-रूप ज-मगता भावनाम्बीन दृष्टि से विभाव हो कहा जाएगा । प्रमाण-रूप में हम उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

समञ्जस-दहसिन् श्वसितानि तानि  
सा य कलकविपूरा मधुराननध्री ।  
अद्यापि मे हृदयमुभययन्ति हन्त  
सापतनाम्बुजसहोदरसोचनायाः ।<sup>१</sup>

इसमें एक विरहा का चित्र है । अपनी प्रियतमा के प्रिय म वह चिन्तित है उसी चिन्ता के फलस्वरूप उसे अपनी प्रियतमा की मधुर स्मृति उठ रही है । 'अम्माकासीन कमल के समान (स-जा के कारण) नकुचिन नखवासी उन रमणी का वह मञ्जुल मन्द हास विमो मोहता स हानेवाल व दाप नि-वास वह निष्कलक मुखरूपि हा । सब कुछ तो मेरे हृदय को सब भी उन्मत्त किए डालता है ।

इसपर महितराज की टिप्पणी है कि यहां प्रियतमा-विषयक चिन्ता-विशेष विभाव है अनुभावों का वर्णन नहा । किन्तु भीहा का उल्ला शरीर का निम्बल होना आदि नामक के अनुभाव आशय में जान जा सकते हैं । प्रियस्मृति में चमत्कार है और स्मृति का ज-म चिन्ता से हुआ है अतः स्मृति की 'ध्वनि है तथा चिन्ता विभाव है ।<sup>२</sup>

अन्य उदाहरण भी इस प्रकार के मिलते हैं ।

इसी प्रकार एक भाव का अनुभावन करानेवाले अन्य भाव की सहा अनुभाव भी हो सकती है जने भूम्या नामक मचारी की व्यञ्जना य—

कुत्र गव धनुरिह बबचाय प्राकृत शिगु ।  
मंगस्तु सबसहर्त्रा कालेनव विनिमित्त ॥<sup>३</sup>

राम ने शिव-धनुष का भंग किया है । उनके पराक्रम को न सह सकनेवाले राजा लोग भूम्यावय कह उठते हैं—

“कहा यह शिव का धनुष और कहा यह प्राकृत (गवता) शिगु इस धनुष का नाप तो सब कुछ विनाशक भगवान् बान न पहले ही कर दिया था । अन्यथा इस प्राकृत शिगु की क्या मजाल थी । यहां भूम्या भी व्यञ्जना है, राम के सर्वोत्कृष्ट बल का दशन उस भूम्या का कारण है, अतः विभाव है । प्राकृत शिगु कहकर जो राम की निन्दा की जा रहा है वह भूम्यावय अनुभाव है । यहा निम्न-भाव की अनुभाव-रूप में उभयस्मरण किया है । अनुभाव-रूप में एक और उदाहरण लाजिए—

१ रमणीय, पृष्ठ ७७

२ चिन्तविशेष-उपनिबन्ध । अनुभाव-विशेष-उपनिबन्ध आश्रय-विशेष-उपनिबन्ध ।  
नृपतेरवयवः सूर्य-उपनिबन्ध-उपनिबन्ध-उपनिबन्ध-उपनिबन्ध ।

३ रमणीय, पृष्ठ ६१

से अधिक व्यापकता है। भरत एवं विद्वनाय भावों के व्यञ्जक स्वरूप को देखते हैं, मम्मट पारिभाषिक व्यञ्जित रूप को जगन्नाय व्यञ्ज्यमान रूप को। किन्तु केव के भाव लक्षण में व्यञ्जित व्यञ्जक एवं व्यञ्ज्यमान सभी भाव आ जाते हैं। केव के लक्षण की गिथिलता में ही उसकी गहराई का रहस्य है। सामान्यतया देखने पर भी वह लक्षण सीधा एवं सरल है। काव्य में वद्वि-वर्णित चित्तवृत्तियाँ भाव हैं। उनका वचन से कथन नहीं होता अनुभावात् प्रकाशन होता है। उसी सरसता एवं परिचायकता गिथिव की है। अन्तर की गहराई एक प्रौढ़ आचार्य की।

## भावों के प्रकार

केव ने भावों को पाँच प्रकार का माना है—

भावः तु पञ्च प्रकारः के, मुनि विभावः अनुभावः।

पाई सात्त्विक ब्रह्म ह व्यभिचारी कविराव ॥<sup>१</sup>

अर्थात् वद्वि 'योग' भावों का पाँच प्रकार से विधान करते हैं। विभाव रूप में अनु भाव-रूप में स्थायी-रूप में, सात्त्विक-रूप में एवं व्यभिचारी के रूप में। केव की यह मान्यता भी हिन्दी के प्रौढ़ आलाचर्या को बड़ी झटपटी प्रतीत हुई है। स्थायी और व्यभि चारी दो भाव कहे जाते हैं। 'सात्त्विक' भी सात्त्विक भाव के नाम से पुकारे जाते हैं। किन्तु विभाव और अनुभावों को भाव कहना एक विचित्र बात है। और विशेष रूप से उस समय जबकि आचार्य विद्वनाय भी तीन प्रकार के ही भाव मानते हैं।<sup>२</sup> अतः विभाव और अनुभाव रूप में भी भाव आते हैं या नहीं इसपर बड़ा विचार करना आवश्यक है। इसके निगम में पंडितराज जगन्नाय का विवेचन अत्यन्त सहायक होगा।

पहले तो इस विषय में विभाव शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। महा विभाव का अर्थ यह नहीं कि आलस्य एवं उद्दीपन रूप में जमी रस-निष्पत्ति के लिए स्थिति अपेक्षित है वही स्थिति हो। केवल किसी भाव के जाग्रत के निमित्त कारण हो जाना भी विभाव कहला सकता है। हाँ यदि आलस्य अथवा उद्दीपन-रूप में भी स्थिति पाई जाए तो कोई रोक बाध ही है।<sup>३</sup>

आचार्य जगन्नाय ने भाव ध्वनिया के प्रसंग में अनेक तेजे उदाहरण दिए हैं जहाँ एक भाव कारण रूप होकर दूसरे भाव को जन्म देता है। यह वाच्य-रूप भाव ता व्यञ्जित

१ रसिकप्रिया छंदों प्रसार खंड २

२ नानाभिनयमन्त्राणां भावयन्ति एषान् यत् ।  
तस्मात् भावाः त्रीणि शब्दादिन्याससात्त्विकाः ॥

—साहित्यदर्पण ३। १८५

३ विभावः कथं व्यभिचारिणो निमित्तकारण सामान्यम् । न ॥ तस्मादेव सर्वसंभवोत्पत्तेः प्रवेदिने । यदि तु क्वचित् सम्भवः न कार्यते ॥

—रसज्ञानपर पृष्ठ ७९

होकर भाव ध्वनि कहलाएगा किन्तु कारण-रूप ज-मन्ता भावशास्त्रीय दृष्टि से विभाव ही कहा जाएगा । प्रमाण-रूप में हम उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

समञ्जसमदहसितप्रवसितानि सानि,  
सा य कर्नकविधुरा मधुराननयो ।  
अद्यापि मे हृदयममवर्षति हत,  
सापत्तनाम्बुजसहोदरसोचनाया ।<sup>१</sup>

इसमें एक विरही का चित्र है । अपनी प्रियतमा के विषय में यह चिन्तित है उसी चिन्ता के फलस्वरूप उसे अपनी प्रियतमा की मधुर स्मृति उठ रही है । 'सध्याकालीन कमल के समान (तज्जा के कारण) सज्जित नेत्रवासी उस रमणी का वह मञ्जुल मन्द हान विषोष भीरवा से हानवाले से दोर्य निश्वास वह निष्कलक मुखरूढ़ि, हाँ । सब कुछ तो मेरे हृदय को अब भी उमत्त किए डालता है ।

इसपर पंडितराज की टिप्पणी है कि यहाँ प्रियतमा विषयक चिन्ता विशेष विभाव है अनुभाव का वणन नहीं । किन्तु मौहों का उठना शरीर का निम्न होना आदि नायक के अनुभाव आक्षेप से जाने जा सकते हैं । प्रियस्मृति में चमत्कार है और स्मृति का ज-म चिन्ता में हुआ है अतः स्मृति को ध्वनि है तथा चिन्ता विभाव है ।<sup>२</sup>

अन्य उदाहरण भी इस प्रकार के मिलते हैं ।

इसी प्रकार एक भाव का अनुभावन करानेवाले अन्य भाव की सज्ञा अनुभाव भी है । सबनी है जैसे भ्रमूया नामक सचारी की व्यञ्जना में—

कुत्र गव धनुरिद श्वचार्यं प्राकृतं गिणु ।  
भंगस्तु सवत्सहर्त्रा कासेनव विनिमित्त ॥<sup>३</sup>

राम ने गिव धनुष की मग किया है । उनके पराक्रम को न सह सकनेवाले राजा लोग भ्रमूयावरा कह उठते हैं—

'कहाँ यह गिव का धनुष और कहा यह प्राकृत (गवेता) गिणु इस धनुष का नाग तो सब कुछ विनाशक भगवान का न पहले ही कर दिया था । भयथा इस प्राकृत गिणु की क्या मन्त्राल थी । यहाँ भ्रमूया भी व्यञ्जना है, राम के सर्वोत्कृष्ट बल का दर्शन उस भ्रमूया का कारण है, अतः विभाव है । 'प्राकृत गिणु' कहकर जो राम की निन्दा की जा रही है वह भ्रमूयाजन्य अनुभाव है । यहाँ निन्दा भाव को अनुभाव रूप में उपस्थित किया है । अनुभाव-रूप में एक और उदाहरण मौजिए—

१ रसगंगोधर पृष्ठ ७७

२ चिन्ताविरोधऽत्रविभाव । अनुतिष्ठाननिश्चयत्वात्तस्य आक्षेपमप्यनुभावः ।

रुद्रदेवात्रपुरं रूतितनूनां चमत्कारिताच्च तत्त्वनिष्ठं युज्यते ।

—रसगंगोधर, पृष्ठ ७७

३ रसगंगोधर, पृष्ठ ६५

कालागुरुद्रव सा हाताहसवद्विजानतो नितराम् ।

अपि भीसोत्पलमालां, घाला घ्यालार्णसि किलामनुते ॥<sup>१</sup>

विरहिणी सखी द्वारा दाह-शान्ति के लिए दिए हुए कालागुरु व द्रव को बिप भीर नीलकमलो की माला की घ्यालावलि समझ रही है । यहा भ्रम रूप जो वित्तवृत्ति है वह विरह के फलस्वरूप हुई है । अतः वाय रूप है साथ ही उसके विरह का अनुभावन भी कराती है अतः भ्रम अनुभाव है ।<sup>२</sup> अन्त म पंडितराज जगन्नाथ निरूप्य रूप म स्पष्ट कहते हैं<sup>३</sup> कि इन परिणमित सचारीभावा मे कोई भाव किसीका विभाव होता है, किसीका अनुभाव । जैसे ईर्ष्या निर्षेद का विभाव बन जाती है और भ्रमूपाया अनुभाव भी । चिन्ता निद्रा को जन्म देकर उसका विभाव बनती है तो वही औत्सुक्य का अनुभाव<sup>४</sup> ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव विभाव एव अनुभाव के रूप म भी धा सकता है यह कितना तर्कयुक्त तथा ग्रास्त्र-सम्मत है । केव के इस वर्गीकरण का महत्व आना चक के नेत्रों म तब भीर बढ़ जाता है जबकि यह ध्यान जाता है कि पंडितराज जगन्नाथ केव के परवर्ती हैं । अतः केव के ऊपर जगन्नाथ का प्रभाव पड़ सकने का प्रश्न ही नहीं उठता । यह दृष्टिकोण केव के अध्ययनगीत चिन्तन का परिणाम है जिसको उन्होंने साहित्य एव साहित्यग्रास्त्र के गभीर अनुशीलन के उपरान्त स्थिर किया होगा । साथ ही भावा के इस व्यापक वर्गीकरण की ध्यान म रखकर केव के भाव-समाय के सदाण का महत्व भीर स्पष्ट हो जाता है ।

**विभाव-लक्षण एव भेद**

केव विभाव का सदाण इस प्रकार करते हैं—

जिन तैं जगत अनेक रस प्रगट होत अनयास ।

तिन सों विभति विभाव कहि बरनत केसवदास ॥<sup>५</sup>

जिनसे अनेक रस उद्बुद्ध होकर अनायास प्रकट हो जाते हैं उन्हें विभाव विभाव कहते हैं<sup>६</sup> ।

१ रसगंगाधर पृ ७५

२ अत्र च भीम-प्रारधिकृत्य सर्वोदयनाया दशान विभाव । प्रादुर्गतिगुणगन्ध्या निजानुभाव ।

—रसगंगाधर पृ ७५

३ देखिए रसगंगाधर पृ ७५

४ एषु च सचारीभावेषु मध्ये केचन केचन विभाव अनुभावाश्च भवन्ति । तथाहि ईर्ष्या निर्षेदप्रति विभावश्च भ्रमूपाया प्रति अनुभावश्च । चिन्ताया निद्रायां विभावश्च औत्सुक्य प्रति चानुभावश्चमित्यादि स्वयमव्याख्यानम् ॥

—रसगंगाधर, पृ ६८

५ रसिकप्रिया, पृ ७४ मया, पृ ७५

६ अगु रास का भर्ष समार वरके भर्ष हम प्रभार होगा—लोच में जिनसे अनेक रस शपादि विभिन्न भाव उद्बुद्ध होते हैं उन्हें साम्य रस में विभाव कल्पित विभाव कहते हैं । यह लक्षण भी साहित्यचर्याकार के लक्षण मे दिक्कुल मिलता है । शपादुरोपका सोने बिभावाकाभ्यन्तरोपको ॥

—साहित्यचर्या पृ २२

विभाव का यह लक्षण विभावों का विभावन या रम है जो नाथ की शक्ति को ध्यान में रखकर किया गया है। सम्मान भी यह स्वाकार किया है—

विभाषणं धातनाहृतपाति सूक्ष्मान् रस्यादीन् स्याधिन आस्वादयोग्यतामा मयतीति विभाषा ॥<sup>१</sup>

केवल का रम शब्द भी विभिन्न भावा का ही वाचक है। भाव सामान्यतः मुख्य दशांश रहते हैं विभावों के आशय में यो आरित या उद्धृष्ट हो जाते हैं। उद्धृष्ट हुए उन भावा का प्रकट होना यही है कि वे सहस्रान्वय के द्वारा आम्वादिन किए जा सकें।

विभाष्यन्ते आस्वादोक्तुराधुमविषयोऽपि श्रियते सामाजिक रस्यादिभाषा एभि ॥<sup>२</sup>  
अन विभिन्न भावा को आस्वाद-योग्यता प्राप्त करानेवाले विभाव कहलाने हैं। यद्यपि केवल का यह लक्षण सबका शास्त्र-सम्मान है परन्तु भरत एवं धनञ्जय के लक्षण में कुछ भिन्न प्रतीत होता है। उसका कारण है उनका अभिनयपरक दृष्टिकोण।

भरत का लक्षण

विभाष्यन्तेऽनन्तवार्तागसंस्थाभिर्नया इति विभावः। विभावो नाम वित्तानाम् ॥<sup>३</sup>

वाचिक भागिक आत्त्विक अभिनय जिनके द्वारा जनता आते हैं वे विभाव हैं। धनञ्जय का लक्षण भी भरत का ही अनुगामी है।

साधमानतया तत्र विभावो नावयोपहृतः।

अनवर धनिक का भी बयान है कि हम नट का रामाणि नयी का सानाणि के रूप में समझ लें हैं। यद्यपि वे वास्तव में तो रामाणि नहीं हैं। यह उग प्रतिगयोक्ति का है। इस उग में जो वित्तानमान हैं उन्हें विभाव कहते हैं। स्पष्ट है कि उन परिभाषायाम् एवं व्याख्याओं का दृष्टिकोण अत्यन्त अभिनयपरक है। ये विभाव दो प्रकार के होते हैं—  
आलम्बन एवं उद्दीपन ॥<sup>४</sup> ये त्रेधा भा परम्परा प्राप्त एवं शास्त्र-सम्मान हैं ॥<sup>५</sup>

किन्तु इनमें दो की परिधि एवं स्वरूप में केवल का दृष्टिकोण सबका स्वतन्त्र एवं मौलिक है। आलम्बन का लक्षण भी इस प्रकार करते हैं—

त्रिहो अन्न अक्षतम्बुद्धौ ते आलम्बनं जानि ॥<sup>६</sup>

१ कल्याण शास्त्र नटशास्त्र टीका पृष्ठ २६

२ संहितायाम् पृष्ठ २६ परिच्छेद अनेक

३ नटशास्त्र अध्याय ७ पृष्ठ १२

४ शास्त्रिक, चण्डिका प्रकाश श्लोक २

५ विभाव दो भागों के केवल-संज्ञक शब्द हैं।

आलम्बन एवं उद्दीपन अथवा अलम्बन ॥

—रामकविदा दृष्टय प्रमाण पृष्ठ ४

६ आलम्बनोद्दीपनोऽप्युद्दीपनोऽप्युद्दीपनो ॥

—संहितायाम्

७ रामकविदा दृष्टय प्रमाण पृष्ठ ५



या प्रकृति का उद्दीपन-रूप परन्तु प्राकृतिक रमणीयता का पूर्णमात्रा किसी 'चन्द्रशी' से अधिक प्राक्पक हो होता है। इस तथ्य को चन्दनि नहीं समझा या। प्रकृति स्वतन्त्र रूप से मानवी भावों का आलम्बन होती है इस दाव को आधुनिक युग के आचार्यों ने डिडिम धोत के साथ कहा है परन्तु प्रकृति कविता ने यह तथ्य छिपा नहीं रखा। आचार्य गुप्त ने वात्स्यिक, भवव्रति आदि के कान्यों में प्रकृति का यह स्वतन्त्र प्राक्पक स्वीकार किया है। आचार्य मंडव भी इस रूप में प्रकृति को नहीं पहचान सके। चन्दनि भी प्रकृति को रति या कामवर्ति के सम्बन्ध से ही परखा किन्तु अधिक व्यापक दृष्टि में। हम दिक्षा चुके हैं कि जब रति विशेषकर हो चुकी हो तो प्रकृति उद्दीपन-मात्र प्राची है किन्तु कवियों ने ऐसी परिस्थितियों का भी साक्षात्कार किया है जब रति की आलम्बन-सामग्री प्रकृति से मिल नहीं होता। प्रकृति मानव-मन का प्लाविन करके कामवर्ति को जगानी है और वह कामवर्ति या रति किसी व्यक्ति के अभाव में उदबुद्ध होने के कारण सामान्य ही नहीं जाएगी विशेष नहीं। यह प्रकृति का स्वतन्त्र प्राक्पक तो निस्सन्देह नहीं किन्तु उद्दीपन-रूप भी नहीं क्योंकि उद्दीपन तो पहले से लगी चिनगारी का होना है। अभी कहा चिनगारी तो सौई पड़ी थी। सौई हुई भाव चिनगारी को उठाने का काम आलम्बन का है। अतः प्रकृति आलम्बन-रूप में आधुनिक प्रकृति विषयक रति के आलम्बन के रूप में नहीं मानवी अनादि वासना या सामान्य रति के आलम्बन के रूप में ही रखनी पड़ेगी। क्योंकि यहां प्रकृति को उद्दीपन से नहीं उद्भावन से कारणत प्राप्त है जोकि आलम्बन का दाव है। प्रकृति को इस रसयुद्धाविका शक्ति का साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक रक्ष्या से दूर रहनेवाले कोरे आचार्य नहीं कर सके हिन्दी के आचार्यों से तो यह बात दूर की थी। परन्तु भावलोक के ज्ञानदार्ता कवि ने सदा अनुभव करते चले आए हैं। प्रकृति को ही नहीं संगीत को भी यह शक्ति प्राप्त है। गीत की तरह वह भी आत्मा को धुकर रति-मुक्त तार भक्त कर देता है। महाकवि कानिदास के दुष्यत की हस्त-श्री के तार एक बार भक्त हो उठे थे—

रम्याणि वीक्ष्य मयुरांशु निगम्य गददान  
पयस्तुकीभवति यस्तुलितोऽपिजनु ।  
तच्चेतसा स्मरति नूनमयोपपूष,  
भावतिपराणि जननांतरसौहृवानि ॥<sup>१</sup>

वेणव ने आलम्बन विभाप के अन्तर्गत निम्नलिखित वस्तुएँ तिनाई हैं—

बंधति जोयम कथं जाति राक्षसां भुत सति जन,  
कोकिल कसित याति पूरा परा वस अति उपपम ।  
जरावर जलगत वामन कथता कथता कथता,  
सातिव मोर गु सख तजित गग बंधुव शम्बर ।



सुभ सेज दोष सीम-ध गृह वान गान परिधान मनि ।

मय नतय भेद सीनाबि रवि आलबन केसव भरनि ॥<sup>१</sup>

युवक वम्पतियों के आलम्बन होने में किसीको सन्देह नहीं किन्तु यहाँ केसव ने अनेक ऐसी वस्तुओं का नाम गिनाए हैं जिन्हें परम्परायुक्त साहित्यशास्त्र आलम्बन नहीं उद्दीपन मानता है। ध्यान में देखने पर प्रथम पंक्ति में गृगार के आलम्बन-स्वरूप चेतन सामग्री है जिसमें युवक-वम्पति सपरिवार गिना लिए गए हैं। द्वितीय पंक्ति में वसन्त का उपकरण तृतीय में शरद् के और चतुर्थ में वर्षा के पावनी पंक्ति में नृत्य नाच संगीत आदि कलाओं का उल्लेख है। सदाप में यो कहा जा सकता है कि केसव युवक युवतियों प्राकृतिक उपादानों विनास-सामग्रियों एवं संगीत-नृत्य आदि कलाओं में समीप रत्युद्बोधिका शक्ति मानते हैं किन्तु हम विरोध रूप से किन्तु सामान्य रूप से। गृगार के आलम्बन की यह बड़ी व्यापक कल्पना है। कई व्याख्याकारों ने इस छन्द के अर्थ को खीच-सानकर इन उपादानों को उद्दीपन कहने की चेष्टा की है। उदाहरणस्वरूप 'रसिक प्रिया' के प्राचीनतम टीकाकार मरदार कवि ने ही ऐसा प्रयत्न किया है।<sup>२</sup> परन्तु ऐसा करना व्यर्थ की खीचातानी है, केसव तो इन्द्रियबोध के साथ इन सबको आलम्बन बना रहे हैं। यह दूसरी बात है कि साहित्यशास्त्र-परम्परा को केसव का मत साम्य न हो किन्तु नि सन्देह केसव अपने दृष्टिकोण में मौनिक हैं।

केसव इस दृष्टिकोण से निम्न निष्कर्ष निकालते हैं—

१ केसव प्राकृतिक उपादानों में स्वतन्त्रता या रति-सामाग्य के उद्बोधन की शक्ति स्वीकार करते हैं।

२ वे विनास-सामग्री में भी जब इस शक्ति को मानते हैं तब तलित कलाओं में इस शक्ति का न होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

३ इन उपादानों में यह शक्ति गृगार के सम्बन्ध में ही मानी गई है। इसी गृगार सम्बन्धी दृष्टिकोण से उनके सभी सृजन प्रभावित हुए हैं यद्यपि उनकी साहचर्यपूर्ण भाग्य बनी रही है जोकि सामान्य अन्न जल वस्त्र के प्रयोग से बचा है।

४ केसव का दृष्टिकोण सदा पाठक-व्यापक है। वे यह मानकर चलते हैं कि यदि कवि गृगार का प्रयोग में इन उपादानों में से किसी एक का भी साक्षात्कृत वर्णन कर दे जैसे किसी शत्रु का तो पाठक में रसमय चित्तवृत्ति का उदय करा सकता है।

उद्बोधन विभाव

जिनमें बीपति होती है ते उबबोप बलानि ॥<sup>३</sup>

१ रसिकप्रिया, दश प्रकाश, अन्त २

२ रसिकप्रिया, दश प्रकाश, अन्त ३

३ रसिकप्रिया, दश प्रकाश, अन्त ४





के अनुसार<sup>१</sup> उन्हें सात्विकों के घाठ में मान्य है—

स्तम्भ स्वेद रोमाश्च सुरभयं रूपं वषट्प ।

धाम् प्रसव ब्रह्मानिय घाटो नाम धनन्य ॥<sup>२</sup>

स्यायोभाव

जगत् न घाट स्यायोभाव मान है जा रति हास गार्क नोष उत्साह प्रय निन्हा विस्मय है ।<sup>३</sup> यों तो प्राचीन ब्राह्मणों ने भा घाट ही स्यायोभावों को प्रामाणिक माना है, किन्तु उनके तथा केज के घाट गिनाने में दृष्टिकोण का भन्तर है। हम हम बात का स्पष्ट करते प्रेक्षता होगा।

भरत ने भी स्यायोभावों की भख्या घाट ही मानी है<sup>४</sup> और उसके साथ ही उनके रत्नों का मख्या भा घाट मानी है ।<sup>५</sup> उन्होंने गान्ध रस एव उसके स्यायी गद्द को धपने विवेचन में स्थान नहीं दिया। इसका समाधान दिया जाता है कि उन्हें शान्त की सत्ता मूलतः स्वाकाय नहीं भ्या जान नहीं अपितु नाटक में वे गान्ध को अनभिनेय मानकर घोष दत्त हैं। अभिनय की ध्यान में रखकर जितन अन्य तयार हुए उनमें भरत का इसी मान्यता की प्रतिध्वनि है। धनत्रय ने भी इसी भाग को धपनाया है ।<sup>६</sup> दशरूपक के टीका

१ मम्म स्वेदो रोमाश्च स्वरभये रूपं वषट्प ।

वैदर्भ्यमप्युक्तं ब्रह्मण्यै मातिकां मुना ॥

—नाट्यशास्त्र अध्याय ६, श्लोक २१

स्तम्भस्वेदरोमाश्च स्वेदो वैदर्भ्यै वषट्प ।

भा वैदर्भ्यै वषट्पै स्तम्भैः लिखितमिन्द्रा ॥

—दशरूपक प्रकाश ४ श्लोक ५ ६

२ रमिकर्त्तव्यं दृष्ट्वा प्रभाव दन्द १०

यह घाट भा विस्मय-गान्ध द्वारा सन्धारित 'किराक-धन्यवना' का प्रयत्न में निदा गया है। कि ही पुनर्की में प्रयत्न के स्वन पर 'प्रभाव' घाट निवृत्त है किन्तु इसका प्रभाव नहीं कि वही घाट दृष्ट है। वा ईशाना नैवित्त भा दही मान्य है कि सनव है कि यह जाये की मूल हो।

—'किराक-धन्यवना' पृष्ठ २७६

३ रति इन्द्रे चक्षुःक पुनि कोष उद्गाह द्विजन ।

नय निन्हा विस्मय सन्, दाह भाव प्रभाव ॥

—रमिकर्त्तव्य, दृष्ट्वा प्रभाव दन्द १

४ रतिरसककेकव्यं धन्यैः नारी मय तथा ।

मुना विस्मय रति स्तम्भैः लिखितमिन्द्रा ॥

—भरत-नाट्यशास्त्र १ १०

५ गान्धारास्यकस्याप्येवैरस्यक ।

वम्मर्त्तव्यै वषट्पै नारी मय तथा ॥

—नाट्यशास्त्र ६।१६

६ रघुनाथमुना केसो नाम स्तम्भैः मय श्लोक ।

रामने वैदर्भ्यै वषट्पै नारी मय तथा ॥

—दशरूपक ४।३५

कार धनिक की भी यही मान्यता है।<sup>१</sup> यह तो हुई शुद्ध अभिनय पर विचार करनेवालों की बात। कुछ मिले-जुले दृष्टिकोणवाले हैं जैसे बिहवनाय के घुमा फिराकर दोनों बातें कह देते हैं—

शृंगारहास्यकरुणारौद्रयोरभयानका ।

भोभस्तावमत इत्यष्टौ रसाः शास्त्रस्तथा मतः ॥<sup>२</sup>

तीसरे वग में मम्मट जैसे समन्वयवादी हैं जोकि भगवत् में न पढ़कर दोनों मान्यताओं का उल्लेख कर जाते हैं। मम्मट ने पहले तो भरत की बारिखाया को ही उद्धृत किया है फिर धाले चलकर निर्वेद स्वादिभावोऽस्मि नान्तोपि नवमो रस<sup>३</sup> कहकर नान्तरस का भी मान्यता दे दो है। चौथे वग में शुद्ध वाक्य पर दृष्टि रखनेवाले पंडितराज जने लोग हैं जोकि स्पष्टतः नौ स्थायीभाव तथा उनके नी रस मानते हैं।<sup>४</sup>

बेनाव ने घाठ स्थायी गिनाए हैं किन्तु वे 'रसिचक्रिया' के प्रथम प्रभाव में ही नौ रसों की स्पष्ट घोषणा करके चले हैं।<sup>५</sup> यही नही रसों की नौ मर्यादा उल्टा स्थान-स्थान पर माय है।<sup>६</sup> यह बात एक साधारण पाठक के लिए विचित्र लगती है कि आचार्य बेनाव रस-संख्या नौ गिनाते हैं और स्थायी घाठ ही। इसका समाधान सोजना भावश्यक है।

हम स्मरण रखना चाहिए कि बेनाव ने पूरे में जो नौ रस माने हैं वे रस की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हुए, किन्तु छठे प्रभाव में जो भाव-विवेचन है वह सब शृंगार के सम्बन्ध से है। चौदहवें प्रभाव में वे शृंगार में छह रसों का अन्तर्भाव दिखाने जा रहे हैं। छह शृंगार का अन्तर्भाव विरोधी है एक ही आलम्बन और एक ही भाव्य के बीच रख कर शान्त और शृंगार का निबाह भ्रमभव है। बेनावदाम उस महा इर्मतिए छोड़ देते हैं। चौदहवें प्रभाव में जब उन्होंने इस रसों का अन्तर्भाव कर लिया तदुपगन्त के शान्त के दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। एक तो वह छह है जो ससार की सभस्त विभूतिया से निर्वेद लिए हुए है। यह छह स्वतंत्र है इसका अन्तर्भाव उन्हें शृंगार में न अभीष्ट है और न

१ यथा तथातु। सर्वेषां नाटकाणां अभिनयारामणिः श्यामिलमग्नाभिः रामस्य निश्चिन्त्ये। तस्य समरतन्त्रापीरप्रविवक्ष्यन्त्याभिनयार्थमाह ॥

—धनिकरीका आरूपकम् ४।३५

२ साहित्यदण्ड ३।१८७

३ वाक्यकारां चतुष उल्लास सूत्र ४७

४ (क) रतिशोकश्च निर्भयशोभाहासश्च विस्मयः।

हामो भयः अगुम्मा च स्वादिभावाः श्रमायी।

—रसगणधर १०।३०

(ख) शृंगारः करुणः शान्तः रौद्रो वीरोऽद्भुतल्लासः।

हामो भयानकरश्चैव बीभत्सरश्चि ते नवः।

—रसगणधर, १०।२६

५ प्रथम सिंगार मुद्रास्वरस्य कम्पा रूढ सुधीर।

भयः शम्भुः क्लेशनिघ्नः अद्भुतः शापः सुधीर।

नवः रस के भावः यः तिनके विन्न विचारः ॥ —रसिकप्रिया प्रथम प्रभाव, अन्तर १५, १६

६ रसिचक्रिया, तीसरा प्रभाव अन्तर ४१

समय है। किन्तु इसमें तो शृंगार का स्मरणत्व प्रचुर ही रहता है। अतः वे शम का अतः भावपरक एक और उदाहरण देते हैं और इसके लिए शम का एक हनका रूप उपस्थित करते हैं—

सम त होय उदास मन बने एक ही ठौर।

साहो सौ सभरस कहत कैसेव कवि सिरमौर ॥<sup>१</sup>

और इस प्रकार शम का अन्तर्भाव 'वे सफ़रन' से बरक दियाते हैं। यह सब तो हम आग चलकर देखेंगे। यहाँ केवल इतना देखना है कि केगव ने जो स्थायीभावा की सख्या घाठ गिनाई है वह ऊपर से तो उसी प्रकार का काम है जसा भरत धनजय प्रथवा मम्मट, बिचित्राच घाठि का परन्तु इसमें केगव का अन्तर्भाव उसी प्रकार भिन्न है अर्थात् हम अन्य आचार्यों का ऊपर देख चुके हैं। केगव ने गुद पादय-काय को लिया है अतः नौ रसों की सख्या उह मान्य है बिल्कुल शृंगार के अन्तर्भाव के लिए उन्होंने गुद घाठ स्थायीभाव माने हैं। वीमलस के विषय में भी उन्होंने ऐसा ही किया है। वीमलस के स्थायी भाव जुगुप्सा को छोड़कर उन्होंने हनके भाव निदा का प्रपनाकर अन्तर्भाव का काम चनाया है। शान्तरम के विषय में तात्त्विक निर्बोध का हटान पर एक स्वतन्त्र रस की सत्ता ही समाप्त हो जाती है। शान्तेवर घाठ रस लौकिक रस हैं जबकि शान्त लोकपणा<sup>२</sup> आदि सं पर, अलग सत्ता लिए हुए एक स्वतन्त्र रस है। अतः उसकी सत्ता का निरन्कार केवल का प्रतीक न था। इस प्रकार यहाँ स्थायीभावा की घाठ सख्या गिनाने में केगव का अन्तर्भाव पर दृष्टिकोण है।

### व्यभिचारीभाव

केगव ने व्यभिचारीभावा के लक्षण एक नाम-परिणयन में परम्परा-मानन न करके कुछ स्वतन्त्रता दिखाई है। आचार्य भरत का संगण इस प्रकार है—

विचित्रमाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।<sup>३</sup>

आभिमुख्य का अर्थ है कायोल्लसित में सहायक होना।<sup>४</sup> और विचित्र से तात्पर्य है अनियत सम्बन्ध का। तात्पर्य यह है कि रसानुभूति में सहायक बननेवाले अनियत सबध से विचरण करते हुए भाव व्यभिचारी कहलाते हैं। इस लक्षण में दो बातें स्पष्ट हैं किसी व्यभिचारी का किसी स्थायी में कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं। दूसरे, उनका काय है रस निष्पत्ति के लिए अनुबल परिस्थितियाँ का निर्माण। मम्मट ने कोई संगण नहीं किया। किन्तु उनके टाकावारा में भरतकृत लक्षण की दो प्रकार की व्याख्याएँ उपस्थित की हैं—

१ विनोदेषाभित। सखीगंध्यापितया। रस्यादीन् रसापिन काव्ये चारयन्ति मंदारयन्ति महामुहुरभिव्यजयन्तीति व्यभिचारिणः ॥<sup>५</sup>

१ रमिरमिता चैन्द्रिका प्रभाव दृष्ट ३७

२ नाट्यशास्त्र सार्वभौम अष्टादश ११२

३ आभिमुख्येन। कायबलने आभिमुख्येन।

४ कान्यप्रकाश नामन दृष्ट ८६

—कान्यप्रकाश टीका नामन दृष्ट ८६

जो स्थायीभावों को समस्त शरीर में फमाकर व्यञ्जन-समय बना देते हैं ।

२ विशेषेणामित । आभिमुख्येनकायञ्जनने आनुकूल्येन । घरतीति व्यभिचारिणः । इन व्याख्याओं से भी व्यभिचारिया का काय अनुकूल परिस्थिति का निर्माण हो ठहरता है । साथ ही उनकी अनियत स्थिति का उल्लेख है—

अतस्तवानियतत्वावपि व्यभिचारिण इतिशेषम् ॥<sup>१</sup>

धनजय का लक्षण इस प्रकार है—

विशेषादाभिमुख्येन घरतो व्यभिचारिणः ।

स्थायिपुमग्ननिमग्ना कत्तोसा इव चारिणौ ॥<sup>२</sup>

धनजय ने कार्यानुकूल परिस्थिति निर्माण के साथ उनकी अविचरवाली स्थिति का भी संकेत किया है । विश्वनाथ के लक्षण में धनजय की ही प्रतिध्वनि है ।<sup>३</sup> इसकी पुष्टि स्थिति का संकेत मग्ना भी प्रसंगवश देते हैं—

चिन्तादयो व्यभिचारिण भृंगारस्येव चोरकण्ठमपानकानामिति पद्यमनका  
तिकावात सूत्रे भित्तिता निश्चिन्ता ॥<sup>४</sup>

इन आचार्यों के लक्षणों से व्यभिचारिया की निम्न विशेषताएं स्पष्ट होती हैं—

१ व्यभिचारियों का किसी स्थायी या किसी रस से कोई नियत सम्बन्ध नहीं है इसी व्यभिचार के कारण उन्हें व्यभिचारी कहा जाता है । इनका सहचार सभी भावों में हो सकता है ।<sup>५</sup>

२ इसका काम रसानुकूल परिस्थिति निर्माण है ।

३ विभिन्न आचार्यों के लक्षणों में मूलतः कोई भिन्नता नहीं । उनके विभिन्न पदों पर ध्यान रखत हुए लक्षण या व्याख्या में भिन्नता मिलती है ।

अब बेजब्र के लक्षण पर आइए—

भावजु सब ही रसनि में उपजत केशवराय,

बिना नियम तिनसों कहूँ व्यभिचारी कबिराय ॥<sup>६</sup>

जो भाव सभी रसों (स्थायीभावों) में बिना किसी निश्चित सम्बन्ध के उत्पन्न होते हैं उन्हें व्यभिचारी कहते हैं । इस लक्षण से निम्न बातें स्पष्ट हैं—

१ व्यभिचारी एक प्रकार के भाव हैं ।

२ इनका किसी स्थायी में नियत सम्बन्ध नहीं ।

३ बेजब्र ने इनके और स्थायियों के संबंध की व्याख्या की है । रनाभिध्वनि

१ काव्यप्रकारा काव्यन पृष्ठ ८६

२ दशरूपक भाष्य

३ विशेषाभिमुख्येन घरतो व्यभिचारिणः ।

—साहित्य १५५ ११४६

४ काव्यप्रकारा तृतीय उत्सव मध्य ४ पृष्ठ ६५

५ यानि मन्त्राणि तानि व्यभिचारिण्येन ।

—रसगङ्गाधर, पृष्ठ ६३

६ रसिध्वनि, छठवां अध्याय पद्य ११

में इनका क्या उपयोग है तथा इनकी मौलिक स्थिति क्या है, इसका उल्लेख नहीं हुआ। इस प्रकार केशव का सक्षण सर्वांगीण नहीं। सक्षण केवल सामान्य परिषय के लिए बना हुआ है किन्तु उसकी पृष्ठभूमि शास्त्रीय है।

उनके नामा एव भेदों के विषय में केशव ने कुछ स्वतन्त्रता प्रपनाई है। केशव ने ध्यामिचारिया के निम्न तृतीस भेद गिनाए हैं—निर्वेद ग्लानि धावा धासस्य दन्य मोह स्मृति धृति शोभा चपलता श्रम मन् बिन्ना मोह गव ह्य धावेग निन्ना निद्रा विषाद जठठा उत्तठा स्वप्न प्रबोध विषाण अपस्मार मति उग्रता त्रास तक व्याधि उमाण भरण अवहित्या एव धावि।<sup>१</sup> भरत-परम्परा से इनके नामों सख्या एवं स्वरूप में कुछ घल्लर है। भरत ने निम्न तृतीस ध्यामिचारी गिनाए हैं—निर्वेद ग्लानि धावा धमूया मन् श्रम धामस्य दन्य चिन्ता मोह स्मृति धृति श्रीठा चपलता ह्य धावेग जठला गव विषाण औत्सुक्य निन्दा अपस्मार स्वप्न विबोध भ्रमय अव हित्या उग्रता मति व्याधि उमाण भरण भासतया वितक।<sup>२</sup>

प्राच्यम मम्मन् तथा रसतरंगिणोकार ने भरत की कारिका को ज्या की स्थों ले लिया है।<sup>३</sup> 'दशरूपक' में धनजय ने नाम एवं सख्या तो यही रखी है, केवल उनका छन्द बदला हुआ है।<sup>४</sup> विन्वनाथ ने भी भिन्न छन्द में भिन्न रूप से इन्हीको रखा है। केवल मुक्त के स्थान पर स्वप्न नाम दिया है।<sup>५</sup> पद्मिनीराज उग्रनाथ ने गद्य में इनके नाम गिनाए हैं।<sup>६</sup> साथ ही उन्होंने तृतीस नाम गिनाकर पीछे से गुरु देव नय पुत्रादि-विषयक रति को भी सचांगियों में गिनाकर सख्या चौबीस कर दी है।<sup>७</sup> पद्मिनीराज ने एक बड़े मार्क की बात कही है कि यह मन्वा तृतीस से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती क्योंकि भरतमुनि के वचन का अनुगुण रखा हुआ है। किन्तु केशव के ऊपर वह अनुगुण अधिक काम नहीं कर सका। उनमें भरत से वषम्य पाया जाता है। इस वषम्य को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—

(अ) केवल नाम भेद—जैसे भरत के औत्सुक्य मुक्त विबोध वितक को केशव ने क्रमशः उत्तठा स्वप्न प्रबोध तक बढ़ा है। यह कोई बड़ा वषम्य नहीं। मुक्त को

१ रमिचरिया दल्ल प्रमाण छन्द १२ से १४ तक

२ नाट्यशास्त्र १६।२२

३ ध्यामिचरिया ४।४६

४ दशरूपक ३।६

५ साहित्य-शास्त्र, ३।१४५

६ रसतरंगिणी, पृष्ठ ७६

७ इति प्रदर्शनात् ध्यामिचारिया । गुरुन्व नृपपुत्रादि विख्या रतिस्त्वेति धृतिस्तिराम । एतन्नाम-व्याख्यानं पुनः ध्यामिचर्या रसानुसंगतं उच्यते स्वतन्त्राया मुनिवचनपरम्परात् ॥

—रसतरंगिणी, पृष्ठ ७६



स्वप्न विश्वनाथ ने भी कहा है और वितर्क को तक धनजय<sup>१</sup> ने भी भोक्तुव्य एवं उक्ता पर्याय-मात्र हैं ।

(आ) भरत-परम्परा की स्थापना—जैसे भ्रमप भ्रमूया के स्थान पर केशव ने कोह एव निन्दा को सिख दिया है ।

(इ) नवीन इस प्रकार है—विवाद एव भाधि दो नये नाम जोड़कर सत्या पतीस की गई है ।

भाधि के जोड़ने में तो केशव की ओर से यह सब दिया जा सकता है कि जब व्याधि जोकि मूलतः शारीरिक व्यथा है व्यभिचारिया में गिन ली गई तब भाधि तो मानसिक व्यथा होने के कारण भावसन्न के और भी समीप है । विवाद का केशव ने अपना स्वच्छन्दता प्रकट करने के लिए ही जोड़ा प्रतीत होता है क्योंकि प्राचीन सभी भाचार्यों को यह तथ्य स्वीकार्य है कि सचारी रूपा की अनेक भावभूतियां हो सकती हैं । उनमें से कुछ स्थूल भाववृत्तियां का ही नामकरण कर दिया गया है । तृतीय सत्या तो उपलक्षण मात्र है । वास्तव में केशव का मतव्य भी यही है । वे अपनी उच्छ खलना नहीं दिखाना चाहते अपितु एक-दो नाम घटा-घटाकर वाच्योचित रूप में यही दिखाना चाहते हैं कि ये तृतीय भेद रुद्धि-मात्र हैं तथा विवेचन-मात्र के लिए हैं अथवा वे धनक हो सकते हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि केशव ने भ्रमप एव भ्रमूया के स्थान पर कोह एव निन्दा का नाम क्या दिया ? वास्तव में कोह क्रोध का पर्याय नहीं परन्तु हिंसा में बहुत दिना से भ्रमप के समान ही हलके क्रोध के अर्थ में प्रयोग होन लगा था । तुनसी न प्रायः इसी हलके क्रोध के अर्थ में कोह शब्द का प्रयोग किया है । अब रही निन्दा की बात । भ्रमूया एव निन्दा एक ही वग के लगभग एक-स ही भाव हैं । गुणा में दोष निवातना भ्रमूया कहलाती है । रसिकप्रिया<sup>२</sup> में केशव के सामने अठर्थावली योजना प्रतिक्षण धूमती रहती थी । उह ध्यान था कि व जुगुप्सा का स्थान पर निन्दा की स्थापना करनेवाले हैं । अर्थात् उहें यहाँ निन्दा को संचारिया में गिना दिया जाए । जिस प्रकार मम्मट ने व्यभिचारिया में से निर्वेद को उठाकर शान्त का स्थायीभाव बनाया था उसी प्रकार निन्दा को व्यभिचारिया में से उठाकर आय-यवतानुसार स्थायीभाव बना लिया जाए । मम्मट का ध्यान है कि भरत ने भी इसी दृष्टिकोण से निर्वेद को समस्त व्यभिचारिया से पृथक् रखा क्योंकि उसमें अर्थों की अपेक्षा स्थायित्व प्राप्ति की शक्ति अधिक है ।<sup>३</sup> केशव ने भी निन्दा को ऐसी शक्ति देने का प्रयत्न किया है और भाग मम्मट से अपनाया है । जब निन्दा संचारियों में गिन ली गई तब उसकी बहुत कुछ समानाधिक्य भ्रमूया को छोड़ देना ही

१ तर्को विचार संक्षेपशिरालेख, लिनर्क ।

—रासूरकम् ४।२६

२ निर्वेदशामकप्रकरणस्य प्रथममनुषादेयलोप्युपादान व्यभिचारिस्तैः स्थायिनाभिधानाय ।

—वाचस्पतिका ३४११

उचिन्त था । गद्यवृत्ति के अभाव में अपने मन्तव्या के संकेत का यह काव्योचिन्त हग केगव ने अपनाया था ।

यह लिखा जा चुका है कि केगव को काव्य म रस को सर्वोपरि मान्यता स्वीकृत है । 'रसिकप्रिया' म व शृंगार के रसराजत्व की स्थापना का उद्देश्य लेकर चले हैं । 'रसिकप्रिया' के चौन्हवें प्रभाव म उन्होंने छय रसों का भी उल्लेख किया है जिसमें हास्य कहण रौन वोर भयानक बीभत्स अदभुत एव शम के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं । प्रत्येक लक्षण तत्तद रस के स्वतंत्र रूप का विवेचन करता है किन्तु उसका उदाहरण शृंगार के आभूषण रूप म ही लिया गया है । लक्षणा की यह विरोधता है कि उनम अन्तर्भाव के दृष्टिकोण से कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन किए गए हैं । ये परिवर्तन उन्नते ही हैं जिनम गान्धीय पण्डितमि अशुष्क बनी रह । उदाहरणों के रचने में भी केगव न विभिन्न शास्त्रीय विचार-परम्पराओं स अपना परिचय दिया है । इस प्रकार इस प्रभाव में गम्भीर शास्त्रीय ज्ञान रागात्मक कविस्व एव मौलिकता का अनूठा सम्मिश्रण उप स्थित हुआ है ।

शृंगार का विवेचन पाछे हो चुका है । अन्य रसों पर यहाँ विचार किया जा रहा है—

कह्यो हास्य रस बरनियो अर रस अगम कविस्त ।  
कहनादिह सिंगार मय बरने समझु वित्त ॥<sup>१</sup>

### हास्यरस

हास्य का लक्षण इस प्रकार है—

मयन बयन बहु करत जब मन को मोद उदोत ।

बनुर वित्त पहिचानिय तहा हास्यरस होत ॥<sup>२</sup>

नेत्र बाणी आदि अनुभाव जब मानसिक उत्थान का प्रकाशन करते हैं तब हास्य रस का वर्णन समझना चाहिए । यह सामान्य हास्य का लक्षण है । भग्मट ने तो हास्यादि के लक्षण नहीं किए उदाहरण-आत्र देकर बनना कर दिया है । विन्वनाथ एव धनजय ने हास्य का माध-सीध नहीं किन्तु हास स्थायी के माध्यम स लक्षण किया है । विन्वनाथ के अनुसार विकृत आकार बाणी वगैरे अपेक्षा से हास्यरस के स्थायी हास की उत्पत्ति होती है ।<sup>३</sup> धनजय के अनुसार भी विकृत आकृति बाणी वगैरे के द्वारा हास उत्पन्न

१ केगव-अनुवाकणी पृ ८३

२ रसिकप्रिया चौन्हवा प्रभाव छन्द १

३ विकृताकाराद्यैरपेक्षादि बुद्ध्यादभवेत् ।

हासो हास्यव्यथिभाव इति प्रथमैकः ॥

होता है। उसीका परिपोष हास्य कहलाता है।<sup>१</sup> वास्तव में इन लक्षणों में भरत के लक्षण की प्रतिध्वनि है। हास्य में जो हासार्थक चित्तवृत्ति है उसका विरलेषण इन भाषायों ने नहीं किया स्वयं भरत ने भी नहीं। हास एक प्रसिद्ध एवं सर्वानुभूत भाव है। सम्भवतः यही समझकर किसीने उसकी मनोवैज्ञानिक भूमिका को स्पष्ट नहीं किया अथवा यों कहिए कि उस काल का अध्ययन उस धरातल तक नहीं उतर पाया था। भरत धनजय का पूरा तथा विद्वानाथ का मिला-जुला दृष्टिकोण अभिनयपरक है। भरत इतना ही विवेचन करते हैं कि किन विभावों से इसका जन्म होता है किन अनुभावों से इसका प्रकाशन होता है और कौन-कौन-से इसमें संचारी भाते हैं।<sup>२</sup> पंडितराज जगन्नाथ ने उसके स्वरूप विधान की ओर कुछ ध्यान अवश्य दिया है। उनके अनुसार वाणी तथा भ्रमादि के विकारों को देखने से चित्त की जो विकासात्मक दशा होती है वह हास है।<sup>३</sup> केवल के समय तक लक्षणों में चित्तवृत्ति का भी ध्यान किया जाने लगा था। यह टीकाकार भाषायों के विवेचन से भी प्रमाणित हो जाता है।<sup>४</sup>

यदि पदावली का ध्यान किया जाए तो केवल ने किसी प्राचीन भाषाय की पदावली नहीं ली। पंडितराज जगन्नाथ की भांति केवल ने भी उसे मन का मोन कहा है। किंतु केवल विभाव माध्यम से नहीं अनुभाव-माध्यम से उसपर विचार करते हैं। भाव सामान्य के लक्षण में भी उन्होंने अनुभावा का ही सहारा लिया है<sup>५</sup> यह हम देख चुके हैं। यहां एक शास्त्रीय बात और है। जिस रस को वे गृहार मे अन्तर्भूत करने जा रहे हैं उसके स्वरूप परिचय तथा चित्रण के लिए इतना ही बहुत था। प्रत्येक स्थायी भाव का गुणीभूत होकर संचारी जसी स्थिति का हो जाता है और उसके निरूपण के लिए विभावादि की योजना की आवश्यकता नहीं रहती। अनुभाव-मात्र के द्वारा ही उसका प्रकाशन पर्याप्त समझा जाता है। यह सभी साहित्यशास्त्रविद् जानते हैं। केवल का लक्षण भाषाय-परम्परा

१ विश्वनाथनिवासे वैराग्यमोक्षपरस्व वा ।

हाम स्वात्परितोषोऽस्य हास्यविशेष इति श्रुतः ॥

—दशरूपकम् ४।७५

२ अथ हास्यो नाम हामस्याविश्वारमक ।

अभिचारिण्यवावस्थितान्यथानिद्रास्वप्नप्रबोधामुद्यमश्च ॥

—नाट्यशास्त्र ३।१७

हामो नाम परधेयानुकरणादुद्भूतः समुद्रि

इतिनाभिनिर्गन्तु भावे ॥

—जटवरारत्र ७।१०८

३ परधेयानुकरणाद्व्यस्य समुद्राभावे ।

रिमतहास्तानिहमितैरभिनेय स पश्यति ॥

—नाट्यशास्त्र ७।१०

वाग्यप्रतिविचारान्नयमा विहामाम्यो हाम ॥

—रसगंगधर, पृ. ३२

४ वाग्यप्रतिवेकप्रवृत्तविकारोद्भूतः उच्यते ॥

—आम्यप्रकाश आम्न भाष्यक-टिप्पणी पृ. ११९

५ आनन्द लोचन चन्दन मग प्रवृत्त मन की भाव ॥

—रसिकप्रिया खटा प्रभाव पृ. ११

से भी दूर नहीं हटा न उसका मनोवैज्ञानिक पक्ष ही दुर्बल है। साथ ही उनके दृष्टिकोण में भी पूर्ण समझ है।

भेदों के विषय में भी केशव ने मौलिकता दिखाई है। मस्कृत भाषायों में हास्य छ प्रकार का माना है। स्मित हसित विहसित अपहसित तथा प्रतिहसित।<sup>१</sup> भाषायों की भाषना है कि उत्तम मध्यम तथा अधम तीन प्रकार की मानवा प्रवृत्तियाँ हैं। उत्तमों में स्मित एवं हसित मात्रा के हाम मध्यम लोगों में विहसित तथा अपहसित जिनमें कि हसी के साथ कुछ 'गद' भी चलता है तथा निम्न प्रकृतिवाला में अपहसित तथा प्रतिहसित नामक हास्य होते हैं जिनमें आखो में आभू अंगों की विकृति एवं अत्यन्त कण कटु ध्वनि की सीमा तक हास पहुँच जाता है।<sup>२</sup> भाषायों के इस विवेचन में केशव का दावा तो ठीक नहीं सही। प्रथम तो मात्रा के आधार पर एक-एक प्रकृति के दो-दो भेद रचना। सीधी बात यह कि जब मानव प्रकृति को तीन भागों में बाँटा गया तो हास को भी तीन भागों में बाँट लिया जाए। दूसरी बात यह है कि स्मित एवं प्रतिहसित को छोड़ हम वर्गीकरण के चार नाम—हसित विहसित अपहसित तथा अपहसित नितान्त पारिभाषिक बन गए हैं। इनके उपसर्ग 'न' का मात्रा का बोध कराने में सबका असमर्थ है। तब क्या न ऐसे नाम रख दिए जाए जो यथानाम तथामुण हो। केशव इसी कारण अपना नूतन वर्गीकरण एवं नामकरण प्रस्तुत करते हैं। प्रथम कोटि का मन्दहास मध्यम कोटि का कुछ 'गद' मिश्रित कलहास एवं अन्तिम का प्रतिहास। कल हास एक और ध्वनि दूसरी ओर मधुरता का सकेत लिए है। मध्यम कोटि का हास भी सध्वनि होते हुए भी अपनी मधुरता को नहीं छोड़ना। अतः केशव हम कोटि के हाम को 'कलहास' नाम देते हैं। अन्तिम 'प्रतिहास' नाम सर्वत्र भाषायों का ठीक-ठीक मात्रा-परिचायक या अतः उसे ज्या का लो ले लिया है। और इसीको दृष्टि में रखते हुए उन्होंने प्रथम हास का नाम 'मन्दहास' चुना है।<sup>३</sup>

- १ इषद्विजामिनयम स्मितं ख्यातं सन्निधाभरम् ।  
किञ्चिन्लस्यद्विजं तत्र हसितं कथितं भुवे ॥  
मधुरस्वरं विहसितं सामंशितं च मन्दहासिनम् ।  
अपहसितं सात्वाच्च विधिज्ज्ञातं च यथानिहसितम् ॥

—साहित्यदर्पण ३।२१८

- २ ज्येष्ठानां स्मितश्रुतिरेव मन्वालां विहसिताश्रुतिरेव ।  
नीचानामपहसितं तथा निहसितं च वदभेदा ॥

—साहित्यदर्पण ३।२१७

- ३ मन्दहासः कलहासं पुनः कश्चि केशवः प्रतिहासः ।  
कोटं कश्चि ब्रजतः सने अह चौथो प्रतिहासः ॥ २ ॥

×

✓

×

वातें भा जाती हैं 'एकाग्रयत्न एव एकात्म्यनत्न' ।<sup>१</sup>

तात्पर्य यह है कि कुछ रसों में तो नस प्रकार का विरोध होता है कि वे एक आश्रय में नहीं रह सकते जैसे भयानक और वीर । कुछ के आत्ममग्न एक नहीं हो सकते जैसे शृंगार एक रोद । कुछ का निरन्तर वजन दोषपूर्ण होता है जैसे शृंगार और वीरमत्त का । इसके लिए शास्त्रकारों की मलाह है कि एकाधिकरण विरोध दूर करने के लिए भाव दयकतानुसार आश्रय या आत्ममग्न भिन्न कर देने चाहिए । निरन्तर विरोध में किसी परस्पर भिन्न या उदासीन रस को छाल दिया जाए तो विरोध समाप्त हो जाता है । ध्वनिकार की इस व्याख्या का आज तक इसी रूप में सम्मान खता आ रहा है । मम्मट विदधनाथ एवं जगन्नाथ आदि समीने इसे अपनाया है । केनव ने सभी रसों की शृंगार के भगभूत करने दिखाया है । तब हास्य जैसे प्रविरोधी रसों के विषय में तो कोई बात नहीं किन्तु कृष्ण बीभत्स आदि विरोधी रसों के विषय में यह जिज्ञासा उठाना स्वाभाविक है कि केनव ने उपयुक्त मार्गों में से कौन-सा भाग अपनाया है और वह कहाँ तक शास्त्र सम्मत है ।

प्रान्तवर्चन ने विरोधी रसों को बाध्य दत्ता में या भगभाव प्राप्त करा देने पर निर्दोषता दिखाई है और हमके लिए विरोधी के परिपोष करने की उन्होंने मनाही की है । उनका उद्देश्य है विरोधी को क्षीण रखना । केनव ने एक नया माग और निकाला है । स्यायी का अनुमावाद के द्वारा परिपोष न करने क्षीण रखने के स्थान पर उन्होंने सीधे सीध उसे क्षीण रूप में ही ग्रहण किया है । इस प्रकार कई स्यायी वृत्तिमा वास्तव में संचारी वृत्तियाँ रह गई हैं । मम्मटन इसकी प्रेरणा केनव को इस बात में मिली हो कि जब अपरिपुष्ट स्यायी संचारी की कोटि का होता है और परिपुष्ट संचारी भी स्यायी के समान होता है तो अपरिपुष्ट स्यायी की जगह पुष्ट संचारी को भी भग बनाकर क्या न देया जाए । साहित्यशास्त्र में केनव का यह प्रयोग (Experiment) मौलिक है । वरुण के भग भाव के प्रमाण में उन्होंने इसी माग को अपनाया है जिसकी वृष्टभूमि शास्त्रीय है किन्तु उसके प्रयोग के दग में मौलिकता है ।

### रौद्ररस

त्रोष स्यायीभाववाला रौद्ररस होता है जिसमें विषह (गुड) के कारण रौद्रर उग्र हो जाता है । तात्पर्य यह है कि विषहजन्य रौद्रर की उग्रता में अनुभावित त्रोष स्यायीमूलक रौद्रर होता है—

होहि रौद्ररस प्रोषमय, विषह उग्र रौद्रर ॥<sup>२</sup>

१ एकाधिकरणविरोधी नैरन्तरविरोधीयति विविधी विरोधी ॥

—आनन्द १८१, पृ० ३१२ की वृत्ति

२ रमिक्रिया और रसों प्रभाव पृ० २१

संस्कृत धावायों ने लक्षण भी इसी प्रकार के हैं।<sup>१</sup> किन्तु स्वतन्त्र रौद्र के अतगत विषह शब्द का जो युद्ध रूप अर्थ है वह शृंगार के अन्तर्भूत रौद्र में कुछ दूसरे प्रकार में ही प्राप्त होता है। क्योंकि शृंगार एवं रौद्र में आत्मस्वनयनगत विरोध है अतः उनके आत्मस्वन भिन्न करने होंगे। केशव ने इसके दो उदाहरण दिए हैं। प्रथम में<sup>२</sup> उसे विभाव पद्म का अर्थ बनाकर दिखाया गया है। सखी की उक्ति द्वारा राधा के निरुपम सौंदर्य की प्रशंसा की गई है। राधा के अर्थों के उपमानभूत प्राणी भयभीत होकर वन में शरण ले रहे हैं। सखा कह उठती है— 'राधिकाबुद्धि को धौन परिकार है।' यह श्रौध शृंगार के कमनीय स्वरूप विधान में उपयोगी है। आत्म-दवचन के वर्गीकरण के अनुसार इसे समा रोपित धातों से अर्थभूत कह सकते हैं।<sup>३</sup>

द्वितीय उदाहरण में समारोपित शब्दों का दूसरा उदाहरण दिया गया है।<sup>४</sup> नामक ममय का मन मय करके रति रण में विजय पा लेते हैं। यहाँ आरोप में ही रौद्र दिखाया गया है और तदनु रूप ही अनुभाव दिखाकर श्रौध की योजना की गई है। यद्यपि आरोप में उपमाना की प्रधानता होती है, परन्तु केवल वाच्य-रूप में ही। व्यवसित रूप में तो वह उपमेय-पद्म के प्रति गौण ही है। अतः आरोपित श्रौध शृंगार का अर्थ ही समझना चाहिए। दोनों उदाहरणों में क्रमशः श्रौध और रोप शब्दों का प्रयोग किया गया है उसमें भी स्वगन्ध-वाच्य दोष नहीं आता। क्योंकि इस प्रकार से अर्थभूत भावों को स्वगन्ध-वाच्य बनाने से कोई अनुसृष्टि की क्षति नहीं होती। विमर्शिनीकार के उदाहरण से भी यह बात पुष्ट होती है।<sup>५</sup>

१ अथ रौद्रो नाम श्रौधस्याविभावा मको रक्षोपानवायनमनुष्यप्रवृत्तिः सप्रामहेतुकः ॥

—नाट्यशास्त्रम् पृ. ६६

२ केहरा कपोत करि केर मय मीन कनि  
सुक पिक कन खजरीट बन लीनो है ।

केनागस पास मय कोविर कुर कान्द  
राधिका कु बरि कोष कौन पर कौनो है ॥

—रसिकप्रिया चौहवां प्रभाव छन्द २२

३ धन्यालोक ३१०६ वृत्ति

४ मीति मार्यो कण्ठ निवोग भार यो मोरि कै  
मरोरि मार यो अभिनान मार्यो भय मान्यो है ।

सोखो रनि हन मध्यो मनमय ह को मन  
कैतोदाय कौन कनु रोष उर मान्यो है ॥

—रसिकप्रिया, चौहवा प्रभाव छन्द २३

५ काव्य रत्नप्रकाशविद्यामुखी मुखे तवाह सखी कि शन्याकसि केवन्ध निवमसि त्वामगता  
रेतिभूम् । एतद्वक्तुमुच्यते कि कथयन्त्यालोचनं कृत्वा ततो 'पद्य' शब्देमुपजायमानस्य चण्डो आत्मा  
विश्वरूपिणा । अत्र शक्त्याधीभूतं 'गृह्य' आभूतमुदाहरणम् ।

—अणकारसंस्कृत (विमर्शिनी टीका) पृष्ठ २३६

के दूसरे उदाहरण में जो श्रीकृष्ण का चौकड़ी भरना दिखाया गया है वह भादश के तो सवैया प्रतिबून ही है।<sup>१</sup> समझ है उसमें रीतिकान्त के महित जीवन की भांकी हो।

### अद्भुतरस

किसी अद्भुत वस्तु में देखने या सुनने से जो आश्चर्य (विस्मय) होता है उसीकी व्यञ्जना अद्भुतरस है।<sup>२</sup> शृंगार एवं अद्भुत अविरोधी रस है। नायिका का श्लोक सामान्य सौन्दर्य द्रष्टा के हृदय को विस्मयाभिभूत कर देता है। भक्त शृंगार में इसका बड़ा उपयोग है। केशव ने इसकी शक्ति के कारण इसे विनासनिधि कहा है।<sup>३</sup> केशव ने इसके तीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। दो में तो नायिका के निरपम सौंदर्य का विधान करके अद्भुत के द्वारा शृंगार का आलम्बन सजाया गया है। तीसरे में नायकगत अद्भुत सौंदर्य एवं शक्ति का विधान है। इन उदाहरणों में विभावना विशेषीकृत विरोध आदि कमलारमूलक प्रसकारों का भी उपयोग हुआ है जो बाध्य के दोनों पक्षों का सामञ्जस्य स्थापित करता है।<sup>४</sup>

### शमरस

शम अथवा शान्तरस के विषय में भी केशव के सामने वही समस्या थी। शम ससार की समस्त आसक्तियों से निवृत्तिमूलक भाव है जबकि ससार घोर प्रवृत्तिमूलक है। किन्तु भक्त आचार्यों एवं भक्त कवियों विनापकर राधाकृष्ण के भक्तों की दृष्टि से शान्तरस यागियों का शान्तरस नहीं रह गया था। वह घोर निवृत्तिमूलक न रहकर लौकिक शृंगार का ही परिमार्जित बहा जानेवाला रूप माना जाने लगा। लौकिक आलम्बनों से हटकर प्रवृत्ति जब आध्यात्मिक आलम्बनों की ओर उन्मुख हुई तो लौकिक आसक्तियों के प्रति जो निर्वेद था वह भी शृंगार का ही एक अंग बन गया। इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गी भक्ता के शृंगार और शान्त के मिश्रण से मधुररस का एक श्लोकसामान्य पेय तयार किया जिसमें श्लौकिक आलम्बन के प्रति पूर्ण आसक्ति थी जोकि पार्थिव आलम्बन की समस्त सजा को लिए हुए थी और लौकिक ऐपणाओं से पूर्ण विरक्ति भी जोकि शान्त का एक अंग थी। उसका निर्वेद विरक्तिमूलक ही रहा। इस प्रकार की निवृत्ति प्रवृत्तिमुक्त की बनी थी।

१ दूटे टा पुन पुने धूमि धूमि सौ जु सने ।  
भीरु छगोरी साँप बाधिन की बाध जू ।

पर परनानि यह जान न धिनात जू ।

—रमिकप्रिया औरहाँ प्रभाव पद १२

२ होइ अचम्भो देखि मुनि सो अरुभुज रस जानि ।

३ बेमोनाम विनामनिधि पीन बरन कहु मानि । —रमिकप्रिया औरहाँ प्रभाव पद ११

४ एते मान टीठ ईठ सेरो को अनाठ मन ।

पीठ दे ते मारो ते चूकरी न कोऊ लाहि ॥ —रमिकप्रिया औरहाँ प्रभाव पद १५ १६ के ११

भक्तिकाल जब चार दण पाछे छूट गया तथा पारमार्थिक आनन्दन का धोर भी बाध्य के हाथ से छूटने लगा उस समय रीतिकाल का निर्वेग भाविरक्तिमूलक नहा रह सका। युवक को युवती के अतिरिक्त और युवती का युवक के अनिरिक्त गणसबम निर्वेद था। वय यह इसी कोटि का विरक्ति था। भक्तिकाल का प्रवृत्ति निवृत्तिमूलक यो रीतिकाल की विरक्ति निनान्त प्रवृत्तिमूलक। कण्व न आगान्ध का शृंगारम अन्तर्भाव किया है, वह इसा प्रकार की विरक्तिवाले गम का समझना चाहिए।

समा चार म मन उगास हाकर एक हा स्थान पर बस जाए उस केगव 'गम' कहते हैं।<sup>१</sup> इस गमरस में एक चार म उगास हाकर 'एक हा ठौर वय जान की क' लगी हुई थी। यह ठीक है कि यही केगव न बनना साहित्यिक दृष्टिकोण पूरा किया है। परन्तु साहित्यिक दृष्टिकाप के पाछे सांस्कृतिक दृष्टिका भी होना है इस कौन अस्वीकार करेगा। शृंगार म अन्तर्भूत गम का उगाहरण केगव न इस प्रकार किया है—

देखें नहीं भ्ररबिदनि त्यों चित्र चंद की आनद-बंद निहाई।  
कामिनि काम-कथा करे जान म ताक त्रियाम की सुदरताई।  
देखि गई अब तें तुमकों तब तें बूझ चाहि न देखी मुहाई।  
छाँगी देह न देखें बिना छो देह म काम्ह कहू हूँ दिवाई।<sup>२</sup>

नायकगन अन्तर्भूत गमरस का उगाहरण भा इसा प्रकार का है।<sup>३</sup> चौहूँ के प्रभाव के अन्त में प्रमग प्राप्त गमरस का एक स्वतंत्र उगाहरण कण्व न किया है।<sup>४</sup> यह केगव की उपलक्षण-मंडति का हा उगाहरण समझना चाहिए। शृंगार म स्वतंत्र गम जिस प्रकार सिद्धाया गया है, इसा प्रकार अन्य गम भा समझन चाहिए। यहा उनका उद्घोष था।

इन प्रकार केगव के शृंगारेतर छाठर्यों का जगज नहर शृंगार में उनका अन्त

- १ सर्वे होत उगास मन की एक हा ठौर।  
ठाही म स्मरस कहत कमल कवि-जिह्वी ॥

—रसिकप्रिया चरित्र प्रभाव छन्द ३०

- २ रसिकप्रिया चरित्र प्रभाव छन्द ३२
- ३ कुरीक सुत न दास्य मय न मयन हूँ मरु मय इत्यादि।  
किसर ऊस मरुतु दूत कय हा मय दूति दिया।  
लौ रानन्द कासम रचक कवि मय कर कय दिया।  
दा निन नै उनि राति उगास सुनेत-मुग कय की दिया ॥

—रसिकप्रिया चरित्र प्रभाव छन्द ३६

- ४ मनुज मनुज जब जन जन जननि का परबोई रचन जहाँ काल सो लगत है।  
असर अनन्य सब अमरी मयत परि वेसत निकसि जाने सोई तो लगत है।  
बाजन खरन सुनि समुक्ति सपथ करि, येइनि को बार भावि रित को लगत है।  
मगदु रे मागो येवा भागी को भागो धरे भय ने भय मीमांसा को लगत है।

—रसिकप्रिया चरित्र प्रभाव छन्द ४



भाव दिया गया है। विवेचन में गृहीत रसों का क्रम भरत के अनुक्रम है यह हम पहले कह चुके हैं। रौद्र भयानक अद्भुत आदि रसों के भरत के समान ही स्थायी के माध्यम से सजग किए गए हैं। वहीं-वहीं जैसे हास्य में उनके स्वरूप विश्लेषण पर भी ध्यान पला गया है। वास्तव में इन सजगों में शास्त्रीय विश्लेषण की अपेक्षा परिचयात्मकता ही उद्देश्य है। केनव ने इन रसों के जो वर्ण दिलाए हैं वे भी भरत के ही अनुक्रम हैं।<sup>१</sup>

भरत ने रसों के लक्षण अलग अलग और वर्ण अलग बताए हैं। विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने वर्णों को सजगों के साथ ही बतला दिया है। केनव ने इसी परवर्ती परम्परा का पालन किया है।<sup>२</sup> यद्यपि बीभत्स के स्थायी जुगुप्सा के स्थान पर निन्दा को परिवर्तित कर दिया है तथापि सजगों के परम्परा प्राप्त नील ही रखा है। उन्होंने घान का वर्ण नहीं दिया। हास्य का वर्ण भी अलग से नहीं दिया गया है। नैराश को आचार्यत्व की दृष्टि से इस अन्तर्भाव में दुहरी सफसला मिली है। एक ओर तो उनके सजगों की पुष्टभूमि में सुदृढ़ शास्त्र-परम्परा है साथ ही साथ उनके परिवर्तन सकारण हैं। प्रायः उनके सजगों नहीं हैं जो एक ओर स्वतंत्र रसों पर लागू होते हैं तो दूसरी ओर अन्तर्भाव का ध्यान रखकर चलते हैं। उदाहरणों में उन्होंने अन्तर्भाव दिखाया है जिसमें रस विरोध का परिहार करनेवाले शास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। इसमें केनव ने आचार्यों का मूल दृष्टिकोण ग्रहण किया है और अपनी स्वतंत्र प्रतिभा का भी परिचय दिया है। जुगुप्सा के स्थान में निन्दा की सम्पना मौलिक है। यह दूसरी बात है कि मस्त्र-साहित्य शास्त्र की सुदीर्घ परम्परा के सामने उनकी मौलिकता हम माय न हो। परन्तु उन्होंने अपनी मायता को रसिकप्रिया एवं कविप्रिया में एकरूपता प्रदान की है।

अन्तर्भाव का यह माग केनव ने न्याय नहीं बनाया है। उदाहरणार्थ नैराश ने भक्ति की शास्त्रीय व्याख्या में इसे अपनाया है तथा भाज ने साहित्य की शास्त्रीय व्याख्या में। भक्तिवादी साहित्य की प्रकृति शृंगारोन्मुख हो ही चुकी थी। उसीकी प्रतिध्वनि 'रसिकप्रिया' के रूप में सामने आई जिसमें कविरस और आचार्यत्व परस्पर स्पर्धा के साथ सुदृढ़ पग बढ़ाता हुआ चलता परिलक्षित होता है।

### अलंकार-निरूपण

केनव के रस निरूपण-मन्त्रों इस मूल्यांकन के अन्तर्गत हम कविप्रिया के अलंकार-मन्त्रों का प्रभाव (६-१४) लेते हैं। इन प्रभावों में केनव ने विविधालंकारों का वर्णन है जिन्हें हम भाज 'अलंकार' समझते हैं। इनमें निम्न अलंकार आते हैं—

१ शशो मर्कट आर मित्रो नाम्य प्रकीर्तिः ।

कान्ता अमरानेव रसो रीः प्रकीर्तिः ॥

गोरो बरगु विवेक इत्यनेन मयानकः ।

मात्रगु रीः केनवनेव रसो रीः ॥—नैराश आर १३० ४२, ४४

२ दण्डि रसिकप्रिया, चौरसदा प्रभाव पृ. १८, २२, २४ २७, ३० तथा ३३

स्वभावोक्ति विभावना हेतु विरोध विरोध उत्पन्ना आक्षेप कम गणना प्राप्ति, प्रमादनेय सूक्ष्म लेख निगूणता ऊर्ध्व रसवत् अर्थान्तरयाम व्यतिरेक भवति इति उक्ति वक्रोक्ति अयोक्ति व्यधिकरणोक्ति विरोधोक्ति सहोक्ति व्याजस्तुति व्याजनिग्न भमित पर्यायोक्ति युक्त समाहित सुसिद्ध प्रसिद्ध विपरीत रूपवद्भूत रूपवद् दोषवद् प्रहलिका परिवर्तन उपमा ।

केवल ने अपने दृष्टिकोण से भक्तिकार गान्ध को सामान्य और विशिष्ट दो रूपों में रखा है यह हम जिन्हा चुके हैं । विनिष्कालकार ही सच्चे भक्तिकार हैं । इनको दायाँ तकार और धर्मात्मिकार के भेदों में नहीं बाटा गया । उपयुक्त भक्तिकार को धर्मात्मिकार ही समझना चाहिए । इनके भक्तिकार पन्द्रहव-योग्य प्रकाश में यमक और चित्र का बहु मुखी जाल प्रस्तुत किया गया है । वहाँ धर्मकार के अनेक ढंग अपनाए गए हैं जो प्रायः प्राचीन परम्परा प्राप्त हैं । कुछ केवल की अपनी उद्भावना भी हो सकते हैं ।

### स्वभावोक्ति

केशव ने स्वभावोक्ति का लक्षण आचार्य-परम्परा के अनुसार है—

जाको जसो रूप गुन कहिज तसे साज ।

तासो जाति-सुभाव कहि, बरनत ह कविराज ॥<sup>१</sup>

अर्थात् जिस वस्तु का सहज रूप भवता गुण जसा हो वसा ही वर्णन किया जाए उसे कविगण जाति भवता स्वभावोक्ति भक्तिकार कहते हैं । प्रायः यही तात्पर्य भामह,<sup>२</sup> दण्डी<sup>३</sup> हट्ट<sup>४</sup> भोज<sup>५</sup> मम्मट<sup>६</sup> एवं शिवनाथ<sup>७</sup> आदि आचार्यों के लक्षण का है । प्राचीन आचार्यों जैसे दण्डी हट्ट भोज ने इसे जाति नाम भी दिया है । अतः यह कहना कठिन है कि केशव ने स्वभावोक्ति के लक्षण में किसी आचार्य को अपनाया । केशव ने स्वभावोक्ति के दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनमें लक्षण का पूर्ण साम्य है ।

### विभावना

विभावना का लक्षण भी परम्परा-सम्मत है । विभावना का मूल तो यही है कि जहाँ बिना कारण के काम की उत्पत्ति दिखाई जाए । परन्तु आचार्य माग एक दूसरे प्रकार की विभावना भी मानते हैं—जहाँ वास्तविक कारण से वहाना किसी दूसरे कारण से

१ अ—कविप्रिया, नवम प्रभाव छन्द =

२—उदाहरण के लिए देखिए कविप्रिया नवम प्रकाश छन्द १०

३ स्वभावोक्ति-लक्षण इति केचित्प्रवचनम् ।

अर्थ—न-केशव स्वभावोक्ति-हितो यथा ॥

—आचार्यकार २।६३

४ नानावस्व धर्मार्थानां रूप साक्षात्कृत्य

स्वभावोक्तिरन्वयान्वितव्यत्वात् साक्षात्कृत्य

—आचार्यकार २।६

५ भक्तिकार-विभावना विभावना विभावना विभावना

लोका विभावना विभावना विभावना विभावना

विभावना विभावना विभावना विभावना

६ केशव-विभावना विभावना विभावना विभावना

कार्य की उत्पत्ति दिखाई जाए। भावाय मम्मट के लक्षण से तो यह भेदीकरण स्पष्ट नहीं किन्तु दण्डी में यह कुछ स्पष्ट हो जाता है। इन्हीं दो भेदों को ध्यान में रखकर भाचार्यों ने विभावना शब्द की साधन व्युत्पत्ति भी दिखाई है—

(अ) जहां प्रसिद्ध कारण का छोड़कर कारणान्तर को विभावित किया जाता है।<sup>१</sup>

(ब) जहां कार्य अपने प्रसिद्ध कारण के ठग को छोड़ विनिष्ट ठग से उपस्थित किया जाए।<sup>२</sup>

भाचार्य मम्मट के लक्षण पर भामह की छाया है, उन्होंने भामह के समान ही कारण के स्थान पर क्रिया शब्द का प्रयोग किया है।<sup>३</sup> और सम्भवतः भामह के प्रभाव के फलस्वरूप ही उन्होंने विभावना के भेद करना उचित नहीं समझा। भाचार्य विद्वन्नाथ ने विभावना के दो भेद प्रपञ्च किए हैं किन्तु कारण के उक्त भण्डा धनुर्वेद रूप में उनका लक्षण इस प्रकार है—

जहां क्रिया हेतु के कार्य की उत्पत्ति नहीं जाती है वहां विभाजना होती है। जय देव न चन्द्रालोक में भी विभावना के इसी लक्षण को प्रमुखता दी है। यद्यपि प्रपञ्च दीक्षित ने उसके छः भेद दिखाते का प्रयत्न किया है। इन सभी भाचार्यों के लक्षणों पर दृष्टि डालने से एक बात और स्पष्ट होती है। दण्डी ने विभावना में कारणान्तरवाले भेद को प्रमुखता देकर सहज विभावना का गौण रूप संजलित किया है किन्तु भाय भाचार्यों ने दूसरी सामान्यतः कारणभावभूतक विभावना को प्रमुखता दी है। भाचार्य केनव ने जहां एक ओर दण्डी के दोना भेदों को अपनाया है वहां उनका काम को स्वीकार न करते हुए प्रथम सहज कारणभावभूतक विभावना का लक्षण दिया है तथा दूसरी कारणान्तरमूला को गौण ही रखा है। स्पष्ट है कि उन्होंने महा कवियों स्वकीय निर्णायक दृष्टि का उपयोग किया है। उनके लक्षण निम्न प्रकार हैं

सामान्य विभावना

दण्डी की स्वाभाविक विभावना—

कारण को बिना कारनहि उद्योत होत जिहि छोर।

तासों कहत विभावना, केसव कवि सिरमौर ॥<sup>४</sup>

भाय विभावना

कारन बीनहु आन तें, कारण होइ नू सिद्ध।

जानी यहौ विभावना कारण छोड़ि प्रसिद्ध ॥<sup>५</sup>

१ विभावने कारणान्तरं यस्याम् ॥

—मयकार्य, का. पृष्ठ १८

२ विनिष्टनया कायस्य भावनात् ॥

—मयकार्य, व. पृष्ठ १४७

विभावनायां भवति कार्यस्य विभावनायां धनुर्वेदविभाजना विभावना।

—पञ्चवर्ती, पृष्ठ २८८

३ क्रियायां प्रविशेत्तु विनिष्टविभावना ॥

—मयकार्य उन्वाम ३ पृष्ठ १७७

४ कविप्रिया नवम प्रकाश पृष्ठ ११

५ कविप्रिया, नवम प्रकाश पृष्ठ ११

दोनों ने उठाहरण भ्रतग भ्रतग हैं और उनका सामञस्य भी भ्रतग भ्रतग सप्त है ।

डॉ० हीरालाल दोस्ती का मत यह है कि केगव की प्रथम विभावना का लक्षण ह्यक के आधार पर है । यह ठीक है कि ह्यक का लक्षण वारणाभावे वायस्योत्पत्ति विभावना भी इसी प्रकार का है । किन्तु न केवल ह्यक ने ही अपितु भामह मम्मट विवनाय तथा जयदेव सभीने ही इसी प्रकार लक्षण किया है फिर केगव को ह्यक का ही श्रुता कहना कहा तक ठीक है । वास्तव में केगव ने अपने व्यापक अध्ययन के आधार पर विभावना का लक्षण किया है विनायकर उन्होंने दण्डी की भवता आधार बनाया है परन्तु उसके कम विधान में उन्होंने अपने निगमाश्रय दृष्टिकोण का परिचय दिया है । उनके उठाहरण पर दण्डी की थोड़ी-सी छाप भा है<sup>१</sup> पर इस प्रकार की छाप सट के उठाहरण की भी बड़ी जा सकती है ।

## हेतु

हेतु भ्रतकार की स्थिति तथा स्वरूप संस्कृत रीतिशास्त्र में प्रारम्भिक काल से ही बड़ा हावाबोल रहे हैं । एक ओर तो दण्डी उसे उत्तम भ्रतकारों में गिनाते हैं<sup>२</sup> दूसरी ओर भामह उसे भ्रतकार होने का भी अधिकार नहीं देना चाहते ।<sup>३</sup> थोड़ा आगे बढ़कर उद्भट उसका नाम भी नहीं लेते जबकि सप्त उसका लक्षण विधान करते हैं । इसी प्रकार मम्मट हेतु को पृथक् भ्रतकार नहीं मानते जबकि विवनाय सट के अनुसार उसका लक्षण करते हैं । अग्निपुराण एवं 'सरस्वतीकथाभरण' में भी इसका विवेचन पाया जाता है । स्थिति के समान स्वरूप भी अस्थिर-सा ही है ।

हेतु की मान्यता जेनेवाले आचार्यों की भी हम सुविधा की दृष्टि से दो वर्गों में रख सकते हैं । एक दण्डी की परम्परा के दूसरे सट की परम्परा के । सट ने हेतु का लक्षण किया है—जहाँ कारण का कार्य के साथ अभेद निश्चाने हुए अभिधान किया जाए

१ केराव क कुं भ्रतकारों का आधार आचार्य ह्यक का भ्रतकारभूत नामक ग्रन्थ प्रगाढ हागा है । केगव का प्रथम विभावना का लक्षण ह्यक की विभावना के सामान्य लक्षण में मिलता है । केराव के अनुसार विभावना बड़ा होती है जहाँ बिना कारण के कार्य हागा है । ह्यक ने भी विभावना का यही लक्षण बताया है ।

—आचार्य केराव नाम पृष्ठ २४१

२ भ्रतगिगमिन्न दृष्टिभ्रतगर्जिता जग ।  
भ्रतगिगोऽक्षरवाचनसत्त्व मुक्ति ॥  
मृदुग मुक्ति जेवा हैमो न किने हा हाहि ।  
आमा एमो भागे केमोराव हेरि हारे हैं ॥

—काव्यान्तरा पृष्ठ ७ श्लोक २०१

—इतिविधा जवन प्रमाण सप्त १२

३ हेतुव मरुनपेरोऽक्षराचामुत्तमपृथक् ।

—काव्यान्तरा, द्वितीय परिच्छेद सप्त २२५

४ हेतुव मरुनो लेखोऽक्ष नामभ्रतगता मम ॥

—काव्यान्तरा, २१८६

यहाँ हेतु भलकार होता है।<sup>१</sup> भम्मट ने णम उल्लास म कारणमाला के प्रसंग म जो हेतु का सङ्गन किया है वह इसी दृष्टीय हेतु-सङ्गण का है। उनका तक यह है कि कारण कार्य भ्रमेद के साथ अभिधान तो आयुषू तम् की भाँति सङ्गण का विषय है। अत उरो पूयक भलकार मानना ठीक नहीं। उनकी दृष्टि में उनका वाक्यार्थ ही हेतु है।<sup>२</sup> विन्व नाथ ने इसी दृष्टीय हेतु-सङ्गण को आधार बनाया है।<sup>३</sup> जयदेव ने चन्द्रालोक म तथा अप्य दीक्षित ने 'बुधसयान' द' म हेतु के सङ्गण एवं उदाहरण दो प्रकार से प्रस्तुत किए हैं जिनम हम एक को दृष्टीय-परम्परा का तथा दूसरे को दण्डि-परम्परा का कह सकते हैं।<sup>४</sup> दण्डी के विवेचन का रहस्य 'सरस्वतीकठामरण' के विवेचन की देखने से ही स्पष्ट समझ में आता है। भोज हैं तो दण्डी से परवर्ती परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दण्डी ने कोई पूर्ववर्ती भलकार-ग्रन्थ रहा होगा जो आज अनुपलब्ध है जिसके आधार को लेकर दण्डी ने तथा भोज ने भी यह विवेचन किया है। समयत दण्डी इसीलिए हेतु का न तो सङ्गण देते हैं और न वर्गीकरण के आधारों का पहले उद्घृत्य रूप में सवीर्तन। अत दण्डी के विवेचन को समझने के लिए सरस्वतीकठामरण का विवेचन देख लेना सामान्य होना। 'सरस्वतीकठामरण' में हेतु चार प्रकार का बताया गया है—कारणहेतु ज्ञापक हेतु अभावहेतु चित्रहेतु।<sup>५</sup> दण्डी ने भी प्रथम हेतु के बारह तथा ज्ञापक दो भेद किए हैं।

१ हेतुमता सहहेतोरभिधानमभेदसमवेचन ।

सोऽनङ्गो ह्येतु रण्यम्येभ्य पूर्यम् ॥

—दृष्ट ७।८२

२ हेतुमता सद् हेतोरभिधानभेदतो ह्येतु इति हेतुत्वानङ्गोऽत्र न सङ्गित । आयुषू तमित्यादि रूपो ह्येव न भूयता कदाचिदिति वैचर्याभावात् ।

अविरलकमलविशाम सकलालिमन्त्रश्च कोक्किमानन्द ।

रम्योऽयमेति सम्प्रति लोकोक्तयथाकर काल ॥

—दृष्ट ७।८२

इत्यत्र काम्यरूपना कोमलानुप्रास महिम्नैव समाम्नामि ।

न पुनर्हेतुत्वानङ्गकल्पनेति पूर्वोक्त काम्यनिष्ठमव हेतु ॥

—वाचस्पतिकारा, १।५२६

३ अभेदेनाभिधा हेतुहेतोर्हेतुमता सह ।

—साहित्यरत्नसुध वराम परिच्छेद १८५

४ हेतुहेतुमताश्च हेतु कश्चिद्वचने ।

सदभावितानाम विदुषां वयसा भेदप्रभो ।

हेतोर्हेतुमता सार्धं वचनं हेतुर्ध्वने ।

अमावसति रीतिगुमनिष्ठेशाय शुभशाम् ॥

—पुष्पलवान्, १६७-८

५ शिवाया वरिण ह्येतु वारवो वारवरेव स ।

अमावसिचन तुरव चतुर्विध इत्येवो ।

—सरस्वतीकठामरण १।१२

६ वारववपकी ह्येतु तो वारेवपिरी वया ।

—वाचस्पतिकारा २।११५

और दस आका में उनके उपाहरण प्रस्तुत किए हैं। फिर छ आका में अभावहेतु के प्राग भाव प्रत्यक्षाभाव आधोयाभाव अत्यन्ताभाव तथा समर्गभाव के आधार पर पाच भेद उपस्थित किए हैं। इसी प्रकार चित्रहेतु के भा पाच भेद दूरकाय तत्सहज कार्यान्तर रज ध्युक्त तथा मुक्त नाम से कियाए हैं।<sup>१</sup>

दण्डा के कारण एक आपक भेद म म परवर्ती आभावों को आपकभूतक भेद को हेतु कहना अधिकतर नहीं स्यात्। उहानि उसके स्थान पर अनुमान धनकार का नामकरण किया।<sup>२</sup> चतुष चित्रहेतु के भेद भी ज्यों के त्यों न बन सके। दूरकाय नामक भेद में अम ल्कारों तत्त्व हेतु नहीं अपितु कारण-काय की भिन्नभौम स्थिति थी।<sup>३</sup> परवर्तिता ने उसे अमगति कहा।<sup>४</sup> तत्सहज और आपनन्तरज कारण-काय की पारस्परिक स्थिति से सम्बद्ध थे। उनके आधार पर बड़े अतिशयास्तियों का कल्पना हुई।<sup>५</sup> रहे ध्युक्त काय एक मुक्त कार्यहेतु उनका भी आधार दुबल हो या। क्योंकि वे काय के स्वरूप को देखकर बनाए गए थे न कि कारण के स्वरूप को। फिर चित्र कोई स्वतन्त्र भेद नहीं। विभिन्न प्रकार की रसोक्त रेषाओं का सम्मिश्रण ही उसका स्वरूप है। इस प्रकार दण्डी म केवल दो भेद कारकहेतु एक अभावहेतु पाव रहन हैं जिन्हें वेगव ने अपनाया है।<sup>६</sup>

१ दूरकायतत्सहज अवनन्तरवत्त्वा।

अदुक्तदुक्तकधी चान्दुक्तवत्चित्रहेतवः ॥

—वाक्यदत्ता, २।२५३

२ तत्र अरकोऽनुननस्य विवत् ॥

—साहित्यदर्पण १ १३ हेतु की वृत्ति

३ तत्सहजस्य वैकल्यस्य दण्डतेः।

मुक्त तत्सहजस्य सोऽप्यस्य धनमि म्बु ॥

—वाक्यदत्ता २।२५४

४ तरेणु भिन्नेरहेतुमिति।

—अनकारनवम् पृष्ठ १६३

५ अविनष्टि नरपां वम पान्तीरवम्।

सदेव एमा विविदेतवन्मविभ्रजे ॥

—वाक्यदत्ता २।२५६

६ परावनस्य विद्यानुपाय वाननवम्।

अनेव हरिपात्राणामुपायो रागवत् ॥

—वाक्यदत्ता, २।२५७

७ अर्पितस्य सन देव कां रपाव रावत्।

अपन्तीरागान्मिन्नु पेशवत्तवत्तमे।

अने मनो वम परवन्तुनय विवत् ॥

—मुक्तवचनम्, ४१ ४२

८ निष्पद्य च विव दैव हेतुव तान्त्रिया।

अनेतु वनमि मम विनयेव हेतुव ॥

—वाक्यदत्ता २।५४

दण्डी के उपाहरणा को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अभावहेतु म हेतु अभावात्मक है और कारकहेतु में सभावात्मक । दण्डी ने अनुसार कारकहेतु म कार्य सभावात्मक भी हो सकता है और अभावात्मक भी । किन्तु उसके आधार पर उन्होंने किन्हीं उपभेदों का नामकरण नहीं किया । वस्तुतः काय के सभावात्मक अथवा अभावात्मक होने से हेतु की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है । हा हेतु स्वयं भावात्मक है अथवा अभावात्मक, इस दृष्टि में उसका विचार होता ठीक है । केनव ने यही ठीक दृष्टिकोण अपनाया और दण्डी के हेतु को स्वीकार करते हुए भी कारक आपन अभाव और चित्र भेद न करके दो भेद सभाव और अभाव रखे हैं । अभाव नाम तो दण्डी का था ही उसीके बल पर सभाव का नामकरण हुआ जोकि केनव का अपना है । अतः डाक्टर दीक्षित की यह मायता कि केनव के सभाव और अभाव दोनों हेतुओं का आधार दण्डी के कारकहेतु के भेद ही हैं कुछ जल्दी में निश्चित की हुई प्रतीत होती है । केनव का सभाव दण्डी के अभाव से अलग है । केनव के सभाव का आधार दण्डी का अभावेतर कारकहेतु है ।

सभावात्मक हेतु के विषय में तो कोई प्रश्न नहीं उठता उसको ध्यान में रखकर ही प्रायः अनेक भाषाओं ने हेतु का ससण विधान किया है । किन्तु हेतु के अभावात्मक होने पर भी जहाँ काय-साधन दिखाया जायगा वहाँ विभावना से टकराने की पूरी संभावना है । दोनों की विभाजक रेखा अत्यन्त सूक्ष्म हो बन सकेगी । विभावना में कारण के अभाव में जहाँ काय दिखाया जाता है वहाँ विरोध की एक क्षीण रेखा होती है तथा वास्तविक कारण को छोड़ प्रायः अन्य कारण से उस काय का सम्पादन होता है । अतः उस विरोध का समाधान होता है ।<sup>१</sup> इस कारण विभावना में वास्तविक हेतु का अनुपेक्षित होना चमत्कारायक होता है । किन्तु यहाँ अभावात्मक हेतु में स्थिति भिन्न है । गांधीजी की मृत्यु कायस के लिए जीवनी नाबिन बनी है । इस वाक्य में हेतु गांधीजी की मृत्यु काय-साधन के लिए अत्यन्त अपेक्षित सिद्ध हुआ । किन्तु उस हेतु का स्वरूप

१ दण्ण ने उसके भी भेद बताया है । कारकहेतु और अपकहेतु । कारकहेतु के भी दो भेद किए हैं वाक-साधन में कारणहेतु और अभाव साधन में कारणहेतु । फिर इनके भी उपभेद किए हैं । केनव के हेतुभेदों सभावहेतु और अभावहेतु का आधार दण्डी के कारक हेतु के ही भेद हैं ।

—आचार्य केरावाम हा मोक्षिण पृष्ठ २५३  
विष्णु हा नाथिन द्वारा उल्लिखित दीपक सम्भारन मुद्रा का मुद्रि से वापक के स्थान पर छप गया है ।

(अ) सिनाथविशिष्टार्थस्य हेतुभवति साधक ।

कारको वाक इति सिंहा मोक्षपुत्रायते ॥

—अतिपुराण ३५३ २६ ३

(आ) त्रिभाषा कारण हेतु ।

—साम्बर्णीयकग्रन्थ

२ (अ) कारणस्य निषेधेन साधमान् प्रयोग्य ।

विभवनायामाभा निरोधोऽप्योक्तसाधनम् ।

अतो दूरविभेदोऽप्यो विरोधन व्यक्तित्व ॥—अनकारसम्भम् नि टीका पृष्ठ १५०

(आ) अत्यन्त कारक कर्त्तव्योऽप्येति विरोधविचारः ।

—अनकारसम्भम् पृष्ठ १५०

स्वयं प्रभावात्मक है। विभावना से कारणाभाव अनिवार्यतः अप्रतिष्ठित नहीं होता यही दोना का अन्तर है। सस्फुट म तो अभिव्यक्ति की इतनी शक्ति रही है कि वह इन सूक्ष्म रेखाओं को स्पष्ट रख सकती है। किन्तु हिन्दी के पास और विशेषकर केन्द्रीय हिन्दी के पास इस क्षमता की कम हो भाषा की जा सकती है।

दण्डी के अनुसार कारकहेतु भावात्मक काय का भी हो सकता है और प्रभावात्मक का भी।<sup>१</sup> केवल का समावहेतु भी जोकि दण्डी के कारकहेतु का स्थानापन्न है, काय के भावात्मक अथवा प्रभावात्मक दोनों रूप रख सकता है। भाव-साधन तो विचार की वस्तु नहीं प्रभाव-साधन में समावात्मक हेतु का उदाहरण देकर केवल अपना मन्तव्य स्पष्ट कर देत हैं—

नौतल मन्द सुगन्ध समीर हरयो इम सों मिलि घोरज घोरौ ॥<sup>२</sup>

यहां विविध वायु घोरज के प्रभाव का ही हेतु है जोकि केवल के अनुसार समाव हेतु का उदाहरण है जिसपर दण्डी के उदाहरण की छाप भी है।<sup>३</sup> इसी प्रकार प्रभावात्मक हेतु का आधार भी दण्डी का प्रभावहेतु ही है। दण्डी के प्रध्वसामाव हेतु का उदाहरण है—

गत कामरूपोभाबो गतितो यौवनज्वर ।

सतो मोहश्च्युता तृष्णा कतं पुण्याश्रमे मन ॥<sup>४</sup>

अर्थात् काम-रूपों का उन्माद दूर हो गया है यौवन-ज्वर भी उतर चुका है मोह समाप्त हो गया है और तृष्णा भी मलीन हो गई है अतः मैंने अपना मन पुण्याश्रम में लगा दिया है। इस उदाहरण में कामात्मिक प्रभाव पुण्याश्रम रति के हेतु-रूप में लिखा गया है। यहां इन पुण्याश्रम मन को काम रूप में ही रखना पड़ेगा। पुण्याश्रम में मन लग जाने के फलस्वरूप कामादि समाप्त हो गए, ऐसा अर्थ करने पर दण्डी के अमोघ की सिद्धि समझ नहीं क्योंकि दण्डी हेतु को प्रभाव रूप में दिखा रहे हैं। कामादि का प्रध्वसामाव ही काम का हेतु लिखना है। इस उदाहरण में विभावना से टकराने की नौबत नहीं आई। अब केवल का उदाहरण लीजिए—

जान्यो न म मद जीवन की उतर्यो बस काम की काम गयोई ।

छाँड़्यो न चाहत जीव कलेवर, जीव कलेवर छाँड़ि दयोई ।

१ चन्द्रावतमात्राय स्पष्टया भवति नित्यम् ।

पश्चिमानामभावात् परानुपपन्नम् ।

—भाष्यारथ १।२३=

२ केवल चन्दन वृक्ष होने पर किन्तु को मकरन्द सरीसृप माकरी के गुणवत् शुक्ति के तर्क परक को बन देते ।  
रमन को परिमल सज्जन गंध धनो धनमार की ओते ।  
सज्जन मन्द सुगन्ध समीर हरयो इनमा मिलि धरज भीरो ॥

३ देविण्ड बा अश्विन पृष्ठ २४४

४ भाष्यारथ १।२४=

—कविप्रिया ६।१६



भाषत जाति जरा बिन सीसति रूप जरा सब सीसि सयोई ।

केणव राम ररी न ररी धनसाधे ही साधन सिद्ध भयोई ॥<sup>१</sup>

न जाने यौवन-भद कब उत्तर गया । काम क्षीण हो गया । वृद्धावस्था जीवन के परिणामित दिनों को निगलती जली आ रही है रूप को तो वह निगल ही चुकी है । यद्यपि शरीर को जीव छोड़ना नहीं चाहता किन्तु शरीर में जीव को कहन करने की शक्ति नहीं रही जीव को खपन से परे ही समझिए । अब राम जपो या न जपो बिना साधे हुए (घनायास सिद्ध) साधनो से ही मैं तो सिद्ध हो गया हूँ । यहाँ केणव ने सिद्धावस्था रूप काय की सिद्धि के लिए यौवनो-माद तथा कामानि के अभाव स्थूल भौतिक शरीर के अभाव तथा रूप (जिसपर कि श्लेष है जरा-पक्ष में अवयव सौन्दर्य तथा मिद्धि-पक्ष में पञ्च भौतिक सत्त्व) के अभाव के हेतु-रूप में प्रस्तुत किया है । इनको केणव ने धनसाधे ही साधन' अर्थात् अनायासोपपन्न साधन कहा है । हेतु अभावमय है काय समावात्मक जो कि केणव के वर्गीकरण के सर्वथा अनुरूप है साथ ही दण्डी के ही पदचिह्नों पर है । किन्तु जसाकि ऊपर कहा आ चुका है कि संस्कृत की सूक्ष्म अभिव्यक्ति-शक्ति केणव की हिन्दी के पास नहीं है । अतः इस उदाहरण में विभावना के भ्रम की पूरी-पूरी गुजायग है । धनसाधे ही साधन सिद्ध भयो ! का यह अर्थ समझने पर कि बिना साधनो के साथ ही मैं सिद्ध हो गया हूँ कोई भी पंडित विभावना सिद्ध कर सकता है । असकार अर्थ-सापेक्ष होते हैं यह सभी जानते हैं । स्वयं दण्डी के उदाहरण में ही हम देख चुके हैं कि यदि अर्थ दूसरे प्रकार से कर दिया जाए तो दण्डी का मन्तव्य चुर चुर हो जाएगा और दण्डी में भी गड़बड़ी की घोषणा करनी पड़गी । इसी तथ्य पर दृष्टिपात न करने के कारण प्रो० अरुण<sup>१</sup> एच डा० दीक्षित<sup>२</sup> ने केणव की सबर भी है । आचार्य केणव के विवादग्रस्त उदाहरणों को नेकर हम ऊपर देख चुके हैं कि उनके आधार दण्डी ही हैं तथा दण्डी के दृष्टि कोण से उनमें कोई भ्रम नहीं है । केणव ने दण्डी के सम्वे छोड़े हेतु जाल को सक्षिप्त करने का सराहनीय कार्य किया है । उन्होंने परवर्ती आचार्यों के अनुसार ही गारवहेतु तथा चित्रहेतु को छोड़ दिया है तथा दण्डी के बारक और अभावहेतुओं को हेतु की भावात्मकता तथा अभावभात्मकता के आधार पर पुनः वर्गीकृत करके दण्डी के विवेचन की गिनतिला एत विचारारम्भकता को दूर कर दिया है । उनका वर्गीकरण अथिक् से अधिक् दण्डी पर आधारित अधिक् से अधिक् दण्डी का मुसमा रूप तथा अधिक् से अधिक् मोक्षिक है । यहाँ मोक्षिकता है धुनने में । दण्डी के भेदा में से धुनाव के द्वारा उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्य परम्परा के विरसित अध्ययन से परिचय दिलाया है ।

१ कविप्रिया भवम प्रभाव पृष्ठ १७

२ केणव एक अध्ययन प्रो अरुण पृष्ठ २४

३ आचार्य केणव-प्राप्त, डॉ० दीक्षित पृष्ठ २५८

इस प्रकार केशव के अनुसार हेतु दो प्रकार का होता है सभाव और अभभाव ।<sup>१</sup> इन दो के उदाहरणों के अतिरिक्त केशव ने एक मिश्रित उदाहरण भी प्रस्तुत किया है ।<sup>२</sup> जिसमें हेतु को सभाव और अभभाव दोनों प्रकार का ता दिया गया ही है साथ ही दण्डी के चित्रमद 'कार्यान्तरज' <sup>३</sup> को जिसे नि परवर्तियों ने अत्यन्तातिशयोक्ति<sup>४</sup> कहा है समेट लिया है । जहाँ दण्डी ने अनुसार चित्रहेतु और नवीनों के अनुसार अत्यन्तातिशयोक्ति मानो जा सकती है और इन उभयात्मक रूप से केशव ने मूल मन्तव्य पर कोई असर नहीं पड़ना ।

### विरोधाभास या विरोध

केशव के विरोधाभास का लक्षण भी आचार्य-परम्परा के अनुकूल है । उन्होंने प्रथम विरोधाभास फिर विरोध में लक्षण एवं उदाहरण दिए हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि वे दो भिन्न अलंकार मानते हैं । यह बात उनके लक्षणों एवं उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है । उन्होंने अपनी अनुक्रमणिका में दो अलग अलंकार गिनाए हैं ।<sup>५</sup> ससृष्ट आचार्यों ने भी विरोध अथवा विरोधाभास को अलग अलग नहीं किया है ।<sup>६</sup> वास्तविक विरोध में

१ हेतु होत इ भाति है, वरनत मय कविताव ।

अनवगत प्रकास सब भरनि सभाव अभभाव ॥

—कविप्रिया, नवम प्रभाव छन्द १५

२ या तिन सें बुझानु लसाहि आली मियर मुरलीपर सें ही ।  
सावन साधि अगलध सबै बुधि सोधि मो दूत अमनन में ही ॥  
ता तिन सें निदमान दुहुन की बेसव भावति बात कहैं ही ।  
पाव अकास प्रकासै सपी, बडि प्रेमसमुद्र रहे रहिले ही ॥

—कविप्रिया १११५

३ परवाइ पर्यस्य विरयानुरीप्य चन्द्रमयलम् ।  
प्रोक्क हरिणावीणासुराणो रगसगर ॥

—काव्यादरा २/२५७

४ अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु पौर्वापर्यव्यतिरेके ।  
अप्रे मानो गत परवादनुनय प्रियेण सा ॥

—कुवचवानन् ४३

५ याति सुभाव विभावना हेतु विरोध विमेष ।  
उपेक्षा आक्षेप मय आनिष प्रिय मुनेष ॥

—कविप्रिया नवम प्रभाव छन्द १

६ (क) विरुद्धाभासविरोध । स च समाधानं विना प्रसूने दोष । सन्निवृत्तभावे प्रसूत एवा  
सामानान्ताद् विरोधाभास ॥

—रघुक, पृष्ठ १५४

(ख) पराधिकरणसदृशत्वेन प्रतिपादितविरोधयोर्मोक्षानैकाधिकरणासदृशमेकाधिकरणात्मक  
समाधान का विरोध । यथा पराधिकरणासदृशत्वेन प्रतिपादितं स । स च प्रसूनेऽप्रसूतश्च ।  
प्ररोहश्च बाधबुद्ध्यान्मिमतत्त्वम् । तदपेक्षितमपरोहः । तत्रापो दोषस्य विषयः । निवारणा  
सङ्कारस्य । अथ एवैव विरोधाभासमाचक्षते । आ ईषदसामान्य इत्यानास । विरोधश्चा  
साक्षात्सदृशति ॥

—रमणशर, पृष्ठ ४२७

तो दोष ही माना गया है। विरोध दिखाई देकर उसका परिहार होने पर ही विरोधाभास माना जाता है। केशव का लक्षण इस प्रकार है—

वरुनत सग विरोध सो अथ सव अविरोध।

प्रगट विरोधाभास यह समझत सब सुबोध ॥<sup>१</sup>

वैश्वदास विरोधमय रचियत बचन विचारि।

तासा कहत विरोध सब, कविहुल सुबधि सुधारि ॥<sup>२</sup>

यही भाव संस्कृत प्राचायों के लक्षण का है।<sup>३</sup> कुछ प्राचायों ने गुण किया द्वय्य जाति के आधार पर विरोध को दस प्रकार का दिखाया है किन्तु पंडितराज जगन्नाथ का मत है कि यह भेद करना व्यर्थ है केवल शुद्ध और श्लेषमूलक दो ही प्रकार विरोध मानना चाहिए।<sup>४</sup> वैश्व भी आख्यात्रि पर आधारित भेदीकरण म नही गए। उनके प्रथम उदाहरण में श्लेषमूलकता ही प्रधानता है। दूसरे में यदि चार्हे तो आख्यादि मूलकता तथा अन्तिम पंक्ति में श्लेषमूलकता दोनों पा सकते हैं। इस प्रकार वैश्व ने भी विरोध और विरोधाभास में कोई अंतर नही किया। विरोध और विरोधाभास में अन्तर दिवाते हुए प्रो० अरुण ने वैश्व पर दोषारोपण किया है। उनका यह भी आशय है कि केशव ने आभास को भी विरोध ही मान लिया है।<sup>५</sup> वे यह भूल जाते हैं कि आभास

१ कविप्रिया नवम प्रभाव, छन्द १६

२ कविप्रिया नवम प्रभाव, छन्द २१

३ दण्डी—विच्छिन्ना पद्याना यत्र समर्पणानम्।

विशेषदशनायेक स विरोध रम्यो यथा ॥

—काव्यादर्श २।३३३

भामह—गुणम्ब का त्रिधाया का विच्छिन्न-पञ्चिधाया।

या विशिष्टाभिकानाय विरोध स त्रिधाया ॥

—काव्यालंकार ३।२५

भामह—विच्छिन्नाभास विरोध ॥

—काव्यालंकारमूल अनुध अक्षिरेण, अध्याय ३।१२

कृत्यक—विच्छिन्नाभास विरोध ॥ इह आख्यात्रिणां अनुधो पद्यानां प्रत्येक तन्मध्य एव सत्यं लोपविनाशिकायां विरोधस्या मम्ब पे विरोध ॥

—अन० ॥ १५४

मम्मट—विरोध सो विरोधे विच्छिन्नेन यत्र ॥

जातिरनुधो विच्छिन्नाभास विच्छिन्ना दशदशगुणविशिष्टा ॥

त्रिधा द्वाभ्यामपि द्वय द्वयलेशेति ते षड् ॥

—काव्यप्रकाश दशम उल्काग सूत्र १६९, १७०

अध्याय—आभासविरोध विरोधाभास अर्थने।

त्रिधा तन्नि द्वारेण कदाचिदेति विच्छिन्ना ॥

—शुक्लवानन्द सू० ७९

विच्छिन्ना—विच्छिन्नविच्छिन्नाभासविरोधो यो दशदश ॥

—साहित्यदर्पण १०।१८, १९

४ व नो नरशशिभेदानामनुधो यत्र शुद्ध श्लेषमूलकाभास विच्छिन्ने भवे ॥

—रसप्रकाश वृट्ट ४२

५ प्रो अरुण, केशव पद काव्यपन १ २५

होने पर ही इस अक्षकार की सत्ता है अन्यथा दोष होता है।

विराधाक्षकार के सीमा निधारण की भावश्यकता का अनुभव प्रायः सभी प्राचायों ने किया है<sup>१</sup> और विरोध अथवा विभावना के प्रसंग में गद्यात्मक विवेचन से अथवा उदाहरणों के माध्यम से उनका अन्तर स्पष्ट कर दिया है। वास्तव में विरोध एक उत्सर्ग रूप सामान्याक्षकार है तथा विभावना विज्ञापक आदि अपवाद-रूप विशेष है। जहां कारण-भाव का मिश्र दंगभूतक विरोध होता है वहां भ्रमगति। इन अपवाद-रूप विशेषों से अत्रिच्छिन्न मूल विरोध के अन्तर्गत आते हैं।<sup>२</sup> विभावना तथा विरोध में अन्तर करते हुए ध्येयक निवृत्त है कि विभावना में कारणभाव जनकान् हाता है अतः काय बाध्य होता है कारणभाव बाधक। किन्तु विरोध में कारण-काय परस्पर एक-दूसरे के बाधक रूप में प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार विज्ञापक में कार्याभाव प्रबल होने के कारण बाधक और कारण सत्ता बाध्य होती है।<sup>३</sup> यही बात विवनायक और पण्डितराज जगन्नाथ<sup>४</sup> की है। संहृत के प्राचायों ने विरोध और विभावना के अन्तर का स्पष्ट करने के लिए यह वा सहाय दिया है किन्तु केवल न यथ का प्रयोग किया ही नह। अतः पहले तो विरोध और विरोधाभास नाम से एक-एक उदाहरण लेकर प्रसंगगत एक तीसरा उदाहरण उठाने ऐसा रस्ता है जिसके द्वारा विभावना आदि विज्ञापक अक्षकारों एवं विरोध की पृथक् स्थिति स्पष्ट हो जाए। विरोध सामान्य रूप में उनमें भी रहता है किन्तु विज्ञापक में उसका व्यपदेश विभावनादि ही होता है। यही स्पष्टाकरण केवल का उद्देश्य है अथवा तीसरे उदाहरण की कोई आवश्यकता न थी। उदाहरण इस प्रकार है—

आय सितासित रूप चित चित ह्याम सरोर रग रंग रात।

वेसव कानन हीन सुनें, सु कह रत की रसना जिन बानें।

१ विरोधाद् विभावनाया मेऽपवादिना विज्ञापितेने प्रसिद्धतन्वयविभावना।

—आचार्यरत्न चतुष्वधिकरण अध्याय ३।१३

२ What is common to all these figures apparent contradiction (Virodh) is the widest of the three and corresponds to Utsarg while Vibhavana and Visheshokti are narrowed and correspond to Apwad

—Kane Notes on Sahitya Darpan page 242

३ कारणभावेन चेत्यन्तर्गतजनक कारणेन बाध्यमानत्वेन प्रतीयते। न तु तेन कारणभावेन इत्यन्तर्गतजनकानुपाधिकारोत्पद्यते। एवं विरोधेनोक्तकारणाभावेन कारणतत्वात् एव नान्यन्तर्गतमेव। तेन सति विरोधाभासकता स्यात्। —अन स ५ १५८

४ विभावनाया कारणभावेनोपलब्धत्वात् कार्दमेव बाध्यत्वेन प्रतीयते इति तु अन्तेन द्वौपि बाधकमिति मेः।

—महोदय १।१६१

५ कारणस्य निमित्तेन बाध्यमानः कथोक्तः।

विरोधोक्तकारणात् विरोधोक्तकारणम्॥

—रत्नप्रकाश, ५ ४३२



इतना ही नहीं प्राचीनों के उदाहरणों में कभी-कभी अपने दम से अपनी विशेषीकृति (जो कि उपर्युक्त विशेषीकृति से स्वयं भिन्न है) और जिसका मुख्य कारण है कारण के होने पर काय की अनुपपत्ति) लागू करने दिया दो गई है। उदाहरणस्वरूप भामति की विशेषीकृति को नोटित—

स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः ।

हरतापि तन् यस्य नम्राना न हृतं बलम् ॥<sup>१</sup>

भामति के इस उदाहरण को मम्मटादि परवर्ती भाषाओं ने भी अपनी विशेषीकृति के लिए अपना लिया है। परन्तु सगति का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है। मम्मट की दृष्टि शरीरहरण-रूप कारण होने पर भी बलहरण-रूप काय के अभाव पर है।<sup>२</sup> जबकि भामति की दृष्टि में शरीर का अभाव-रूप एक देश विद्यत होने पर भी बलवान् होना गुणान्तर मस्तिष्ति है और काम की 'अज्येय शक्तिमत्ता' विगुण कथन है।<sup>३</sup> परवर्ती भाषाओं का विशेषीकृति केशव के समय तक अपना अलग स्थान बना चुकी थी। अतः केशव ने विशेषीकृति नाम से उस हा वर्णित करना उचित समझा। उन्होंने उसका लक्षण अलग पर कर्त्तु भाषाओं के समान ही किया परन्तु दण्डी भामति काय की मान्य विशेषीकृति दण्डी की विशेषीकृति को भी उन्होंने नवीना की भाँति छानना उचित न समझा। नवीन विगुण विशेषीकृति से भेद करने के लिए उन्होंने उसका नाम 'विशेष' रख दिया। बाल्यव म दर्शने आदि की दृष्टि इस अलंकार में भी विशेषीकृति के ऊपर ही। केशव की दण्डी आदि के इस अलंकार की प्रथम सत्ता स्वीकृत रहा। उन्होंने आशय के समान उसका अन्तर्भाव नहीं किया। कारण दो ही हो सकते हैं प्राचीन मान्यताओं के प्रति ममता तथा विभावना अमत्कारी उत्सव का किंचित भिन्न होना। किन्तु इस प्रकार का विगुण नाम देने से एक गड़बड़ी का आशय का द्वार खोल गया। मस्तुन में 'विशेष' नाम में एक अलग अलंकार केशव के समय तक माना जान लगा था। इसका लक्षण स्मरक छट मम्मट विचित्राशय अथवा अलंकार आदि में समान ही पाया जाता है।<sup>४</sup> इसके तब भेद मान गए हैं—

१ भामति, ३१२४

२ अत्र लुहरण कथाशरीर कारण स्वयं शक्तिन् कारणे कथाहरण रूप आत्ममात्र कथनमिति विशेषीकृति ।

—अनन भवदीश्वर टीका

३ Here the absence of one factor is the body The presence of another factor is strength The effect of the description is to emphasize the superiority of the god of love.

—Janyalankar page 59 Lshlok 24

४ अनाधारमभेदनेकमेकमोक्तमाराधनमन्त्रकृत विशेष । —अलंकारसूत्र १०७ क्रिया दक्षिणमाधारमभेदस्य व्यतिरिक्ति ।

एकान्त गुणगुणितोक्तमभेदोक्त ।

अन्तर्य अन्तर्गत आधाराधनमन्त्रकृत ।

उक्त कारण अन्त विशेषीकृतिवत् स्वरूप ॥

—आश्वमेध २०१२२, १३६

विध्याभासमूलक आक्षेप को भी साथ में स्वीकार कर लेते हैं। दण्डी का आक्षेप भय आचार्यों से भिन्न है। वह जितना व्यापक है उतना ही शिथिल। उसका लक्षण है—

प्रतिषयोक्तिराक्षेपस्त्रकाल्यापेक्षया त्रिधा।

अथास्य पुनराक्षेप्यभवानत्यादनतता ॥<sup>१</sup>

इस लक्षण से तथा उनके उदाहरणों से निम्न तथ्य उपनय होते हैं—

१ प्रतिषेधात्मक उक्ति आक्षेप है। प्रतिषेध का आभासात्मक होना आवश्यक नहीं। उनके उदाहरणों से भी स्पष्ट है कि वे वाच्य रूप में निषेध-वचन में ही आक्षेप मानते हैं।<sup>२</sup>

२ वे विषय को न केवल वाच्य-रूप में अपितु विध्याभास से आक्षेपित होने पर भी आक्षेप मानते हैं।<sup>३</sup> इसी रूप को प्रक्रिया-साध्य से रूप्यकादि ने अपना लिया है।<sup>४</sup>

३ दण्डी भय आचार्यों के समान वक्ष्यमाण (अविष्यत्) और उक्त विषय (भूत) आक्षेप ही नहीं वर्तमान विषयक भी मानते हैं।

४ दण्डी ने आक्षेप के अनन्त भेदों को स्वीकार करते हुए चौबीस भेद उदाहृत किए हैं। उन्होंने इन भेदों का आधार आत्म्य भेद धर्मात् जिस तथ्य का प्रतिषेध किया जा रहा है उसके आधार पर बताया है।<sup>५</sup> परंतु उनके उदाहरणों को देखने से पता चलता है कि उनके आक्षेप भेदों के कम से कम दो आधार हैं—एक आक्षेप भेद दूसरे आक्षेपक भेद धर्मात् वे साधन जिनके आधार पर आक्षेप वस्तु का विषय किया जा रहा है—जैसे धर्माक्षेप का नामकरण या आक्षेप्य घम भावक के आधार पर<sup>६</sup> तथा पर्याक्षेप का नामकरण आक्षेप के उपायभूत पर्य वचन के आधार पर हुआ है। पर्याक्षेप में आक्षेप्य है प्रियगमन न कि पर्य वचन।<sup>७</sup> वास्तव में दण्डी की दृष्टि आक्षेप के विषय में बड़ी व्यापक एवं शिथिल थी। नामह के नियमाभास के तथ्य को तो उन्होंने बिल्कुल स्वीकार नहीं किया।

१ काव्यांश २।१२०

२ काव्यांश २।१२३ १२४, १२५ १३७ १४७ १५६ १६३

३ काव्यांश २।१४१

४ अनिष्टविषयामाशयः।

—अनक्षरसंज्ञम् १४७ १५२

५ अथान्य पुन विषयभेदानन्वाह्यन्तथा।

—काव्यांश २।१२०

६ एव तत्र। विध्यैव कृतमेषु मार्गेषु।

वर्ग १५५ मृद्वेव विप्रकारे कदापि नास्ति ॥

—काव्यांश २।१२७

७ वरि मन्त्रेण वात्र ते वाच्यन्ता मुद्रणां तथा।

अहमपैव कदापि एवापेक्षेण मुद्रुना ॥

—काव्यांश २।१४३

केशव ने रामानुज भगवा मय्यट परम्परा को न अपनाकर दण्डी को ही मान्य बनाया है। केशव का तत्क्षण निम्न है—

कारण के आरम्भ ही, उन्हें कीमत प्रतिषेध।

आग्नेयन सासों कहत, बहु विधि बरनि सुनेष।

तीनों कास बखानिज भयो जू भावी होतु ॥<sup>१</sup>

केशव की एव दण्डी की तीन बातें समान हैं—

१ आक्षेप को भूत भविष्यत् एवं वर्तमान तीनों कासों में मानना।

२ निषेधाभास को आक्षेपक न मानकर वाच्य-निषेध में आक्षेप मानना।

३ विध्याभासमूलक निषेध को भी स्वीकार करना।

यह दिताया जा चुका है कि दण्डी ने अपने भेदों का आधार आक्षेप्य भेद बताया था किन्तु उसकी संपत्ति उनमें नहीं मिलती। केशव ने इस भूत को बचाया है। उन्होंने आग्नेय के आधार पर भेद करके एक प्रकार से व्यवस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया है। केशव ने भूत भविष्यत् वर्तमान प्रम अर्थों पर सशय मरण प्रकाश आग्नेयवादि प्रम उपाय तथा शिक्षा लेख प्रकार का आक्षेप दिखाया है। सब भेदों की पद्धति एक ही है। इन भेदों में भूत भविष्यत् मशय आक्षेप, प्रम तथा उपाय दण्डी में मिलते हैं। केशव का मरणालोप दण्डी का भूषणिय है।<sup>२</sup> वास्तव में ये भेद उपलक्षण मात्र हैं।

भेदो उपभेदो एव नामकरण मे केशव ने प्रायः दण्डी का अनुकरण नहीं किया और न यह अनुकरण का विषय था। वास्तव में केशव ने दण्डी के आग्नेय की परिभाषित उद्धरणों प्रस्तुत की है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रोफेसर ग्रहण ने केशव के आक्षेप की आलोचना<sup>३</sup> करते समय स्वयं दण्डी का अवलोकन नहीं किया।

## क्रम

केशव का क्रमावलीवार साचाय-परम्परा से निराला चिन्त है। इस अवलोकन के लो नाम—क्रम तथा अक्षरसंख्या बहुत प्राचीनकाल से ही चले आए हैं। यह दण्डी से ही स्पष्ट हो जाता है।<sup>४</sup> प्रथम उद्देश्य रूप से रखे हुए पदार्थों के सम्बन्ध क्रम से ही किन्हीं पदार्थों का सन्निवेश क्रमानुसार का विषय होता है। प्रायः सभी सशय-आचार्यों का क्रम या अक्षरसंख्या का सङ्गण एक-सा ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि किसीने इसे क्रम

१ कविप्रिया, दशम प्रभाव छन्द १ २

२ केशव एक अध्ययन पृष्ठ १७

३ दण्डी ने प्रतिषेध को वर्णमान और भविष्यत्काल से ही सम्बद्ध किया है।

४ उदित्यानां वर्णानामनुद्देशो यथाक्रमम्।

कालसम्पत्तिविशिष्टोक्त संक्रमान क्रम इत्यपि ॥

—केशव एक अध्ययन पृष्ठ २७-२८

—आचार्य १/२७३,





आदि अतः भविष्यति सो क्रम केसवदास ।

प्रत्येक कथन का अन्तिम अंग अष्टम कथन में आद्य स्थान पाता वही इस क्रम में किए हुए कथन को क्रम कहते हैं और इसका उदाहरण है—

यिक् मगन यिन मुनहिं मुन सु यिक् मुनत न रिउमय ।

मस्तुन आचार्य इस प्रकार के स्थानों में एकावली अलंकार मान चुके थे । केवल ने एकावली को अष्टम मान्यता नहीं दी उन्होंने एकावली को ही क्रम कहा है । यदि केवल की बात मान ली जाती तो दो बातें हो जाती । एक तो क्रम के अस्तित्व के सम्बन्ध में उठती आगे का समाप्त हो जाती क्योंकि यहाँ क्रमात्मक विच्छिन्नता का अभाव नहीं था । फिर इस अलंकार का नाम क्रम रखना अधिक अनिवार्य होगा क्योंकि उसमें क्रमात्मक विच्छिन्नता की प्रधानता है और हिन्दीवालों के लिए तो एकावली की अपेक्षा 'क्रम' नाम अधिक सरल पड़ता है ।

गणना

विभिन्न मल्लामूकक गणों के प्रयोग पर केवल ने गणना अलंकार माना है । उन्होंने एक से दस सख्यामूकक गणों की सम्मिलितता लिए देकर गणना के दो उदाहरण दिए हैं । इस सामग्री का आधार प्रायः काव्यकल्पलतावलि और अलंकारोत्तर है ।

आशी

इस अलंकार को प्राचीन आचार्यों ने अनेक नामों से दण्डी आदि ने मान्यता दी है । भट्टि ने भी इसका उल्लेख किया है । परवर्तीकाल में धामन रघ्यक मम्मट और विश्वनाथ तब इसकी मान्यता समाप्त हो गई । केवल के आधार दण्डी हैं ।<sup>१</sup>

जहाँ अशोभ वस्तु में आगमन दिखाया जाय जैसे (यह) भवाद्मानसगोचर ज्योतिः आपकी रक्षा करे । आगमन शब्द का अर्थ है अशोभ-कामना । यह जब अपने लिए होती है तो प्रायनास्वरूप होती है और जब पराय होती है तो मगन-कामना या आशीर्वाद रूप होती है । दण्डी के उदाहरण में स्पष्ट है कि यहाँ आगमन पराय मगल-कामना या आशीर्वाद रूप है । भट्टि ने भी पराय मगल-कामना के अर्थ में इसका प्रयोग किया है ।<sup>२</sup> आमह ने जो आशी का लक्षण किया है उसमें इसका और व्यापक बना लिया है । उनके अनुसार कोई भी शीघ्रादि की अवरोधनी उक्ति आशीरत्नकार है । किन्तु उदाहरणों का अभिप्राय मृदु का मगन-कामना पर नहीं है ।<sup>३</sup>

१ कविप्रिया आधारका प्रभाव छन्द १

२ कविप्रिया आधारका प्रभाव छन्द २

३ काव्यांश २१५७

४ पतिव्याधिपुत्राभ्यामकेगीनयनप्रपञ्चप्रनोष्ठराग ।

भुक्तिरिदं बन्धनं, अहीहि शोकं क्व च शरणं जगतां यवान् क्व प्राह ।

५ आशीरिदं च वैशेषिकप्रकारकया मया ।

सौकुंभ्याविरोधोक्तौ प्रधानं याचम तथा ॥

—भट्टि मम्मटा, १, १, ७२

—आमह, २, १५६

केदाव ने भी मामह के समान इसे व्यापक अर्थ में धरनाया है—

भातु पितागुह देय मुनि कहत जु कहु मुस पाइ ।

साही सों सब कहत हैं घासिव कवि कविराइ ॥<sup>१</sup>

मामह के समान ही बेगव के लक्षण की व्यापकता उनके उदाहरण द्वारा सीमित होकर आगीर्वाद अर्थ तक ही रह जाती है देखिए—

बिह बिह सोहों रामचन्द्र के चरन पुग ।

तथा सो अर्थ कबहुँ जनि केसव जाके उदोत उदो सबहो को ॥<sup>२</sup>

बुद्ध आलोचना ने दण्डी के लक्षण पर ध्यान न देने के कारण बेगव भीर दण्डी में अन्तर पाया है । किन्तु जसाकि ऊपर दिखाया जा चुका है उनमें कोई मौलिक अन्तर नहीं । नाटकों के आगीर्वात्मक पद्यों को आलोचकों द्वारा आगीरसकार में रखने की यही सही है कि पराय मगल-वामनास्वरूप आगीर्वाद ही आचार्य-सम्मत है । अतः दीक्षितजी की इस उक्ति से हम सहमत नहीं हैं ।

दण्डी के अनुसार आगीरसकार यही होता है जहाँ अभिलषित वस्तु की प्राप्ति की इच्छा अथवा अभिलाषा का प्रवर्तीकरण हो । परन्तु बेगव ने माता पिता गुरुदेव तथा मुनिपा द्वारा दिए गए आगीर्वाद को ही आगीरसकार मान लिया है ।<sup>३</sup>

**प्रेमासकार**

बेगव के प्रेमालंकार का आधार दण्डी का प्रेयस है । दण्डी के अनुसार किसी प्रियतर बात का वचन प्रयस का विषय है ।<sup>४</sup> दण्डी ने प्रयस के दो उदाहरण दिए हैं ।<sup>५</sup> एवं उदाहरण में स्तुत्य वृष्ण की प्रीति के आधार पर तथा दूसरे में स्तोता बातवर्मा की प्रीति के आधार पर उन्होंने प्रयस दिखाया है । इससे यह स्पष्ट है कि ये सामान्यतः प्रेम प्रदान को चाहे वह यत्ना का हो चाहे शोभा का प्रयस मानते हैं । दण्डी के लक्षण में इतनी व्यापकता नहीं उल्लेख्यतः किसी प्रियतर बात का कहना प्रियतराख्यान मात्र प्रयस है । किन्तु उदाहरण की व्यापकता द्वारा लक्षण की सजीवता दूर हो जाती है । मामह ने

१ कविप्रिया, ग्यारहवाँ प्रभाव अन्ध २४

२ कविप्रिया ग्यारहवाँ प्रभाव अन्ध २५ २६

३ अर्थार्थ वेदावश्याम् भा० श्रीविल ५ २४६

४ प्रेयः प्रियतराख्यानम् ।

—काव्यादर्श, २।२७२

५ (अ) अथ या मम गोविन्दायां त्वयि गृह्यामहे ।

बातवर्मा भोऽपीति स्तवैरागमने पुनः ॥ २।२७६

इत्याह मुनिं विदुरो नन्द्यन्मन्त्रो धनिः ।

भक्तिमात्रमाराधय शुभीश्वर तपो हरि ॥ २।२७७

(आ) सोमं सूर्यं मन्त्रभूमिभ्योऽपि होतातको जपम् ।

हरिं कण्ठपत्रिभ्यः त्वां द्रष्टुं द्रव्यं मे वदम् ॥ २।२७८

हरिं सप्राप्तुं देवे राज्ञो वयं प्रयत्नमात्रम् ।

प्रीतिरकाशं तत्त्वं प्रेयः शक्त्यन्वयम् ॥ २।२७९

प्रयस का लक्षण न करके ठीक वही उदाहरण दिया है जो दण्डी का है ।<sup>१</sup>

किन्तु परवर्तीनाल भ प्रयस का यह सरस रूप स्थिर न रह सका । और बाल क्रम से उसका स्वरूप हुआ जहाँ भाव किसी अर्थ का अंग बने ।<sup>२</sup> रम्यक के विवेचन में इस मान्यता के विकास की मध्यमावस्था पाई जाती है । उन्होंने इसके विषय में भाव के अंगभाव या गुणीभाव की बात नहीं रखी अपितु भाव सामान्य के निवेचन को प्रयस कहा है ।<sup>३</sup> इतना ही नहीं इन आचार्यों ने दण्डी के प्रिय प्रियतराख्यानम् लक्षण की संपत्ति अपने मन्तव्य के अनुबूल घुमा फिराकर लगाई है । रम्यक कहते हैं कि यही तो प्रियतर का अर्थ है कि जहाँ प्रयस का निवेचन हो । विद्वनायक कहते हैं कि ऐसा रचना विधान अत्यन्त प्रिय होता है । अतः वह प्रियतर होने के कारण प्रयस कहा जाता है ।<sup>४</sup> रम्यक ने भाव-मात्र के विधान को और विद्वनायक ने भाव-मात्र के गुणीभाव को प्रयस कहा है । मम्मट को प्रयस आदि अलंकारों को अलंकार कहना ही रुचिकर न हुआ । किन्तु आनन्दवर्धन की परम्परा रखते हुए उन्होंने उनके उदाहरण गुणीभूत व्यंग्य के प्रसंग में अवश्य दिए हैं ।

अतः दण्डी भामह आदि के प्रयस को नवान आचार्यों के प्रयस से स्वयं भिन्न समझना चाहिए । केवल ने दण्डी में आस्था रखने के कारण इस अलंकार को मान्यता दी है । किन्तु ध्वनिवादियों के प्रयस से गढ़बड़ी बचाने के लिए उसका नाम प्रमासकार रखा है जोकि दण्डी की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है । उनका सक्षेप इस प्रकार है—

वृष्ट निपट मिटि जाइ अह उपज पुरन लोभ ।

ताही सों सब कहत ह कैसेब उत्तम प्रेम ॥<sup>५</sup>

केवल के उदाहरण से उनके लक्षण की पूर्ण संपत्ति है ।<sup>६</sup>

१ प्रेयो गृहागलं वृष्णमवासीद् विदुरो यथा ।

अथ वा मम गोविन्द आत्र त्वयि गृहागले ।

कालेनेष भवेत्प्रीतिर्वैराग्यमनापुनः ॥

—काम्यालंकार ३१५

२ But the preya of Bhamah and Danda is not that a complicated affair as that of latter writers

—Kane Notes on Sahitya Darpan page 316

३ रसभाषी तन्नामासी भावस्य प्रथमस्तथा ।

गुणीभूतत्वमावान्ति यन्नालङ्कृतवस्तुना ।

रमवत् प्रेय अत्रतिव समाहितमिति ब्रूमात् ॥

—साहित्यदर्पण १ ६५ ६६, ३१६

४ रमभाव-सन्नामाम-सत्पराभानां निबन्धनेन रमवत्वे कञ्जलि समाहितानि ॥

—अलंकारसंग्रह पृष्ठ २३३

५ प्रियतरं प्रेयो निबन्धनमेव द्रष्टव्यम् ।

—अलंकारमयारवम् पृ २३२

६ प्रष्ट प्रियवत् प्रेयः ।

—साहित्यदर्पण १ ६३ की वृत्ति

७ कविप्रिया, स्यादृषा प्रभाव इत् २७

८ कविप्रिया स्यादृषा प्रभाव इत् २८

## श्लेष

केगव के श्लेष के आधार भी दण्डी ही है। दण्डी ने शिष्ट का सक्षण करते हुए लिखा है कि एक रूप होते हुए भी अनेकाय वचन श्लेष कहलाता है।<sup>१</sup> केगव का भी यही भाव है—

दोइ सीनि अरु भाँति बहु भानत जाम अथ ।

श्लेष नाम तासों कहत जे हे युद्धि समय ॥<sup>२</sup>

दण्डी ने सामान्यतः श्लेष के दो भेद किए हैं—भिन्न-पद और अभिन्न-पद।<sup>३</sup> केगव ने दोनों भेदों को ज्या का त्यो स्वीकार किया है।<sup>४</sup> भिन्न-पद के लक्षण में केगव कहते हैं कि जहाँ पद ही में पद काटकर निकाला जाए वहाँ भिन्न-पद श्लेष होता है।<sup>५</sup> संस्कृत आचार्यों की यह मान्यता है कि जहाँ एक ही शब्द दो भिन्न अर्थ देता है वहाँ अर्थ-द्वय से वह एक शब्द नहीं दो पृथक् शब्द माने जाने चाहिए।<sup>६</sup> इसे ही केगव ने पद में पद काटना कहा है। किन्तु जहाँ भिन्न पदों के लिए सर्वथा भिन्न अर्थन करने पड़ें वहाँ अभिन्न पद। यह अभिन्न-पद और भिन्न-पद की व्याख्या परवर्तियों की सभ्य-पद और अभ्य-पद व्यवस्था से भिन्न समझनी चाहिए जो कि पद विच्छेद के ऊपर आधारित है। जैसे इसके प्रतिरिक्त दण्डी ने श्लेष के अभिन्नप्रिय अतिरिक्त विरुद्ध-कर्मा नियमवान नियमाक्षप रूपोक्ति अतिरोधी तथा विरोधी ये सात भेद दिखाए हैं। इनमें नियमवान और नियमाक्षप रूपोक्ति लगभग एक-से हैं।<sup>७</sup> ये दोनों वर्तमान परिसंख्या अर्थवार में आ सकते हैं।<sup>८</sup>

१ शिष्टमिष्टमनेकावमेकरूपान्वितं वचं ॥

—काव्यान्तरा, २।११

२ कविप्रिया श्यारहवां प्रभाव छन्द २६

३ तन्भिन्नपदं भिन्नं पदं प्रायमितिदिशि ।

—काव्यान्तरा २।११

४ कविप्रिया श्यारहवां प्रभाव छन्द ३४

५ पदं ही में पदं काटिष ताहि भिन्न पदं जानि ॥

—कविप्रिया श्यारहवां प्रभाव छन्द ३६

६ अर्थभेदेन शब्दभेदः । इति शब्देन काव्यमार्गे स्वरो न गण्यते इति च नयः काव्यभेदेन भिन्ना अपि शब्दा यन् युगपदुच्चरणेन निम्नानि भिन्ना स्वरूपमप्युच्यते ॥ श्लेषः ।

—काव्यप्रकारा पृष्ठ ५१

७ देन शब्दनाशय प्रतीत्यमम्भवात् अर्थस्य प्रतीत्यस्य शब्द-शब्दयः प्रकारो द्वौ शब्दौ

८ इत्यवयवमङ्गीकारम् ॥

—विवरणवार काव्यप्रकारा पृष्ठ ५१० टीका

७ नियम—

निदिक्तास्वमपारेष धनुष्येकास्य वज्रता ।

शरेभ्येव भरेभ्यः मार्गलम् च वज्रने ॥

—काव्यान्तरा २।१११

नियमाक्षेप रूपोक्ति—

परमानामेष दण्डेषु कण्टकान्वदि रणनि ।

अपवा दृश्यते शक्तिमिषुना निगनेष्वपि ॥

—काव्यान्तरा २।१२

८ परिसंख्या निमित्तैकमन्वयमिन्वन्मुक्तप्रणम् ।

—काव्यान्तरा २।१२१

प्रविरोधी सामान्य श्लेष ही है। विरोधी विरोधभूतक है।<sup>१</sup> यह दण्डी के उदाहरण से ही स्पष्ट हो जाना है। उन्होंने इनके लक्षण नहीं दिए। इन प्रकार केगव को ग्रहण करने के लिए भिन्न क्रिय भिन्न क्रिय विरुद्धता नियम तथा विरोधी पात्र भेद रहते हैं।<sup>२</sup> इनके लक्षण केगव न भी नहीं दिए, किन्तु इनका स्वरूप दण्डी के ही समान है। केगव के नियम का उदाहरण दण्डी के परिमस्या के समान है। केगव ने परिमस्या भ्रंशकार ग्रन्थ नहीं माना है। किन्तु उनकी रचनाओं में परिमस्या भ्रंशकार पाया जाता है। केगव की दृष्टि से उन स्थलों का नियम श्लेष का ही कहना चाहिए। दण्डी का विरोधी श्लेष का उदाहरण विरोधाभास का है किन्तु केगव का प्रतिरेक का। इसमें यह निष्कर्ष निकलता है कि केगव ने न केवल विरोधाभास को अपितु विरोधभूतक समस्त भ्रंशकारों को जो श्लेष पर आधारित है विरोधी श्लेष के अन्तर्गत समेटा है। वास्तव में इसमें दण्डी और केगव के दृष्टिकोण में कोई भेद नहीं पड़ता। जहाँ श्लेष भी है तथा तन्मूलक दूसरे भ्रंशकार जैसे परिमस्या समासोक्ति विरोधाभास व्यतिरेक उपमा रूपक आदि हा उन स्थलों पर श्लेष कहा जाए या उन विविध भ्रंशकारों का समूह माना जाए। सत्सुत-साहित्यशास्त्र में यह एक विचार का विषय रहा है और कम से कम तीन मान्यताएँ तो स्पष्ट उपलब्ध हैं। उद्भट का मत है कि ऐसे स्थलों पर श्लेष भ्रंशकार कहना चाहिए। दूसरा मन मम्मद विचित्राचार्य आदि का है, उनके अनुसार ऐसे स्थलों के विषय हैं। तृतीय मन मम्मद वग का कहा जा सकता है उनकी मान्यता ऐसे स्थलों में श्लेष नहीं विविध विविध समासोक्ति आदि भ्रंशकारों के लिए है।<sup>३</sup> दण्डी का मत स्पष्ट तो नहीं है किन्तु उनके विवेचन के आधार पर उन्हें तृतीय मत के अनुकूल कहा जा सकता है क्योंकि उन्होंने विविध भ्रंशकारों के प्रसंग में निम्नोपमा लिखित रूपक लिखित भ्रंशकारों के लिए हैं। प्रश्न उठता है कि फिर उन्होंने श्लेष के प्रसंग में कौन-कौनों स्थलों का निरूपण क्यों किया है? वास्तव में दण्डी के समय तक यह प्रश्न ही नहीं उठा था। श्लेष की दृष्टि से कोई श्लेष जैसे विरोधी श्लेष और विरोध आदि की दृष्टि से विरोधाभास आदि—दोना भ्रंशकार उन्हें एक ही स्थान पर मान्य थे। प्रश्न दोना स्थान पर उनका बहाना कर दिया गया। नियम श्लेष भ्रंशकार विरोधी श्लेषादि नाम उपलक्षण-मात्र समझने चाहिए।<sup>४</sup> केगव ने भी निम्नज भाषाओं के मतभेदों में न

१ अच्युतोदयोच्छेदो राजाश्विनिधयः।

देवोयविभुषो बभे शीकरोयमुकगलान्॥

—काव्यान्तरा २।३२३

२ कुरुर्यो एक भिन्नक्रिय और भिन्नक्रिय आन।

पुन विरुद्धता भ्रंश नियम विरोध मान्॥

—कविप्रिया, व्याख्यान प्रकाश, पृष्ठ ३६

३ Introduction to Sahitya Darpana Page 200 P V Kane

४ उदाहरणार्थः परिमस्या विरोधाभासः।

प्रागव दर्शिता श्लेषा श्लेषो केगवापरे॥

—काव्यान्तरा २।३२३

पढ़कर इसी सरल मत को अपना लिया है<sup>१</sup> और दण्डी के समान ही प्रसंगत उपलक्षण रूप में उपमा श्लेष का नाम लिया है जैसेकि दण्डी ने उपमा रूपक, आक्षेपादि श्लेषों का। एक ही स्थल में दोनों असंग भलग भलकार बन जायेगे। यह बात वैद्यव ने इस प्रकार स्पष्ट की है—

भिन्न भिन्न पुनः पदम के, उपमा श्लेष ब्रह्मानि ।

सामान्य श्लेष के अन्तर्गत वैद्यव ने पाच अर्थों तक के श्लेष के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ऐसे स्थलों का दुरुह होना तो स्वाभाविक ही है। निम्न इससे वैद्यव की कला की प्रशंसा अवश्य करनी पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से इनका स्थान निम्न काव्य का ही है किन्तु श्लेष मध्ययुग के चमत्कार का प्रधान साधन रह चुका है।

**सूक्ष्म**

वैद्यव का सूक्ष्म दण्डी के ही अनुसार है। उनका उदाहरण भी दण्डी के ही समान है।<sup>२</sup> दण्डी ने आकर और इगित दोनों के उदाहरण दिए, वैद्यव ने केवल इगितमूलक सूक्ष्म ही उद्धृत किया है।

**संज्ञा**

संज्ञा में भी वैद्यव ने दण्डी की ही आदश बनाया है। दण्डी ने दो प्रकार का संज्ञा बताया है। वैद्यव का संज्ञा दण्डी का प्रथम संज्ञा है। दण्डी का द्वितीय संज्ञा वहाँ होता है जहाँ संज्ञा निन्दा द्वारा स्तुति या स्तुति द्वारा निन्दा हो। परवर्ती भाषाओं में ऐसे स्थलों में व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा मानी है। भूत वैद्यव ने इसे छोड़ दिया है। संज्ञा प्रत्यय के विषय में डॉ० दीक्षित की सम्मति है कि वैद्यव का उदाहरण अप्रसंगी भलकार से पुनरुक्त दिखाने के लिए दण्डी की अपेक्षा अधिक अच्छा है।<sup>३</sup>

**निबन्धना**

दण्डी की निर्णयना किसी अन्य ग्रन्थ में प्रवृत्त किसी काव्य द्वारा कुछ उन्नी प्रकार के सत् या असत् भल के निबन्धन पर होती है।<sup>४</sup> वैद्यव के संज्ञा का भी यही स्वरूप है—

कौनहु एक प्रकार तें सत् अथ असत् समान ।

करिय प्रगट निबन्धना समुभत सकस सुमान ।<sup>५</sup>

१ पर ही में वं का, ये तादि भिन्न वं जानि ।

भिन्न भिन्न पुनः पदम के उपमा श्लेष ब्रह्मानि ॥

—कविप्रिया ग्यारहवां प्रमाण पद २१

२ कौनहु भाष प्रभाव तें जानिय जिय की बात ।

इ गति तें आकार तें कहि सुखम भवमान ॥

—कविप्रिया ग्यारहवां प्रमाण पद ४२

३ भाषाय पराजयाम पुठ २४७

४ कर्पणरमण्डलेन किंचित् लम्पटा कणम् ।

सम्पत्ति निरस्येति वत् तत् स्थानान्तरम् ॥

—भाष्यारं ११५

५ कविप्रिया ग्यारहवां प्रमाण, पद ४२

दण्डी ने सत् धीर असत् फल-निर्दान के उदाहरण भलग-भलग दिलाए हैं।  
केगव ने एक ही उदाहरण द्वारा दोनों प्रकार का फल निर्दान करा दिया है।

### ऊर्जस्विकार

वेशव के ऊर्ज का आधार दण्डी का ऊर्जस्वी है। जहां भट्टकार रुठ भवस्या में  
ही वहां दण्डी ऊर्जस्वी भलकार मानते हैं।<sup>१</sup> केगव भी यही कहते हैं—

तत्र न निज हंकार कीं जघपि घट सहाइ ।

ऊर्ज नाम तासों कहू, केसव सब कविराइ ।<sup>२</sup>

दण्डी के प्रथम भलकार की तरह ही उनका ऊर्जस्वी भी परवर्तियों से बिल्कुल  
मिल है। उनके अनुसार रसामास या भावामास के गुणीभूत होने पर यह भलकार होता  
है। ऐसे स्थला में केगव नवीनों की अपेक्षा दण्डी के साथ रहे हैं।

### रसवदलकार

रसवदलकार के विषय में सङ्कृत आचार्यों में कई विप्रतिपत्तियां पाई जाती हैं।  
ध्वनि सिद्धान्त के व्यवस्थापक आचार्य आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती आचार्य प्रायः रसार्थक  
सौन्दर्य को भलकार सौन्दर्य के अन्तर्गत ही देखते रहे थे। उन्होंने भलकार शब्द को इसी  
व्यापक अर्थ में ग्रहण किया था। वामन ने 'सौन्दर्यलकार' कहकर समस्त काव्य-सौन्दर्य  
मात्र के पर्याय में भलकार शब्द अपनाया था। इन आचार्यों में ध्वनि की स्पष्ट मायता  
न होने के कारण उन्हें ध्वन्यभाववादी कहा गया है। भल साहित्यशास्त्र में प्राप्त रसवत्  
विषयक विप्रतिपत्तियों की भुविषा की दृष्टि से हम दो वर्गों में रख सकते हैं—

१ ध्वन्यभाववादी।

२ ध्वनिवादी।

ध्वन्यभाववादी आचार्यों में भामह दण्डी उद्भट तथा ध्वनिवादी आचार्यों में  
आनन्दवर्धन अभिनव, मम्मट विश्वनाथ तथा जगन्नाथ आदि हैं।

दण्डी के अनुसार रसार्थक चित्रण के स्थला में रसवदलकार होता है।<sup>३</sup> उनके  
उदाहरण भी इसी बात के प्रमाण हैं।<sup>४</sup> भामह की भी यही मायता है। उनके अनुसार

१ उजस्विकारम् ।

—आभ्यास २।२७५

२ कविप्रिया, प्यारहर्षा प्रभाष कृन्द् ५१

३ रसरसपेक्षणम् ।

—आभ्यासो द्वितीय परिच्छेद, श्लोक २७५

४ (म) सय रति एतत्ता गता ।

रस्यस्या परा कोटि क्रोधी हो-तमता गत ।

—आभ्यास २।२८१।२८३

(भा) श्लुत्साहं प्रकृष्टारमा तिष्ठन् नीररसात्मना ।

रसमात्र गिरामासां समर्थमितुमीश्वर ॥ —आभ्यास २।२८५





या अन्य कोई प्रधानीभूत वाच्यार्थ भी हो सकता है ।<sup>१</sup> भानन्दवर्धन के अनुसार यह भगी अर्थ किसी देवता राजा गुरु नप आदि की स्तुति या भाट्टाकरितामाना होता है । भामह ने ऐसे स्थलों को प्रथम अलंकार कहा है । उद्भट प्रथम अलंकार सामान्यतः भाव चित्रण में मानते हैं । अभिनव गुप्त ने उद्भट के भाव चित्रणात्मक प्रथम अलंकार को भी समेटते हुए भानन्दवर्धन के शब्दों<sup>२</sup> की भामह और उद्भट दोनों के मत से द्विविध सगति लगाई है । दोनों के अनुसार ही अर्थात् किसीकी स्तुति या भाट्टा की प्रधानता होने पर या किसी (भाव) यात्र की प्रधानता होने पर उनके अग्रभूत रसादि रसवदादि अलंकार वे विषय होते हैं ।

यह तो हुई सामान्यतः भुक्तक रस की बात । इसके अतिरिक्त प्रबन्ध रस की दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है । यद्यपि संस्कृत भाषायों में इस प्रकार का विवेचन प्रायः नहीं पाया जाता है । जिस प्रकार किसी स्थल का एक रस होता है उसी प्रकार किसी प्रकरण या किसी प्रबन्ध का एक विशेष रस होता है । यह सभी भाषायों को भाग्य है । ऐसे स्थलों के प्रधान भाव को सुवर्तजी की शब्दावली में बीज भाव कहा जा सकता है । यहाँ हम उसे प्रबन्ध रस कहेंगे । जब किसी प्रासंगिक वचन के कारण से यह प्रबन्ध भाव उत्पन्न हो जाता है तो उसकी स्थिति मुक्तक अग्रधान रस की सी ही हो जाती है । जो लोग रस की गौणता में अलंकार मानते हैं उनकी दृष्टि से इस प्रकार के स्थलों को भी रसवत् अलंकार कहा जाएगा । फिर चाहे वह प्रबन्धगत रसवत् ही क्यों न हो ।

नेत्र ने रसवत् का लक्षण करते हुए लिखा है—

रसमय होइ भु आनय रसवत् केसवदास ।

मगरस की संक्षेप ही समझो करत प्रकाश ।<sup>३</sup>

रसवत् शब्द संस्कृत-भाषाओं के सभी दृष्टिकोणों के अनुकूल व्याख्यात हुआ है । जिस प्रकार अपने अपने दृष्टिकोण के अनुकूल उसकी व्युत्पत्ति की गई है उसी प्रकार नेत्र के 'रसमय' शब्द में सभी मान्यताओं की समाई है । ध्वन्यभाववादियों के अनुसार इसका अर्थ रसात्मक चित्रण और ध्वनिवादियों के अनुसार रसगन्धित चित्रण किया जा सकता है । नेत्र ने सभी रसों के रसवत् अलंकारों के उदाहरण कविप्रिया में दिए हैं ।<sup>४</sup>

### अर्थांतरयास

नेत्र के अर्थांतरयास का स्वरूप विधान संस्कृत भाषाय-परम्परा में बिल्कुल

१ अग्रहस्तार्थान्वयस्य वा आनयार्थान्वयस्य अग्रहस्तार्थान्वयस्य ।

२ उपमा आदौ प्रेयोऽलङ्कारस्य आनयार्थान्वयस्य रसादौ प्रेयोऽलङ्कारस्य ।

—अन्यालोक उद्योग २/२७ पृ. १० वरि

३ कविप्रिया ग्यारहवा प्रकाश, पृ. ५३

४ कविप्रिया ग्यारहवा प्रकाश, पृ. ५४ से ६४ तक

मिल है ।

दण्डी ने अर्थान्तरन्यास का भाव है जहाँ किसी वस्तु को प्रस्तुत रूप में रखकर उससे समर्थन के लिए किसी अन्य वस्तु का 'यास' या विधान किया जाए वहाँ अर्थान्तर-यास होता है ।<sup>१</sup> दण्डी के इस सतर्पण में समर्थ-समर्थन भाव का स्पष्ट उल्लेख है । मामूह ने भी इस अर्थ अर्थ-विधान को पूर्वार्थानुगत कहकर इस तथ्य को स्वीकार किया है ।<sup>२</sup> यही बात उद्भट से भी स्पष्ट होती है ।<sup>३</sup> उद्भट से परवर्ती आचार्यों में समर्थन भाव का तथ्य भित्ति रूप से मान्य रहा है । किन्तु उसकी सीमाओं के विषय में मतभेद चलता रहा है । रुय्यक ने प्रकृत अर्थ-समर्थन को अर्थान्तरन्यास कहा तो है किन्तु सामान्य विशेष अर्थ का कारण भाव सम्बन्ध के साथ ।<sup>४</sup> विश्वनाथ ने रुय्यक का ही अनुगमन किया है ।<sup>५</sup> रसगंगाधरकार को इन आचार्यों का कारण-काय-सम्बन्धी समर्थ-समर्थन भाववाला अर्थान्तर-यास मान्य नहीं । उसके अनुसार यह काव्यतिथि का क्षेत्र है ।<sup>६</sup> किन्तु सीमा के विषय में मतभेद भले ही रहा हो समर्थ-समर्थन भाव को किसी न किसी मात्रा में सभी ने स्थापित किया है । केशव ने अपने अर्थान्तरन्यास में इस मूल तथ्य को छोड़ दिया है । इसके दो ही कारण हो सकते हैं—एक तो केशव इसे समझ न पाए या दूसरे उन्होंने अपने भिन्न दृष्टिकोण के आधार पर जान-बूझकर छोड़ा । इनमें से दूसरी बात हम मान्य नहीं ।

हम देख चुके हैं कि केशव ने कई स्थलों पर समस्त सङ्कृत-परम्परा को छोड़कर गण्यों की प्रत्ययता को ध्यान में रखकर प्रसङ्ग का स्वरूप विधान कर डाला है । अर्थान्तरन्यास दण्डी से सामान्य विशेष या फिर कारण-कार्य के समर्थ-समर्थन तत्त्व पर किसी प्रकार प्रकाश नहीं पड़ता । केशव ने इस मामले के जटिल स्वरूप को छोड़कर इस अनवर का एक प्रत्यय स्वरूप विधान कर डाला । उनकी इच्छा है कि चाहे सङ्कृत-साहित्यशास्त्र

१ केशव सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन ।

तत्प्रतिपत्तयः स्यान्मो योऽन्यस्य वस्तुन ॥

—काम्यानी १/१६१

२ अर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतः ।

केशव सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यथा ॥

—काम्यानी १/१७१

३ समर्थस्य पूर्ववत् वचोऽन्यथायं वृत्तिः ।

विशेषण वा वार्यादि शब्देऽन्यथायं ॥

४ सामान्यविशेषकारणभावभावो निश्चितप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यासः ॥

—अनकारसंभवम् १ १११

५ Our author treatment of arthantaranyas slavishly follows the arthantaranyas

—Kane Notes on Sahitya Darpan

६ वस्तु कारणेन कारणस्य कार्येण वा कारणस्य समर्थनम् इत्यसि भेदप्रवर्तनान्तरन्यासप्रकारः सर्वत्रोक्तः स्वरूपः तत्र । तस्य काव्यतिथिः यथा ॥

—रसगङ्गाधरम् १ १४४

में अग्रान्तर्यामि का स्वरूप समर्थ-समयकादि जटिलताया के साथ बना रह किन्तु हिन्दी रीति-रिवाज में उसका स्वरूप सरलतम तथा प्रन्वय प्रतिष्ठित है। केव के इस प्रयत्न को मान्यता नहीं मिली। केव का लक्षण इस प्रकार है—

और अनिय भय अहं धीरे वस्तु बलानि।

अग्रान्तर को ग्यास यह चारि प्रकार सु जानि ॥<sup>१</sup>

केव ने इसे चार प्रकार का माना है—युक्त अयुक्त अयुक्त-युक्त युक्त अयुक्त।<sup>२</sup> दण्डी ने अग्रान्तर्यामि के विश्वव्यापी विशेषण होनेपाविष्ट विरोधवान् अयुक्तकारी युक्तात्मा युक्तायुक्त तथा विषयनाम म घाठ भद किए हैं। दण्डी के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि प्रथम चार भदों तथा अन्तिम भद में समर्थ-समयक भाव आवश्यक है। यहाँ यह दृष्टव्य है कि केव ने इन पाँच ही भदों को छोड़ दोष तीन को जिनमें समर्थ-समयक भाव का प्रायः नहीं था अपना लिया है। यह इस बात का प्रमाण है कि केव ने समयक भाव का बहिष्कार जान-बूझकर किया है। दण्डी के युक्ता युक्त के वचन पर उन्होंने अयुक्तायुक्त की कल्पना करके उसे चार भदों का दिलाया है। उनके उदाहरणों से केव के निजी दृष्टिकोण के अनुसार पूर्ण सामञ्जस्य है। किन्तु सभी भदों के लक्षण एवं उदाहरण दण्डी से संवदा भिन्न हैं।

व्यतिरेक

केव का व्यतिरेक दण्डी पर आधारित है। दण्डी के लक्षण का तात्पर्य है वस्तुओं का सादृश्य होने पर, चाहे वह सादृश्य शब्द से कहा गया हो या प्रतीति-मान हो—उनमें जो परस्पर भद दिवाया जाता है वही व्यतिरेक होता है।<sup>३</sup> व्यतिरेक शब्द का अर्थ है भद। केव ने अपने लक्षण में भी इसी भद-अर्थ को प्रयुक्तता की है—

तानहि अनिय भेद कछु हरि सु वस्तु समान।

सो व्यतिरेक सुभाति इ अक्षि सहज परमान ॥<sup>४</sup>

केव ने व्यतिरेक दो ही प्रकार का दिलाया है, युक्ति व्यतिरेक तथा सहज व्यतिरेक। इनके लक्षण तो नहीं दिए गए परन्तु उदाहरणों<sup>५</sup> से पता चलता है कि प्रथम मन्त्र के अन्तर्गत द्वारा भद-अर्थ है दूसरे में सहज स्वाभाविक भाव में। प्रथम व्यक्ति व्यतिरेक में जो वस्तु-चित्रण है वह कवि-कल्पना प्रभुत दूसरा सौमग्य। पारिभाषिक पञ्चमती में इन्हें कविप्रौढोक्तिरिद एव स्वतः सम्मति कह सकते हैं। इन्हें ही केव ने उक्ति तथा सहज नाम दिया है। व्यतिरेक का यह भेदीकरण उनका अपना है।

१ कविप्रिया पञ्चम प्रमाण इन्द्र ६२

२ कविप्रिया पञ्चम प्रमाण इन्द्र ६३

३ रामोद्योत प्रणीत का मातृश बन्धुवोद यो।

तत्र रामोद्योत व्यतिरेकः सु अर्थो ॥

—कविप्रिया २।१८

४ कविप्रिया पञ्चम प्रमाण इन्द्र ७८

५ कविप्रिया पञ्चम प्रमाण इन्द्र ७९

## अपहृत

दण्डी के अनुसार जहाँ किसी सत्य अथ को छिपाकर असत्य अथ का प्रदर्शन किया जाए वहाँ अपहृत ति होती है।<sup>१</sup> केनव का भी यही तात्पर्य है—

मन को बात डुराई मुख, और बहिय यात :

बहुत अपहृत ति सक्त कवि यासों बुधि भवदात ॥<sup>२</sup>

दण्डी ने विषयापहृत ति स्वरूपापहृत ति उपमापहृत ति आदि दियाई हैं। किन्तु कुछ भेद-व्यवस्था की दृष्टि से नहीं सामान्यत उदाहरण प्रदर्शनाप।<sup>३</sup> केनव का उदाहरण दण्डी के किसी भेद के अन्तर्गत नहीं आता। वह कृवलयागद की छेका पहृत ति के समीप है।<sup>४</sup> हिन्दी में उस मुकरी कहा जाता है। केनव की अपहृत ति दण्डी की अपहृत ति नहीं दरबारी अपहृत ति है। जयदेव और अण्णय मुकरी बहे जानेवाले भेद को छेकापहृत ति की शास्त्रीय व्यवस्था में रख हा चुक था।

## उक्ति

केनव का उक्ति अलंकार कोई स्वतन्त्र अलंकार नहीं केवल उक्ति छन्द के आगिक साम्य को लेकर उन्होंने पाँच अलंकारों को एकत्र वर्णित कर दिया है जिनमें विभिन्न प्रकार के बुद्धि-चातुर्य का प्रयोग सम्मिलित है—

बद्धि विवेक अनेक बल उपजत तक अपार।

तासों कविकुल उक्ति कहि, बरनत अमित प्रकार ॥<sup>५</sup>

ये पाँच अलंकार हैं—वक्रोक्ति अयाक्ति व्यधिकरणाक्ति विनेयोक्ति तथा सहोक्ति<sup>६</sup>।

## यत्रावित

केनव की वक्रोक्ति कुन्तल के अधिन समीप है। दण्डी ने वक्रोक्ति का संगण

१ अपहृतितिरपहृत्याय किंचिन्व्याप्यमानम्।

—कान्यादरा २।३०४

२ कविप्रिया व्याख्यान प्रभाव छन्द ८१

३ उपमापहृत ति पूर्वमुपमापहृत दर्शित।

इत्यत्र नुतिनेत्याना तस्यो लक्ष्येषु विस्तर ॥

—कान्यादरा, २।३ ६

४ छेकापहृत नुतिरन्वयस्य शङ्कान्मध्यनिह नये।

प्रत्यन्वयस्ये सत्य काव किं नहि नृपत् ॥

—नुतनयानन्द ३०, नुतनीय

कविप्रिया व्याख्यान प्रभाव छन्द ८२, ८३

५ कविप्रिया व्याख्यान प्रभाव छन्द १

६ वक्र अन्व व्यधिकरण कवि और विनेय समान

महिन सहोक्ति ये कहा उक्ति मुख्य प्रमाण ॥

—कविप्रिया व्याख्यान प्रभाव छन्द २

दे-१४

नहीं दिया किन्तु काव्य के स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति दो भेद किए हैं ।<sup>१</sup> इससे स्पष्ट है कि वे वक्रोक्ति को स्वभावोक्ति में भिन्न वचन भगिमा और भस्पर्णा का लक्षण मानते थे । भामह की वक्रोक्ति प्रतिशयोक्ति का पर्याय है और समस्त अलङ्कार का मूल तत्त्व है ।<sup>२</sup> किन्तु परवर्ती आचार्यों में वक्रोक्ति इस रूप में न रहकर एक स्थूल अलङ्कार-भाषा है जिसने 'लेख और वाकु' दो भेद किए हैं ।<sup>३</sup> वामन की वक्रोक्ति सादृश्य के आधार पर की हुई समझा है ।<sup>४</sup> किन्तु आचार्य कुन्तल की वक्रोक्ति बह व्यापक अर्थ में गहीत हुई है । उसे उद्देश्य काव्य की धारणा कहा है । और सभी प्रकार की व्यञ्जनाभा को उसमें अन्तर्भूत करने का प्रयत्न किया है । केशव ने इतना व्यापक दृष्टिकोण तो नहीं अपनाया किन्तु उनके लक्षण एवं उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वक्रोक्ति में भगिमा और वाक्पन की मात्रा अधिक है जिस कि कुन्तल के 'गच्छा' में वदग्ध्यभगी भणिति कहा जा सकता है ।<sup>५</sup> वास्तव में कुन्तल की वक्रोक्ति में अभिव्यञ्जना की इस वक्रता की ही प्रधानता है । केशव का लक्षण है जहाँ सीधी बात में बहिर्भाव वर्णित किया जाए वहाँ वक्रोक्ति होती है । वक्रोक्ति के शाब्दिक अर्थ के अनुगुण ही यह लक्षण है ।<sup>६</sup> और उनके उदाहरण में उसका पूर्ण सामग्र्य है ।<sup>७</sup> किन्तु इस प्रकार की वक्रोक्ति को अलङ्कार के बोध में एक निश्चित स्वरूप के साथ रखना सफल नहीं कहा जा सकता ।

१ भिन्न दिशा स्वभावोक्ति वक्रोक्तिरचेति बाह्मयम् ।

—काव्यान्तरा २।२६३

२ सेवा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते ।  
अनोऽन्या कविना काव्य कोट्यन्तरोऽनया विना ॥

—काव्यालङ्कार २।२५

३ यदुक्तमन्यथाशक्तमन्यथान्येन योज्यते ।  
रत्नेषु काव्या वा हेया सा वक्रोक्तिरतथा दिशा ॥

—काव्यप्रकारा २, सूत्र १, ३

४ सारसालङ्कारा वक्रोक्तिः ॥

—काव्यसूत्र ४।३।२

५ वक्रोक्तिरेव वैगुण्यभगी भवितिरिष्यते ॥

—कृष्ण प्रथम उन्मप दशम श्लोक

६ केशव सूरी वाग में वरनिय देने भाव ।  
वरु उक्ति तासो कहे वे प्रवीन कविराज ॥

—कविप्रिया चारदशा प्रभाव छन्द ३

७ अर्था-अर्था दुर्लभ तो केमवास विनाम निवास दिये अचरेख्यो ।  
स्यो-स्या बन्धो उर कव कछु भय मात भयो किषी सीत निमख्यो ।  
मुद्रित होत सखी बरही परे नैन सरोजनि सौच के सेख्यो ।  
ते जु बघो मुख मोहन को भरविंद सो है सो तो चन्द सो देख्यो ॥

—कविप्रिया चारदशा प्रभाव, छन्द ४

## अन्योक्ति

संस्कृत भाषायों के अनुसार यह असंवार अपस्तुतप्रगसा का साक्ष्य निबधना मूलक भेद है।<sup>१</sup> किन्तु हिन्दी में इसे अनग प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है। केव का लक्षण इस प्रकार है—

घोरहि प्रति जु बलानिज कछु घोरई बात ।

अय उचित यह जानिज बरनत कवि न अघात ॥<sup>२</sup>

केशव के उदाहरणों से उनके लक्षण का सामञ्जस्य तो है परन्तु लक्षण की भाषा में अभीष्ट स्पष्टता नहीं है। वैसे लक्षण का भाव वही है जो अन्य भाषायों का है।

## व्यधिकरणोक्ति

केशव के अनुसार जहाँ अन्य वस्तु के गुण-दाय किसी अन्य वस्तु में प्रकट किए जाते हैं वहाँ व्यधिकरणोक्ति होती है।<sup>३</sup> मम्मट-विचित्राच ने इसे कारण-व्याय के भिन्न देशत्व होने से असंगति कहा है।<sup>४</sup> केशव का नामवरण मम्मटादि की अपेक्षा अधिक अन्वय है। दण्डी ने इसका प्रयोग उल्लेख नहीं किया। उनके द्वारा यह प्रमाणों से पता चलता है कि दण्डी ने इस प्रसंग का हेतु म अतर्भाव किया है। किन्तु केव ने दण्डी का प्रसंग सीधे-से अनुगमन नहीं किया।

## विशेषोक्ति

केव की विशेषोक्ति संस्कृत भाषा-परम्परा के अनुकूल है किन्तु दण्डी से भिन्न है। समस्त कारण होने हुए भी जहाँ वायगिद्धि न हो वहाँ विशेषोक्ति होती है।<sup>५</sup> मम्मटादि का भी यही भाव है।

## सहोक्ति

सहोक्ति में केशव ने दण्डी को ही सामने रखा है किन्तु परवर्ती-परम्परा में भी

१ अपस्तुतप्रगसाविशेषभावे कार्यकारणभावे साक्ष्ये च अनुगमनीयप्रमाणप्रमाणम् ।

—अर्थकारणवैभक्त्यम् ५ ११२

२ कविप्रिया बारहवीं प्रमाण, अन् ५

३ घोरहि में क अ प्रग घोरहि को गुण लेव ।

उक्ति वदे व्यापकरण की तुलना होइ सन्तोष ॥ —कविप्रिया बारहवीं प्रमाण अन् ५

४ अ—भिन्न देशतयात्प्राप्त कार्यकारणभूतयो ।

गुण-मयोक्तृ स्थानि सा स्थानमिति ॥ —वाचस्पति १ १११

आ—कारणकारणोभिन्न देशतयाप्युक्तयो ॥ —साहित्यदर्पण १ ११२

५ संप्रगच्छे ज्ञेयं कान्तप्रमाणम् ।

गुरु नरदायनेन सौम्यवद मनसि पण ॥ —वाचस्पति १ ११२

निश्चयान् कारण कारण होहि न मिथ ।

साई उक्ति भूतेश्वर केशव वरम प्रसिद्ध ॥ —कविप्रिया बारहवीं प्रमाण अन् ५

इमं भनकारं वा नगभगं यही रूपं रहा है ।<sup>१</sup>

दण्डी का लक्षण है—

सहोषितं सहभावस्य कथनं गुणवत्तमम् ॥

केवव का लक्षण है—

हानिं बुद्धिं सुमं भुम्भुं कष्टं कष्टं प्रकाशं ।

होइ सहोषितं सु भाव ही बरनत केसवदास ॥<sup>२</sup>

केवव ने सहभाव की हानि-बुद्धि सुमं भुम्भुं के रूप में व्याख्या की है ।

व्याजस्तुति व्याजनिन्दा

जहाँ प्रापातल निन्दा करते हुए स्तुति में पयवसान हो वहाँ व्याजस्तुति तथा जहाँ स्तुति द्वारा निन्दा में पयवसान हो वहाँ व्याजनिन्दा भनकार होता है ।<sup>३</sup> ससृज प्राचापों ने प्रायः व्याजस्तुति एक ही शब्द से दोनों को गनाय किया है तथा इस शब्द की उभयार्थक सगति लगाई है ।<sup>४</sup> दण्डी ने इसका स्वरूप संकुचित ही रखा था और केवल निन्दा-व्याज से स्तुतिवाला पक्ष ही ग्रहण किया था ।<sup>५</sup> केशव ने दोनों पक्षों को स्पष्ट करने के लिए भनग भनग नाम दे दिए हैं । कुवलयामन्द में इन दोनों परिस्थितियों को तो व्याजस्तुति के ही अन्तर्गत रखा गया है । किन्तु जहाँ निन्दा से निन्दा ध्येय हो वहाँ व्याजनिन्दा बही गई है<sup>६</sup> जो केवव की व्याजनिन्दा से भिन्न है । केशव का उदाहरण बड़ा ही वीक्षणपूर्ण है । उसमें दोनों भनकारों का स्वरूप भलग भलग एवम ही स्पष्ट है । इसके भतिरिक्त दो उदाहरण व्याजनिन्दा के हैं जिनमें से एक में दण्डी की भाँति श्लेष का प्रयोग करके दिखाया है ।<sup>७</sup>

१ भ—सदायन्दलादेव यय स्यात् वाचक इयो ।

वा सहोषितं भूतानिगोविश्वभवेत् ॥

भा—सहोषितं सहभावचेद्व्यसने अनरजनं ॥

—साहित्यदर्पण १/१५

—कुवलयामन्द पृष्ठ ६६

२ काव्यागर्ग २/१५१

३ कविप्रिया वाचका प्रभाव छन्द २

४ स्तुति निन्दा भिम दोर बहो स्तुति भिम निन्दा जग्न ।

व्याजस्तुति निन्दा बहो केसवगत वधान ॥

—कविप्रिया वाचका प्रभाव छन्द २२

५ भ—व्याजनं स्तुति तथा व्याजस्तुति ॥

—भनकारमन्त्र १/११२

भा—व्याजस्तुतिमुक्तं निन्दा स्तुतिवाचकित्यम् ॥

व्याजस्तुति व्याजनं वा स्तुति ॥

—काव्यमकरा १/६०

६ यदि निन्दिनिव लीति व्याजस्तुति समीपम् ॥

—वाचका २/२४२

७ उक्तव्याजस्तुतिनिन्दास्तुतिनिन्दा स्तुतिनिन्दा ॥

—कुवलयामन्द १/७

८ निन्दाया निन्दा व्यक्तिव्याजनिन्दाजीवा ॥

—कुवलयामन्द १/७२

९ कविप्रिया वाचका प्रभाव, छन्द २ २४ २५



## अमित

जहां साधक को मिलनेवाली सिद्धि का योग साधनभूत व्यक्ति प्राप्त कर ले वहां बैजब अमित अलंकार कहते हैं।<sup>१</sup> इसने दो उदाहरण बैजब ने दिए हैं<sup>२</sup> जिनमें अम स्वार का सस्पन भी है और लक्षणानुकूलता भी। ससृज भाचार्यों में दण्डी भामह द्रम्यक मम्मट विश्वनाथ अप्पय किसीने इसका उल्लेख नहीं किया।

## पर्यायोक्ति

जहां अपने अभीष्ट की सिद्धि बिना प्रयत्न के ही किसी भट्टबग हो जाती है वहां बैजब पर्यायोक्ति मानते हैं।<sup>३</sup> इस लक्षण के अनुसार उनमें उदाहरण की संगति भी है।<sup>४</sup> परन्तु मम्मट विश्वनाथ आदि की पर्यायोक्ति से बैजब की पर्यायोक्ति नितान्त भिन्न हो जाती है।

पर्यायोक्ति अलंकार के विषय में ससृज भाचार्यों में भी एकरूपता नहीं पाई जाती। चाहे लक्षणों की शब्दावली मिलती-जुलती हो किन्तु उनके दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर मिलता है। उदाहरणस्वरूप भामह उद्भट और मम्मट के शब्दों में पाइया ही अन्तर है<sup>५</sup> किन्तु भामह उद्भट ध्वनि को अलग स्थान नहीं देते। अतः वे सभी व्यंग्यात्मक वाक्य सौन्दर्य को पर्यायोक्ति में समेट लेते हैं।<sup>६</sup> दूसरे वर्ग में द्रम्यक विश्वनाथ भाचार्य पाते हैं जो प्रस्तुत वाक्य के वाचकत्व के द्वारा प्रस्तुत कारण की व्यंग्यता में पर्यायोक्ति मानते हैं।<sup>७</sup>

१ जहां साधने योग्ये साधक की सुख सिद्धि ।

अमित नाम तासो कहन आकी अमित प्रसिद्धि ॥ —कविप्रिया बारहवां प्रभाव पृष्ठ २६

२ कविप्रिया बारहवां प्रभाव पृष्ठ २७ २८

३ कौनहु एक अरुष्ट तै मनहीं किए नु होइ ।

निदि आपने इष्ट की पर्यायोक्ति सोइ ॥

—कविप्रिया, बारहवां प्रभाव पृष्ठ २६

४ खेलति हो सभरस अनीन सां तथा इति, आप आपुरा तै किषी काहु के बुवाए री ।

साग मिनि लेवन मिपैकै मनु हरे हरे देन लागे दाउ आपु आपु मन भाए री ॥

छाँटि-छाँटि गानि मिम हो मिम जिनि छिन, केसौ राई को सो होऊ रई छवि छाए री ।

चाकि चाकि नहु दिनि निदि छिन राखनू के अणन से लोचन अचन से इ दे आप री ॥

—कविप्रिया बारहवां प्रभाव पृष्ठ ३०

५ अ—पर्यायोक्त्यन्वेन प्रकारेणाभिधीयते । वाचकचतुष्टिभ्यां शब्दे तावतात्मना ॥

—उद्भट, ४।१९

आ—पर्यायोक्ति बिना वाक्यवाचकत्वेन यद्वच ॥

—मम्मट १।१७५

६ They (Bhamah and Udbhat) included all suggestive poetry under Paryayukti

—Kane Sahitya Darpan page 212 Dasamullas

७ गम्यस्यापि भग्न-नरेणभिधान पर्यायोक्त्याम् ।

—अनकारमन्त्र पृष्ठ १४१

मय तत्र प्रमुखा कावेर्य कारखबसस्यापि बलनीयसाधनवायुनेन कारणे पर्यायोक्त्याम् ।

मिति पर्यायोक्त्याम्कार ॥

—अनकारमन्त्र ४, पृष्ठ १४५

पर्यायोक्त्याम् भेषागम्यमेकाभिधीयते ॥ इदं तु बलनीय काव्यमपि कारण-वदप्रमाणम् ॥

—मार्दिन्यरस्य १।१६१

तीसरे षष्ठ म मम्मट जगन्नाथ आते हैं जो पर्यायोक्ति का अत्र अधिक व्यापक मानते हैं। मम्मट के अनुसार पर्यायोक्ति म चमत्कार कारण काय भाव के वाच्य व्यंग्यत्व मन होकर उस भगो भयवा वचन के ढग म है जिसके द्वारा वाच्यपथ छोड़ व्यंग्य वात कही जाती है।<sup>१</sup>

इसका अत्र अत्यन्त व्यापक है। ध्वनि और इस स्थिति में केवल यही अन्तर है कि ध्वनि म व्यंग्य प्रधान होना है और सौन्दर्य व्यंग्यपरक होता है जबकि पर्यायोक्ति म भगो या कथन प्रकार में सौन्दर्य होना है तथा व्यंग्य गुणीभूत हो जाता है। दण्डी का लभण भी व्यापक है। उनके अनुसार जहाँ किसी अमीष्ट अर्थ को साक्षात् धर्मान् वाच्यवाचक रूप से न कहकर प्रकारान्तर से कहा जाए वहाँ पर्यायोक्ति होता है।<sup>२</sup> केवल के लभण पर दण्डी के लक्षण की पदावली की स्पष्ट व्याप है तथा उनका उदाहरण भी दण्डी के ही समान है,<sup>३</sup> किन्तु उनके लभण का माव दण्डी से नहीं मिलता। वास्तव म केवल ने अमिन पर्यायान्त समाहित सुसिद्ध प्रसिद्ध एवं विपरीत अलंकारों में कायसिद्धि को ध्यान में रखकर लक्षण निर्माण किया है।

## युक्त

जिनका जमा बुद्धिबल एवं वैभव है उसी वैभव के अनुरूप उसका वचन केवल के अनुसार युक्त अलंकार बहुलाता है।

जैसे जाकी बुद्धिबल कहिय तैसे रूप।

सासी कविबुल कहतह युक्त वरनि बहुदरप।<sup>४</sup>

इसका जो उदाहरण प्रस्तुत किया गया है,<sup>५</sup> वह लक्षणाबुद्धि है।

इस अलंकार का भाव है दण्डी कम्पक मम्मट विवनाथ अप्य किमीने उल्लेख नहीं किया। मध्य वस्तु का वचन अपता के साथ ही यह औचित्य ही इस अलंकार का मूल है। अतः इसका नामकरण भी अन्वय है। इसे संस्कृत-भाषाओं के उदात्त की कोटि का समझना चाहिए। यद्यपि उदात्त में भी कवि प्रतिभा-अथ ऐव्य-वचन रहता है किन्तु इस युक्त की अनेका अर्थमाध्य भाषना का अस्व अधिक रहता है। दूसरी ओर स्वभा वीक्ति म वस्तु के यथावत वचन की प्रयुक्तता होने के कारण ऐव्य विभूति का कल्पना

१ According to him (Mammata) the mode of expression is more striking than the suggested sense. —Kane Notes on S. Darpan

२ अथविषयप्रत्यय साक्षात्पर्यव सिद्धये।

३ प्रकाशान्तरास्य पर्यायोक्ति तद्विषये ॥

—भाष्यान्तरा २।२६५

४ दशत्यमो परमः सङ्कारस्य प्रथमः।

५ समः वारिष्यमि युवाभ्यां वारिष्यताम् ॥

—भाष्यान्तरा २।२६६

५ कविप्रिय, वारिष्य प्रमाव, दृष्ट ३१

५ कविप्रिया वारिष्य प्रमाव, दृष्ट ३२

का प्राण है अन्य भलकारो के समान सबसे नहीं किन्तु यह स्पष्ट अवश्य है। इनके निर्माण में केशव का मौलिक प्रयास है किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं।

### रूपक

दण्डी ने रूपक का लक्षण करते हुए लिखा है कि उपमा में ही जब भेद का तिरोधान हो जाता है तो रूपक बन जाता है।<sup>१</sup> उपमा में उपमान और उपमेय में भेद रहता है<sup>२</sup> रूपक में इसका तिरोधान। केशव ने भी इसी आधार पर अपना लक्षण दिया है। उपमा के ही ढंग से जब उपमान और उपमेय का मिला हुआ अर्थात् अभिप्रायक वचन हो तो रूपक होता है।<sup>३</sup> दण्डी ने भेद का तिरोधान कहा है जबकि केशव स्पष्ट भेद कहते हैं। जयदेव एवं प्रणय अभेद एवं ताद्रूप्य दोनों की स्थिति में रूपक मानते हैं।<sup>४</sup> किन्तु उनके अभेद की भी सीमा है जिसमें अध्यवसान को उन्होंने नहीं लिया।

कुवलयानन्द की टीका में विद्यानाथ ने इसकी सीमा निर्धारण के लिए 'उपात्त' शब्द का प्रयोग किया है जिससे अध्यवसायमूलक रूपकातिशयोक्ति का विषय भन्न हो जाता है।<sup>५</sup> किन्तु केशव के विरुद्ध रूपक के उदाहरण में स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने अभेद में ससंग को ही नहीं अपितु अध्यवसान को भी लिया है। प्रतीत होता है कि केशव ने ज्ञान-बुझकर रूपकातिशयोक्ति को अतिशयोक्ति के अन्तर्गत न रखकर रूपक के साथ रखा है। और इसीके अनुरूप 'मित्यो वरनिय रूप' कहकर अपने लक्षण को अभेद मात्र तक ध्यापक बनाया है। इस प्रकार उन्होंने दण्डी के लक्षण को लेकर अपने अनुरूप ढाल लिया है। केशव ने सामान्य लक्षण ही नहीं अपितु तीन में से दो उपभेदों के नाम भी दण्डी से लिए हैं। किन्तु यह समझना भूल होगी कि भन्नें में उन्होंने दण्डी का अनुकरण मात्र किया। भेदों के विषय में उनका दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। दण्डी ने समस्त व्यस्त सकल अवयव एक (युक्त-युक्त) विषय सविस्तार विरुद्ध हेतु रूप 'तिल' उपमा-रूपक व्यतिरेक रूपक आशय-रूपक समाधान रूपक सम्यक रूपक अपह्नति रूपक नाम में सत्रह भेद दिये हैं। वास्तव में दण्डी द्वारा यह कोई निश्चित भन्तीकरण का प्रयत्न नहीं

१ उपमेये तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते ॥

—काम्यान्तर् २।१६

२ साधर्म्यमुपमाभेदः ॥

—काम्यप्रकाश १।१

३ उपमा ही के रूप में मित्यो वरनिय रूप।

ताही सा सब कहत हैं कमल रूपक-रूप ॥

—कविप्रिया तेरहवां प्रभाव, छन्द १२

४ विन्यभेदात् ध्वजान विषयस्य यत्।

रूपक तयि राधिकायून्यानुभयोस्तिभिः ॥

—कुवलयानन्द १७

५ उपात्तदिग्भाविशब्दविषयमित्युदाहरणोपाशयविषयभाभूतमुपमानाभेत्ताद्रूपान्तरप्रकृतम् इति तु निश्चयः।

अत्र कमलनलम्बनि कमने च कुवलये तानि वनकननिहायाम् श्यामिताशोभितारण्यवतातेनि विषयविशेषणम् ॥

—कुवलयानन्द ४ १२

या विभिन्न स्थितियो म रूपक का प्रदर्शन-मात्र या ।<sup>१</sup> इनमें समस्त और व्यस्त भेद तो सामान्य के आधार पर होने के कारण शिल्पी के काम के ये ही नहीं। दण्डी के भवयव और भवयवी रूपक परवर्तिया का मान्य नहीं हुए। भवयवी को छोड़कर भवयव का रूपक या भवयवा को छोड़कर भवयवी का रूपक इनका आधार था। मत्र इनको स्याक के सावयव और निरवयव तथा विद्वनाय के साथ और निरग से भिन्न समझना चाहिए। ध्रगो के धाराप और ध्रगों के वक्षस्विक धारोप म हानेवाला विषय रूपक भी इसी कोटि का है। एम ही एकाग और द्वयग हैं। हेतु रूपक म हनु बताना समाधान म समाधान करना श्लेष में श्लेष उपमा-व्यतिरेक आक्षेप अपह्लाति रूपका म इन अलंकारों का जसा कर्म होना कोई रूपक का व्यवस्थित मदीकरण नहीं करत।

रूपक के भेदों का जजाल दण्डी म ही नहीं परवर्ती आचार्यों म भी पलता रहा। भामह न तो समस्तवस्तुविषय और रसकण्ठविवाविश्रतया उद्भट ने समस्त एकानेग मासाभा स केवल चार ही भेद किए थे। मम्मट स्याक और विद्वनाय म धाककर यह म परम्परा फल गई। 'साग निरग और परपरित तीन स्थूल भेद करके अनेक उपभेद किए गए।<sup>२</sup> भमद ताद्रूप्य के आधार पर दो भेद आधिक्य-यूनतम और अनुमयत्व के आधार पर दिखाए हैं अन्य मत्र को उन्होंने प्रपच कहा है।<sup>३</sup>

मत्र केव न इस सारे जजाल का छोड़ दिया। उनके लिए दण्डी के पास दो ही धाकपक नाम तोप रह गए विरुद्ध रूपक और रूपक। अद्भुत रूपक और रूपक-रूपक केराव की अपनी सज्जि है।

अद्भुत रूपक

आचार्य विद्वनाय ने अधिकांश विगिष्टय नाम से एक रूपक भेद का उल्लेख किया है जहाँ धारोप के साथ उपमेय में उपमान की अपणा कुछ आधिक्य दिखाई दे।<sup>४</sup> वास्तव में इस विगिष्टता का क्षेत्र है व्यतिरेक। स्वयं विद्वनाय के उदाहरण म व्यतिरेक कहा जा सकना है जसाकि काण महोदय ने लिखाया भी है।<sup>५</sup> किन्तु उपमान

१ न पदो विद्वाना रूपकोमनोरत।

निम्नात्र दर्शित श्रीरत्नकामनुमांशम्॥

—काव्यांश २।६६

२ नोटम आन साहित्य-पत्र कारे पृष्ठ स ११८

३ रूपकस्य सावयवनिरवयवत्वाभिधेयप्रपचन तु चित्रनीतिमायाम्।

—सुवचनम् पृष्ठ १६

४ अधिकांशदेशिष्य रूपक यधरेव तत्।

—साहित्य-पत्र १।३४

५ To us this verse appears to be not a distinct variety of Rupak but of Vyatirek superiority of the Upmeya over the Upman is pointed out the same is done here

—Kane Notes on Sahitya Darpan Page 122

—Quoted by Kane Page 130

या उपमेय में किसी गुण की 'यूनाधिकता' पर अधिक ध्यान न देकर उनमें जा अभेद या आरोप का बोध होता है उसे तो नहीं भुसामा जा सकता । इसीलिए पंडितराज जगन्नाथ ऐसी स्थितियाँ में रूपक कहना ही अधिक उपयुक्त समझते हैं ।<sup>१</sup> केशव ने इस भेद को स्वीकार किया है किन्तु विश्वनाथ के सम्व चीढ़े नाम अधिक रूढ़ में वैशिष्ट्य के साथ नहीं अपितु अद्भुत रूपक कहकर—

सवा एकरस धरनिय और न जाहि समान ।

अद्भुत रूपक कहत ह, तासों बढि निधान ॥<sup>२</sup>

किसी उपमान के साथ सदा एकरस रूप से वर्णित होते रहनेवाले उपमेय का अनन्य सामान्य रूप से वर्णन अद्भुत रूपक कहना होता है । जैसे मुख का कमल के साथ औपम्य वर्णन परम्परा प्राप्त है । उसके ही साथ अभेद की आधार बनाकर उपमेय को अनन्य सामान्य दिखाना केगव के अनुसार रूपक रूपक है । अद्भुत रूपक के लिए केशव ने जो उदाहरण चुना है उसमें पूर्वार्य में दण्डी के श्लेष रूपक से प्रेरणा ली गई है ।<sup>३</sup> किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि केशव का भेद विषयक दृष्टिकोण दण्डी से सर्वथा भिन्न है ।<sup>४</sup> अतः दण्डी के श्लेष एव केशव के अद्भुत को एक नहीं समझना चाहिए ।

### विरुद्ध रूपक

केगव का विरुद्ध रूपक दण्डी के विरुद्ध रूपक से कुछ भिन्न है किन्तु आधारभूत तत्त्व एक हान के कारण दण्डी के भेद का ही व्यापक रूप प्रतीत होता है । दण्डी ने इसका आधार विरोधी तत्त्व रखा है । उनके उदाहरण का भाव है 'तुम्हारा मुखचन्द्र में कमलों को मलिन करता है न आकाश में स्थित है । वह तो मरे प्राणों को हरण करने में ही समर्थ है । दण्डी के अनुसार यहाँ आरोपित चन्द्र स्वोचित बायों को न करने विरुद्ध बायों का करता हुआ दिवाया गया है अतः विरुद्ध रूपक है । केगव अपने रूपक के लिए विरोधी तत्त्व ही चुनते हैं । किन्तु दण्डी के समान विरोध की शीघ्र रेखावाला नहीं अपितु रूपक के क्षेत्र में पाए जानेवाले सर्वाधिक विरोधी तत्त्ववाला अध्यवमानमूलक रूपका तिगयोक्ति उदाहरण । दण्डी ने रूपकातिगयोक्ति का उल्लेख नहीं किया । परवर्तियों में वह पूर्ण प्रतिष्ठा पा चुकी है । केगव उस मान्यता देते हैं किन्तु अतिगयोक्ति नहीं रूपक के अन्तर्गत रखना पसन्द करते हैं । उनका आधार है विरोधी तत्त्व ही किन्तु दण्डी के समान उपमान के गुण या विशेषों में विरोध नहीं अपितु आपाततः (ऊपर से) प्रतीत

१ रत्नमण्डप, पृ० ४३६

२ कविप्रिया तैरहवा प्रभाव छन्द १५

३ राजरसोदभोगार्द अमरशाब्दगौरवम् ।

सखि कवचाम्बुधरिदं तवनि स्थिररूपकम् ॥

४ कविप्रिया तैरहवा प्रभाव छन्द १६

हानेवाला भय म ।<sup>१</sup> अध्यवसान के विराध का ध्यान में रखकर व इस प्रकार लक्षण करत हैं—

अहं कहिय अनमिल कछ सुमिल सकस विधि भय ।

सो विरुद्ध रूपक कहै केगव बुद्धि समय ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार जहां अपातत भय में अनमेल दिखाई पड़ किन्तु परिणामन (अध्यवसित उपमयों को निकाल लेने पर) भय-मगति सुमिल हो वहां विरोधी तत्त्व में घम लकार हानि के कारण केगव का विरुद्ध रूपक होता है ।

रूपक रूपक

दण्डी के रूपक-रूपक के उदाहरण का भाव है, हे सुन्दरि ! तुम्हारे मुखवमल क्या हम रगस्थल में झूलता-रूपी नतकी लीलानुरूप कर रही है ।<sup>१</sup> मुख में कमल का आरोप फिर उसमें रगस्थल का वही प्रकार झूल में लता का फिर झूलता में नतकी का आरोप होने के कारण रूपक-रूपक है । दण्डी का ध्यान केवल इतनी बात पर है कि एक आरोप पर यह दूसरा आरोप हुआ है । परवर्तियों ने इस आरोप-परम्परा को ध्यान में रखकर<sup>४</sup> हम परम्परित कहा है किन्तु उनकी दृष्टि में एक रूपक का दूसरे रूपक के लिए उपायमूल बनना भी आवश्यक है । दण्डी के आरोप में मुख में कमल तथा झूल में लता के आरोपों को व्यर्थ कहकर निकाला भी जा सकता है तथा दोष भी कहा जा सकता किन्तु नवीनों के परम्परित में यह शिथिलता नहीं रही । केगव का लक्षण इस प्रकार है—

रूप भाव अहं धरनिह कौनिह बुद्धि विवेक ।

रूपक रूपक कहत कवि, केसवदास अनेक ॥<sup>५</sup>

जिस रूपक में रूप भाव का ध्यान हो उसे रूपक रूपक कहते हैं । यह रूप भाव का है उपमेय पर उपमान का आरोप भयवा उपमान द्वारा उपमेय को अपने रूप

१ गण्डी का उदाहरण—

॥ मीनयनि पथानि न नमोऽप्यवगाहन ।

त्वन्मुण्डेनुर्ममसुता हरिणयेव कल्पते ॥

—काव्यान्तरा ॥२३

अत्रियाकट्ट कार्याणामन्य कार्यस्य च क्रिया ।

अथ सुन्दर्यने यत्नात् विरुद्ध नाम रूपकम् ॥

—काव्यान्तरा २॥२४

२ कविप्रिया, ऐरहना प्रभाव, छन्द १७

३ मुरगकप्रमोदमिन् अलाननसो तव ।

लीलानुत्तं करोति रम्य रूपरूपकम् ॥

—आभ्यासरा २॥२३

४ अ—परम्परा माहात्म्येण परम्परितम् ।

—एकवक्त्री ५ २१५

आ—परम्परा एकस्य माहात्म्यापरस्य रूपराशमायाय यत्र तथोक्तम् ॥

—अनन्तरम्बरवन्, अपरप ५ ६५

५ कविप्रिया, ऐरहना प्रभाव, छन्द १६

का करना ।<sup>१</sup> संस्कृत भाषायों में यह रूप शब्द पारिभाषिक जसा बन गया था । अपने लक्षणों में कई भाषायों ने इसका प्रयोग किया है ।<sup>२</sup> केदार ने इसीके माध्यम से अपना सामान्य लक्षण भी बनाया है ।<sup>३</sup> केदार के रूप-रूप का उदाहरण दण्डी के ही आधार पर बना है ।<sup>४</sup> दण्डी की भाँति ही इसमें भी शब्दों में अक्षरों का आरोप किया गया है । जिसके उपपादक रूप पुतली-नर्तकी स्नेह-नायक हास मृदंग आदि निमित्तभूत रूपक हैं । अद्वैत निबन्धन की भी लगभग यही प्रक्रिया है । अतः केदार का उदाहरण दण्डी से अधिक सगत एवं साग है ।<sup>५</sup>

इस प्रकार रूप में केदार ने दो नाम दण्डी से अपनाए हैं । एक में विरोधी तत्त्व का एक व्यापक आधार चुना है दूसरे में परवर्तियों की योग्यता का ध्यान रखा गया है । तीसरे भेद अद्भुत रूप में विश्वनाथ के अधिकांश वशिष्ठ्य को अपनाया गया है ।

### दीपक

केदार ने दीपक के लिए आधारतो दण्डी को ही बनाया है किन्तु परवर्ती विवेचन को ध्यान में रखकर उसके स्वरूप में थोड़ा-बहुत हेर फेर भी कर दिया है । दण्डी के अनुसार जाति क्रिया गुण अथवा द्रव्यवाची एक ही स्थान पर स्थित शब्द के द्वारा समस्त वाक्य का उपकार हो रहा हो वहाँ दीपक अर्थकार होता है ।<sup>६</sup> केदार के अनुसार क्रिया गुण द्रव्य

१ अ—विषयिण विषयस्य रूपेण कस्याद्रूपकम् । —अनं सन १ ॥

आ—यन् तु विषयी विषयं रूपवति रूपकं करोति तन्वर्षाभिधानं रूपकम् ॥

—एकवलि १ २१२

२—The name Rupak is quite appropriate as into it the Vishaya imposes its form (Rooop) on the vishaya

—Kane Notes on S Darpan page 114

३ रूपक रूपिणो विषये निरपह्ने ।

—साहित्यस्य १०१२०

४ उक्तं हि के रूपं सा मित्यो दर्शनये रूप ॥

—कविप्रिया तरङ्ग प्रभाव दर ११

५ कविप्रिया तरङ्ग प्रभाव दर २०

६ त्रैलोक्य मयःपुस्तकभारव्यापारो हरिवाहव ।

अथ त्रैलोक्य मयःपुस्तकभारो हरिवाहना गम्यभारणे निमित्तम् ।

—साहित्यस्य १ १२१ की वृत्ति

७ आतिशयगुणद्रव्यवाचिनेत्र वर्तिना ।

सर्वत्राश्रयकारण्येन तन्मूर्तिवक यथा ॥

—वाक्यादौ २१०

८ अतिशय गयी के रूप लक्षण का रूप प्रकार अर्थ करने हैं—अने के अनुसार अतिशय

अर्थकार बना होता है जहाँ शब्द क्रिया गुण द्रव्य तथा वाक्य का प्रकाश बनन भवत

वाक्य का उपपादक बनन करता है ।

—नेत्रावशाम पृ० २११

दूरी के लक्षण में न अतिशय होने की शक्ति है न वाक्य शब्द आति गुण आति के समान

के अर्थ बनन । अतिशय का वाक्य के लिए समान-मान अनेति मते अतिशय

केपय मे किसी एक स्थान पर वाक्यरूप में वर्णित होने से दीपक की दीप्ति होती है। यहा द्रष्टव्य यह है कि वेगव ने दण्डी के जाति गब्द को छोड़ दिया है। दण्डी के अनुसार पवन कलापी पुण्यधन्वा जातिवाचक शब्द हैं तथा विष्णु द्रव्यवाची। बंधाकरनिक साधार का यह मूल्य एव पारिभाषिक भेद हिन्दी में बसा हो रही रह गया। अतः वेगव ने उस गब्द को छोड़ दिया है। उन्होंने द्रव्य शब्द से दीना का नाम चलाया है। अतः वेगव का गब्द दण्डी की अपेक्षा अधिक व्यापक है। दण्डी के एकत्रवर्त्ती के स्थान पर वेगव ने 'इकठोर' शब्द का प्रयोग किया है जो समानाधिक होने पर भी इकट्ठे वर्णित होने का भ्रम करा सकता था। दूसरे दण्डी ने 'सुववाक्योपकार' का स्पष्ट उल्लेख किया है। वेगव के लगन में यह भ्रमाव रह गया है। वास्तव में दीपक धलकार का दीपक गब्द ही उसका स्वरूप का दीपक बन चुका था। जिस प्रकार गृह में एकत्र रखा हुआ दीपक सबवस्तु प्रकाशक होता है<sup>१</sup> इसी प्रकार वाक्य में एकत्र प्रयुक्त दीपक गब्द सबवाक्यगत समस्त कारक या क्रियाया का प्रकाशक होता है। उस समस्त धर्म की स्पष्टता का भार 'दीपक दीपति' शब्दों के ऊपर हो रहना है जोकि गद्यवृत्ति के द्वारा स्पष्ट होना चाहिए था फिर भी उदाहरणों में स्पष्ट है कि वेगव तथा दण्डी का अभिप्राय एक ही है।

### दीपक के भेद

दण्डी ने जाति क्रिया गुण और द्रव्यगत दीपक लिखाकर इनके वाचक पदा की पद्य के आदि मध्य और अन्त में स्थिति के साधार पर भेद दिखाए हैं।<sup>१</sup> नामह और

शब्द कहा जा सकता है।

वाक्य, क्रिया गुण द्रव्य शब्द, सर्वत्र करि ॥ और ।

द्वयक दपति कहत है, केसव कवि मिरनौर ॥

—कविप्रिया तैरहसा प्रभाव छन्द २३

- १ (क) प्राकरयिवाप्राकटयिप्रदायव्यापकत्र निर्दिष्ट सम्यगे धर्म प्रमगेनान्वयोपकारासना दपसारयेनान्वयस्यान्यारोप्यारक ॥

—अनन्तरामवल् ५ ४१

- (ख) प्रहृष्टप्रहृष्टान्वयः सान्निध्यविविधित्वनि सारारयो धर्म प्रमगेनान्वयि दापयति दीपकम् ॥

—दशकवर्त्ता ५ २४२

- (ग) प्रहृष्टप्रहृष्टासौ धर्म प्रमगाप्रजनवति शपयति प्रहृष्टावति सन्दीपकरोति शीघ्रम् । यन्मैत्रेय इव शीघ्रम् । महाशय कम् । शप्याह्वय य प्रहृष्टप्रहृष्टप्रकाराकमेव वाच्यम् ।

—रसमयार ५० ३२२

- २ (घ) आन्विष्यन्विषय विधा दादकमिष्यति ।

—मामद, ११५१

- (च) आन्विष्यन्विषय प्राप्यन्तेर योगिन ।

अन्विष्यन्विषयाना यत्र सप्यक विदुः ॥

—उदयट, ११३



हूए उसीने प्रसंग में उसको रखा है। दूसरी ओर नवीनो ने सर्वों से प्रभावित होकर माला दीपक के जो उदाहरण दिए हैं उनमें से एक एकावली से नितान्त मिलता-जुलता रखा है अपितु उसे एकावली का ही उदाहरण कहा जा सकता है। यह समझौता वहाँ तक तक सम्मत है यह दूसरी बात है।

मालादीपक के विषय में एक चर्चा और चली थी। माला शब्द का अर्थ होता है अनेक पुष्पो या मणियों का एकत्र गुम्फन जसा कि मालोपमा में होता है। परन्तु जिसे आचार्य मालादीपक कहते चले आए हैं उसमें एक-दूसरे की पूर्वापर कड़ी मिलती चली जाती है।<sup>१</sup> यह मानात्वं नहीं शृङ्खलात्वं है जैसा कि एकावली में होता है। अतएव आचार्यों ने मालादीपक के लिए माला शब्द के अर्थ को गिथिल करके शृङ्खला के अर्थ में ही प्रयुक्त मान लिया है।<sup>२</sup> वेगव के सामने यह सब विवेचन था। अतः उन्होंने माला दीपक के दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनमें एक एकावली की शृङ्खला होती का है।<sup>३</sup> दूसरा आलोचना की माला-शाली का।<sup>४</sup> एकावली शली के उदाहरण में दीपकत्व की मात्रा का अभाव और एकावनीत्व की प्रधानता हो गई है। केशव यह स्वीकार करते हैं कि दीपक के अनेक भेद होते हैं तथा किए जा सकते हैं। परन्तु वे सामान्यतः दो भेद ही उदाहरण करना पसन्द करते हैं—मणिदीपक और मालादीपक।<sup>५</sup> मणिदीपक वेगव का अर्थ है और माला के वजन पर निर्मित हुआ है। अनेक मणियों की गुम्फित प्रवली यदि माला कही जाती है तो एकाकी रत्न को 'मणि' कहना सगत ही था।

१ अ—पूर्वपूर्वपुष्पोत्तरोत्तरगुणवद्वत्वे मालादीपकम् ॥ —रसगंगाधर, पृ १७८

आ—मालादीपकमाद्य चषथोत्तरगुणावहम् ॥

—काम्यप्रकाश ३४१ पृ सूत्र १०।१५७

२—उत्तरोत्तरमिसूर्व पूर्वोपकारिकतायां मालादीपकम् ॥

—रसगंगाधर, पृ १२८

३ मालाराधेनात्र गुणानां लक्षणे । तस्य प्रयोगान्तरत्वात् ॥

आ—चात्र मालोपमाकमालाराधेने वेद्य ॥

—अलङ्कारमर्बुर विमर्शिनी टीका, पृ १७८

४ दीपकं देहं दत्ता सां मिले तु दत्ता मिलि तेरहि जोति अग्यवे ।

जागि कै जोनि मरे समुधे तम सोधि तु ती समग्र दरतावे ॥

सो समता रये रूप को रूपक रूप तु कामकला उपकारे ।

काम तु केमव प्रेम धारक प्रेम ते मानप्रियादि मियावे ॥

—कविप्रिया तेरहवां प्रभाव पद २८

५ कविप्रिया तेरहवा प्रभाव पद २८

५ अ—मनिमाना निनमो कहे केमव कवि कविभूर ॥ —कविप्रिया तेरहवा प्रभाव पद २२

आ—इनमें एक तु बनिये कौनहु मुदिविनास ।

छात्रो मनिदीपक मया वर्णन वसवणाम ॥ —कविप्रिया तेरहवा प्रभाव पद २४

६—मरे जिने अहे बनिये दम काल बुधिय ।

माला दीपक कान्ह है छात्रे भो भांग ॥ —कविप्रिया तेरहवा प्रभाव पद २७

के-१५



## परिवृत्त

दण्डी के अनुसार अर्था के विनिमय<sup>१</sup> को परिवृत्त कहते हैं। विनिमय का अर्थ है किसी व्यक्ति को कुछ बदले में प्राप्त करके कुछ देना। दण्डी के उदाहरण का भाव है—हे राजन्! अन्य राजाओं के लिए प्रहारणीय तुम्हारे बाहु ने उनके चिराजित कुमुद्वेत यश का हरण कर लिया है।<sup>२</sup> किन्तु आम्ह की परिवृत्ति के स्वरूप में इससे कुछ अन्तर है। आम्ह ने अपने लक्षण में विनिमय जसी चीज का नाम नहीं लिया। एक वस्तु का छोड़कर दूसरी वस्तु का ग्रहण-मात्र ही उनकी दृष्टि में परिवृत्ति है।<sup>३</sup> माय ही वे उसमें अर्थान्तरयास का पुट भी चाहते हैं। आम्ह के लक्षण का अर्थ उनके उदाहरण से स्पष्ट नहीं होता। कारण यह है कि उनका और दण्डी का उदाहरण एक-सा ही है।

यहाँ विनिमय और सामान्यतः आदान-परित्याग का अन्तर समझ लेना चाहिए। विनिमय में किसी अर्थ व्यक्ति की भी आवश्यकता है जबकि आदान-परित्याग-मात्र के लिए कोई अर्थ अपेक्षित नहीं। इसी अन्तर को लेकर परवर्ती भाषाओं में मतभेद चल पड़ा। यहाँ सुविधा के लिए हम उन्हें विनिमयवादी और ग्रहण-त्यागवादी कह सकते हैं। प्रथम वर्ग में दण्डी मम्मट जगन्नाथ<sup>४</sup> और दूसरे में मुख्यतः रम्यक और वामन को रखा जा सकता है।<sup>५</sup> यद्यपि रम्यक भी विनिमय शब्द का प्रयोग करते हैं किन्तु उनके विनिमय का अर्थ ग्रहण-त्याग-मात्र है।<sup>६</sup> विश्वनाथ भी विनिमय शब्द का प्रयोग करते

१ अर्थात्ता यो विनिमय परिवृत्तिस्तु सा यथा ॥ —वाक्यान्तरा २।३५१

२ रास्त्र प्रहारं दत्ता मुजेन ॥ भूमिजाम् ।  
चिराजितं ह्यु तेषा यशं कमुरपाण्डुरम् । —वा प्र २।३५६

३ विरिष्टश्च यन्नामान् मन्योपोद्देन वस्तुन ।  
अर्थान्तरन्यासकौ परिवृत्तिरसौ यथा ।  
प्रणयविद्यमर्थिव्य ॥ यशोधनमादितः ।

सतां विश्ववनानामिन्द्रमखलितं ज्ञानम् ॥ —वाक्यान्तरा ४१४२ तुल्ये परि

४ अ—परिवृत्तिर्विनिमयो योऽर्थानां स्वात्ममासक्तैः । —काव्यप्रकारा १।१७२  
विनिमयो हि केनचित्पुनरादौ परकीयस्य कस्यचिदादानम् । विनिमयपदस्य तत्रैव  
शब्दो ॥ —प्रणीत काव्य पृ ३७५ कोटीश

आ—परकीययत्किंचिन्नवादानविरिष्ट परस्मै स्वकीययत्किंचिद्वस्तुसमर्पणं परिवृत्तम् ॥  
—रम्यकप्रवर, पृ ४८१

५ अत्र परस्मै स्वकीययत्किंचिन्नमुपमपणं मत्पुण्यकथयन् सवशे विवक्षितम् । तत्तु स्वर्कव  
वत्किंचिद्वस्तुत्यागमात्रम् । 'किशोरभाब परिहाय रामा कथार कामानुगुणं प्रणालम्' इत्यत्रानि  
व्याख्यापते । न च—सर्वमेवेति वाच्यम् । पुनः कथात्यागपुण्यमुत्तरवशाददत्तस्य शान्तं  
देनानर्णकारत्वात् । एवं स्थितेर्विनिमयोऽत्र किंचिद्वस्तुत्वा कस्यचिन्नादानम् इत्यनकारात्  
कृता सत्पदपर्य परिवृत्ते कृतम् । यच्च किमप्यस्यामरणानि योऽने पुनः सदा वापरात्तानि  
वस्तुनः । पुनः पुनः सत्पदपर्यमप्यमत्र ॥ —रम्यकप्रवर पृ ४८२

६ अ—समं तुलाधिकानां समाधिकान्युतैर्विनिमयः परिवृत्तिः ॥  
विनिमयोऽत्र किंचिद्वस्तुत्वा कस्यचिन्नादानम् ॥ —अनकारप्रवर, पृ १११

घोर सामान्यतः ग्रहण-त्याग का उदाहरण भी दते हैं। किन्तु उनकी स्थिति मध्य की है।<sup>१</sup> परवर्ती आचार्यों ने इसके तीन भेद किए हैं—

- १ समवस्तु प्रदान से सम का आदान।
- २ अधिक के त्याग से यून का प्राप्ति।
- ३ यून के त्याग से अधिक की उपलब्धि।

कुछ लोगों ने सम और विषम के आधार पर दो ही भेद किए हैं। केवल का परिवृत्त अपनी नूतनता लिए हुए है। एक ओर तो वे इसका नूतन स्वरूप विधान करते हैं। दूसरी ओर ससृष्ट आचार्यों के इस समस्त परम्परा प्राप्त स्वरूप को उतारते हैं। केवल का महत्तम प्रतीत होता है कि परिवृत्ति 'वृद्ध का मध्य है परिवर्तन' जैसा कि वामन ने किया भी है। तब सोच इस असकार का स्वरूप होना चाहिए। जहाँ एक काम करने पर दूसरा काम हो वह वहाँ परिवृत्त अनिवार्य होता है—

और कछू कीज जहाँ उपजि पर कछू और।

सासों परिचल कहत हूँ कैसक कवि सिरमौर ॥<sup>२</sup>

लक्षण से समन्वय रखता हुआ ही इनका उदाहरण है। वास्तव में केशव के इस परिवृत्त का स्वरूप हिन्दी-साहित्यशास्त्र का घटना होता परन्तु जैसा कि कहा जा चुका है हिन्दी रीतिशास्त्र ससृष्ट-काम्यशास्त्र का अध्यानुकरण करने चला। अतः केशव की इस मौलिकता को मान्यता नहीं मिली। स्वकीय भाष्यता के अनुसार लक्षण एवं उदाहरण देकर केवल ससृष्ट आचार्यों में प्रचलित 'परिवृत्ति' के स्वरूप का भी दिग्दर्शन कराते हैं। इसके लिए उनके पास गद्य नहीं उदाहरण का ही साधन है—

हाथ गहूँ बजनाय सुभाष हो झूटि गई पर धीरजताई।

पान भल मुख नन रचौ दधि धारसी देखि कहौ यह ठाई।

इ परिचयन मोहन को मन मोहि लियो सजनी मुखदाई।

सास गुपाल कपोल नखजल तेरे बिये सँ महराखि पाई ॥<sup>३</sup>

मथा—किमिष्यनाम्नामरयानिमीने नून तया बार्थकरोमिव कलम् ।

न प्रदोषे सुदुष्कृतारका विमोक्षी मधुरणाय कल्पते ॥—अनल सर्वम् पृ० १६२

भा—सम विमृष्टाभ्या परिवर्तन परिवृत्ति ।

—काम्यान्कार मूत्र पशुधर्मधिकरण अ ३ श्लो १६  
अप्यत्र कहेते हैं—'अर्थस्य विलम्बितन निनिमय' उदाहरण विद्यापगाधार मधुर्व निरवयव,  
विश्वेनेदधि प्रवितुल्यचन्नेन बन्धु बालाङ्गनाम्न बल्कल पयोधरेसेध विराण सहति ॥

—काम्यान्कार मूत्र पशुधर्म अधिकरण अप्याय ३।१६

१ परिवर्तिनिमय समन्यूनाधिक मयेन तस्य च प्रवयवो ज्ञेयः स्वर्गल किमिकराव्यने  
ऽपुना । येन अत्रकलेनर व्यापकमिन्नुकिरया ज्वरं यत ॥

—साहित्यदर्पण १।८१

२ कविप्रिया तैरहर्षा प्रभाव छन्द ३६

३ कविप्रिया तैरहर्षा प्रभाव छन्द ४१

उदाहरण में कृष्ण हृष्य ग्रहण करते हैं और अपना धय त्याग देते हैं। मत-रूपक परम्परा की 'यून' के अदान पर उत्तम के त्याग वाली परिवृत्ति है। दूसरी पक्ति में अतमगि धनकार गमित है जिसका प्रस्तुत प्रमय मे सम्बन्ध नहीं। तीसरी पक्ति में द परिरभन मोहन की मन मोहि सिमा सजनी सुखदाई मम्मटोय परम्परा की मम प्रदान से सय के विनिमय वाली परिवृत्ति है। चतुर्थ पक्ति 'साय गुणात कपोम नमभत सेरे दिये से महाछवि पाई' मे कृष्ण नायिका के कपोलो पर नमभत दते हैं और वे पाते हैं साक्षात् महाछवि (नायिका) धयवा मृत अदभुत छवि। यह भी मम्मटोय परम्परा की 'यून-दान' द्वारा उत्तम से विनिमय वाली परिवृत्ति है। दूसरा उदाहरण इस प्रकार है—

जोउ दयो जिन जग्न दयो जग जाही को जोति बही जग जाने।

ताही सो धर धनो बस काइ कर कृत 'केसव' को उर माने।

मूयक से रिपि सिध करयो रिपि ही बहु मूरख रोप बिताने।

ऐसो कछु यह काल है जाको मनो करिये सो धरो करि माने।<sup>१</sup>

प्रथम उदाहरण में 'यून और सय के द्वारा अधिक' का आशय या इसम अधिक के द्वारा 'यून' पदाय का। इस उदाहरण की परिवृत्ति विनिमयात्मक है। केसव ने इन दो उदाहरणों द्वारा बड़ी बुगलता में समस्त आचार्य-परम्परा में प्रचलित दृष्टिकोण का परिचय करा दिया है और लक्षण विधान अपने मौरिह बग से अलग किया है। वास्तव में अकेला परिवृत्त अतकार ही समस्त सम्बृत-साहित्यशास्त्र के सूक्ष्म अध्ययन और साय ही अपने मौनिक दृष्टिकोण की रखने की बुगलता का परिचायक है किन्तु गणवृत्ति ॥ अभाव के कारण कैाव के इस महत्त्व को लोप समझ नहीं सके।

उपमा

दण्डी के अनुसार ही कैाव ने उपमा का अनेक भेदोत्पत्ति वर्णन किया है फिर भी दण्डी ने कुछ अनावश्यक भेदों को छाड़ दिया है। दण्डी ने कोई बलीय प्रचार की उपमा बतलाई है किन्तु कैाव ने कुल दार्ढ्य प्रचार की। इनमें यमोपमा नियमायमा अतिशयोपमा अदभुतोपमा मोहोपमा गगनोपमा निगलोपमा उत्प्रेक्षितोपमा तथा हेतुपमा के नाम ज्यादा हैं। दण्डी का निोपमा प्रशयोपमा परम्परायमा अमो कैाव की दूयणोपमा श्रुणोपमा अयायापमा है। दण्डी के प्रतिपक्षायमा और वातुपमा के उदाहरणों की छाया कैाव के गुणाधिकोपमा और माक्षिणरोपमा के उदाहरण पर है। दण्डी ने लक्षण तो बिसाक लिए नहीं हैं परन्तु कैाव ने लगन भी लिए हैं। उन्होंने दण्डी के उदाहरणों की ध्यान में रखकर उनके किसी एक चमत्कारी पद को लहर बिमान तथा भावकरण कर दिया है। उदाहरणस्वरूप दण्डी की यह प्रतियोगायमा ली जा सकता है—

न जातु क्षतिरिहोस्ते धुमेन प्रणिर्गजिद्रुप।

बसविनो जइयेति प्रणिधयोपमेव सा॥<sup>२</sup>

१ कदियिदा परछाई प्रभाव पृ. ४१

२ काव्यामरी २३४

कनकी और जड़ चद्रमा की गति तर मुख के माथ समानता करने की नहीं है।  
अतः (यहाँ शक्ति-साम्य के प्रतिषेध के कारण) प्रतिषेधापमा है। अथ कंगव का गुणाधि-  
कापमा का उदाहरण सीजिए—

य तुरग सेन रंग सग एक ये अनेक  
ह सुरग अग अग प तुरगभीत से ।  
ये नितक अक यज्ञ ये सर्गक कंगोदास  
ये कलक रक ये कलक ही कलीत से ।  
ये पिये सुधाहि ये सुधानिधोत करसे जु ।  
साँवहू सुनोन ये पनीति ये पुनीत से ।  
देहि ये दिये बिना बिना दिये न दहिब ।  
मए न ह न होंहिगे न इउ इउजीन से ॥<sup>१</sup>

इउ इउजात-सकनापि नहीं हो सकन यहा कंगव ने भी उपमान की साम्य-शक्ति  
का निरस्तार किया है। अतः न उपमान म जीनता चद्रम कनकरव और जड़चद्रमा  
कर यह काय किया था। कंगव न उपमान म हानता का अपमा उपमय म गणों की अधि-  
कता लिखाकर यह काय किया। वास्तव में य गाना बातें व्यतिरेक का अत्र थीं। किन्तु  
दोनों आचार्यों ने साध्यभूत चमत्कार की अपमा माधनभूत चमत्कार को प्रधानता कर  
अपन-अपन सभग किए।

कंगव के विपरीतोपमा तथा सकीर्णोपमा के दो भेद दण्डी के किनी भेद म नहीं  
मिलते। तात्ता भगवान्जीन आचार्य गुकन शास्त्रि का कथन है कि विपरीतापमा में उपमा  
का मूल (साम्य) नहीं पाया जाता है। विपरीतापमा का उदाहरण निम्न प्रकार है—

मुपित देह विभूति दिगंबर नाहिन धंवर अग नबीने ।  
दूरि के मुन्दर मुन्दरी कसब धीरि इरीनि में महरि कीने ।  
देसि विमंडित इइनसौ भुवदण्ड डोंड अतिदण्ड बिहोने ।  
रात्रनि श्री रघुनाथ क राज कुमदल धादि कमदल सोन ॥<sup>२</sup>

यहा पूव और परवर्ती दगा का वयस्य शिवाया गया है। शनों अवस्थाओं के वमव  
और हानता की आशित समानता का ध्यान म रखकर हा कंगव न इस उपमा के अन्त  
न माना है। वयस्य शिवान के निण जिन दो वस्तुओं की ध्यान-नामान रखा जाता है  
वह शीवस्य के हा गगन है। कंगव का यहा शिवापचमत्कार-वयस्य म है अतः उपमा  
नाम विपरीतापमा है। मका रमा म प्रकार किया गया है—

पूरव पूरे गुननि क तत् कहिन होन ।  
तामों विपरीतोपमा कसब कहन प्रवीन ॥<sup>३</sup>

१ कवि-द्वय चैत्र-प्रसव दृ- २५

२ कवि-द्वय चैत्र-प्रसव दृ- ३५

३ कवि-द्वय चैत्र-प्रसव दृ- ४

मम्भट, विद्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने उपमा के वर्गीकरण में दण्डी का यह दृष्टिकोण नहीं अपनाया। उनके वर्गीकरण का आधार व्याकरण है। उपमा के वृण तथा सुप्त भेद करने के पदवाच्य वाक्य समास प्रत्यय तद्धित तिङ्गन्त रच्य भाङि के आधार पर अनेक भेद किए गए हैं। वास्तव में यह साहित्य के धन में व्याकरण का अनुचित प्रवेश था। अल्पय दीक्षित ने चित्र मीमांसा में इसपर आक्षेप भी किया<sup>१</sup> है कि यह वर्गीकरण बौद्धल प्रदत्त मान के लिए है अलंकारशास्त्र के धन में तो व्यर्थ ही है। नेत्रव ने भी व्याकरण परम्परा का पालन न करके दण्डी का ही आदश बनाया है।

### निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन में हमने केदार के आचार्यत्व धन से दो धन चुने थे—रस तथा अलंकार। हमने देखा इन धर्मों में उनकी शास्त्रीय पुष्टभूमि कितनी व्यापक एवं सुदृढ़ है। प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं को तीन-चरखे पर उढ़ीने अपनाया है। साथ ही वे अपना निजी दृष्टिकोण भी रखते हैं। 'रसिकप्रिया' और 'वविप्रिया' में दृष्टिकोणों का अन्तर है। रसिकप्रिया शृंगार के रमराजत्व का दृष्टिकोण लेकर चली है अतः उसमें मौलिकता का अपेक्षा अवसर मिला है। हम देख चुके हैं कि अपने उद्देश्य में केदार को कितनी सफलता मिली है। 'वविप्रिया' में शिक्षक की दृष्टि प्रधान है। अन्त में मौलिकता अनेक आचार्यों के अनेक लक्षणों में से चुनाव में है। साथ ही अनेक स्थलों पर स्वतन्त्र दृष्टिकोण से भी काम लिया गया है जिसमें केदार की गहरी सूझ का पता चलता है। अलंकारों के लिए आधार प्रायः अलंकारवादी आचार्य दण्डी नामक भाङि है। किन्तु जहाँ उनकी बुद्धि गवाही नहीं देती वहाँ वे अपनी स्वतन्त्रता दिखाने हैं। रस और अलंकार दोनों ही धर्मों में जहाँ भी प्रचलित पद्धति में हेर-फेर किया है उदाहरण दिया है। उन समस्त कारणा की पुष्ट भूमि में सर्वत्र उनका एक निजी दृष्टिकोण है वह दृष्टिकोण एकगुणित एवं गुणिचित है। आवश्यकता इस बात की है कि केदार के प्रायेक शास्त्रीय धर्म को लेकर एक-एक लक्षण एवं उदाहरण की इसी दली पर परछा आगे। हमारा विश्वास है कि उस अध्ययन में इन दो धर्मों के विवेचन में जो निष्पत्ति हम प्राप्त हुआ है उसकी पुष्टि हो होगी। तमस्य रीतिज्ञान में केदार के समान धर्म कोई व्यापक अध्ययनशील मौलिक आचार्य नहीं दिखाई पड़ता। अथ आचार्य प्रायः बंधी-बंधाई सीक पकड़कर चले हैं। किन्तु स्वयं पुराणी सीक पर चलकर भी अन्त परवर्ती अध्ययन केदार के महत्त्व को नमन्यक होकर स्वीकार करता रहा है। यह उनके आचार्यत्व की महत्ता का स्वयं प्रमाण है।

१. रसमयं पूर्वाश्रुताविमर्शो वाक्यमात्रायाः प्रत्ययविशेषात् गोचरस्य शास्त्राचार्य जगन्निर्देशक  
प्रदर्शनाय प्रसक्तो नान्यथाव्यवहारोऽप्युपलब्धत्वात् साधुभाष्ये साधुनिर्देशक ॥

—विश्वविद्यालय, पृष्ठ २७, की सी० कायं इत्यादि, पृष्ठ ११

## घष्ठ परिच्छेद

### केशव की काव्य-कला

कवि रूप में केशव का अध्ययन करने के लिए हमारे सामने उनके कई पक्ष हैं। 'रसिकप्रिया कविप्रिया' में मुक्ताकार के रूप में 'रामचरित्र' में महाकाव्यकार के रूप में जहाँगीर-जस-चरित्र में ऐतिहासिक चरित्र-काव्यकार के रूप में विज्ञानगीता में दार्शनिक प्रतीक-नाट्यरूपकार के रूप में वे हमारे समक्ष आते हैं। भारतीय काव्य-दृष्टि चाहे काव्य मुक्तक हो चाहे प्रबन्ध मुख्यतः रसपरक रही है। संस्कृत के परवर्ती माहित्य की दृष्टि में अलंकारों की भी बड़ी घूम रही है। प्रकृति कवि की चिरसहचरी है वह उसी कविता का प्राण-स्रोत रहो है। रस पर अलंकार-सम्बन्धी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर ही किसी कवि की रचना में प्रकृति का स्वरूप विधान होता है। अतः हम केशव के कवि-रूप का मूल्यांकन करने के लिए सबसे प्रथम उनकी रस-व्यञ्जना अलंकार-योजना तथा प्रकृति चित्रण पर दृष्टिपात करेंगे। इन पक्षों पर दृष्टि डालने से उनके समग्र कविरूप का उद्धार न हो सकेगा। केशव के कवित्व का दूसरा किन्तु कुछ सीमित पक्ष है प्रबन्ध-कवि का। यह रूप 'रामचरित्र' 'जहाँगीर-जस चरित्र' और बीरसिंहचरित आदि में आया है। उनके इस स्वरूप का दर्शन करने के लिए हम उनकी तीन विशेषताओं को लेकर परखेंगे। प्रबन्ध-पटुता चरित्र चित्रण एवं संवाद। इन उपर्युक्त दो पक्षों के प्रतिरिक्त दो प्रमुख बातें रहती हैं छन्द-योजना एवं भाषाधिकार जिनका कि कवि के अभिव्यक्ति पक्ष से सम्बन्ध है। अलंकारों का भी सम्बन्ध यद्यपि अभिव्यक्ति-पक्ष से ही है किन्तु केशव जैसे कवि के लिए अलंकारों का स्थिति अधिक महत्व की है। अतः केशव के कवि रूप की समीक्षा के लिए हम उनका रस रम्य अध्ययन उपरिपक्ष करना चाहते हैं—

- १ रस-व्यञ्जना
- २ अलंकार-योजना
- ३ प्रकृति चित्रण
- ४ प्रबन्ध-पटुता
- ५ चरित्र चित्रण
- ६ संवाद
- ७ छन्द-योजना
- ८ भाषाधिकार



## केशव की रस-व्यजना

### रसरराजत्व

भिन्न रुचिहि लोक के अनुसार आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रसों को रसरराजत्व के स्थान पर बिठाने का प्रयत्न किया है। यदि महामति धर्मदत्त ने भद्रभूतरस को रमेसाररस मत्कार कहकर उसे सबथष्ट घोषित किया तो महाकवि भवभूति ने 'एक रस कल्प एव' कहकर कदम्बरस को ही प्राथमिकता दी। कुछ विद्वानों ने शान्तरस को ही रस राजत्व की पदवी पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में यह कथन अत्यन्त प्रसिद्ध है—

न यत्र बुद्धिः न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागी न च काचिद्विद्या।

रस स गान्त कथितो मुमोक्ष सर्वेषु भावेषु तम प्रधानः।

भद्रभूतरस का स्थायीभाव भव विस्मय है। रस्यादि स्थायीभाव की आस्वाद्यता एकमात्र विस्मय पर ही आधारित नहीं रहती। दूसरे रस-भाव की अनुभूति के मूल में अन्तर्निहित विस्मय तथा भद्रभूतरस के स्थायीभाव विस्मय दोनों में महान् अन्तर है। तीसरे आस्वाद्य स्थायीभाव के समक्ष उसका अस्तित्व नगण्य है। अतः भद्रभूतरस को रसरराज नहीं माना जा सकता। कदम्बरस की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी हम उसे रसरराज नहीं मान सकते। कदम्बरस में निराशा का साम्राज्य रहता है अतः उसे प्राथमिकता नहीं दी जा सकती। शान्तरस को भी रसरराज नहीं माना जा सकता क्योंकि सबसे पहले तो भरत मुनि ने उसे रस ही नहीं माना। दूसरे उसका स्थायीभाव ही विवादास्पद है। कुछ आचार्य राम को तथा कुछ निवेद को स्थायीभाव मानते हैं। तीसरे सुख दुःख चिन्ता द्वेष राग ईर्ष्या ही न होगी तो सचारीभाव कहां से आएगा ?

### शृङ्गार का रसरराजत्व

प्रारम्भिक अवस्था में रस का अर्थ शृङ्गार ही माना जाता था और रस के प्रवर्तक आचार्य कामनाथ के भी आचार्य माने जाते थे। भरत मुनि के अष्टौ नाट्य रसा स्मृता का अभिप्राय सम्भवतः यही हो सकता है कि नाटक में आठ रस होते हैं अन्यत्र चाह एक ही रस हो और उस एक के द्वारा सकेत शृङ्गार के लिए ही प्रतीत होता है। विश्वनाथ जैन विज्ञान ने शृङ्गाररस को आन्तरिक कहा है।<sup>१</sup> बाणभट्ट ने रस शब्द का प्रयोग शृङ्गार के अर्थ में किया है।<sup>२</sup> तदुपरान्त रघुभट्ट का 'शृङ्गारनिमग्न' भोजयत्र का 'सरस्वतीकटाभरण' तथा 'शृङ्गारप्रकाश' विद्याधर को 'लकावली', धारणा तनय का 'भावप्रकाश' गिरि भूषण का 'रमाणक' तथा मानुस्य की 'रसमंजरी' और 'रसतरंगिणी'

१ उच्छ्रयमयर्दिगम लृणव अंक श्लोक ४७

२ समुपारधना आस्थिरम आश प्रवर्तने।

३ रसेन शय्यां स्वपमभ्युत्थगता कथा अनस्थाग्निना कपूरिव।

—विश्वनाथ प्रेरमाणयन

—बाणभट्टी वातभट्ट

आदि ग्रन्थ शृंगार को ही रस माननेवाले ग्रन्थ है। भोजदेव ने तो 'शृंगारप्रकाश' में स्पष्ट ही कहा है—

शृंगारवीरकरुणाञ्जु सरोदहास्य

बीभत्सवाससभयानकान्तनाम्न

आभ्रासिपुर्वंग रसान् मुधियो वयं तु

शृंगारमेव

रसमात्रसमाभनाम् ।<sup>१</sup>

रूप गोस्वामी ने 'सञ्ज्वल नीलमणि' में जित्तकृष्ण-सम्बद्ध कर भक्तिरस की सजा दी है वह प्रचारान्तर से शृंगाररस ही है। शृंगार की व्यापकता की दृष्टि से प्रेम, स्नेह वात्सल्य श्रद्धा भक्ति आदि उसके अनेक भेद हैं। नायिका भेद की दृष्टि भी शृंगार के कारण से हुई है। सत्तार के कवियों को जितना इस रस ने आकर्षित किया है उतना ग्रन्थ किसी रस ने नहीं। महाकवि बेली (Bailey) के शब्दा में वे सब कवि हैं जो प्रेम करते हैं और महान् तथ्यों की अनुमूर्ति तथा प्रतिपादन करते हैं और परम सत्य प्रेम है।<sup>२</sup>

वस्तुतः हिन्दी काव्यशास्त्र का तो प्रारम्भ ही शृंगार की प्रधानता लिए हुए है। आचार्य वेणुदासजी ने तो स्पष्ट घोषणा की है—

नवहू रस के भाव छट्तिनके भिन्न विचार ।

सबको केसवदास हरि नायक है सिंगार।<sup>३</sup>

इतना ही नहीं परवर्ती हिन्दी आचार्यों ने भी शृंगार को प्रधानता प्रदान की है। लोप की सुधानिधि, चिन्तामणि का 'विक्रमकल्पतरु' मतिराज का रसराज रमलीन के 'रसप्रबोध' एवं भगवत्पण' देव की प्रमचन्द्रिका एवं 'रसविलास भिलारीनास के 'रसशृंगार' एवं 'शृंगारनिधय तथा पद्मकिर का 'जगन्निन्द' आदि ग्रन्थ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। महाकवि देव न शृंगार को रसराज सिद्ध करते हुए सभी रसों का अन्तर्भाव शृंगार में ही माना है—

निर्मल स्याम सिंगार हरि, देव प्रकाश अनन्त ।

उडि उडि अणुओं और रस विवस मपावस अनन्त ।

भाव सहित सिंगार में नवरस भक्तक प्रलय ।

ओ कंकण अणि कनक को ताही में नवरस ।<sup>४</sup>

## सयोग शृंगार

शृंगार दो भागों में विभाजित किया गया है—सयोग एवं वियोग । सयोग में नायक

१ शृंगारप्रकाश भोजराज

२ Poets are all who love who feel great truths  
And tell them and the truth of truths in love

—Bailey

३ रसिकप्रिया प्रथम प्रमाण छन्द १६

४ यशानुविनास प्रथम विभाग

नायिका का मिसन होता है। अतः उसकी अनुभूति सुखात्मक है। केदावदासजी ने सयोग शृंगार में मोदय-वर्णन रूप-वर्णन हाव भाव-वर्णन आभूषण-वर्णन घट्टयाम उपवन जलाशय जीठा विलास आदि का चित्रण किया है। उनपर तत्कासीन परिस्थितियों का प्रभाव था, अतः उनकी कविता शृंगार प्रधान है। 'रसिवाप्रिया' के कतिपय छन्दों को लेकर कतिपय आलोचकों ने उन्हें उच्छ्वसित अमर्यादित एवं असमय कहा है। इस सम्बन्ध में हमें यही कहना है कि कितने धीमेन जग करत न व चवती बार<sup>१</sup> तथा मनबूझ बूझ तरे जे बूझ सब भय<sup>२</sup> को दृष्टि में रखकर शृंगार की मर्यादा कहाँ रह सकती है! जहाँ शृंगार में मर्यादा का अधिक अनुश्रुत होगा, कहाँ कविता-नायिकी की छटा पकी पड़ जाएगी, साथ ही साथ उसके सजीवता एवं स्वाभाविकता जैसे गुण नष्ट हो जाएंगे। मर्यादा के इसी अधिक अनुश्रुत के कारण स्वनामधेय गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता भी यत्र तत्र कुछ दब-सी गई है। यह आक्षेप केदाव पर ही क्यों? क्या बिद्यापति में शृंगार की वेगवती धारा नहीं?<sup>३</sup> क्या हिन्दी के मूकय कवि मूर में शृंगार की मर्यादा है?<sup>४</sup> सरस्वत साहित्य के कानिदास मयभूति तथा योहय जैसे महाकवि भी शृंगार में मर्यादा का पालन न कर सके। अथवा साहित्य के कीटम एवं शलो आदि की यही दशा है। 'राम चन्द्रिका' में पूज्य भाव के कारण सीताजी का नख गिल-वर्णन न करके केदावदासजी ने एक चुक नामक सत्वा द्वारा सिय-दासियों का नख गिल-वर्णन कराया है। जिसकी दासियाँ इतनी गुन्दर हैं उनकी महारानी कितनी मुन्दर न होगी! केदावदासजी ने व्याज स्तुति अलंकार के आशय से सीता व सीतमयी की गुन्दर व्यञ्जना की है। केदाव के गयोग शृंगार का एक स्वाभाविक चित्र देखिए। किसी नायिका का पति परदेन जा रहा है। अतः वह किर्तव्यविमूढ़ है कि अपने प्रियतम का वह दिन दाम्नी में बिताई दे। अतः वह स्वयं प्रियतम से ही पूछ रही है—

जो ही कहाँ रहिन तो प्रभुता प्रगट होति

घसन जहाँ तो हित-हानि नाहि सहन ।

भाव तो करहु तो उदास भाव प्रामनाय,

साथ ल घसहु जैसे लोकताज बहन ।

१ दिहारी-रत्नाकर, भाषा ५६

२ दिहारी रत्नाकर मोदा ४६१

३ निबि बन्धन हरि विण कर दूर  
यही पण तो हर मनोरथ पूर ।

—बिद्यापति की पद्मवती दिवस दूर ८३

४ क११५ क अफर दमन अदि रत्न पागु सुषा मिटाई ।

क११६ क गुन के परमि कठिन अनि लहो कइन परमावन ।

—दूरगावत निवेद शब्द, जा प्र० सभा काशी, दूर संख्या २४२७३-७४

‘बेसोराइ की सौं तुम मुनहु दबीले सात  
 घले ही बनत जो प माहीं राजि रहन ।  
 तसिय सिलाबो सोख तुमहो सुजान पिय  
 तुमहि चसत मोहि कसो कछु कहन ।’

एक गोपिका प्रेम के कारण कृष्ण को देखने के लिए यदा-कदा जरा-सी दृष्टि  
 ‘पसारती है तो लोग उनकी ओर ‘उगलियाँ’ पसारने लग जाते हैं । प्रज के लोग की  
 यह हरकत उसे पसन्द नहीं ।

‘स्यों टुक डीयि पसारत हो, अगुरीन पसारन सोग सों ।’

सिय-दासियों की एहियाँ इतनी सुन्दर हैं कि उनकी मलिनता के डर से दृष्टि  
 पात करने में भी सकोच होता है । उनकी सुभ साधु माधुरी को देखकर बचल बित्त  
 भी स्थिर हो जाता है—

दवानि को छई न जाति, सुभ साधु माधुरी  
 बितोकि भूलि भूलि जात बित्त बाल बाधुरी ।<sup>१</sup>

राजमहल की गलमुई की भी मुकुमार व्यजना देखिए—

कुसुम भुलावन की गलमुई  
 बरनि न जाय न नवन छई ।<sup>२</sup>

सकोच के कारण दबी हुई कुलीन स्त्रियों की कमर से ऐसा जात होता है कि  
 उनकी कमर लचक रही है । बेगमदासजी ने इसकी सुन्दर अभिव्यञ्जना की है—

कचन के भार, कुच भारन, सकुच भार  
 लचकि लचकि जात कटितट बास के ।<sup>३</sup>

‘रामचन्द्रजी सुन्दर पलंग पर सेटते हैं । परन्तु सेटते ही उन्हें ध्यान आ जाता है  
 कि—

जिनके न रूप देख, ते पौढ़ियो मर देख ।  
 निति नासियो तेहि बार, बहु बनि बोलत द्वार ॥<sup>४</sup>

‘रामचन्द्रिका’ में समस्त वर्णन समत धीर भक्ति की मर्यादा के भीतर ही है ।  
 देखिए—

कटक छटकत फटि फटि जात ।  
 उठि उठि बसन जान बस बात ।

- १ कविप्रिया राम प्रभाव छन्द २
- २ रमिप्रिया मोनदशा प्रभाव छन्द ३
- ३ रामचन्द्रिका शकलसुखा प्रकाश छन्द ३४
- ४ रामचन्द्रिका तैमरी प्रकाश छन्द १४
- ५ कविप्रिया पठ प्रभाव छन्द ३६
- ६ रामचन्द्रिका तैमरी प्रकाश छन्द १६

तऊ न तिनके सम सखि परे ।

मनि गन ग्रंग ग्रंग प्रति घरे ॥<sup>१</sup>

कही-कही इनका वणन अलीसता की सीमा तक भी पहुँच गया है। अगल मन्दोदरी के केश पकड़कर चित्रगाला के बाहर ले आए हैं। उस समय उसके कचुकीरहित उरोजो का वणन देखिए—

बिना कंचुकी स्वच्छ यशोज राज,

किधौ सांचहूँ थोफले सोम साजें ।

किधौ स्वन के कुम्भ सावन्य पूरे ।

बसोजन के घूर्न सम्पून पूरे ॥<sup>२</sup>

यहा पर भी शिष्टता का उत्सथन भक्ति के आवेग में शत्रु की स्त्री की दुर्गति दिखाने के लिए किया गया है। मर्यादापूण सयोग भृगार का एक चित्र देखिए—

जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना बहुगुनसीना सुख सीता ।

पिय जियहि रिभाव दुखनि भजावे विवध बजाव गुन गीता ।

तजि मति संसारो बिपिन बिहारो सुखदुखकारी धरि आव ।

सब-सब जगभूषण रिपुकुल-भूषण सबको भूषण पहिराव ।<sup>३</sup>

### विप्रलम्भ-भृगार

जिस प्रकार दिन रात एव सुख दुःख का चक्र चलता रहता है उसी प्रकार समाग के उपरांत वियोग एव सासारिक नियम है। सयोग में नाना प्रकार की केलि एव विहारादि के द्वारा मधुर रस का आस्वादन होता है तो वियोग में दगन धाति के अभाव में हृदय तीव्र बेचना में सतप्त रहता है। वास्तव में प्रेम की सच्ची कमीनी वियोग ही है—  
'न बिना विप्रलम्भेन मयोग पुष्टिमनुने तथा मकनवर मूरत्नसजी न भी ऊपौ विरही प्रम कर निखर इसीका प्रतिपादन किया है। यद्यपि स्नेह प्रवागाधयान् के अनुसार कुछ लोगो ने वियोग में प्रेम का हान ही बतसाया है परन्तु महाकवि कालिदास ने तो अपने प्रेम-काव्य में स्पष्ट ही कहा है—

स्नेहानाहु किमपि विरह ध्वंसितस्तेष्वयोगात्

दृष्टे वस्तुषु पश्चितरस प्रम रागी भवति ।<sup>४</sup>

अर्थात् प्रेम को वियोगावस्था में ध्वंसीत कहा गया है परन्तु वास्तव में इष्ट के अयोग के कारण उगके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भाव ने वह रासि के रूप में सजिा होता रहता है।

१ रामचंद्र का इक्ष्वाकु प्रकाश छन्द मध्या ४

२ रामचंद्र का उर्मिमा प्रकाश छन्द ३१

३ रामचंद्र का पद्माश प्रकाश छन्द २७

४ पञ्चम परिचय के दुर्गति में सुमानि ३।

५ मयदूत स्तोत्र १११

रातिकालान् कविषा के जाषन म गमीरता का प्रभाव था। अतः उनकी शृंगारिक दृष्टि प्रेम की एकनिष्ठता पर न होकर विनाश एवं रसिकता पर ही विशेष रूप से रही। परम्परामुक्त ज्ञान एवं अतिशयोक्ति के द्वारा ही विरह चित्रण करते रहे। विरह के उद्दीपक चन्दनादि पीतल पत्राय मलिनता परिमल वर्पाश्रुतु गुलाबजल तथा चन्दनाभाति का बचन बहुत दिनों से कवि साधन करते चल आए हैं। कदाव म भी इन परम्परा मुक्त बचनों का प्रभाव नहीं। देखिए, सीता के वियोग में चन्द्रमा की शीतल किरणें राम के हृदय को दग्ध कर रही हैं—

हिमोत्पल सुर सों लग सो बात बख्ख सो बहै  
हिना लग कृपानु ग्यों बिलेख घंग को बहै।  
बिलेख काल रात्रि को कराल राति मानिए  
वियोग सोय कोन काल लोकरहार जानिए।<sup>१</sup>

इस प्रकार के बचन बेगव में ही नहीं अनेक महाकविषों में पाए जाते हैं। महाकवि कालिदास ने विमुञ्जति हिमगर्भैरिन्दुराणि मयूख तथा गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'पावकमय सखि' कहकर वियोग विषमता का प्रकट किया है। भाग्य चमकर विहारि ने भी इसी परम्परामुक्त प्रणाली का अनुसरण किया—

हो हो बीरी विरह बस क बीरी सब गाँठ।  
कहा जानिए कहत हे सखिहि सीतकर नाउँ ॥<sup>२</sup>

कव्यशास्त्रानुसार विप्रलम्भ दुःखार के अन्तर्गत प्रवृत्त मान वर्णन प्रवास विरह लिंगाण, पत्रदूती, वारहमाना आदि समाका चित्रण किया है।

पूरवराग

किसीके गुण-श्रवण प्रपन्नता सी-य-गान में हृदय में जा प्रेम की इच्छा उत्पन्न होती है उसे पूवराग कहते हैं—

कसब कसहु ईठनि दीठि छु दीठि परे रति ईठ कन्हौई।  
ता दिन तैं मन मेरे को जानि भई तु भई कहि क्योंहु न जाई।  
होइगो हाँसो जो पाव कहूँ कहि जानि हिताहित कृपन छाई।  
कसैं मिलो रो मिले बिनु क्यों रहौं नननि हेते हिमे डर माई।<sup>३</sup>

यहाँ रति स्वाभाविक है राधा आश्रय है, तथा कृष्ण आलम्बन। राधिका की चट्टाएँ अनुभाव हैं। 'बेमं' मिलीं रो मिले बिनु क्यों रहौं कहकर राधा ने अपने प्रेम का 'राज' सभी के समक्ष प्रकट कर दिया है।

मान

प्रमियों के परस्पर करने को 'मान' कहते हैं। इस प्रेम की राह में प्रेम में प्रमि

१ रामचन्द्रिका चारुचर्य प्रकाश छन्द ४

२ विहारी-रत्नाकर दोहा २२५

३ रामचन्द्रिका आठवें प्रभाव छन्द ५

बूढ़ि ही होती है—

भूठहूँ न कठिप री ईठ सों दूत कहाअब ।  
नक पीठ देत ईठ कोन के भए भली ।  
काहि के तो नदसाल मोसों घालि सासि कर ।  
काहि हो न घाई खारि जो प छु हुती भली ॥  
घाजु हो जु बीच परी बीच परब को माई,  
घान रग घान भाँति ज्यों कनेर की कली,  
तेरे हो कहे की कोठ साहि है जु श्रमिय री ।  
बेसिये जु घाँसि ताकी साहि की कहा भली ॥<sup>१</sup>

सली नायिका को समझाना चाहती है कि तुम्हारे वही दृष्ट हैं। तुम बनावटी क्रोध क्यों कर रही हो! नायिका नायक की बेइस्वी का हवाला देती है।

कदण

जहाँ किसी घाघिरविष तथा घय विशेष कारण से संयोग की प्राप्ति समाप्त प्राय हो जाती है वहाँ कदण विप्रलम्भ होता है। विरहाकुल कृष्ण प्रथम मिसन का स्मरण करते हुए दिन प्रतिदिन वृत्ता को प्राप्त होते चले जा रहे हैं—

जसों मिल्यो प्रथम धवन मग जाइ मन  
रचन भवन कीने अतिक अलक में ।  
मनु मिले मिले मन बेसोदास सवितास ।  
छवि प्राप्त भूलि रहे कपोत फलक में ॥  
नम मिले मिल्यो ज्ञान सकल सपान सजि ।  
तजि अभिमान भूल्यो तन की भस्म में ।  
तसे अल बल साधि राधिक मिसन कहें  
चाहत कियो पयान प्राणहूँ पलक में ॥<sup>१</sup>

उपर्युक्त पद्य में रति स्थायीभाव भगवान् श्रीकृष्ण आश्रय नायिका घालम्बन नायिका के मग प्रत्यय की शोभा उद्दीपन प्राणों का पयान करना आदि अनुभाव तथा शीत्कुसुम एवं चिन्ता आदि संचारी हैं।

प्रवास

प्रियतम के किसी कारण विशेष से विरह बल जाने पर हृदय में जो गंतापमयी वृत्ति जागरित होती है उसे प्रवास कहते हैं। राधा कृष्ण के बिना इनकी व्याकुल हो रही है कि सत्वास लाभ के अभाव में उन्हें मर जाना ही अवश्य सगता है क्योंकि श्रीकृष्ण का वियोग है।

१ रसिकप्रिया प्रभाव अ-४ ११  
२ रसिकप्रिया प्रभाव, अ-४ ५

पठ परिच्छेद

कौन के न प्रीति को न प्रीतिमहि बिभुरत  
या हो क अनोखी पवित्रत माहिपनु है ।  
केसोदास जनन किछे हो भते धाम हाय ।  
भोर कहा पवित्रन के पाये धावपनु है ।  
उठि बसि जोनमान काहु की बलाह जान,  
मानते नु पहिबान ताके धावपनु है ।  
पाके लो है धाम ही विभौ कि मरि जाऊ ऐसे  
धामि सागे बेरी आई मेहु पावपनु है ॥<sup>१</sup>

विरह-दग्गाए

केसव के विरह-बगन में विरह की समा दग्गाए पाई जाती है ।

अमिलाप

जो कहूँ ■■■ लग दिस-साय दिसावन हो दिन हो दुख पहाँ ।  
या हो मैं केसव देखिष छातन देखिहीं देखि सखीं माधिबहीं ।  
यों उनकी बनि देखिहीं देह यों धापनी देह न देखन पहाँ ।  
देखिनी की बहरावति मोहि नु होन कहा कछु देखि हो लहीं ।<sup>२</sup>

चिन्ता

बहु भोर परी भोर भोर धन बसोदास  
होइ जीति कौन कीको हार जिय लविष ।  
देखत मुहँ गुणल निहि काल उहि बान  
हर सतरज की लो बाखी राखी रवि क ।<sup>३</sup>

गुण-कथन

लज्जन ह मनरंजन केसव रजन मन किछी भति जो की ।  
मोठी मुमा कि मुषावर की दूति बोलनि की किछीं बादिम हो की ।  
धन भलो मुखचन्द किछी लखि मूरति काम कि काम्ह को मोची ।  
फोमल पकज क पद पंकज आन पिणारे कि मूरति पो की ।<sup>४</sup>

स्मृति

एते हो केसव कसे जिय आहो धान न लाहु लो पाग्यो न पीन ।  
आनि हे कोऊ कहा करि हो सब सोच न एतो सकोष तो बीज ।<sup>५</sup>

१. रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ६

२. रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द १२

३. रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द १७

४. रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द २२

५. रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द २७



## उद्देश

‘केसव काहि बिलोकि भजी यह धानु बिलोक विनासु मर जू ।  
वासर बोल बिते विष मोड़िय राति जुहाई की जोति जर जू ।’

## प्रस्ताव

मालिनि माँझ मिसी हुती खेलति, जान को काहू धौं घाए कहां त ।  
ढोठहिं डोठ परयो न कछु सठ डोठ गहो हठि पीठि की घातें ।’

## उत्पाद

केसव चौकति सी बितव छतिपा परक तरक तकि छाहीं ।  
बिभ्य और कहै मुख और सु और की और भई पल माँही ।’

## व्याधि

ह्यां उनके तन ताप तें तापिकें, ह्यां इनके उपचार जुझ्य ।  
ह्यां उनके उजि अये उसासनि ह्यां इनके समुधानि घाह्ये ।  
‘केसव’ य नदसासन य घषभान सली य निदान न पये ।  
एकहिं बेर बहोनि कहा अयो माई री तू खलि देखन जये ।’

## अवता

सखियानि मिली सखियानि मिली पतिपां बतियानि मिली तजि मोन ।  
ध्यान विधान मिली मनहीं मन क्यों मिल राँक मनौं मन सोन ।  
‘केसव’ कसहुं बेगि चली ननु छंहै वहै हरि ओ कछ हीन ।  
पूरन प्रेम-समाधि सगे मिलि गह सुन्हें मिलिही तन बीन ।’

## मरण

मरण-दया के वणन के लिए असमर्थता प्रकट करते हुए केसव उसके विषय में कहते हैं—

बन न क्यों हूँ मिसन जहँ छल बस ‘केसोदास’ ।  
पूरन प्रेम प्रताप तें मरन होत अनयास ॥  
मरन सु केसवदास य बरग्यो जाहि न मित्र ।  
अजर अमर जस कहि कहीं बसे प्रेम चरित्र ॥’

## वीररस

शृंगार के उपरान्त केसव का प्रिय एवं प्रधान रस वीररस कहा जा सकता है ।

- १ रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ३३
- २ रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ३७
- ३ रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ४१
- ४ रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ४७
- ५ रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ५१
- ६ रसिकप्रिया अष्टम प्रभाव छन्द ५४

ऐश्वर्य प्रताप एवं वीरता के वणन में केवल को अत्यन्त मफलता मिली है। दरबार की विमासिना के साथ-साथ केवल को युद्ध की विभीषिका एवं भीषणता का भी अनुभव था। रामचन्द्रिका में युद्ध के दो स्थल दृष्टिगत होते हैं। प्रथम तो राम रावण-युद्ध तथा द्वितीय राम की सेना और लव-कुश का युद्ध। कहने की आवश्यकता नहीं कि केवल इन दोनों स्थलों के वणन में सफल हुए हैं। अब हम प्रथम स्थल को लेते हैं।

रावण की ओर से भी अथर्व युद्ध का वणन किया गया है। जिस समय सर का पुत्र मकराक्ष घाना हुआ दिखाई देता है तो विभीषण राम को सबैत करते हुए पुकारते हैं—

कोदह हाथ रघुनाथ संभारि लीज

भाय सब समर जूयष दष्टि दीज ।

बेटा बलिष्ठ लर को मकराक्ष घायो

सहारकाल जनु काल कराम घायो ॥<sup>१</sup>

प्रथम पंक्ति से मकराक्ष की भयानकता भीषणता एवं विकरालता स्पष्ट व्यजित है। दूसरी पंक्ति के द्वारा विभीषण कहना चाहते हैं कि सेना में भयदौह भव गई है और आपन जरा भी विलम्ब किया और हार हुई। किन्ता सुन्दर व्यंग्य बिना उपस्थित किया है। वह प्रारम्भ में रावण को विजय का विश्वास दिलाता है और कहता है कि मेरे सामने तुम्हारे दोनों पुत्र क्रुमवण एवं मेघनाथ कुछ नहीं। एक मर्दव सीता रहता है तो दूसरा कामर है—

कहा क्रुमकर्ण कहा इवजीत

कर सोइबो व कर जुद्ध भीतें ।<sup>२</sup>

इतना ही नहीं वह राम लक्ष्मण तथा सुग्रीव को भारकर अयोध्या की राजधानी भी बनाना चाहता है—

हतौ राम त्यो वधु सुग्रीव भारीं ।

अजोष्माहि त राजधानी सुमारीं ॥<sup>३</sup>

इसी प्रकार दूसरे स्थल पर विभीषण को युद्ध के लिए घाटा हुआ देखकर वीर बानर लव लक्ष्मणवराता है—

भाउ विभीषन तूं रन हूयन ।

एक तूंही कुल को निज भूयन ।

जूम जुर जो भगे भय जो के ।

सन्नुहि घामि मिले तुम भोके ।

१ रामचन्द्रिका उन्नीसवा प्रकाश छन्द ६

२ रामचन्द्रिका उन्नीसवा प्रकाश छन्द ६

३ रामचन्द्रिका उन्नीसवा प्रकाश छन्द ७

देववधू जबहो हरि स्थायो ।  
 क्यों तबहो तजि ताहि न भायो ॥  
 यो अपने जिय के डर भायो ।  
 क्षर सब कुल छिद्र बतायो ॥<sup>१</sup>

अर्थात् हे कायर विभीषण ! भा तू ही तो अपने कुल का भूषण है । व्यर्थ से—वतचित्त करनेवाला है भादि ।

इस पद्या में स्थायीभाव उत्साह आश्रय सब आत्मबल विभीषण अनुभाव व्यक्तिक्रिया सब की गजना तथा मचारीभाव धृति एक गव भादि हैं जिनके द्वारा वीररत्न का मज्जीव चित्रण अवित्त किया गया है ।

इसी प्रसंग में वीर प्रवर सब विभीषण को और भी अधिक लज्जित करत हुए वीरोचित्त बाणी से कहते हैं कि तूने जिसे अनेक बार माना कहकर पुकारा होगा उसीमे विवाह कर क्या तू बध्य नहीं है । धिस्वार है जा तू अब भी जीता है । भरे दुष्ट ! जाकर बिय क्यों नहीं पी लेता ।

को जान क बार तू कहो न हवई माइ ।  
 सोई त पानो करी मुनि पापिन ॥ राइ ॥  
 तिमरे जग माँझ हसावत ह ।  
 रघवसिंह पाष सगावत ह ॥  
 पिब तोकहु तू अजहू जु बिय ।  
 खल जाइ हसाहल क्यों न पिय ॥<sup>२</sup>

उक्त छन्द में स्थायीभाव उत्साह आश्रय सब आत्मबल विभीषण अनुभाव धिक्कारना भाति उक्तिर्मा तथा घरीर के अगा का कटवना भाति धृति तथा गर्व भाति सचारीभावों के द्वारा वीररत्न की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।

अंगद का भी मुठस्थन में वीर बालक सब एगे ही याणा से स्वागन करता है—

अगद जो मुम प बस होती । सो वह सूरज को सुत को ली ।  
 देखत ही जननी जु तिहारी । बा संग सोवति क्यों कर नारी ॥<sup>३</sup>

दात्रुप पर व्यर्थ करता है—

कोन दात्रु सुहृदो । जु नाम शत्रुहा लियो ।<sup>४</sup>

उमन दात्रुमा पर याणवर्षा ही नहीं की धवित्रु बटुनिका म उनके हृत्पां को भी अविरत निमा ।

चन्द्ररत्नाया एवं गोस्वामी तुलसीदासजी की भाति वीररत्न में अोज सान के

१ रामचरित् का मैत्रमर्षा प्रकारा छन्द १६ १७

२ रामचरित् का मैत्रमर्षा प्रकारा छन्द १६ २

३ रामचरित् का अष्टमर्षा प्रकारा छन्द ६

४ रामचरित् का मैत्रमर्षा प्रकारा छन्द १८

लिए प्राकृत रूपों एवं सववट्टु गुणों का प्रयोग केवलसावनी ने 'रतनबावनी' में किया है। भाग चलकर सुपान न भी इसी प्रथा का अनुसरण किया। 'रतनबावनी' की ये पंक्तियाँ देखिए—

सोडि सोडि तन फेर सोडि तन इबक न दिहिय ।  
किरहु किरहु किर किरहु कह्य दस सकस उमगिय ॥  
ठान ठान निजसान मुरकि पाहान जु पाए ।  
बाड़ बाड़ तरवार तरस ता बिन तडि भाए ॥  
इक इक भसि भस्तिष धवन रतनसेन रमधीर कह ।  
जनु प्यास बास होरो हरवि संडल घोर घहीर कह ॥<sup>१</sup>

इस छन्द में वाररस का अत्यन्त धोखपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

'वीरसिंहचरित' में भी वाररस की अभिव्यक्ति बचनवाले छन्द पद्यान्त भाषा में उपलब्ध हैं। यथा कुमार भूषानराय का धवन सत्रधाम को उत्तजित करते हुए यह कहना कि—

भति करहि जनि भौति बग रमभौति हमारो ।  
वतघारो बस भयल ताहि सब करी न कारो ॥  
राजनि के कुलराज कहा किरि किरि भवतरियो ।  
सब तक जब कब करन कहत सबही किनि मरियो ॥  
सुर सुरज मंडल भविष्यो बिना गए ते हरिसरन ।  
सब सूरनि मंडल भविष्यो रामदेव देखें सरन ॥<sup>२</sup>

प्रस्तुत छन्द में स्थायीभाव उत्साह आशय कुमार भूषानराय भामन्दन धनु दल अनुभाव कुमार की वारोचित उक्तियाँ धन प्रत्यय का फटकना तथा चेष्टाएँ तथा सचारीभाव धनि एवं सब भाँति हैं जिनके साथ वीररस को सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

महामाह का सेना-बान के प्रसंग में विज्ञानयोदा म भी वीररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

जले मल मानय न गावती सों  
जले बाजि कुह नु चित्तावती सों  
जले स्थम्भनस्थाप घोषा प्रघोने ।  
जले पुत्र पदा धनुर्वाण सोने ॥<sup>३</sup>

उक्त पद्यांश में स्थायीभाव उत्साह आशय सनिह रूप धनु-सेना घातम्भन धनु भाव प्रस्थान के समय की उनका चेष्टाएँ तथा सचारीभाव धूनि ह्य एवं सब भाँति हैं

१ रतनबावनी छन्द ३१

२ वीरसिंहचरित छन्द ३० पृ ८

३ विज्ञानयोदा छन्द २ पृ ११

जिनसे वीररस का सफल चित्रांकन किया गया है। अतः स्पष्ट है कि बेगवदासजी को सस्त्र युद्ध एवं बाणयुद्ध दोनों के ही चित्रण में पूर्ण सफलता मिली है।

### रौद्ररस

वैसे तो वीरसिंहदेवचरित रत्नबावनी तथा विज्ञानगीता आदि में रौद्ररस की व्यञ्जना हुई है, परन्तु 'रामचन्द्रिका' में विशेष रूप से इस रस की सफल व्यञ्जना मिलती है। धनुर्मग के उपरांत परशुरामजी आकर विद्वामित्रजी पर अपमानजनक शर्तों में दोषा रोपण करते हैं तो मर्यादापुरुषोत्तम राम गुरु अपमान को असह्य समझन हुए सात्त्विक क्रोध में तिलमिला उठते हैं—

भगन भयो हर धनुष साल तुमको अब साल ।

बधा होइ विधि-सष्टि ईस आसम त जाल ॥

सकल लोक संघर सेव सिरत पर डारे ।

सप्त सिधु मिलि जाहि होइ सब ही तम भारे ॥

अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव' बुझि जाइ वर ।

भृगुनन्द संभाव कुठार म जियो सरासनजुगत सब ॥<sup>१</sup>

प्रस्तुत छन्द क्रोधाग्र राम की उक्ति है जिसमें स्थायीभाव शोध आश्रय स्थापित मारी राम आलम्बन परशुराम उद्दीपन परशुराम का कुठार धारण आदि दात पीमना आत्मा का लाल होना धनुर्भाव रामचन्द्र की बेव्याह आदि उक्तिमा तथा अमय गव आदि सचारीमावा के द्वारा रौद्ररस की सुन्दर अभिव्यक्ति कराई गई है। आगे चलकर जब रावण जानकी में अपनी पत्नी हो जाने का प्रस्ताव करता है उस समय सीताजी ने जो सात्त्विक शोभावेग की अभिव्यक्ति की है उसमें रौद्ररस का सुन्दर परिचाय हुआ है—

अति तनु धनु रेस नर नाकी न जाकी ।

सस सर-सरपारा क्यों सहे तिल ताकी ।

बिड़कन घन घूरे भलि क्यों बाज भीष ।

सिव सिर सतिथी की राहु बसे सु दीष ।

उठि उठि ह्याते भागु तौ सौं अभाते ।

मम बचन विसर्षी सँव जो सौं न लागे ।

बिजल सकलु डेलीं आसु ही मास तेरो ।

जिपत मृतक तोकी रोष भार न डेरो ॥<sup>२</sup>

### भयानकरस

धनुर्मग के उपरांत परशुरामजी के आने पर भय का कारण सस्त्र सप्तधमी मच जाती है। मस्त हाथियों का मद उतर जाना है। अब वे एक-दूसरे को दगावर गरजने

१ रामचन्द्रिका, सप्तम प्रकाश छन्द ४

२ रामचन्द्रिका, तेरहवां प्रकाश छन्द ६० १३

नहीं हैं। ठीर-ठीर पर सुंदर नगाड नहीं बजने। पीडिया के गुरघोर लोग मस्त-मस्त फेंक-फेंककर अपने अपने जीव ले-ले भागते हैं और कोई-कोई तो खवचादि काट-काटकर स्त्री का वेश धारण कर लेते हैं। मयानवरस की कितनी सुंदर व्यंजना हुई है।

भस बन्ति भमस हू गए देखि देखि न भाजहीं।  
ठीर ठीर सुदेस केसव बुझी नहि भाजहीं।  
हारि हारि हय्यार सूरज भोवत स भाजहीं।  
काटिके सनयान एकनि नारि भेषन साजहीं ॥<sup>१</sup>

## बीभत्सरस

केगव के पद्यों में प्रमगवण यत्र-तत्र बीभत्सरस की अभिव्यक्ति हुई है। बीभत्स एव हास्य में प्रायः आश्रय पाठक ही होता है। जुगुप्सा-व्यंजक सामग्री की योजना द्वारा विभाव पक्ष का विधान करने-मान से ही बीभत्स की सृष्टि हो जाती है। निम्न पद में परम्परागत युद्ध-वर्णन के प्रसंग में बीभत्स की अभिव्यंजना हुई है—

अतिरुहो राजत रजयती।  
भूमि परें तहँ हय गज बसती ॥  
सगदनि सगद सत गज कुम्भ।  
भोनिह भर नभकत भुत्तुष्ट ॥  
×       ×       ×  
यन घाहनि घाहत घेर घर।  
जोगनि जोरि जय सिर घर।  
अधत मुख पौधति जगमगी।  
कण्ठभोन पिय मारन लगी ॥<sup>१</sup>

यहां योगिनिया आदि आत्मवन उनकी रक्तपानादि चेष्टाएँ उद्दीपन हैं। रोष सामग्री आशयगम्य है। घृणा स्थाया है।

## कहरसरस

केगव ने कहरसरस के चित्र में जाया की साक्षेतिकता की अपेक्षा गभीरता की अभिव्यंजना के लिए व्यंजना-शक्ति का आश्रय लिया है। विन्नामित्र राम-लक्ष्मण की लेकर चले जाने हैं तो युद्ध-विता गहरय की तीव्र हार्मिक वेदना होती है परन्तु वह संपूर्ण गभीर बनना मोन गारा व्यंजित की गई है—

राम धनत नृप के जुग सोचन  
हारि भरित भे हारिद रोचन।

१ रामचन्द्रिका सातर्क प्रकाश छन्द २

२ वैदिक-वर्णन भारत जीवन प्रेम पृष्ठ सख्या ३३ ३

पावन धरि श्रद्धा के सजि मोनहि  
बेसब उठि गए भीतर मोनहि ॥<sup>१</sup>

शोक से उनके नेत्र अश्रुप्लावित हो गए हैं। अतः बेशब ने उनकी राजमदन भेजना ही व्यर्थकर समझा। राजसभा में राजा का रोना उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं था। समयतः मोन में जाकर राजा दशरथ फूट-फूटकर रोए हों।

इसी प्रकार कीशल्या आदि माताएं राम के इस प्रश्न को सुनकर कि पिताजी तो सङ्गुप्त हैं न, एकसाथ रुदन करने लगती हैं—

तब पुष्टियो रघुराइ ।  
सुख है पिता तन माइ ।  
तब पुत्र को मुख जोइ ।  
कमल उठौ सब रोइ ॥<sup>२</sup>

प्रस्तुत छन्द में स्थायीभाव शोक आश्रय कीशल्या आदि रानियां आलम्बन मृत पति, उद्दीपन राम-दशन अनुभाव रोना संचारीभाव दशरथ-गुण-स्मृति विषाद आदि के द्वारा बह्मरस की किछनी सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

जिस समय दुष्ट रावण माला जानकी का अपहरण करके उन्हें बलात् अपनी नगरी को ले जाने लगता है तो सहाय जानकी वदन ज्वलन करती हुई कहती है—

हा राम ! हा रमण ! हा रघुनाथ धीर !  
लकायिनाथ बस जानहु मोहि धीर ।  
हा पुत्र ! लक्ष्मण छड़ावहु बेगि मोहि ।  
भारतंड बंस बस की सब साज लोहि ॥<sup>३</sup>

उक्त छन्द में स्थायी शोक आश्रय सीता आलम्बन प्रिय वियोग अनुभाव रोना सिसकियां भरना बह्मरस संचारीभाव विषाद है जिसके द्वारा कवि श्वर बेशबदासजी ने बह्मरस का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

एक अन्य स्थल पर भी सन्मग्न-मूर्छा के गाय राम का वदन ज्वलन प्रस्तुत करते हुए कवि बैलवदास ने निम्न चित्र प्रकट किया है—

बारक लक्ष्मण मोहि बिसोकी ।  
मोहहूँ प्राण खले तजि, रोकी ।  
हौं मुमरौ पुन बेतक तेरे ।  
तोबर पुत्र सहायक मेर ।  
लोचन बाहु तुहो धनु मेरी ।  
तू बस विक्रम बारक हैरी ।

१ रामचरित् १, द्वितीय प्रकाश छन्द १७

२ रामचरित् १, दशम प्रकाश छन्द ३०

३ रामचरित् १, बारवर्ष प्रकाश छन्द २३

सो बिन हों पन प्रान न राखी ।

सख कहों कछु भूठ न भाखी ॥<sup>१</sup>

इस पद्यांगम स्थायीभाव गोक भाग्य राम भालम्बन लक्ष्मण का मूर्छित गरीर उद्दीपन मूर्छित अनुज का दगन अनुभाव सिसकियां रोना मधारीभाव विषाद एवं लक्ष्मण के गणों का स्मरण है जिनके द्वारा कछनरस का सजीव चित्र भक्ति किया गया है ।

सीता का जब राम की नेत्रों हुई मयूरी मिननी है तो मधूरी के प्रति सीता का उपासक देखिए—

धीपर में बन मध्य हों तू सग करी धनोति ।

कहि मुदरी धब तिपन की को करिहै पटतोति ॥<sup>२</sup>

गोक का कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति है । इसी प्रथम में सीता वियोग-ज्वलित राम की कृपा भी दानीय है—

तुम पूछति कहि मुद्रिके मोन होति यहि नाम

कवन की पक्षी बई तुम बिन या कह राम ॥<sup>३</sup>

**हात्परस**

रावण का यम ध्वम करने के लिए भेजे गए बाबर चित्रांगला में मन्दोदरी को धूँत हैं । चित्रांगला में चित्र का मुन्दरिया को देखकर भगद रावण की रानियां समझत हैं उन्हें पकड़ने के लिए दौड़त हैं परन्तु राम जाकर उन्हें अपना भान्ति का पान होता है । इन बातों को देखकर देव-कन्याएं हम जानी है—

नहीं देखिक सकि लकेतवाला । दुरी दौरि मबोदरी चित्रसाता ।

तहां बीरिणी बालि को पूत पूछ्यो । सब चित्र की पुत्रिका देखि भूख्यो ।

गहै दौरि जाकों तज ता दिसा की । तज जा दिसा की मजबान साकी ।

नसो क निहारी सब चित्रसारी । लहै सुन्दरी क्यों बरी को बिहारी ।

तज दष्टि के चित्र की मष्टि धया । हमी एक साकी तहीं देवकन्या ॥<sup>४</sup>

महां सब का भाग्य है घोर भान्ति भानम्बन । यग का चित्र की पुनली का रानी समझकर पकड़ना उद्दीपन है ।

हात्परस का एक भान्ति उदाहरण में कपट-नपथारी श्रीरूप के गन मिलने पर एक गोपिका का भान्ति मगिया द्वारा परिहृत कराया गया है—

झाई है एक महावन तें निय गावनि मानो विरह पनु घारी ।

सन्दरता अनु काम की कानिनि बोलि कह्यो वगमान दुसारी ।

१ रामचन्द्र का मन्दोदरी प्रकाश छन्द ४४ १५

२ रामचन्द्र का उदाहरण प्रकाश छन्द २२

३ रामचन्द्र का उदाहरण प्रकाश छन्द २३

४ रामचन्द्र का उदाहरण प्रकाश छन्द ६, २० २८



शोषिक स्याद् गुणसहिष्णुः प्रकुलाद् मिली उठि आवर भारी ।

केसव भेटत हो भरि भव हसी सब कोक दे गोपकुमारी ॥<sup>१</sup>

इस छन्द में सखिया प्राथम्य प्राप्तम्बन राधा, उद्दीपन स्त्री-वेषधारी श्रीकृष्ण का मिलन अनुभाव कीव देना आदि मंचारी रूप और अपलता है जिसके द्वारा हास्यरस की सुन्दर अभिव्यक्ति कराई गई है। निम्न छंदा में कृष्ण को उपहासास्पद किया गया है यहाँ तक कि वे खिसिया जाते हैं—

सखि यात समो इक मोहन की निवसी मटकी सिर री हसक ।

पुनि बांधि लई सुनिष्ट मतनाह कहू कहू मुन्द करी छसक ।

निकसी उहि मल हुते जहो मोहन सीनी उत्तारि जव चलक ।

पतुकी रहो स्याम लिसाई रटे उत ग्वारि हँसी मुख अचल व ॥<sup>२</sup>

### अद्भुतरस

कहने की आवश्यकता नहीं कि केदारदासजी ने अद्भुत का वर्णन 'सूततम माना' में किया है। उपलब्ध छन्दों में से हम निम्नलिखित को उद्धृत करते हैं—

कसोदास यास वस दीपति तरनि तेरो,

बानी साधु भरनत बुधि परमान की ।

कोमल अमल उर उरज कठोर जाति

अबला प बलवीर बचन विधान की ।

चंचल चितोनि चित्त अचल सभाव साधु

सकल असाधु भाव काम की बधान की ।

बचति किरति बधि लेत तिहँ मोल लेत

अद्भुत रसमरी बटी वृषभानु की ॥<sup>३</sup>

प्रस्तुत पद में नायिका के अद्भुत सौन्दर्य का चित्रण है। पयवसित रूप में यह अद्भुत शृंगार का भग्न हो जाता है।

### शास्तरस

जबि केशव ने शान्तरस की भी बड़ी गुंजर व्यजना कराई है। यथा—बृंदावस्था का वर्णन—

कँवर बानि डग उर डीठि खचाडति कुछ सकुच मति बली ।

नव नवग्रीव पके गति केशव बासक सँ सगहीं सँग लेली ।

लिपू सब आधिन व्याधिन सग जरा जब आध ज्वरा की सहेली ।

‘मग सख देह-दण्ड’ अथ सख रह बुदि बोरि दुरास अहेली ॥<sup>४</sup>

१ रमिकप्रिया श्रीहर्षा प्रभाव पृष्ठ १९

२ रमिकप्रिया श्रीहर्षा प्रभाव पृष्ठ १७

३ रमिकप्रिया श्रीहर्षा प्रभाव पृष्ठ १४

४ रामचन्द्रिका श्रीहर्षा प्रभाव पृष्ठ १७

अपान बाणी कोपन मारती है दृष्टि डगमगाने लगती है त्वचा अत्यन्त टोली रहकर सिंकुड जाती है बड़ाबम्बा में जाव क जाव कवल एक दुरागा-मात्र धियो हुई रह जाती है।

उक्त छन्द में स्वाभाविक निर्वैयर्थ्य आनन्दन खड़ाबम्बा प्राथम्य व्यक्ति उदोपन गरीरांगों की विचलता तथा परमाथ चिन्तन मचाखभाव उद्वेग आदि के द्वारा कवि प्रवर सगवन्धन न गान्धर्व की स्थानाविक अभिव्यक्ति कराई है। अमार की अक्षरता का एक चित्र और दमिए—

हाथो न साथो न धोरे न घेरे न पाउ न ठाउँ कुठाउ बिलह ।  
सात न भात न युत्र न मित्र न विल न तोष कहुँ लग रहै ।  
केसर काम के राम बिसारत और निकामरे काम न ऐह ।  
बलि रे बेनि भजो बिन अन्तर अन्तर सोर अकेलेही जह ॥१॥

निरूपण

उपयुक्त विवरण में निरूपण निम्नलिखित है कि आचार्य वेणव का रसों पर पूरा अधि-कार था। उनका कृतियों में रसों का पूरा परिष्कार पाया जाता है। हिन्दी के कुछ गद्य-भाष्य कविता का भाति उन्होंने किसी रस-विशेष को लेकर कविता नहीं की अपितु अपना रचनाप्रा-में सभी रसों का समावेश किया है। अर्थात् मवाधिक अवसर शृंगार को मिला है। रस व्यञ्जना में उन्होंने स्वाभाविक सञ्चार एक आक्षेप चित्र प्रकट किए हैं। शृंगाररस के रसराजत्व का सिद्धांत हुए अन्य रसों का शृंगार में सुन्दर रूप में अन्तर्भाव किया है। उदा-हरणों में जो सरलता एवं हृदयहारिता है वह कवि के हृदय की पूरा परिचायिका है। ऐसे कवि को कुछ उद्धरणों के आधार पर हृदयहारी कहना उस कवि के साथ अभास्य करना है।

### वेणव की अलंकार-योजना

वेणव के काव्य में अलंकारों का विषय स्पष्ट है। यद्यपि 'रसिकप्रिया' में मित्रा-न्तु उन्होंने काव्य में रस का स्थान सर्वोपरि स्वीकृत किया है किन्तु रसात्मा में अन्तु प्राप्ति कविता-वर्णिता को विशेष रूप में प्रभावशालिनी बनाने के लिए, विराजित करने के लिए अलंकारों का आश्रय भी उन्हें प्रमत्त है। रस एवं अलंकार का ऐसा मिल जुले दृष्टिकोण का निष्पन्न वेणव का माहिल्य है। हम यह मान कई स्थानों पर प्रतिपा-दित कर चुके हैं कि वेणव सम्पूर्ण साहित्य-परम्परा का कभी में हिन्दी के कवि हैं। यह परम्परा वेणव में कई आलोचकों द्वारा प्रशंसित है। वेणव का कविता में तो काव्य ही का अमल्य बनाए अलंकारों के नामान्वय सत्त्व में अन्तर्भाव आनन्दन मुगलशानीन दरबारों में पहुँचकर अपने का अलंकार की अलंकारिताद्विधता में अलंकार करने लग गई था। वेणव के काव्य का अलंकार भी दरबार ही था। कृतियाँ और काव्य (Court) के काव्य में बाह्य मञ्चा की दृष्टि में अन्तर हीना स्वाभाविक है। इन्हीं सब कारणों की दृष्टि में

की रचना बेगव ने की है। अतः इसकी अलंकार-पद्धति का कुछ अधिक विवेचन आवश्यक है।

इस पद में प्रधान अलंकार है 'संदेह' जो अंतिम पंक्ति कालिका कि बरपा हरपि हिय आई है द्वारा व्यक्त हुआ है। अतः समस्त पद में दलेप को प्रधान मानकर प्रत्येक शब्द के दोहरे अर्थ खोजना भूल होगी। जब लोग इसमें दलेप को प्रधान मानकर प्रत्येक शब्द के दोहरे अर्थ खोजने लगे तो उन्हें द्रविडप्राणायाम करना पड़ता है। फिर वे लोग बेगव में अस्पष्टता, दुर्बलता आदि के दोषारोपण करते हैं। प्रथम पंक्ति में मुरबाप में मोहो का आरोप पयोपर (मेघा) में पयोपर (उरोजो) का द्विप आरोप तथा उद्धित रनाई में भूषणों की ज्वालि का आरोप है। अतः सीधे तीन रूपक हैं एक रूपक में दलेप भगभूत है। द्वितीय पंक्ति में वर्षा में छिपे हुए चन्द्रमा और अतिन कमलों के विषय में हेतुप्रकाश की गई है कि कालिका के मुख एवं नेत्रों के सौंदर्य के प्रभाव से ऐसा हुआ है। प्रतीप इस हेतुप्रकाश का अंग है। वर्षा में चन्द्रमा का छिपना सत्य है कमलों का मलिन होना कवि प्रौढोक्ति सिद्ध। स्वतः मध्यवी एवं कवि प्रौढोक्ति सिद्ध दोनों प्रकार के अर्थों की हेतु-कल्पना की गई है। प्रवच करनेवाला गमन हर तथा मुकुत मुहसब सबद गुणगई की 'प्रवचकरेणुवागमनहरा तथा 'मुकुतमुहसब' के समासमय रूप में यदि पाठक गमन कर सकता है तो उसे कोई कठिनाई नहीं। इसके लिए उसे निस्सन्देह संस्कृत भाषा तथा संस्कृत-साहित्य का ज्ञान चाहिए। अंतर वलित भी वलिताम्बरा के अपने संस्कृत रूप में ठीक समझ पड़ सकता है। तीनों पदों में दलेप अलंकार है। प्रत्येक पद के दोहरे अर्थ हैं। एक वर्षा-पद में दूसरा कालिका-पद में। नीलवर्ण दास भी दलेपयुक्त है। इस प्रकार प्रथम तीन पंक्तियों में रूपक निम्नलिखित प्रतीप गुप्त हेतुप्रकाश तथा अन्य अलंकार हैं किन्तु ये सब अलंकार स्वतन्त्र नहीं अपितु अल्प पंक्तिगत गच्छे के अंग हैं। अलंकार विवेचन की इस पद्धति को ठीक-ठीक न समझनेवाले आलोचक समस्त पद में दलेप मान कर व्यय पचते हैं। बेगव के काव्य का गमन के लिए उतरी यह दलेप शली जानना अत्यन्त आवश्यक है।

वचनारम्भ स्थान में प्रायः बेगव ने इसी अलंकार विधायिनी शली से काम लिया है। इस प्रकार के काव्य का स्थान मध्यम कोटि का है। रसप्रधान काव्य उत्तम कोटि में तथा कोरा दासप्रधान काव्य अधम कोटि में आता है। बेगव का अधिभाग काव्य मध्यम कोटि में ही समा जाता है। हम अलंकार-अवधि उनका एक स्थान और प्रस्तुत करते हैं जो 'रामचरित' का चन्द्रिकावनी वचन में उद्धृत है—

पौडव की प्रतिमा सम लेली।

अनुर भोम महामति देली।

है समया सम बीपति पुरी।

तिन्दूर की तिलभाबति हरी।

राजति है यह ज्यों कुलवत्या ।

याद बिराजति है संग यथा ॥<sup>१</sup>

उपयुक्त पंक्तियों में दण्डकवनी उपमेय के लिए तीन उपमान गण्डव प्रतिभा मुमग नारी तथा कुलवती का सामने किए गए हैं । उपमान और उपमेय के बीच रूप गुण क्रिया में के किसीको आधार न बनाकर केवल छन्द-साम्य को आधार बनाया गया है । अजुन भीम सिंदूर तिमक तथा चाय दण्डों के क्लिष्ट प्रयोग से तीन उपमाएँ कवि ने रखी हैं । जहाँ तक प्रभाव-साम्य की बात है तीनों उपमान महत्त्व एवं सौन्दर्य की भावना मन में जताने हैं । दण्डकवनी के सुन्दरपक्ष की यत्किंचित भावना मन में लाने में ये उपमान सहायक ही कहे जाएंगे । किन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य गन्द कमलार द्वारा प्रभाव उत्पादन ही है । इस स्थल में प्रधान अलंकार है उपमा । नैष उसका अंग है । यह काव्य भी साहित्यशास्त्र के वर्गीकरण के अनुसार मध्यम कोटि का ही है । प्रायः वर्णनारमक स्थलों में वैभव के काव्य का यही मूल्योक्त है तथा अलंकार-योजना का यही स्वरूप है ।

अनेक स्थलों पर वेदव की अलंकार-योजना प्रस्तुत भावभोगिनी एवं मूढम निरीक्षणपूर्ण भी है । भाषात्मक स्थलों में केव के अलंकार भाव प्रवणता का परिचय देते हैं । विद्योगिनी सीता का यह चित्र अपनी अप्रस्तुत योजना में ही अधिक मर्मस्पर्शी है—

परे एक बेंनी निमी मल सारी । मुताली धनो पंक त काड़ि डारो ॥

सरा राम नाम ररै रोन बानी । वह ओर ह राकसी दूतदानी ॥

प्रसी बुद्धि सी चित्तावतानि मानी । बिधी जीभ अंताबली में बलानी ॥

बिधो धरि क राहु नारीन लीनो । कला चर की चाव पीपूव भीनी ॥<sup>२</sup>

एकवेणीधरा मलिन साधो-धारिणी कुम्हलाई सीता के लिए पंक त निकालकर फेंकी हुई मृणालिनी की उपमा अत्यन्त मर्मस्पर्शिता है । रामसियों से प्रस्त सीतादेवी चिन्ताप्रस्त बुद्धि के रूप में दन्तावति के बीच कभी जिह्वा के रूप में तथा राहु-नारिणों में पिरी चन्द्रकला के रूप में उत्प्रेक्षित की गई है । सदेह इन मर्मस्पर्शक उत्प्रेक्षाओं की बड़ी जोड़ने का काम कर रहा है । सभी अप्रस्तुत अत्यन्त भाव-सापेक्ष है ।

लका-गमन करते हुए हनुमान के चित्र की अप्रस्तुत योजना में भी मूढम निरीक्षण तथा विभिन्न अनु रूप प्रभावा की समग्रत योजना हुई है ।<sup>३</sup> जब पावाग में कोई वस्तु अधिक तीव्र गति से उड़ती है तो गतितीव्रता के कारण एक रेखा-सी बनती चनी जाती है । हनुमान भी तब गिला के ऊपर एक सीक-सी द्योबते चल जा रहे थे । तीव्र गति के कारण वे हरिवाहन गरुड़-से तथा स्वर्णिम वन के कारण छद्मा के हेमहस-से प्रतीत हो रहे थे । रूप गुण क्रिया के निविद्यसाम्य की सुन्दर योजना केव ने एक ही पंक्ति में

१ रामचन्द्रिका पञ्चरात्र प्रकाश अ० २१

२ रामचन्द्रिका तैरहवा प्रकाश अ० ५२ ५४

३ रामचन्द्रिका तैरहवा प्रकाश अ० ३८

प्रस्तुत की है।

परम्परायुक्त उपमानों का तो मुक्त प्रयोग केशव ने किया ही है। नवीन उपमानों के ऊपर भी उनकी दृष्टि जाती रही है। प्रस्तुत पद में आसमान में छूटी हवाई घोर बरमान के गोने की बल्पना बघी-बघाई नीक-भाव पर चलनेवाने नवियों में नहीं आ सकती।

परम्परायुक्त अप्रस्तुतों को लेकर कवि लोग प्रस्तुतों से सबदा साम्य ही स्थापित नहीं करते उनमें वैषम्य दिखाकर प्रतीप व्यतिरेक अनन्वय आदि अनेक असवारों की सृष्टि भी करते हैं। इस प्रकार के वणनों में चमत्कार-सौंदर्य तो होता ही है भाव के साथ लगाव भी होता है। इनमें कवि प्रसिद्धि एवं कवि प्रोत्प्रेक्षित दोनों के सम्मिश्रण से झनूठा चमत्कार आ जाता है। सीता की सखियों द्वारा उनके मुख पर केशव की यह कवि प्रोत्प्रेक्षित दशनीय है—

एक कह कमल कमल मुख सीताभू को  
एक कहें चन्द सम आनन्द को चन्द री।  
होइ जो कमल तो रजनि में न सकुच री  
चंद जो तो वासर न होइ बति मंद री।  
वासर हो कमल रजनि ही में चंद, मुख,  
वासर हू रजनि हू बिराजें जग बन्द री।  
रेले मुख भाव अनदेखई कमल चंद  
तात मुख मुख सखी कमल न चंद री॥<sup>१</sup>

अन्तिम पंक्ति में वर्णित 'मुख मुख में अनन्वय असवार है। इस अनन्वय की सिद्धि के लिए कवि मुख के प्रचलित उपमानों में से दो प्रतिनिधि उपमान कमल और चन्द्र चुन लेता है। समस्त पद्य में वाक्याध्यमूलन काव्यलिंग द्वारा कवि कमल और चन्द्र की साम्यविधान-साम्य का तिरस्कार करता हुआ अन्त में यही सिद्ध करना चाहता है कि मुख का सौन्दर्यातिशय अनुपमेय है 'ताते मुख मुख रति कमल न चन्द री। इस प्रकार काव्यलिंग अनन्वय का भग है। ऊपर की पंक्तियों में तीन असवार हैं—हेतु प्रतीप व्यतिरेक। यदि मुख कमल होता तो रात्रि में सकुचित न हो जाता। यदि चन्द्र तुल्य होता तो दिन में वह भदद्युति नहीं होता। यह उक्ति कमल तथा चन्द्र की साम्य शक्तिहीनता का हेतु है। वासर ही कमल रजनि ही में चन्द्र शोभित होते हैं। किन्तु मुख तो वासर हू रजनि हू बिराजें जग बन्द री यह व्यतिरेक हुआ। फिर कवि प्रतीप वाली अपनाता है। कमल और चन्द्र का सौन्दर्य तो अप्रत्यक्ष है वे अन्तर्गते ही आते हैं। मुख तो साक्षात् दृश्यमान हावर सौन्दर्यानुभूति करा रहा है। अतः चन्द्र और कमल का सौन्दर्य मुख-सौंदर्य में हीम है। परिस्थिति एवं कवि की भावना का ध्यान न रखकर अथवा

जान-बूझकर गुस्नजी ने इस पद की इस पंक्ति को उठाने पर बेगव पर हृदयहीनता का आरोप किया है वह सचचा असमीचीन है।

यमन घोर अनुप्रास की छटा निम्ननिम्नित पद्य में द्रष्टव्य है। कठोर दृवर्गीय ध्वनि में भी कोमल व्यञ्जना की अभिव्यक्ति में व्यापान नहीं हुआ।

सब जाति फटी दुख की दुपटो कपटी न रहै जहाँ एक घटी।

निघटो छवि भीखू घटो हू घटी जग जीव जतीनि की छुटि तटी।

अप्य द्योय की बेरी कटी विकटी निक्की प्रकटी मुख जान गटी।

बहुं क्षीरनि नासति भुक्ति नटी गुण धूरजटी वन पचघटी।

इस पद में सार्वत्रिक नहा अपत्रेप है और उसके दोनों वच स्पष्ट हैं। प्रभाव साम्य की दृष्टि से भी कवि सफल है। दुख-दुपटो जग-तटी पच-बड़ी जान-गटी तथा भुक्ति-नटी के रूपक भी बड़ा ही भावपूर्ण हैं किन्तु यमक और अनुप्रास के भार से छन्द शनैः दब गया है विविधेतिन अप-सोन्य पर दृष्टि देर में ही जाती है।

केशव का अलंकार प्रयोग का एक बड़ा भारी विरोधना यह है कि वे एक-एक पद में कई-कई अलंकार बड़ी ही सफलता से गूँथ सकते हैं। अनेक स्थल उनकी रचनाओं में ऐसे भरे पड़े हैं कि जहाँ एकाधिक अलंकारों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। हम यहाँ केवल दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

विधि के समान हू विमानोद्भूत राजहूत  
विधि विधुपगत मेव तो अचतु है।  
दीपति विपति अति सातो दीप दीपित  
दूतरे विलीप तो सुरसिना को बलु है।  
सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति  
धनवानप्रिय किषी सूरज अमलु है।  
सब विधि समरथ राज राजा इतरथ  
अपीरपपयगामी गंगा कसो अलु है।<sup>१</sup>

इस छन्द में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक सन्दर्भ उल्लेख इत्येव तथा कई प्रकार के अनुप्रासों का बड़ा ही सफल एवं ससूट प्रयोग हुआ है।

भीह मुरघाप चारु प्रमुक्ति पयोपर।

भूषन जराइ जोति तखित रसाई है।<sup>२</sup>

पूर्वोद्धत इस पद्य में भी एकाधिक अलंकारों का सफर है यह हम दिखाने के हैं।

केशव की अलंकार-यात्रना का यह सामान्य विवेचन हो चुका है। यहाँ हम उनका

१ रामचन्द्रिका दूधण प्रकाश पृष्ठ १

२ कविप्रिया साक्षा प्रकाश पृष्ठ ३

कुछ प्रमुख भस्कारो को लेकर उनकी योजना-पद्धति को समझने की चेष्टा करेंगे।  
केशव के बहुप्रयुक्त अलंकार हैं—उत्प्रेक्षा उपमा, रूपक, सन्देह श्लेष परिसंख्या विरो  
धाभास एव अतिशयोक्ति। इनमें श्लेष के ऊपर हम पर्याप्त विस्तार से पीछे विचार कर  
चुके हैं अतः उसे छोड़ सकते हैं। शेष सात अलंकारों की क्रमशः लेते हैं।

### उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा में कवि-कल्पना की विविध तरंगों को खुलकर खेलेने का अवसर प्राप्त  
होता है। केशव की उत्प्रेक्षाओं में भी कल्पना की ऊंची उड़ानें भरी पड़ी हैं। केशव की  
उत्प्रेक्षाओं के विषय में प्रो. पंडित जगन्नाथ तिवारीजी ने ठीक ही कहा है कि 'केशव  
एक-एक दृश्य लेकर उत्प्रेक्षा और सन्देह को लड़ी-सी बांध देते हैं।' यहाँ कुछ उत्प्रेक्षाओं  
के दृश्य प्रस्तुत हैं। रावण के हाथ पड़ी हुई सीता का यह चित्र कितना कल्पना प्रवण है—

धूमपुर के निवेत मानो धूमकेतु की,  
तिष्ठा के धूमजोनि मध्य रेखा मुषाधाम की।  
चित्र की सी पुत्रिका के कुरे बगलुरे माहि,  
संबर छाड़ा लई कामिनी के काम की।  
पालक की भद्रा के मंडेसबस एकावसी  
सीनी के स्वपन्नराज साक्षा सुदृ साम की।  
केशव भवदृष्टसाय जीवजोति जसी तैसी,  
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥<sup>१</sup>

मल्ल शिख' में नायिका की दन्तावली का चित्र भी अनुरज्य है।<sup>२</sup>

परम्पराभुक्त उपमानों के साथ-साथ पौराणिक गाथाओं का भी पूरा उपयोग  
किया गया है। रामचंद्रिका में सीता की दासियों के स्वरूप-वर्णन में उनका भास पर  
लगी भृकुटियों के मध्य तिसक रेखा पर श्रींका करती हुई यमुना और मूय की ओर बढ़े  
हुए उनके हाथ की कल्पना की गई है—

भृकुटी कटित बहु भाय न भरी।  
भास सात बुति बीमत खरी।  
मृग मद तिसक रेख जु बनी।  
तिनकी सोभा सोभति धनी।  
जनु जमुना सेसति सुभगाय।  
परसन वितति पसारे हाथ ॥<sup>३</sup>

विजयगीता में वाराणसी-वर्णन में उत्प्रेक्षित अग्रस्तुंग वाराणसी के महत्त्व को

१ ५० जगन्नाथ तिवारी संक्षिप्त रामचंद्रिका की भूमिका पृ. ३१

२ रामचंद्रिका वारहस्य प्रकारा धृ. २०

३ मरिचिका—ल-वर्णन धृ. १३

४ रामचंद्रिका, वारहस्य प्रकारा धृ. १० ११

भीर भी चोगुना कर देता है ।<sup>१</sup>

अनेक स्थलों पर उल्लेखित अग्रस्तुत बड़े सूक्ष्म निरीक्षण के साथ भी मजोए गए हैं। 'वीरसिंहदेवचरित' में अबुलफज्र की मृत्यु पर अक्बर की भावना में भक्तमनाते हुए अभ्युत्थनों का यह चित्र बड़ा स्वाभाविक है—

चंचल सोघन जल भलमल ।

पवन पाइ अनु सरसिज हल ॥<sup>२</sup>

अपोग्या में फहराती हुई धरण प्लवङ्गों पर यह उत्पला कल्पना का मधुर सूक्ष्म एवं गोचर प्रत्यक्षीकरण कराती है—

बहु वायु बल बारिद बहोरहि उरभि दामिनि-वृत्ति मनी ।<sup>३</sup>

कवि की कल्पना है कि जो दामिनि-वृत्तियुक्त मेधावतिषा आया करती है वे तो प्रचंड वायु के बग होकर बहु गह उड़ गइ बिलु उनकी धरण दामिनि पतिया उच्च आवाजों के गिलहरा में उलझकर रह गई हैं। वस्तुतः केगव के समस्त प्रयोगों में भाई उत्पलाए उनकी सतरंगी प्रीति एवं उच्च कल्पनाओं का ठीक उसी भाँति प्रमाण है जिन प्रकार स्तेप उनकी चमत्कार प्रवणता का।

उपमा

साम्यमूलक चमत्कारों में उपमा का एक विनिष्ट स्थान है। केगव का साहित्य उपमाओं से भरा पड़ा है जिनमें चमत्कारवाने अनेक स्थानों हैं ही अनेक स्थल भावुकता तथा सूक्ष्म निरीक्षण का भी पता देते हैं। उपमा मुख्य गुण क्रिया तथा नेपथ्य दोनों समीचीन औपम्य का आधार बनाया गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

अर्पणस्तेप के आधार पर भाई हुई उपमाओं द्वारा विरहिणी नायिका का यह चित्र अत्यन्त निखरा हुआ है—

भौरिनी ज्यों अमल रहति बनबीधिकानि हसिनी ज्यों महुल मृनातिका बहति है ।

हरिनी ज्यों हेरति न केसरी के काननहि केका सुनि व्यासि ज्यों बिलान ही कहति है ।

पिउपिउ रटति रहति चित्त आतकी ज्यों चंद चित्त चरई ज्यों चूप हूँ रहति है ।

सुनहु नृपति राम किरह तिहारे ऐसी, मूरतिन सोता भु की मूरति गहति है ॥<sup>४</sup>

विरहिणी राधा की आँखों की भाषानुकूल उत्पला से समवित है ।<sup>५</sup>

कहीं-कहीं केगव की दृष्टि पूर्ण व्यापार पर भी गई है और उसकी बड़ी ही भाषा मुख्य योजना की गई है। अबुलफज्र की मृत्यु पर अक्बर की घामू भरती भाषा के लिए रहस्योद्घाटी का चित्र बड़ा ही मोहक है—

१ विशातगीता अष्टांगसंघात अध्याय ३

२ वीरसिंहदेवचरित नाम प्रसंग, पृ. ३६

३ रामचरितका प्रथम प्रकाश अध्याय ३६

४ रामचरितका चौदहवाँ प्रकाश अध्याय ३६

५ रसिकप्रिया, एकान्तप्रधान अध्याय १७



भरि भरि रीति रीति रीति रीति भरे पुनि ।

रह्य घरो सो भाँख साहि भकवर की ॥<sup>१</sup>

प्राकृतिक वस्तु-वर्णनो में प्रयुक्त उपमान-योजना में प्रायः केशव का ध्यान विष्णु ग्रहण की धार न रहकर चमत्कारपूर्ण वर्णन भी धोर रहा है। अतः केशव में दत्तप्रभूतक उपमाओं की पाण्डित्यपूर्ण योजना मिलती है। दण्डकवनी का यह अत्यन्त प्रसिद्ध वर्णन ही ले लीजिए—

गोमत दण्डक की बचि बनी । भोलिन भोलिन सुन्दर घनी ॥

सेव सेव को जनु ससे । थीकल मूरि भाव जह बसे ॥

बेर भयानक सी घति सय । भक समूह जहाँ जगमग ॥

ननन को बहु रूपनि प्रसे । खीहरि की जनु मूरति ससे ॥<sup>२</sup>

इन पंक्तियाँ यदि अन्तिम पंक्ति के जनु का आग्रह मानकर उत्प्रेक्षा बहें तो ऊपर दो उपमाएँ आती हैं जिनमें औपम्य का आधार है थीकल और भकसमूह शब्दों का प्रयोग। यहाँ 'गव' ही साधारण धर्म है। इसके प्रतिरिक्त सेव बेर, नन वृक्षावाची शब्दों का प्रयोग मुन्ना अलवार के रूप में हुआ है। पूर्वार्धालिया में जो नाम इतने समझने हैं उन्हें खीचलान करनी पड़गी ही। यहाँ श्लेष प्रधान अलवार है ही नहीं प्रधान धमकार है उपमा। केशव की अलवार-पद्धति का ठीक ज्ञान न होना से यह गड़बड़ी पड़ती है।

सारारा यह कि केशव की उपमाओं में अनेक उदाहरण भावुकता एवं सूक्ष्म निरीक्षणपूर्ण भी हैं और अनेक चमत्कारपूर्ण भी। चमत्कारी स्थला में प्रायः अगभूत श्लेष के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। ऐसे स्थानों में भी दुर्बलता नहीं। दुर्बलता केवल उन लोगों के सामने आती है जो अभी और अगभूत अलवार का विवेक नहीं कर सकते। रूपक

रूपक भी केशव का प्रिय अलवार है। रूपक में निरग गाग परम्परित, कित्यक तथा अरित्य सभीका सफल प्रयोग मिलता है। 'रामचरित' का के निम्न वर्णन में सत्य में चिता का कोप में मुकदारत सप का काम में गागर की सह्रिया का तथा जीवन में खोर का धाराय लगा ही है—

जारति चित्त चिता-बुचिताई । बीह त्वका अहि-कोप बघाई ।

काम समुद्र भजोरिन भूखो । जोवन खोर महाप्रभु भूखो ।<sup>३</sup>

इसी प्रसंग में काम में विगाय का रूपक भी दृशनीय है।<sup>४</sup>

कभी-कभी इस नवर जगत् में गुणभावना भी हा उठती है। तिसु बंग ११ का कुछ सांगारिक गुण की समझ पाता है समय की बूढ़ा उसके जीवन-गट के तनुपों को

१. केरमिदेवचरित ना म म प ४

२. रामचरि का प्रकाश प्रकाश घर ११२

३. रामचरिका औरमरी प्रकाश घर ५

४. रामचरिका, औरमरी प्रकाश घर ६

भट से काट देता है—

जो केहूँ सुख भावना कहूँ को जग होति ।

काल घाघु पटतनु ज्यों तबहीं काटत जोति ॥<sup>१</sup>

‘विज्ञानगीता’ में भी ज्ञान एवं भ्रमज्ञान की अभ्यपक्षीय सामग्रियाँ पर बाधे हुए अनेक रूपक बड़े ही सफ़्त हैं तथा प्रभाव-भास्य को ध्यान में रखकर बाधे गए हैं। भारो पित प्रतीको के रूप में तो ‘विज्ञानगीता’ की रचना ही हुई है। अनेक निरग तथा सांग भारोपों से यह रचना भरी पड़ी है। ससार में पेट की समस्या बड़ी भयंकर है। इसके चक्कर में नौन बचा है। ऊपर पर सागर का यह रूपक दक्षिण—

तुवा बड़ी बड़वानसी लुघा तिनिगित लुह ।

ऐसे को निकस जु परि उदर उबार समुह ॥<sup>२</sup>

साग रूपको में प्रायः कम गण क्रिया का साम्य नहीं देखा जाता।

केवल के अनेक रूपक चमत्कारवाले नम्य को भी लेकर चने हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

बहुधौ गगन तरु पाद दिनकर धानर सरनमुख ।

कोन्हों भुक्ति भूहरा सकल तारका कुसुम बिन ॥<sup>३</sup>

सवेह

अपनी कल्पना के चित्रों की विविधता के लिए केवल ने सन्देहालकार का प्रचुर प्रयोग किया है। सवेह के सहारे वे उत्पलाघों की लड़ी जोड़ते बसे जाते हैं। वस्तुतः ऐसे स्थलों में स्वयं सवेह में सौख्य अवस्था चमत्कार नहीं होता अपितु उन उत्पेक्षार्थी की अवस्था प्रायः प्रलकारों की योजना में होता है। इस शैली को स्पष्ट करने के लिए केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

अदन गात अतिप्रात पधिनी प्रानताधमय,

मागहुँ कसवदास कोकनद कोव प्रेममय ।

परिपूरन सिबूर पूर केथी भगसघट,

किथी सचको छत्र मकुपो भानिक मयूख पट ।

क भोनित कसित कपाल यह किस कापासिक काल की ।

यह ससिख साल केथी सतत दिग्भामिनि के भाल की ॥<sup>४</sup>

उपयुक्त छंद में केवल ने सूय के गुंजर एवं भयंकर दोनों परदा को लेकर सवेह के सहारे कई उत्पलाघ प्रस्तुत की हैं।

१ रामचंद्रिका श्रीनीमवां प्रकाश छन्द २३

२ विज्ञानगीता तृतीय प्रपाद छन्द ५६

३ रामचंद्रिका पांचवीं प्रकाश छन्द १३

४ रामचंद्रिका, पांचवीं प्रकाश छन्द १०

## परिसरूपा

बाण की ही भांति केशव को भी नगरों, धर्मों आदि के वर्णनों में द्रिष्टि भ्रंशित परिसरूपा बड़ी प्रिय हैं। जिसे थोड़ा भी सस्कृत-साहित्य का परिचय है केशव की परिसरूपाओं की सराहना किए बिना नहीं रह सकेगा।

भूलन हो की जहाँ अथोगति केसव' गाइय।

होम हुतासन घूम नगर एक भलिनाइय।

दुगति दुगम हो जु कुटिल गति सरितन हो में।

भोफल को अभिलाष प्रगट कबि कुल के ओ में ॥<sup>१</sup>

रामराज्य में भ्रम ही भ्रमित है शोक ही शोक है दुःख ही दुःखी है ताप ही तप है और दारिद्र्य ही दारिद्र्य है। प्रजा इन सबटो से मुक्त है।<sup>२</sup>

जहांगीर-जस-बंदिबा में भी जहांगीर की दासन-व्यवस्था का वर्णन परिसरूपा द्वारा किया गया है।<sup>३</sup>

परिसरूपाओं के प्रयोग में कवि सस्कृत-साहित्य से विशेषकर बाण की 'कादम्बरी' से, प्रभावित हुआ है। उसने 'निलज्ज' भ्रंशित उभयविध परिसरूपा का प्रयोग किया है। किन्तु अधिकता के साथ नहीं। इस चलवार के प्रयोग में केशव को अच्छी सफलता मिली है।

## विरोधाभास

परिसरूपा के समान ही इस चलवार का प्रयोग भी बहुत अधिक नहीं है। किन्तु जितना भी है 'प्रायः' भावोपयोगी चमत्कार विधायक है। केशव अनेक स्थलों में विरोध की रचना श्लेष की छाया में भी करते हैं।

जनक की जिज्ञासा दान्त बरते हुए विन्वामित्रजी राम-सदमण का परिचय देते हुए कहते हैं—

दानिन के सोल पर दान के प्रहारी दिन

दानवारि अ्यों निदान बेलिजे सुभाष के।

धीप, धीप हू के अवनीपन क अवनीप

पुष सम 'बेसोबास दास द्विज गाय के।

मानद के बंद सर पातक से बासक पे

परदारप्रिय साधु मन बध काय के।

बेह धमपारी प बिदेहराजजू ते राम,

राजत कुमार ऐसे बसरप राय के ॥<sup>४</sup>

१ रामचंद्रिका प्रथम प्रकाश, अ० ४८

२ रामचंद्रिका सत्यार्थिका प्रकाश अ० ५

३ जहांगीर-जस-बंदिबा अ० संख्या ३३ पृ. म. १५

४ रामचंद्रिका पंचमी प्रकाश अ० ३१

इसी प्रकार रामस्तुति-वर्णन में भी कवि ने विरोधभास का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है।<sup>१</sup> गोशरी के वर्णन में भी एक सुन्दर विरोधभास मिलता है—

विषमय यह गोशरी अमृतन के फल देति  
केवळ औषध हाट को, दुल अणैय हरि सेत।<sup>२</sup>

‘जहाँगीर-जस चंद्रिका’ में भी विरोधभास के कुछ सफल प्रयोग मिलते हैं।<sup>३</sup>

## अतिशयोक्ति

किसी राजा के बन्ध के बन्दों में किसी नायिका के सौन्दर्य अथवा विरह के चिह्नों में युद्ध आदि के वर्णन में कविदा को अतिशयोक्तिया बड़ी प्रिय होती है। अतिशयोक्तिया द्वारा कवि व्यक्तवस्तु का गहरा प्रभाव डालना चाहता है। केवळ ने राज बन्ध सौन्दर्य विरह युद्ध आदि के वर्णन में अतिशयोक्तिया का प्रयोग किया है। वर्णन प्रसंग एवं व्यक्तवस्तु के अभीष्ट प्रभाव को ध्यान में रखकर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि केवळ को इनके प्रयोग में भी सफलता मिली है। नीचे अतिशयोक्ति के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

रामचरित्र का कुम्भकण युद्ध का प्रसंग है—

सभारणी घरी एक दू में भर क।  
किरयो रामही सामुह सो गरा से।  
हनुमन्तहू पूछि सो लाइ सोनो।  
न जायी कब निघु में डारि सी हो।<sup>४</sup>

मूढ़ा के उपरान्त जैन धाने पर कुम्भकण अपनी गदा लेकर राम की ओर झपटा किन्तु हनुमान ने उसकी गंगा का अपनी पूछ में लपट ऐसी गीझता से समुद्र में फेंक दिया कि स्वयं कुम्भकण भी न जान सका।

रामराज्य के प्रसंग में हूमा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी बड़ा प्रकृतभाव साधन है।<sup>५</sup>

रमितप्रिया की कामाभिचारिका का यह वर्णन भी इच्छा है—

उरभन उरग चपन चरननि कम  
देवत विविध निमिचर दिस चारि क।  
गमति न लागत मुखतधार सुनत न  
भ्रिंसीगन घोष निरपोष जलधारि के।

१ रामचरित्र का अष्टादश प्रकाश, पृष्ठ २

२ रामचरित्र का अष्टादश प्रकाश, पृष्ठ २६

३ जहाँगीर जस-चंद्रिका, पृष्ठ २१ पृष्ठ १३

हस्तिनापुत्र राजा के अष्टादश प्रकाश का ना २ सप्त

४ रामचरित्र का अष्टादश प्रकाश, पृष्ठ २६

५ रामचरित्र का अष्टादश प्रकाश, पृष्ठ २

जानति म भूषण गिरत, पट फाटत म ।  
 बटक अटक उर उरज उजारि के ।  
 प्रतिमि की पूछ भारि कौन पत सोख्यो यह ।  
 जोग बसो साध अभिसाध अभिसारिके ।<sup>१</sup>

राजवमन-वर्णन म अतिशयोक्ति प्रयाग की दृष्टि से जहाँगीर जस चन्द्रिका के अनेक स्थल द्रष्टव्य हैं। जहाँगीर व ममासद धीर के दान का वर्णन इसी अतिशयोक्ति द्वारा हुआ है।<sup>२</sup>

नायिका के सौन्दर्य का यह अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी कम कमलारोपणक नहीं—

अलि है क्यों चन्द्रमुखी कुचनि के भार भए ।  
 कचन के भार तें सचकि संक जाति है ।<sup>३</sup>

अश्वमेध-वर्णन म निम्न अतिशयोक्ति द्वारा रस-मताकाशों की उच्चता की ध्वजना की गई है—

सूर तुरगन के उरभ पग सुग पताकन की पट साजनि ।<sup>४</sup>

इनके अनिरिक्त विभावना अपह्लाति स्वभावोक्ति प्रतीप समाहित राहोक्ति उदात्त सत्वर तथा सृष्टि धानि भी केगव के प्रिय अलंकार हैं।

वस्तुतः केगव प्रयुक्त किसी भी अलंकार की सूची बहुत दूर तक बढ़ाई जा सकती है। यहाँ हमारा उद्देश्य उनके प्रत्येक अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत करना-मात्र नहीं। हमने केवल कुछ अलंकार। और उनके उदाहरणों को लेकर उनकी अलंकार-योजना का मूल्यांकन किया है। रसभाव प्रधान स्थलों म उनका अलंकारों का आग्रह नहीं रहता। वर्णन प्रधान स्थलों म अलंकार-व्यवहार ही प्रभावोत्पादन का प्रमुख साधन बनाया गया है जिसम केगव को पर्याप्त सफ़ाई मिली है। सब मिलाकर केगव के अलंकार। म उनके पाण्डित्य अध्ययन कीजिए एवं समस्वार की गहरी छाप है, जो एक सुनीषवान व पाठक के हृदय का समलारूप अनुरजन करती चली आ रही है।

## केगव का प्रकृति चित्रण

मनुष्य का जन्म और उसका विकास प्रकृति के मध्य प्रकृति व ही सम्पर्क और सहचार म हुआ है। वह आन्विकान म मनुष्य के क्रिया-व्यसाय की जीहास्यनी रही है। प्रकृति की ही गुरुत्व नाड म मनुष्य नेत्र स्थायता है और मृगयार्थन्त उसीकी सीमाभूमि पर अपने जीवन व नाता मन लेता करता है। इस प्रकार मनुष्य और प्रकृति का घनिष्ठ

१ रसिकप्रिया, सातवा प्रभाव छन्द १२

२ जहाँगीर प्रेमचरिता छन्द म ८७ हरनमिपिन साहित्य मण्डलकव ता म छ काशे

३ रसिकप्रिया म ११वाँ प्रभाव छन्द १

४ रसिकप्रिया, ५१वाँ प्रभाव छन्द ८

सबसे है। प्रकृति का अनन्त वभव मनुष्य के लिए आश्चर्य की नूतन थड़ा अनुसंधानादि विभिन्न भावनाओं का विषय रहा है और साहित्य में भी इनो कारण प्रकृति का प्रमुख स्थान है। साहित्य में प्रकृति के भव्य और मुरम्ब दृश्यों का नाना प्रकार से प्रयोग किया गया है। मस्कृत-साहित्यवाच्यों ने ता प्रकृति को केवल उद्घोषन विभाव के अन्तर्गत जोरित भावों को उद्घोष करनवाले रूप में ही माना है। और नियम निर्धारित कर दिए हैं कि इसी रूप में प्रकृति के कुछ विभिन्न अंग जल वन उपवन जलपाय वान श्रुतु आदि का महाभाव्यों में वर्णन हो किन्तु प्राचीन संस्कृत-साहित्य में प्रकृति के उद्घोषनरूप के अतिरिक्त आनन्दनरूप में यथानयन विषय और अलंकरणरूप में प्रकृति का प्रचुर प्रयोग भी मिलता है। मनुष्य के जाय-जनायों तथा भावनाओं की पुष्पभूमि-रूप में भी प्रकृति का पर्याप्त चित्रण साहित्य में हुआ है। साथ ही प्रकृति के मानवानुरूप की भी प्रवृत्ति कवियों की रहा है। इससे अतिरिक्त विभिन्न कवियों ने अपनी अलग अलग भावनाओं के आधार पर अपनी ही प्रकृति में ईश्वर के अनिवाद्य नियम का चरित्राव्य होते पाया बना उससे आनन्दन-रूपों का उद्घोष ग्रहण किया। कहा उसमें कृपा और असहिष्णुता पाई ता कभी उस महानुभूति और महामयता से परिपूर्ण पाया है। वाचक कामिनास और भवभूति आदि प्रकृति प्रमी कवियों ने प्रकृति की सुषमा में मग्न होकर प्रकृति के सुन्दर आदि यथावत् चित्र प्रस्तुत किए हैं। किन्तु वाच के साहित्य में प्रकृति के गुड स्वरूप के सहज और स्वाभाविक तथा अनिष्ट चित्र उल्लेख नहीं होते हैं। कारण यही प्रतीत होता है कि भारतीय दर्शन में प्रकृति का स्वतंत्र सत्ता नहीं माना गई उसकी सत्ता ब्रह्म के साथ ही है। प्रकृति को महापुरुषों की अनुषरो के रूप में माना गया है। इन 'रसात्मक वाक्य काव्य' वाचों काव्य-परिभाषा में भी स्वतंत्र रूप से प्रकृति-चित्रण के लिए कोई स्थान नहीं दिया गया। हिन्दी में आचार्य केवल ही प्रकृति के विना तथा स्वतंत्र चित्रण का भार सम्भालन आकर्षित हुए।

### आलम्बन-रूप में

ऐतिहासिक के मनी आचार्य-कवियों दख भिन्नारीगम आदि न रम-निरूपण करते हुए प्रकृति का गृहण के उद्घोषन विभाव के रूप में ही मान्यता दी है। किन्तु केवलगत न इन मनम परम्परा के विरुद्ध प्रकृति-रूपों का आलम्बन के अन्तर्गत रखा है। वाकिल बलित वनन फूल पत्र पत्र अति उपवन के द्वारा प्रकृति को भी आलम्बन-मूर्खी में स्थान दिया है।<sup>१</sup>

प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में वाच की अनी मान्यताएँ थीं और उन्हें ध्यान में रखते हुए उन्होंने अनेक यथा में प्रकृति का चित्रण किया है। परन्तु वे प्रकृति के परम्परा मुक्त उदाहरणों के चित्रण के ही पक्ष में हैं। प्रकृति-वर्णन के प्रमुख उदाहरण यों गिनाए गए हैं—

देग, नगर, घन, घाग, गिरि आश्रम, सरिता सास  
रवि, गगि, सागर भूमि के भूपन रितु सख काल ।<sup>१</sup>

रामचन्द्रिका में उन्होंने यथास्थान इन सभी का वर्णन किया है। केशव प्रसन्नकार  
वादी कवि थे और उनके वर्णनों में प्रसन्नकारों की सहिलष्ट योजना को ही प्रधानता  
मिली है।

अपनी कृतियों में केवदास ने प्रकृति-वर्णन की सभी शक्तियों को अपनाया है।  
आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण भी उन्होंने पर्याप्त मात्रा में किया है। केशव की राम  
चन्द्रिका में प्रकृति-वर्णन की दो शक्तियाँ दृष्टिगत होती हैं—रामायण की सीसी तथा महा  
काव्य की। परम्परा के अनुसार केव ने कृत्रिम पर्वत और नदी का वर्णन किया है जिनका  
उल्लेख संस्कृत काव्यों में श्रीढाक्षत्र के नाम से हुआ है। यह राजसी वातावरण का प्रभाव  
माना जा सकता है। उपयुक्त प्रकृति-विषयों का वर्णन आधुनिक हिन्दी-काव्य का सा  
सहिलष्ट और बिम्बग्राहक नहीं है। केव का आत्म नाम श्रीहर्ष बाण आदि का आत्म  
था और उहीकी तरह उनकी प्रवृत्ति प्रकृति के तथ्य चित्रण की ओर न होकर उपमा  
उत्प्रेक्षा दृष्टान्त आदि के रूप में मिलती है। प्राकृतिक दृश्यों पर पदार्थों का वर्णन नाम  
परिगणनात्मक शाली में भी है। 'रामचन्द्रिका' के अधिकांश प्रकृति-वर्णन इसी शाली में हैं।  
केवदास के काव्य सिद्धान्त के अनुसार वन वाटिका तथा बही समुद्र आदि के वर्णन  
में कुछ विशिष्ट बातें अनिवार्य हैं और इन वस्तुओं के वर्णनों में उन्हें गिनाकर काम  
चना लेते हैं। उदाहरण के लिए विश्वामित्र के आश्रम के निवृत्त्य वन का वर्णन प्रस्तुत  
है—

तह तालीस तमाल सास हिताल मनोहर,  
मजुल बजुल तिलक सख कुल नारिकेर बर।  
एला सलित सवग सग पुणोफल सोह।  
सारो मुक्कल कसित चित्त कोकिल अलि मोह।  
सुभ राजहस कसहस कुल नाचत मस मपरगन।  
अनिप्रकृतित फलित सदा रहे कसवदास बिचित्र बन ॥<sup>२</sup>

यहाँ उल्लेखनात्मक रीति पर कवि ने देग-काल की सीसी का ध्यान रखते हुए  
वृक्षों और पक्षियों के नाम गिना दिए हैं। इस तथ्य में कवि को कोई प्रयोजन नहीं है कि  
दाँट में पाए जानेवाले गला सवग और पुणोफल अथवा पुणोष्ण और मिथिला के मध्य स्थित  
वन में कहे हो सकते हैं। सम्भवतः बिचित्र वन कहकर कवि ने इस विश्वामित्र के तप  
प्रभाव से प्रभूत माना हो परन्तु ऐसा वर्णन करने समय कवि केवल कवि-परम्परा का  
पालन-मात्र कर रहा है।

१ केशविका, आत्म नाम आश्रम १२

२ रामचन्द्रिका, आत्म नाम आश्रम १२

इसीके आधार पर 'रामचरित्रा' में उन्होंने, राम का बाटिका का वपन किया है।<sup>१</sup>

इन वपन का पत्र पर बाटिका की पुत्र पुन धीर मुनि-ममद गोमा का मन्त्रि-  
चित्र पात्र के सम्मुख नहीं आता। बाटिका-वपन में जा-जा बाने आनी चाहिए भी कवि  
ने निरपम भाव में उग्रस्थित कर दा है। फिर भा एक ही स्थान पर प्रकृति का इतना  
विस्तृत वपन केव के पूर्व हिन्दी-साहित्य में किसी कवि ने नहीं किया है।

सरोवर के वपन में भी कवि ने अनुसार कमला अमरा पमियों तथा अलवरा  
का वपन हाना चाहिए। सरोवर के वपन में यह सभा प्रस्तुत है—

सुर सर सोने, मनि मन सोने।  
सरनित्र पूने धति रम मूले।  
अतवर सोल बहु लग बोने।  
वरनि न बाहो उरमाहो ॥<sup>२</sup>

सरिता-वपन में जनवर हय जनव सद अहामु<sup>३</sup> मुनिवास स्नान  
धनि का वपन केव के अनुसार आधारक है। सरपु-वपन इहो मान्यताओं के आधार  
पर है।<sup>४</sup>

यहा भी सरिता की शोभा क प्रति केव का अनुपम परिचय नहीं होता।  
नामालेख-भात्र है। पचवनी पम्मासुर प्रवया पवन धनि का वपन भी कवि ने आधारक  
वस्तुधा की सूची देकर कर दिया है और इसमें उनकी प्राकृतिक सुपमा का कोई चित्र  
पाठक के मन में नहीं उभरता। वास्तव में परिपक्व-ज्ञान में किए गए व वपन प्रकृति  
वपनों में परम-मानन के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रस्तुत को छोड़कर कवि  
अप्रस्तुत पर दृष्टि आनन लगता है। एक वन का वपन एसा ही है—

सोमल दंडक की रवि बनी।  
भातिन भातिन सुखर धनी।  
मेव बड़े नृप की अनु सते।  
भीरत भूरि भाव जह बने।  
बर भयानक सी धति लग।  
अकमयूह जहां अपमय।  
नननि की बहु रूपनि रमे।  
शोहरि की अनु भूरि सने ॥<sup>५</sup>

धनसार-सोवना के धनगत हम यह बने हैं कि ऐसे स्थानों का कवित्व समझाती

१ रामचरित्रा बर्तमान प्रकाश १८८६

२ रामचरित्रा प्रथम प्रकाश १८८६ ३२ ३३

३ रामचरित्रा, प्रथम प्रकाश १८८६ २५, ७

४ रामचरित्रा प्रकाश १८८६ १६ २



वर्णन की प्रवृत्ति गम्भीर जाता है और वाक्य मध्यम फोटी वा रह जाता है। ऐसे वर्णनों में कवि की दृष्टि प्रकृति की नसगिन गुणों की ओर कम ही धा पानी है। यह भावकारिक चमत्कार की ओर उन्मुख हो जाता है।

चन्द्रवर्णन में चन्द्रमा की नसगिन गुणों का विचित्रमात्र भी आभास न देकर कवि उपमानों की माता गुंथने लग जाता है। पर चन्द्रमा के वर्ण से साम्य रसनेवाले उपमानों का उत्तरी प्रगमना के साथ उपस्थित किया है कि काव्यान्त में मिलता ही है—

पूषन की सुन में नई । सुति सचो अनु डारि गई ।

रपन तो सति थी रति को । भासन काम महीपति को ।

केन कियों नर्धसिधु सत । देवनही अस हंस बस ।

सल कियों हरि के कर सोई । मम्बर सागर ते निबसो है ॥<sup>१</sup>

इही वृत्तिपय वर्णनों की देखकर कुछ आलाचक गुंथन की दे इस वर्णन से सहमत हैं कि केगव के लिए प्राकृतिक दृश्यों में कोई भावपूर्ण नहीं था। केगव की कवि हृदय नहीं मिला था उनमें वह सहृदयता और भावुकता नहीं जो एक कवि में होनी चाहिए।<sup>२</sup> परन्तु परिस्थिति ऐसी नहीं है। यदि हम धिक्कावेपण करने की बठें तो हिन्दी के तथाकथित श्रेष्ठ कवियों में भी अनेक दोष निकाले जा सकते हैं। केगव में प्रकृति के प्रति सहृदयता थी। यत्र-तत्र चमत्कार के कारण वर्णन में व्यवधान हैं जहाँ कवि ने बिम्ब प्रयोग पुराने की सफल चेष्टा की है। ऐसे स्थान इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि केगव में प्रकृति का साहित्य चित्र त्रिचने की पर्याप्त समता थी। इस प्रतिभा का परिचय रामचरित का अनन्त स्थला पर मिलता है। राम जिस समय जनकपुरी में प्रवेश करते हैं वैसे ही मूय का उन्मूल होता है और वहाँ अनन्त शाली में कवि ने मूय की प्रातःकालीन प्रसन्नता की आभा का चित्रण किया है।

असन गात अतिप्रातः पक्षिनी प्रातनाथ भव ।

मानहु केगवशासत बावनर बीज प्रेममय ।

परिपूरन सिद्धूर पुर कथी मंगल घट ।

किथी लक को द्रव मयूमा मानिहममूल पट ।

क धोनित कलित कपाल यहलिल कापानिह कास को ।

यह सलित साल कथी लसत शिभाविनि के भाल को ।<sup>३</sup>

ममल और चन्द्रमा का अर्थ अनुसारा सिद्धूर वर्ण का मंगल वर्णन मणिवांति गुणमिश्र दृष्टि का दृष्टन सभी उपमान तत्र मलय करते हुए प्रातःकालीन मूय की भली भाँति अभिव्यक्ति करना है। ममलत उस मूय की प्रसन्नता दर्शित कराने का स्मरण हो

१ रामचरित का उल्लास प्रकाश पृ. ४१ पृ. ४२

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. १६

३ रामचरित का उल्लास प्रकाश पृ. ४१ पृ. ४२

भाता है। फलतः वह ऐसा उपमान उपस्थित कर देता है जो इस दृश्य की मनोरमता में बाधक बन जाता है। मूल्य उसे वैसा ही खास प्रतीत होता है जैसे कापालिक के हाथ में रक्त-रजित कपाम। परन्तु धी-धी वह एक मनोरम वस्तु बना कर उस ध्यापात को हटाकर सम्पूर्ण दृश्य की मनोहारिता को व्यञ्जित कर देता है—मूल्य मानो दिग्बधू के भास की सोभाग्यमूर्चिका मालमणि है। कहना न होगा कि प्रत्येक पंक्ति में नवीन अप्रस्तुत की योजना होते हुए भी यहाँ प्रस्तुत ध्यापात उनीयमान मूल्य का ही चित्र प्रधान है।

इससे भी अधिक अलङ्कृत गीतों में कवि ने प्रभात-वर्णन किया है। पर यह वर्णन अत्यन्त सन्निपट और बिम्बवादी है।<sup>१</sup> प्रातः काल देखते-देखते कैसे सब तारे छिप जाते हैं और सूर्य कहा से कहा पहुँच जाता है। इस दृश्य का वर्णन कवि ने एक सुन्दर रूपक के सहारे कर दिया है।

बड़ो गगन तब धाढ़, बिनकर बानर भरनमुख।

कीहों भवि भहराद, सकल तारका कुसुम बिन।<sup>२</sup>

कवि की यह मूक प्रशंसी है। प्रकृति के गण्पात्मक रूप की अत्यन्त सजीव अभिव्यक्ति यहाँ कवि ने की है।

प्रकृति में ऐसे ही वस्तुनाशक सी-दय के दान कवि ने अन्यत्र भी किए हैं। भ्रमरो सहित मुगधित कमलावाली गोदावरी मानो बहुनयन इन्द्र की गोमा धारण किए हुए है—

अति निकट गोदावरी पाप संहारिनी।

बल तरंग तुंगावली चाप संहारिनी।

अति कमल सौगन्ध लीला मनोहारिनी।

बहुनयन देवस सोभा मनोहारिनी।<sup>३</sup>

पहले दिए गए वन-वर्णन में जहाँ नामोल्लेख-मात्र है वहाँ श्रीरसिहदेवचरित में यही वर्णन बिम्ब-ग्रहण लिए हुए है।<sup>४</sup> यहाँ केवल सूचना-मात्र नहीं है वन के दृश्य का विस्तृत और यथार्थ चित्रण करने की वृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। देश-काल की उपेक्षा यहाँ भी है पर उसके लिए केन्द्र को दोषी न ठहराकर कवि-संप्रदाय की परम्परा को दोषी मानना होगा।

कवि प्रकृति का अभी भाति निरीक्षण करना जानता था और जहाँ-जहाँ वह हृदय को साय लेकर आता है वहाँ उसने प्रकृति के अत्यन्त सुन्दर एवं मनाहुर दृश्य प्रस्तुत किए हैं। वर्षा का अत्यन्त मनोरम चित्र कवि ने खींचा है।<sup>५</sup>

बिन्दु कवि का अलंकार-अभय-सम्पन्न हृदय उसे प्रकृति को उसके सहज स्वाभा

१ रामचन्द्रिका तीसरी प्रकाश, छन्द १८, २१

२ रामचन्द्रिका, पाँचवी प्रकाश, छन्द १३

३ रामचन्द्रिका, ग्यारहवा प्रकाश, छन्द २३

४ श्रीरसिहदेवचरित

५ देखिए रामचन्द्रिका, तीसरी प्रकाश, छन्द ११, १४

विव रूप में अधिक बाल तक नहीं देखने देता और स्नेह आदि का घायल उसे ऋतु की रम्यता भुलाकर उसका भयप्रद रूप-वर्णन करने में लगता है। वर्षा-बभी उसे कालिका के रूप में स्निहार्द्र देनी है तो बभी वियोगिनी रूप में। भय ऋतुएँ भी अपने प्रकृत रूप में आकर बहुल बनकर उगती हैं। वसंत-सिंह समान और शीघ्र शर-समूह बन जाती है। शरद् शारंग जसी है तो हेमन्त विभुस प्रिय की प्रिया है और गिरि वर नारी। और ऐसे अस्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करते समय कवि प्रकृति से रागात्मक संबन्ध स्थापित नहीं कर पाया है किन्तु जहाँ वह ऐसा कर सका है वहाँ प्रकृति के सहज स्वरूप की अत्यन्त मनोह्र अभिव्यक्ति हुई है। रसिकप्रिया में कवि ने वन बादल द्वारा फनाए गए भयंकर की अत्यन्त सुन्दर और मार्मिक व्यञ्जना की है—

राति हूँ आई बने घर की दसहूँ बिसि मेह महा मड़ि भायो ।

दूसरो बोल हो तें समुझे कहि केसव यों दिसि में तम लायो ।<sup>१</sup>

यही-वही वातावरण का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण होने पर भी सुन्दर है। यथा :  
केतोदास मुगज-बघैरु घोष बाघनीन आलस सुरभि बरषदासक बदन है ।

सिंहन की सटा एच कलम करनि करि सिंहन की भासन गरब की रहन है ।<sup>२</sup>

इस प्रकार प्रकृति के गढ़ स्वरूपों का चित्रण कवि ने विस्तार के साथ किया है। अधिकतर नामपरिगणनात्मक धारी में है। सभीच कड़वते हुए अलङ्कृत एवं अमत्वारपूर्ण वर्णनों की प्रचुरता है। अधिकांश स्थलों का प्रकृति-वाच्य आचामर के भार में अभिभूत हो जाता है जिसमें संस्कृत के परवर्ती अमत्वार प्रवण साहित्य का बहुत कुछ दायित्व है। प्राधुनिक युग के स्वतन्त्र महिष्य प्रकृति चित्रण बेगव में नहीं मिलते पर ऐसे वर्णन भी कम नहीं हैं जहाँ कवि ने बिम्ब-ग्रहण कराने की सफल चेष्टा की है और जो इस बात के परिचायक हैं कि बेगव में भी प्रकृति के यथातथ्य निरीक्षण और सूक्ष्म चित्रण की क्षमता थी।

उद्दीपन-रूप में

मानवीय वाच्यशास्त्र में प्रकृति की भाषना उद्दीपन विचार के रूप में भी स्वीकृत की गई है। जब किसी स्थायीभाव का आनन्द प्रकृति में होकर अन्य कोई प्रापण आनन्द होता है उस समय प्रकृति उद्दीपन विभाज के अन्तर्गत हो जाती है। प्रकृति और मनुष्य का सम्बन्ध चिरस्थायी होने के कारण मन की किसी भी दशा में प्रकृति उसके समानान्तर पगती है। विस की आनन्दमयी स्थिति में प्रकृति का उन्माद आनन्द की निगुणित करता है और बभी मनुष्य की दशा में निरवेण रहकर उसे बल पहुँचाना है। प्रकृति के सुन्दर और भयंकर दृश्य मयाग या विप्रवाग में आश्रय के रूप में अलङ्कृत भाव की तीव्रतम कर दते हैं। यही कारण है कि वाच्यशास्त्र में और विचारकर गृह्यारम्भ के कवियों ने प्रकृति के उद्दीपन वर्णन का अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।

१ रसिकप्रिया पद्यम प्रमोद पद-१३

२ रामचरित, ६ सर्ग प्रकाश, पद्य ४

प्रकृति के उद्दीपनात्मक रूप के सम्बन्ध में केशव की ग्रास्त्रीय धारणा कुछ भिन्न है, यह बात हम आचार्यत्व-सम्बन्धी परिच्छेद में देख चुके हैं। व जहाँ तक शृंगार का सम्बन्ध है, उसकी व्यापकता एवं मनोवैभानिवृत्ता के आधार पर, प्राकृतिक समञ्जस रूपों एवं दृश्यों में उद्दीपनात्मक ही नहीं आलम्बनात्मक क्षमता स्वीकार करते हैं। प्रयोध्या नगरी के उपवन को उन्होंने कामोद्दीपन रूप में वर्णित किया है—

देक्षि बाग अनुराग उपम्रिय । बोलत कलध्वनि कोकिल सजिय ।

राजति रति की सखी सुवेधनि । मनहु बहति भनमय संवेसनि ।<sup>१</sup>

यहाँ केशव ने अपनी धारणा के अनुसार उपवन के रमणीय दृश्य को रत्युद्भावना की क्षमता प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

हम देख चुके हैं कि केशव का यह दृष्टिकोण आचार्य-परम्परा से भिन्न रहा है। प्रत्येक उस परम्परा का अनुसरण करते हुए हम इस प्रकार के स्थानों को अपनी आलोचना में उद्दीपनात्मक रूपों में ही रख सकते हैं और अपनी धाराबद्ध दृष्टि से ही उसकी समीक्षा कर सकते हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखने की बात है कि केशव ने प्रकृति को जो आलम्बन-रूपता प्रदान की है वह शृंगाररस के मन्त्र के एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही।

प्रिय के समीप होने पर तो आनन्द ही आनन्द है इसी कारण तब घृल और आनन्द का आधिक्य राम के साथ सीता को सातस प्रतीत होता है।

धाम की राम समीप महाबल । सीतहि लागत है अति सीतल ।

मारग की रज तापित है अति । केशव सीतहि सीतल लागति ॥<sup>२</sup>

‘विविप्रिया’ के आलोपालकार के प्रसंग में प्रकृति के उद्दीपक रूप का अत्यन्त स्पष्ट प्रकट कवि ने किया है। प्रकृति के साथ मानव-हृदय का तादात्म्य असा इस बारहमास में कवि ने लिखाया है वह प्रशंसनीय है। प्रत्येक मास अपनी अपनी प्राकृतिक विविधताओं से सयोगियों के सुख की अभिवृद्धि करता हुआ उनकी भावनाओं को उद्दीप्त करता है और वे बिछड़ने के नाम से भवचने लगते हैं। निम्न पद में ही नारी-हृदय चारा मोर की प्रकृति को हृषिक और अपने अपने प्रिय से मयुक्त होने देख आनन्दित हो उठता है—

केसव सरिता सकल मिलित सागर मन मोह ।

सलिल सता सपदात तरुन तन तरुवर सोह ।

वसि घपला मिलि मेघ घपल घमकत धनु मोरन ।

भन भावन कहैं यति भूमि कूजत मिस मोरन ।

इहि रीति रमन रमनी सकल सागे रमन रमावन ।

प्रिय गमन करन की को कहै गमन सुनिये भहि सावन ॥<sup>३</sup>

१ रामचंद्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ३

२ रामचंद्रिका नवम प्रकाश छन्द ३७-३८

३ विविप्रिया दशम प्रकाश छन्द २८

वास्तव में उद्दीपन की दृष्टि से काव्यशास्त्रों में वसंत और वर्षा को विशेष स्थान दिया गया है। संयोगी हो या विरही दोनों के ही मन को वर्षा उत्कण्ठित कर देती है। इसी कारण कालिदास ने इसे नामिजनप्रिय कहा है। और यह मानमोघन करानेवाली ऋतु है। केवल के राधा और कृष्ण का मान भी वर्षा के प्रभाव से स्वतः ही भग हो जाता है।<sup>१</sup>

धनमाला अभिसारिका को धामत्रण देने लग जाती है और विद्युत् उसकी पथ प्रदर्शिका बन जाती है—

सोनी हम मोल मनमोलों धाड़ जायौ मोह  
मोहि धनस्याम धनमाला बोलि लाई है।  
बेसो ह्व है दुख जहां देह ह न देखी पर।  
देखी कसैं बाट केसो<sup>१</sup> दामिनी बिछाई है॥<sup>२</sup>

विरह में क्षीतल चंद्रमा मूय-सा प्रतीत होता है दिशाएं भग्नि-सी प्रतीत होने लगती हैं—

हिमांशु सूर सो लग सो बात बख सो बहै।  
बिसा लगे कृसानु क्यों बिलेप अंग को बहै।  
बिलेप कालराति सो कराल राति मानिये।  
वियोग सोय को न, काल लोकहार जानिये॥<sup>३</sup>

यहां प्रपन्नति के भावरण में अनुभूति की प्रधानता का सुन्दर प्रमाण कवि ने दिया है। सीता के अपहरण के पश्चात् राम को विरहावस्था के कारण जड़ और चेतन भेद भी विस्मृत हो जाता है।<sup>४</sup> इतना ही नहीं चकोर से भी सहायता की याचना करते हैं। सीतावृत्त चकोर के प्रति पूवउपकार का स्मरण कराने हुए राम चकोर से सीता के सम्बन्ध में पूछते हैं।<sup>५</sup>

अब तक तो वे मनुष्यतर प्राणिकगण ही सहायता की याचना करते हैं पर विरह का आवेग जते-जते बढ़ता है व प्राणहीन पदार्थों वृक्षा व वनस्पतियों तक से सीता सम्बन्धी वार्ता पूछने लगते हैं। अथ वृक्षों को कठोरहृदय बतसाने हुए व वरण वृक्ष से सहायता की प्राप्ति करते हैं।<sup>६</sup>

प्रिया के अभाव में प्रकृति में विभिन्न उपादानों को जो उनकी प्रिया के अंगों से साम्य रखने से दत्तकर जैसे-जैसे व जीवन धारण किए हुए थे। पर वर्षाऋतु ने आकर

- १ रत्निकप्रिया, दराम प्रभाव छंद २७
- २ रत्निकप्रिया साक्षा प्रभाव छंद २८
- ३ रामचंद्रिका, बारहवां प्रकाश छंद ४९
- ४ रामचंद्रिका बारहवां प्रकाश छंद ३६
- ५ रामचंद्रिका बारहवां प्रकाश छंद ४०
- ६ रामचंद्रिका बारहवां प्रकाश छंद ४१

उनका यह अवलम्ब भी छीन लिया—

कसतुं कसार्निधि सजन कज कटु दिन केमव देति जिये ।  
पति धानन सोधन पाइन क धनुषपक सेमन मानि तिये ।  
यहि कात कराल से सोधि सब हठिब बरया मिस दुरि जिये ।  
घर घौ बिनु प्रान प्रिया रहिह कहि कौन हिनु भवतनिव हिये ॥<sup>१</sup>

बिन्तु कभी-कभी प्रकृति में विराम्य हृदय का साम्य दबकर बिहरी राम को यन्त्रिबिन् मलोप भी मितना है। निरन्तर जल-वपष के कारण और घनघोर घगच्छन्त घावाय के कारण स मूष का उगाति कम हो जाती है और चन्मा भी मन्-दुति रहता है। राम को इन दोनों स अपन उत्सासहीन हृदय का साम्य मिलता है।<sup>२</sup>

इस प्रकार प्रकृति का मानवीय भावनामा के आधार पर भक्ति करते हुए उही पन घाली का आधार बरि न तिया है और मानव तथा प्रकृति क बीच मुन्तरता और सहृदयता स एक कामल भावना प्रदर्शित करने का सफ़ल प्रयास किया है। यद्यपि प्रत्येक शब्द में यहा भी कवि न अपना काव्य-बीजम दिखाया है पर इन प्रकृति चित्रण में उनकी अनकारवाद मनावति और रस-परिपाक-शक्ति का उचित सामञ्जस्य बन पडा है।

### उपमान-रूप में

उपमान-याचना कस्त समय भी सभी कवियों न प्रकृति क असाम भण्डार से लाभ उठाया है और यह स्वाभाविक भी है। मूष चन्द्र नक्षत्र मध घाघा समुन् वन पवत लता वृक्ष पुष्प भ्रमर आदि हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखन हैं और वसी कारण ये हमारा दृष्टि स आभन भी नही होत। विशाके मूष पर मनकन हुए तत्र का अभिव्यक्ति के लिए हम मूष को उपमान बनाते हैं तो कमा गरीर की कोमलता की व्यञ्जना कराने के लिए उसे लता जसा बतान हैं। किसी वस्तु का वणन करत समय सादृश्य-स्थापना के लिए प्रकृति ही हमारी सहायिका हुई है। मानवीय सौन्दर्य का पूरा और प्रभावमयी अभिव्यञ्जना के लिए कवि का प्रकृति स सब कुछ मिल जाता है और कवियों क एम ही प्रयोग को देखकर काव्यशास्त्रियों न कुछ उपमाना को रूढ़ कर दिया है। हा उसके भाष-साय व्यञ्जना प्रतिभा के बल स नय उपमाना का आविष्कार भी करत हैं या प्रसिद्ध उपमानों का नवीन ढा से भी रखते हैं। जो कवि साहित्यिक परम्परा में बध हाते हैं व प्रकृति का अपस्तुत रूप स उपयोग रूढ़ि के आधार पर ही करत हैं और रीतिकाल के कवियों स यहा चीज मिलती है। बिन्तु कुशल और प्रतिभाशाली कवियों ने अवश्य कुछ नय और मुन्तर प्रयोग किए हैं। केवल इन्होंमें स हैं। राधा की शोभा के वणन में प्रकृति क सभी रूढ़ उपमान कवि न प्रयुक्त कर लिए हैं।<sup>३</sup>

१ रामचरित्रा वेरहण प्रकाश द. २२

२ रामचरित्रा वेरहण प्रकाश द. ६

३ रत्नकविता वेरहण प्रकाश द. ५

बंज दारपो बिम्ब पिक्वनी, नल्पतरु आदि चमत् नायिका के नेत्र दान  
मधुर आदि अवयवों के लिए प्रसिद्ध उपमान हैं और प्रायः सभी कवियों ने अपने अपने  
काव्य में उनका प्रयोग किया है। सीता के नख शिख-वर्णन में भी कवि ने प्रचलित उप-  
मानों का प्रयोग किया है। मुख के लिए चन्द्रमा प्रसिद्ध उपमान है और कण्ठ श्लेष-गुण्ट  
उपमा के द्वारा सीता के मुख की दोभा का वर्णन करते हैं।

चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिए ।<sup>१</sup>

यहाँ कवि ने चन्द्र की सभी विशेषताओं को सीता के मुख में भी दर्शित करा  
दिया है। परन्तु शीघ्र ही वह सीता के मुख के लिए बड़ा तार्किक ढंग से चन्द्रमा को अनुप-  
युक्त उपमान ठहराकर कमल जैसा दर्शित करता है—

सुन्दर सुवास अथ कोमल अमल प्रति ।

सीता जू को मुख सखि केवल कमल सी ॥<sup>२</sup>

कही-वही कवि प्रसिद्ध उपमानों की अपेक्षा उपमेय के लोच्य का उत्कर्ष दिखाते  
हैं। कैवल्य ने भी उपमेय मुख में उत्कर्ष और उपमान कमल तथा चन्द्र में अपकर्ष दिया  
है—

एक कह अमल कमल मुख सीता जू की ।

एक कह चन्द्र सखि धानद को कद री ।

होइ जो कमल तो रजनि में न सकुचे री ।

चन्द जो तो वासर न होइ बुति पग री ।

वासर ही कमल रजनि ही में चन्द मुख ॥<sup>३</sup>

कवि ने अपनी सभी रचनाओं में प्राकृतिक रुचि उपमानों का प्रयोग किया है  
जिनमें कहीं-कहीं मौलिकता का भी सस्पष्ट है।

अनेक प्राकृतिक रूपों की अप्रस्तुत रूप में परीक्षा दृष्ट सादृश्य की दृष्टि से बड़ी  
मनोहर और उपयुक्त मन पड़ी है। राम, लक्ष्मण आदि की बाराण से जनकपुरवातियों  
का मिलन को निम्नाने के लिए कवि ने सागर और सरिता के प्रेम मिलन की स्वामाविव  
उत्प्रेक्षा दी है।

धनि आदि करात कहैं ब्रिज आई भय आदि चमू धमधाम पठाई ।

जनु सागर की सरिता बगुधारी तिनके मिलिजे कहैं बाँह पसारो ॥<sup>४</sup>

इसी प्रकार मन जाते हुए राम के पीछे उमड़ते हुए जन-सागर के लिए मनोरथ  
के पीछे बहती हुई गंगाधारा की उत्प्रेक्षा अत्यन्त भावपूर्ण हो गई है।<sup>५</sup>

१ रामचरितम् नव प्रकाश पृष्ठ ४०

२ रामचरितम्, नव प्रकाश पृष्ठ ४१

३ रामचरितम्, नव प्रकाश पृष्ठ ४२

४ रामचरितम् अठारह प्रकाश पृष्ठ ४

५ रामचरितम् नव प्रकाश पृष्ठ ४०

इसी प्रकार नही निजी अनुभव के सहारे उन्होंने प्रकृति के अत्यन्त मार्मिक और स्वाभाविक चित्रों को अग्रस्तुत रूप में नियोजित किया है। वन में राम से भेंटन के लिए माताएं उसी आकुलता से दौड़ती हैं जैसे घास खरकर माती हुईं गायें अपने बछड़ा से मिलन को दौड़ती हैं—

मातु सब मिलिये कह भाइ । ज्यों सुत को सुरभी सु लबाइ ॥<sup>१</sup>

कहना न होगा कि ऐसे स्थलों पर नवि न अत्यन्त सहृदयतापूर्वक प्रकृति के क्षण में अग्रस्तुता को चुना है। पर उनकी प्राकृतिक अग्रस्तुत-योजना का चरम उत्कृष्ट बही है जहाँ वे चमत्कार का आशय लेते हैं। रावण के हाथ पड़ी सीता बबडर के मध्य पड़ हुए सुन्दर चित्र जसी है—

चित्र को तो पुत्रिका कै रूरे बगलरे माहि ॥<sup>२</sup>

हथ और आकार के वर्णन में भी नवि न चमत्कार की प्ररणा से उपमानों को ग्रहण किया है। माग में जात हुए राम सीता और लक्ष्मण ऐसे प्रतीत होते हैं मानो—

मेष मझाहिनी चार सौदामिनी रूप रूरे लस देहपारी मनो ।

भूरि भागीरथी भारती हसजा घंस के ह मनो भाग भारे मनो ॥<sup>३</sup>

अवधपुरी में अटारियों पर खड़ी हुई स्त्रिया का सुन्दर चित्रण हुआ है। उनके शरीर की शोभा मेघों में से नीघती हुई दामिनी और मूय किरणों से अभिषिक्त कमलिनी के समान व्यञ्जित की है।

प्राकृतिक उपमानों का उपयोग केवल के पर्याप्त रूप से किया है। वे सस्कृत के अच्छे ग्रन्थिता में और सस्कृत की अग्रस्तुत-योजना उन्होंने ग्रहण की थी। सस्कृत-साहित्य शास्त्र की मान्यताओं के अनुसार व अग्रस्तुत-योजना में शान् को भी रूप गुण क्रिया के समान ही साम्य-व्यप्य का आधार बनाकर चलते हैं। अपनी निजा प्रतिभा से उन्होंने उपमानों की नवीनता या प्रचलित उपमानों के नवीन प्रयोग दर्शात किए हैं तथा प्रकृति रूपों का सफल प्रयोग किया है किन्तु जहाँ बिना सुन्दर साम्य-स्थापना का विवेचन किए हुए नवि न प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है वहाँ पर यह योजना आज के आलोचक की दृष्टि से उपहासनीय हो गई है।<sup>४</sup> यही कारण है कि केवल पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि प्रकृति निरीक्षण का उन्हें अवकाश न था। परन्तु एक तो ऐसे चित्र केवल के काव्याकाश में दो-एक टिमटिमाते हुए तारों के समान ही हैं दूसरे उनके पीछे उनके कृतिकार का व्यक्तित्व एवं एक परम्परा है। केशव ने प्रकृति के मार्मिक स्वाभाविक तथा सजीव चित्रों के लिए सफल अग्रस्तुत-योजना का भी पर्याप्त प्रयोग किया है। साथ ही साथ उनमें ऐसे स्थला का भी अभाव नहीं जहाँ अस्तुत-योजना का प्रयोग रूप-साम्य भाव

१ रामचन्द्रिका दस्ता प्रकाश छन्द २८

२ रामचन्द्रिका काव्य प्रकाश छन्द २

३ रामचन्द्रिका नका प्रकाश छन्द १५

४ रामचन्द्रिका संस्कृत प्रकाश छन्द ८८



साम्य तथा वातावरण निर्माण के लिए किया गया है।

**मानव भावनाओं के रूप में**

निरन्तर प्रकृति के साथ रहते रहते मनुष्य को प्रकृति तिनकुल निरपेक्ष और जड़ नहीं प्रतीत होनी। यह स्वाभाविक है कि वह चराचर प्रकृति को सचेतन और भावगोचर पाए। यही कारण है कि प्राचीनकाल से बाध्यकार प्रकृति को मानव का सा स्थावर देते आए हैं और उनमें मानव क्रिया और मानव व्यापार का लोभते रहे हैं। प्रकृति के जैन प्राणियों में तो मनुष्य की सी भावनाएं ममत्व रक्षा विरह-म्लाना आदि मिलती ही हैं। किन्तु प्रकृति के उपासक ऋषियों ने जड़ प्रकृति में भी पशु-पक्ष आदि में भी मानव ममत्व का अनुकरण पाया है और उनमें भी सुख दुःख हृष विषाद ईर्ष्या-संवेग आदि का अनुभव किया है प्रकृति के इस प्रकार के मानवीकरण के क्षण में कालिदास सदाश्रुत है। वेगव को भी इस दृष्टि से पर्याप्त सफलता मिली है। यद्यपि उनमें काल में प्रकृति में अधिक महत्त्व मनुष्य को दिया जाने लगा था तथापि उन्होंने प्रकृति में मानव सुख भाव का लोभने का सफल प्रयत्न किया है। बलवारा से नाव मुह सिबोहनवा ने लोगों के पल्ले कुछ न पड़े यह बात दूसरी है। वर्षा को चण्डी के विकास रूप में तथा धरद को कुत्तीन सुन्दरी के रूप में चित्रित किया है। इतना ही नहीं यह धरद उहे उम बूढ़ा दासी की तरह भी दर्शित होती है जो उन्हें प्रातः काल उठाने जाती थी—

सक्षम जाती बड़ सी आई सरद मुजाति ।

मनहू जगावन को हमहि बोले बरषा राति ॥<sup>१</sup>

यहां पर बूढ़ा में धरद का रूप-साम्य न दिखाने के लिए वे कम-साम्य की उपप्राप्ति कर डाली है। इसी प्रकार धरद वहीं उह गारण अभी प्रतीत हुई है। निर्गिर बरना की सी सोभा धारण करती है।

वर्षा में बाइयुवन नानियां अपने बिनारा का डबा देती हैं जने अभितारिबाण अपने घम के भाग को मिटा देती हैं—

अभितारिणि तो समझी परनारी । सतधारण घेटन को अधिकारी ॥<sup>२</sup>

जिस प्रकार से सज्जन पुरण निरपराधी को बच्चे देनेवाले दाततायी को दंड देने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं वस ही बूढ़ा भी अपने दम-बलसाहित्य रूप पर बड़ाई कर बैठने हैं क्योंकि उसने निरपराध पुष्पों के शरीर को ताप पहुँचाया है।<sup>३</sup>

प्रायः कविगण लेगा वजन करते रहे हैं कि धवतारी गुणों के सम्मान में प्रकृति नष्ट और अनुत्तम हो जाती है। वेगव ने भी राम के सम्मान में प्रकृति की विषम गति स्मृतियां का अनुत्तम हो जाना दिखाया है माना ईश्वर के सम्मान में प्रकृति धानी

१ रामचरित का तरहवा प्रकाश पृष्ठ २०

२ रामचरित का, तरहवा प्रकाश, पृष्ठ २०

३ रामचरित का तरहवा प्रकाश पृष्ठ १५

मलिनता त्यागकर प्रकुम्भित हो उठी हो ।<sup>१</sup>

यह राम के ससय का ही प्रभाव है । एक स्थल पर कवि ने प्रकृति का अत्यन्त कमनीय और मनोरम वातावरण प्रस्तुत किया है । राम और सीता जब एकत्र बैठते हैं तब सीता के शोणा-वादन पर मुग्ध होकर पशु-पक्षी घिर घाते हैं और राम द्वारा प्रेम पूर्वक पहनाए गए आभूषणों को भी निश्चक भाव से ग्रहण करते हैं—

जब जब परि बोना प्रकट प्रबीना बहु मनसोना मुख सीता ।  
पिय जिमहि रिझाय दुखनि भजाय सिविध बजाय गुमपोता ।  
तजि मति संसारो विपिनविहारो सुखदण्डकारी पिरि भाव ।  
तब तब जगभूषन रिपुकुलभूषन सबको भूषन पहिराव ॥<sup>२</sup>

इन प्रकार हिंस्र पशुमा में भी समीत प्रमी होना कवि ने पाया है । महान विभूतियों के साक्षात्कार से प्रकृति-जीवों में वषम्य भावना हा तिरोहित हो जाती है । तभी तो भारद्वाज मायम के पशु सहज विरोध को भुलाकर जीवन-यापन करते हैं—

‘केसोदास’ मृगज बछड़ धोप बाघनीन ।  
घाटत सुरभि बाघबातक बदन है ॥<sup>३</sup>

उपदेशात्मक रूप में

इतना ही नहीं प्रकृति का उपदेशात्मक रूप भी कवि के सम्मुख आया है । प्रकृति के स्वाभाविक तथ्यों को दृष्टि में रखकर कवि उनसे जीवन-तथ्यों का समग्र चरित्र है—

तरनि किरनि उदित भई दीप जोति मतिन गई ।  
सदय हृदय धोष-उदय ज्यों कुबुद्धि भास ॥<sup>४</sup>

इसी प्रकार कही उन्होंने मानव-जीवन के सत्या का प्रकृति में चरित्राव होने दिया है । ब्राह्मण जब सुरापान करने में लीन होता है तो उसकी शोभा व सम्पत्ति नष्ट हो जाती है । उसी प्रकार चन्द्र भी बारुणी की इच्छा करने-भाष से श्रीहीन हो गया है—

जही बासनी की करी रचक बधि द्विजराज ।  
तहीं किमो भगवन्त बिन सम्पति सोभा साज ॥<sup>५</sup>

निष्कर्ष

उपपुक्त विवरण से निष्कर्ष निकलता है कि केशव ने प्रकृति के विन शीवे हैं और पमाप्त मात्रा में । प्रकृति का उन्होंने आत्ममग्न उद्दीपन उपमान पृष्ठभूमि प्रतीक अलंकार उपदेश द्विती विम्ब प्रतिविम्ब मानवीकरण रहस्य तथा मानव भावनाओं का आराप आदि सभी नितिया में धनन किया है । प्रकृति का यथातथ्य और सुन्दर चित्रण

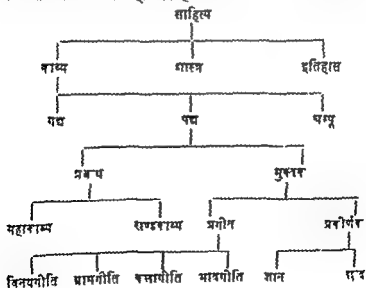
- १ रामचरित्का, नवम प्रकाश छन्द २६
- २ रामचरित्का ग्यारहवां प्रकाश छन्द २७
- ३ रामचरित्का, बीसवां प्रकाश छन्द ४
- ४ रामचरित्का तीसवा प्रकाश छन्द १६
- ५ रामचरित्का पचासवा प्रकाश छन्द १४

करने की क्षमता उनमें थी और वे चाहते तो उसको अपना आभूषण बनाकर और प्रकृति का स्वच्छन्द व स्वाभाविक चित्रण कर प्रकृति-कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो सकते थे। वैभव और विलास के वातावरण में रहने के कारण उनकी मनोवृत्ति क्लेश-यश की ओर विशेष रही। सस्कृत-साहित्य के अति सम्पन्न के कारण उनकी दृष्टि बहुत कुछ बढ़ रही। फलतः प्रकृति चित्रण यत्र-तत्र दुरूह प्रतीत होते हैं। उनमें हृदय की अपेक्षा बुद्धि का प्राधान्य हो गया है। यदि उनमें अमल्लारप्रियता न होती तो उनके प्रकृति-चित्र भी अवमूर्ति और कालिदास के समकक्ष हो सकते थे। परन्तु उन्होंने प्रकृति का कवि की दृष्टि से नहीं अपितु कवि-सम्प्रदाय की दृष्टि से देखा है। अतः वे अपने उद्देश्य में सदा सफल हुए हैं।

### केशव की प्रबन्ध पटुता

#### साहित्य में प्रबन्ध का स्थान

विज्ञान युग के बुद्धिवादी मानव ने साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया है। काव्य शास्त्र और इतिहास। हमारी विवेचना का विषय केवल काव्य है। अतः काव्य की विधाएँ ही विचारणीय हैं। काव्यशास्त्र-ममज्ञों ने काव्य के तीन प्रकार निर्धारित किए हैं। गद्य पद्य और चम्पू। महाकवि केशव का मन गद्य एवं चम्पू के प्रणयन में नहीं रमा। उन्होंने काव्य के पद्य भाग की रचना में ही अपनी नवनवीन-प्रेरणासिन्धी प्रतिभा का प्रयोग किया। पद्य की दृष्टि में भारतीय समीक्षा-मदति में काव्य काव्य के दो भेद किए गए हैं एक प्रबन्ध और दूसरा मुक्तक। इसके भी भेद प्रबन्ध जो नीचे दिए हैं साहित्य वृक्ष द्वारा सरलता से बोधगम्य हो सकते हैं—



उपयुक्त साहित्य-वस्तु से स्पष्ट है कि साहित्य में प्रबंध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हम यहां प्रबंधकाव्य तथा उसके भेद महाकाव्य पर ही विशेष रूप से विचार करना है। के.व. ने कवि और आचार्य रूप में लक्ष्य और लक्षण दोनों प्रकार के ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके लक्ष्य-ग्रन्थ प्रबंधकाव्य की कोटि में तथा लक्षण-ग्रन्थ गली की दृष्टि से लक्षण प्रबंध की कोटि में रचे जा सकते हैं।

रामचंद्रिका (महाकाव्य)

भीरसिंहचरित (चरितकाव्य)

विजयगीता (रूपक प्रबंध)

जहागीर-जस चंद्रिका (लघुकाव्य)

रतनबावना (लघुकाव्य)

रमिकप्रिया (रस प्रबंध)

कविप्रिया (धलवार प्रबंध)

छन्दमाला (छन्द प्रबंध)

प्रथम पाँच लक्ष्य प्रबंध तथा अन्तिम तीन लक्षण प्रबंध कहे जा सकते हैं।

### रामचंद्रिका

रामचंद्रिका में महाकाव्य की दृष्टि से के.व. को वहाँ तक सफलता मिली है इस ग्रन्थ पर विचार करने में पूर्व यह ज्ञानना आवश्यक है कि संस्कृत-साहित्य के आचरण ने महाकाव्य की कौन-कौन विशेषताएँ बतलाई हैं। आचार्य विजयनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार बताया है—

सगवन्धो महाकाव्यं तत्रको नायक मुर ।  
सद्वर्ग क्षत्रियो वापि धीरोदास गुणावित् ॥  
भूगारवीरगान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।  
छादो नमस्त्रिषाणोर्षा वस्तुनिर्वेण एव वा ।  
वचसिनिन्दा ललाटेनां मतां च गणकोतनम ॥  
एकवत्समय पक्ष रवसानेऽन्यवत्सक ।  
नातिस्वल्पा नातिवीर्या सर्गाष्टादिका इह ।  
नानावत्समय क्वापि सग कश्चन दुःप्यते ।  
सर्गाति भाविसयस्य कथायां सूचन भवेत् ।  
सम्प्रा सुख्येऽदुरजनी प्रदोष प्वान्त वासरा ।  
मातमप्याह्ला मयया नितयन सायरा ॥'

अर्थान—

१ महाकाव्य सर्गों में बड़ा हुमा होना है।

२ इसमें एक नायक होता है जो देवता या उत्तम वंश का धीरोत्तम गुण से समन्वित पुरुष होता है। उसमें एक बग के बहुत-से राजा भी हो सकते हैं जैसे 'रघुवंग' में।

३ शृंगार वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अंगी रूप से रहता है नाटक की सब सधिया होती हैं।

४ इसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध होता है।

५ इसीमें मंगलाचरण और वस्तु निरूपण होता है।

६ कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण-कीर्तन रहता है जैसे राम चरित-मानस।

७ एक सग में एक ही छंद रहता है और अन्त में वह बदल जाता है। यह नियम शिथिल भी हो सकता है जैसे 'रामचरित' में प्रभाव के लिए छन्द भी एकता बाँधनीय है। सग के अन्त में अगले सग की सूचना रहती है। कम से कम आठ सग होने आवश्यक हैं।

८ इसमें सध्या मूल चरित्रों की प्रणय अवधारणाएँ प्रातःकाल मध्याह्न आषट पवत ऋतु वन समुद्र सन्नाह, यात्रा अशुभ आदि विषयों का वर्णन रहता है।

यदि हम संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्य किरातागुनीय निक्षुपावध नैषध चरित आदि पर विचार करते हैं तो इनमें उपर्युक्त नियमों का पूर्ण रूप में अनुसरण पाते हैं।

केनवदासजी के महाकाव्य रामचरित में उक्त लक्षणों का उचित निर्वाह भी हुआ है। उनके काव्य का कथानक विन्व विद्युत् है। इतिहास और काव्य समीक्षा विषय रामकथा रह चुका है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम धीरोदात्त नायक हैं। कवि ने आठ स अधिका सग अवकाश प्रदान रखे हैं। शृंगार वीर और शान्त तीनों रसों का मांगोपांग निरूपण मिलता है। शास्त्रोक्त मनुष्य वर्णन की पद्धति हृदय हर्षोत्फुल्ल हो जाता है। हाँ केवल छन्द के सम्बन्ध में कवि ने कुछ हेर-फेर किया है। एक सग में अनेक प्रकार के छन्दों को और एक छंदों को जो अपनी लघुता के कारण प्रवाह प्रवाह में व्यापार-सा करते दीख पड़ते हैं। रघुवर अपना मौलिकता का परिचय दिया है।

छन्दों की विविधता के कारण किसी प्रकार की त्रुटि होने की अपेक्षा यहाँ अपूर्व सौन्दर्य और तवीनता का दर्शन होने है। अमरतरुण अलक्षित यात्रा की दृष्टि में 'राम चरित' उत्तम काटि की रचना है। रस और भाव का मानो यह आगार है। केनव ने अपनी 'रामचरित' में माना विस्तृत वर्णनों एवं दृश्यों को जिनका स्थान दिया है उतना सम्भवतः रामायणी शास्त्रों के किसी भी कवि ने नहीं किया। पूर्वाध में सगू दण्ड के हाथी वाग अवधपरी राजगमा मुनि आश्रम मूर्धन्य मिथिला पंचवटी दण्डवदन गोलावरी वर्षा गरुड भीमा की अग्नि-परीक्षा त्रिवेणी तथा भारद्वाज आश्रम आदि के वर्णन उत्तरेत्तरीय हैं। उत्तरार्ध में रामराज्य राम-महान राम गणनागर वननाला जलनाला गंधाना मेघाना मन्त्राना कृत्रिमसरिता पवतलया जनागार आदि के अनेक सुन्दर वर्णन हैं। इन वर्णनों में अनेक स्थलों पर केनवदासजी ने मौलिकता का

परिचय दिया है। कुछ आलोचकों का इन कानों से पाण्डित्य प्रमाण की गण मने हा  
मन्तु पन्तु केवल का वास्तविक उद्धान का सोहा तो उनको भी मानना हा पडना है।

कुछ प्रमथा की सूचना-मात्र तथा कुछ वपना के बिस्तार न प्रति होकर कुछ  
प्रवाचन आलोचक 'रामचन्द्रिका' म महाकाव्य की दृष्टि से त्रिटिया बतलात हैं। उनका  
कथन है कि महाकाव्य में प्रब-पत्र के लिए क्यावस्तु की श्रमता म सब कठिनो का स्पष्ट  
मान होना चाहिए। परन्तु रामचन्द्रिका म इसका प्रमात्र है। इसके समाधान म यह जान  
ना अपरिणत है कि महाकाव्य आवन चरित प्रमथा इतिहास म भनर है। इतिहास म  
तो कथनक की सभी घटनाओं का रहना आव-वक होना है परन्तु प्रनिमागामी कवि तो  
भनरी वसि के प्रमुक्त कुछ स्पष्ट-वि-य चुन लेता है और इन्हीका कर्मिक वणन करके  
प्रब-पत्र की प्रवतारणा करना है। गोस्वामी तुलसीदासजी को प्रब-पत्रमकता की दृष्टि  
ने 'भारो वन बहुरि रपुराई' का महत्व मने ही हो केवल व लिए इस मथातम्य चित्रण  
में कोई प्र-कथन नहीं। दूसरी बात यह है कि रामकथा भारत जमे प्रमप्राण ऐग के जन  
जीवन में ऐसी घुल-मिल गई है कि यदि उसके कुछ विवरण छोड़ भी लिए जाएं तब भी  
एक सूचना म ध्यापान नहा हो सकता क्योंकि पाठक या धोना बहुभन होने के कारण दोष  
वस्तु का स्वय प्रध्याहार कर लेता है। मोसरे केवल ने अपनी राजनीति अब कूटनीति की  
वि-ता क कारण अनक स्थता पर अपनी मौनिकता का परिचय देत हुए परम्परागत कथा  
वस्तु म ऐमा माड दिया है कि वह देखत हो बनता है। प्रब-पत्रमकता के प्रमात्र की प्रमेणा  
हमें तो सरमता का ही अनुभव हाता है। चौथ केवल को राम की चन्द्रिका प्रमीष्ट थी।  
वे राम के वनव तथा राजसी ठाट-बाट का वणन करना चाहत थ इसीलिए उन्होंने अपनी  
पुन्य का नाम 'रामचन्द्रिका' रखा। इसके लिए राम राजाभिषेक के उपरान्त उन्हें  
पूरा-पूरा प्रवसर मिला।

कुछ आलोचकों को सवानों की बहुलता के कारण भी प्रब-पत्र धारा मे गति  
राध दिया पडता है। यह कथन तो ऐसा प्रतीत होता है मानो बिना समझ वह  
दिया गया हा। क्या सोमस्वामी के किनारे पर प्रवस्थित मनोहर पाप्प राशि मे उनके  
पय की पूणता म किनी प्रकार की रजावट या सकती है? सवाई तो यह है कि सजीव  
और कडकते हुए सवानों द्वारा 'रामचन्द्रिका' की प्रब-पत्र धारा प्रमेभाकृत मनोरम बन  
जाती है।

कुछ आलोचक कहते हैं कि केवलशमजी म क्यानक के गभीर और मार्मिक स्थनों  
को पहचानने की क्षमता नहीं है। इसके उत्तर मे केवल हमारा तना ही निवेदन है कि  
मिल्ल विचित्रि लोक के आधार पर सभा आलोचकों के लिए मार्मिकता को कोई विशेष  
कसौटी नहीं। एक व्यक्ति को मार्मिक प्रतीत होनेवाले स्थलों म अन्य व्यक्ति को उसका  
प्रमात्र मामूम पड सकता है। तुलसी के मार्मिक स्थन तुलसी के ही लिए थ प्रमथा किसी  
अन्य कृतियावाले कवि के लिए हो सकते हैं कम से कम केवल के लिए नहीं। केवल कोट  
के कवि थे, मला कृतिया के पमाने से कोट को वैसे मापा जा सकता है। केवल के मार्मिक

स्थल कोट के थे और उनमें उह पूरा सफलता मिली है। कुटिया और कोर म सदय से प्रन्तर चला धाया है और सदैव रहेगा। अतः तुमसी के मापण्ड द्वारा बंगाल की बंग प्रालोचना करना उस महान कवि के साथ प्रयाय करना है। इसके प्रतिरिक्त रामकथा के जो मामिक स्थल उन प्रालोचकों द्वारा निर्दिष्ट किए गए हैं उनपर बंगाल स पूव वात्माकि, तुमसी आदि ने विवाद विवर्ण कर दिया था। फिर दाण-शण पर नयीन हानि बानी रमणीयता के प्रवर्णन को खोसनेवाले महाकवि बंगाल को पिष्टपेपण बने प्रभीष्ट लगता। इन प्रालोचकों के बतगाए हुए करुणा तथा गोक-समन्वित स्थलों का मन्वृत आचार्यों की बाव्य-सम्बन्धी मान्यताओं के विचार से बंगाल ने ग्रहण नहीं किया क्योंकि वहा करुणा को प्राधान्य कहा। यदि सहृदयता से सोचा जाए तो रामचन्द्रिका में भी अनेक मामिक और गम्भीर स्थल दुष्टिगाधर होते हैं। केवल रामान्वमय का विन्नेपण करने पर भी भावुकता, सरसता और बौतूहल का प्रवाह दीख पड़ता।

### वीरसिंहदेवचरित

वीरसिंहदेवचरित ऐतिहासिक बाव्य है। अतः वीरसिंहदेवचरित में बंगालीमजी विन्नेप परिवर्तन नहीं कर सके। इसमें ऐतिहासिक घटनावली का वर्णन सागोपाग रूप से किया है। इतिहास एवं कल्पना दोनों का योग से बंगालीमजी ने इस मुन्तर प्रबन्ध बाव्य की रचना की।

बाव्य का प्रारम्भ दान एवं नाम का मन्त्र से होता है। तब-वित्तकों के साथ यह दोष सवाल बंगाल का बाव्यनिक प्रतिभा एवं वाक्चातुर्य का आभास तो करता है परन्तु कथावस्तु विषय प्राने नहीं बढ़ती। आग चलकर वीरसिंहदेव के पूवजों की नामावली का उल्लेख आता है। यह भी कथावस्तु को रोचक बनाने में अममय रहता है। तदुपरांत विष्णुवामिनीदेवी मुक्तिमुक्त शास्त्राय का मुनवर उह वीरसिंहदेव के नगर जाने का आदेश देती है। इसी बीच में उनकी जिज्ञासा का शमन करती हुई देवी सत्य में कथानक की घटनाओं का वर्णन कर देता है। विष्णुवामिनी के इस वर्णन में अनेक स्थलों पर नाटकीय स्वरा एवं रोचकता का दर्शन होता है। बलाना का प्राचुर्य में धुन्ध इतिवृत्तात्मकता का भावना बहुत कम हो जाती है।<sup>१</sup> प्रामाणिक घटनाओं का समावेश अपने चरित-नायक के भाग का प्राप्ति करने के लिए किया गया है।<sup>२</sup> बंगाल ने कथा नक का वर्णन में पात्रों के चरित्र का विनाश स्वाभाविक रूप में किया है।

आगे चलकर गंग और पद्म के वार्तानाप में अमुनप्रज्ञम का वर्णनाय गुणों की प्रशंसा बंगालीमजी ने मुक्तकण्ठ से की है। अमुनप्रज्ञम की मृत्यु पर सद्गान प्रकर को जो महान शोक हुआ तथा वीरसिंहदेव पर जो प्रोत्साहन उत्पन्न हुआ उसकी मुन्तर

१ बरसिंहदेवचरित, पृ. १३

२ बरसिंहदेवचरित पृ. १४-१६

३ बरसिंहदेवचरित पृ. १६-२ २१-२२, ४४, ४६ ४९ ७२

४ बरसिंहदेवचरित पृ. २८

अभिव्यक्ति भा की है। प्रबन्ध-मृदुता चरित्र-चित्रण तथा भावुकता आदि सभीका दृष्टि में कृति सुन्दर बन पड़ा है।<sup>१</sup> आग चलकर जहाँगीर न बारमिहन्द के साथ मित्रता का परिषय दिया है। इस स्थान पर जहाँगीर की कृतज्ञता गुणसाहसता तथा चरित्र निर्णय का पूरा परिचय मिलता है।<sup>२</sup>

वर्णन भी प्रबन्ध-मृदुता का आवश्यक अंग है। बेगवानामजी ने मगम-गान मुझ वर्णन श्रुतु-बान बतवा-बान तथा उपरान आदि का चमत्कारपूर्ण वर्णन कर प्रबन्धालम्बना में चार चार लगा दिए हैं।<sup>३</sup> कथानक में रोचकता लाने के लिए सुवर्णन और क्षत्र पाल के दीप-मवाद की कथ्यना कवि ने की है। इसमें शरीर की नाचरता मृत्यु की निश्चितता मवा की महत्ता क्षत्रियगुण गाय द्विज निदमादि वीरक्षमा तथा सामाजिक गुणों का चित्रण किया गया है।<sup>४</sup>

यहाँ वीरसागर का वर्णन उल्लेखनीय है।<sup>५</sup> 'मगम महोत्सव' का वर्णन भी अनूठा है। कथाचित्र माहित्य-जगत् में इससे बढ़कर वर्णन छिर नहीं मिल पाता। उस समय के राजस्वरवार को देखने के लिए कथा का पन्ना निजालन अनिवार्य है।

इसमें आग गान ने बह चाव में राजधम और राजकम का व्याख्यान किया। अथ म राजाभिषेक का समय आ जाता है। नय वीरसिंहदेव सबको सम्मानित करत हैं। सना आजीवा दन हैं। उनके पञ्चान गुज-मारिका-सवा में अथ की भुमाजि हो जाती है।

कहने का सारांश यह है कि वीरगोत नायक के साथ इतिहास प्रसिद्ध कथानक में पात्रों का समुचित चरित्र चित्रण आवश्यक वष्य विषय राजनीति धर्मनीति प्रकृति का सुन्दर छल्ल तथा अस्तवारों के सहयोग में कौशलकान पनावला म मनोरम शाली के सम्मिश्रण में चित्रण होने पर यह प्रबन्धकाव्य मधुसुख सुन्दर बन पड़ा है।

### विज्ञानगीता

कवि की महत्वपूर्ण दार्शनिक रचना 'विज्ञानगीता' है। गान जन नीरस एवं कटिन विषय को काव्य द्वारा जितना सरल बनाया जा सकता है यह बात 'विज्ञानगीता' में स्पष्ट है। मवाओं में सिद्धहस्त बेगव न सवात्मक शनी को अपनाकर अथ की रोचकता में चार चार लगा लिए हैं। 'विज्ञानगीता' का उद्देश्य धीमदमावत की भांति अनुम वस्तियों पर गुम वस्तियों का विज्ञान प्राप्त कराना ही है। मवात्मक रूप के कारण गानालगल मनामात्रों को पात्रों में परिणत कर दिया गया है। विषय के शरा मोह का नाश होने पर प्रवाध का उन्म होता है। परिणामस्वरूप जीव जीव मुक्त होता है। इसमें हिन्दू गान निर पद्धति में वैराग्यमूलक गान का वर्णन किया गया है। प्रवाधोन्म जीव मुक्त अवस्था

१ बरमिहन्दवरित पृ ३= ४

२ बरमिहन्दवरित पृ २७ ४१ ५८ ५९

३ बरमिहन्दवरित पृ ३ ३२ ५ ५७ ६७ ७१

४ बरमिहन्दवरित, पृ ७६ ८७

५ बरमिहन्दवरित पृ १७



स्थान कोट के ये और उनमें उह पूरा सफरता मिली है। छुटिया और को म सदस्य में अन्तर बना आया है और सदस्य रहेगा। मत्त तुलसी के भाषणद्वारा केराव की कथा आलोचना करना उस महान कवि के साथ भाषाव करना है। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र के जो भाषिक स्थान उन आलोचकों द्वारा निर्दिष्ट किए गए हैं उनपर केगव से पूर्व वाल्मीकि तुलसी आदि ने विवाद चित्रण कर दिया था। फिर क्षण-क्षण पर नवीन होने वाली रमणीयता के अवगुणन को सोचनेवाले महाकवि केगव को विष्णुपेयन के समीप लगता। इन आलोचना के बतलाए हुए कथा तथा गीत-समन्वित स्थान को सस्तर आचार्यों की वाच्य-सम्बन्धी मान्यताओं के विचार से केराव ने ग्रहण नहीं किया, क्योंकि वहाँ कथा को प्राधान्य कहा। यदि सहृदयता से साँचा जाए तो रामचन्द्रिका में भी अनेक भाषिक और गद्यर स्थल दृष्टिगोचर होते हैं। केवल रामादयमेय का विदनेपन करने पर भी भावुकता सरलता और कोतूहन का प्रवाह शास्त्र पढ़गा।

### वीरसिंहदेवचरित

वीरसिंहदेवचरित ऐतिहासिक काव्य है। मत्त वीरसिंहदेवचरित में केगवदामजी विषय परिवर्तन नहीं कर सके। इसमें ऐतिहासिक घटनावली का वर्णन सांगोपाग रूप से किया है। इतिहास एवं कल्पना दोनों के योग से केगवदामजी ने इस सुन्दर प्रबन्ध काव्य की रचना की।

काव्य का प्रारम्भ गान एवं मोम के सवा से होता है। तक बित्तों के साथ यह दीप सवा<sup>१</sup> केगव की वाल्मनिक प्रतिभा एवं वाक्चातुर्य का प्रामास तो करता है परन्तु बयावस्तु विषय आगे नहीं बढ़ती। आगे चलकर वीरसिंहदेव के पूरजों की नामावली<sup>२</sup> का उल्लेख आता है। यह भी बयावस्तु को रोचक बनाने में प्रसमय रहता है। मत्तपरान्त विष्णुवामिनीदेवी मुक्तिमुक्त गारुड का मुनकर उह वीरसिंहदेव के नगर जान का प्रार्थना<sup>३</sup> होती है। गी बीच में उनकी जिज्ञासा का समय करती हुई दधी गाय में बयानर की घटनाओं का वर्णन कर देती है। विष्णुवामिनी के इस बयान में अनेक स्थान पर नाटकीय रसग एवं रोचकता के दान होते हैं। बलाना के प्राच्य से घुमर इतिवृत्तात्मकता की भाव भी बहुत बय हो जाती है।<sup>४</sup> प्रासगिर घटनाओं का गमा केग अपन चरित-नायक के माग को प्रार्थना करने के लिए किया गया है।<sup>५</sup> केगव ने बयाव नव के वर्णन में पात्रों के चरित्र का विरास स्वभाविक रूप में किया है।

आगे चलकर राय और पगन के मार्तानाथ में अव्युपपन्न का वर्णन गुणों की प्रामा केगवगजों में मुक्तकण्ठ में की है। अव्युपपन्न की मृत्यु पर मन्त्रा मन्त्रर को जो महान शोर हुआ तथा वीरसिंहदेव पर जो प्रार्थना उत्पन्न हुआ उगरी मुन्त्र

१ वीरसिंहदेवचरित पृ ११३

२ वीरसिंहदेवचरित पृ १४-१६

३ वीरसिंहदेवचरित पृ १६ २० २१ २८ ४४ ५३ ५६, ७१

४ वीरसिंहदेवचरित पृ ३८

अभिधायिनी भी की है। प्रबन्ध-गटुता चरित्र चित्रण तथा भावकता आदि सभीकी दृष्टि से कृति सुन्दर बन पड़ी है।<sup>१</sup> भागे चलकर जहांगीर ने बीरसिंहदेव के साथ मित्रता का परिचय दिया है। इस स्थान पर जहांगीर की कृतज्ञता गुणसाहकता तथा चरित्र निष्ठा का पूर्ण परिचय मिलता है।<sup>२</sup>

वर्णन भी प्रबन्ध-गटुता का आवश्यक अंग है। केवलदासजी ने मगम-दगन मुट्ट वगन श्रुतु-वर्णन श्वेतवा-वर्धन तथा उपदेग आदि का समस्कारपूर्ण वर्णन कर प्रबन्धार्थ बता म चार चांद लगा दिए हैं।<sup>३</sup> कथानक म रोचकता लाने के लिए मुखपान और क्षत्र पाल के दीप-सचाद की कल्पना कवि ने की है। इसमें शरीर की मन्वरता मृग्यु की निम्नितता सेवा की महत्ता क्षत्रिय गुण गाय त्रि नियमादि बीरक्षमा तथा सामाजिक गुणों का चित्रण किया गया है।<sup>४</sup>

यहा बीरसागर का वर्णन उत्तेजनीय है।<sup>५</sup> मदन महोत्सव का वर्णन भी अनूठा है। कथाचित् माहिर-अगत् म इससे बढकर वर्णन फिर नहीं मिल पाता। उस समय के राजदरबार को देखने के लिए केराव का पठन नितान्त अनिवार्य है।

इससे भागे दान ने वठ बाव से राजघम और राजकर्म का व्याख्यान किया। दान म राज्याभिषेक का समय आ जाता है। नप बीरसिंहदेव सबको सम्मानित करते हैं। सभी भागीदार देने हैं। इसके पन्चास छुफ-मारिका-मवा म ग्रथ की समाप्ति हो जाती है।

कहने का माराग यह है कि घीरोदात्त नायक के माथ इतिहास प्रसिद्ध कथानक म पात्रों का समुचित चरित्र चित्रण आवश्यक वष्य विषय राजनीति घमनोति प्रकृति का सुन्दर छन्द तथा अलंकारों के सहयोग से कोमलकात पदावली म मनोरम शैली के सन्निवेश से चित्रण होने पर यह प्रबन्धकाव्य सन्मुख सुन्दर बन पड़ा है।

### विज्ञानगीता

कवि की महत्त्वपूर्ण दार्शनिक रचना विज्ञानगीता है। दगन जमे नीरस एव कठिन विषय की काव्य द्वारा नितना सरस बनाया जा सकता है यह बात विज्ञानगीता से स्पष्ट है। मवादों म मिट्टहस्त केराव ने सत्तात्मक शाली की घषनाकर ग्रथ की रोचकता मे चार चांद लगा दिए हैं। विज्ञानगीता का उद्देश्य श्रीमद्भागवत की भांति अनुभूत वृत्तियों पर शुभ वृत्तिया की विजय प्राप्त करना ही है। सत्तात्मक रूप के कारण शीतान्तगत मनोभावों का पात्रों म परिणम कर लिया गया है। विवेक के द्वारा मोह का नाश होने पर प्रवाध का उदय हुाना है। परिणामस्वरूप जीव जीव-मुक्त होता है। इसम हिन्दू शास्त्र निव पद्धति मे वैराग्यमूलक ज्ञान का वर्णन किया गया है। प्रबोधोदय जीव-मुक्त अवस्था

१ बीरसिंहदेवचरित पृ ३८-४

२ बीरसिंहदेवचरित पृ ३७, ४१ ५८-५९

३ बीरसिंहदेवचरित पृ १, ३२ ५, ५७ ६७ ७१

४ बीरसिंहदेवचरित पृ ७०-८१

५ बीरसिंहदेवचरित, पृ १७

के लिए परमावश्यक है। बेशवदासजी ने महामोह और विवेक के युद्ध तथा मोह की पराजय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सम्पूर्ण ग्रंथ इक्कीस प्रभावों में विभाजित है। कवि एवं राजवंश वर्णन के उपरान्त ग्रंथ की कथावस्तु का प्रारम्भ सवाद से ही होता है।<sup>१</sup> केवदासजी शंकर-पावती-सवाद के रूप में कथानक को प्रस्तुत करते हैं।

दूसरे प्रभाव से बारहवें प्रभाव तक महामोह एवं विवेक का संघर्ष एवं युद्ध होता है। युद्ध में महामोह पूर्णतया पराजित होता है। यह युद्ध भ्रमत् एवं सत् शक्तियों का युद्ध है जिसके अन्त में जाकर सन गक्तियाँ की विजय होती है। अन्तिम नौ प्रभावों में ज्ञान का विवाद वर्णन है। ज्ञानोपदेय के लिए नाना अन्तकथाओं का समावेश किया गया है। सरस्वती शोकाकुल मन को समझाने के लिए गांधि ऋषि की कथा सुनाती है।<sup>२</sup>

आगे चलकर सरस्वती मन को चुकन्ने की कथा सुनाती है।<sup>३</sup> तदुपरान्त विवेक जीव को ज्ञानोपदेय देने समय बसिष्ठ के तप करने पर शिव द्वारा दिए गए उपदेय का वर्णन करता है।<sup>४</sup> इसी प्रसंग में विवेक जीव को गिल्लीध्वज तथा चूडासा की कथा समझाता है।<sup>५</sup> आगे उपनिषद् यन्त्रविद्या भीमासा तन्त्रविद्या तथा गीता का भी उल्लेख करते हैं। सत्रहवें प्रभाव के अन्त में उपनिषद् ने जीव के समझाने के लिए ज्ञान भ्रमण की भूमिका का वर्णन किया है। अठारहवें एवं उन्नीसवें प्रभावों में क्रमशः जीव के पृथ्वी पर उपनिषद् जीव को प्रह्लाद की कथा तथा बाली की कथा द्वारा ज्ञानोपदेय देती है। बीसवें प्रकाश में उपनिषद् ने जीव को सृष्टि तथा योग की सात भूमिकाओं का वर्णन कर ज्ञानोपदेय दिया है। इक्कीसवें अथवा अन्तिम प्रभाव में योग वर्णित है। सात रज तथा तम की व्याख्या करती हुई उपनिषद् प्रबोधोन्मय के लिए अहंकार एवं भ्रम का नाश भविष्य समझती है। प्रबोधोन्मय होने पर ही जीव जीवमुक्त हो जाता है। उपनिषद् के इस ज्ञानोपदेय के परिणामस्वरूप जीव को यह मिथ्या भासित होने लगता है और ब्रह्मज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक कथानक बड़ा कौतूहलवर्धक है। केवदासजी के इस ग्रंथ का मुख्य आधार कृष्ण मिथ्य द्वारा विरचित संहृत का 'प्रबोधचन्द्रोन्मय' नाटक है। जहाँ कहीं अन्तर दृष्टिगत होता है वहाँ 'योगवाणिष्ठ तथा श्रीमद्भगवद्गीता' का आशय लिया गया है। कथावस्तु में यत्र-तत्र कवि ने मौलिकता से भी काम लिया है। विज्ञानगीता एवं 'प्रबोधचन्द्रोन्मय' में अन्तर जाना स्वाभाविक भी है क्योंकि विज्ञान

१ एक समय नृपनाथ तथा मध्व बैठे सुनि ।

बून्दी उलस गाय कवि नृप कथनाम सा ॥

—विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव पृ. २७-११

२ विज्ञानगीता सौहर्षा प्रभाव पृ. ८८

३ विज्ञानगीता सौहर्षा प्रभाव

४ विज्ञानगीता पञ्चम प्रभाव

५ विज्ञानगीता सौहर्षा प्रभाव

गीता' एक काव्य-ग्रन्थ है तो 'प्रबोधचन्द्रोदय' एक नाटक ।

'रामचन्द्रिका' की भाँति विजयनगीता में भी प्रत्येक प्रभाव के आरम्भ में कथा सार देकर प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख कर दिया गया है ।

महामोह इस प्रबोधकाव्य का नायक है किन्तु फनागम उसके प्रतिफल होते हुए भी सामाजिकों के लिए सुखकर है । केवल की प्रतिभा कल्पना और मूक सचमुच सराहनीय है । महामोह के प्रस्थान पर चार्वाक द्वारा वर्णित गरद का सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है ।<sup>१</sup>

कथा के बीच में आगत व्यक्ति चरित्रों से प्रतिपाद्य विषय के प्रतिपादन में रोचकता और उसकी बोधगम्यता की अभिवृद्धि हुई है । कवि के मत में दिल्ली दम्भपुरी और मथुरा पालण्डपुरी है । केवल चाराणसी ही बिदुभाषक और विश्वनाथ के निवास के कारण विवेकनगरी के रूप में प्रतिष्ठित है और हो भी क्या न इसका मूजन भी तो वरणा और नागी के योग में हुआ है । इसका स्थान त्रिकुटी में बतलाया गया है ।<sup>२</sup>

महाकाव्य को रूपक और रूपक की महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत न करते हुए भी उनका प्रमास स्तुत्य कहा जा सकता है । यह प्रबोध हिन्दी-साहित्य में एक विधा का प्रवर्तक है । परन्तु खेद का विषय है कि रीतिकाल में केवल के समान कोई दूसरा प्रतिभागामी कवि पैदा नहीं हुआ जो इस विधा को आगे बढ़ाता । इस दृष्टि से केवलदासजी का यह रूपक प्रबोध अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

### जहागीर जस-चन्द्रिका

'जहागीर जस-चन्द्रिका' भी केवल का एक छोटा प्रबोधकाव्य है । इसमें प्रतिपाद्य विषय का उचित विकास हुआ है । इसकी रचना 'बीरसिंहदेवचरित' की पद्धति पर हुई है । राजधानी की छटा देनीय है । उद्योग और भाग्य के तकपूर्ण वाद विवाद सप्रत्यक्ष आरम्भ होता है । निणय वादगाह जहागीर करते हैं । जहागीर का शुभ्र मन और नील प्रताप देखते ही बनता है । अपने देववासियों के अनुरूप केशवदास ने जहागीर की शक्ति साहि कहा है और उन्हें अनेक सुन्तानों से थोप्ट माना है । इसमें महत्वपूर्ण बात शिव की मथुरा में अधिष्ठित देखना है । भाग्य और उद्यम को जहागीर के साथ और प्रभुता की शरण में भेज दिया जाता है । आगरा के दरबार की सुयमा और अनुगामन विप्र-वेशधारी भाग्य और उद्यम पर अपना अधिक प्रभाव जमाते हैं । वादगाह के समक्ष अपने यथायथ स्वरूप का उद्घाटन कर दोनों धर्चन के भाजन बनते हैं । भाग्य और उद्यम में किसे प्रमुख समझा जाए यह बात सभा में पूछी गई किन्तु मानसिंह ने अनुनय पर वादगाह निणय देते हैं—

उदय भाग अति उदित मति मुनि सवज्ञ प्रमान ।

जग में उद्यम कम ये मेरे ज्ञान समान ।

१ विजयनगीता १/१२

२ आद्योपनिषद् २

के लिए परमावश्यक है। केशवदासजी ने महामोह और विवेक के युद्ध तथा माह की पराजय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सम्पूर्ण ग्रंथ इवनीस प्रभावों में विभाजित है। कवि एवं राजवंश वर्णन के उपरान्त ग्रंथ की कथावस्तु का प्रारम्भ सवाद स ही होता है।<sup>१</sup> केशवदासजी शंकर पार्वती-सवाद के रूप में कथानन को प्रस्तुत करते हैं।

दूसरे प्रभाव से बारहव प्रभाव तक महामाह एवं विवेक का समय एवं युद्ध होता है। युद्ध में महामोह पूर्णतया पराजित होता है। यह युद्ध असत एवं सत शक्तिमों का युद्ध है जिसके अन्त में जाकर सत् शक्तियों की विजय होती है। अन्तिम नौ प्रभावों में ज्ञान का विशद वर्णन है। ज्ञानोपदेश के लिए नाना अन्तकथाओं का समावेश किया गया है। सरस्वती शोकाकुल मन को समझाने के लिए गांधि ऋषि की कथा सुनाती है।<sup>२</sup>

भाग चलकर सरस्वती 'मन' को शुकदेव की कथा सुनाती है।<sup>३</sup> तदुपरान्त विवेक जीव को ज्ञानोपदेश देते समय वसिष्ठ के तप करने पर शिव द्वारा दिए गए उपदेश का वर्णन करता है।<sup>४</sup> इसी प्रसंग में विवेक जीव को 'श्रीकृष्ण' तथा 'कृष्ण' की कथा समझाता है।<sup>५</sup> भाग उपनिषद् यज्ञविद्या भीमासा तरुविद्या तथा गीता का भी उल्लेख करते हैं। सत्रहवें प्रभाव में अन्त में उपनिषद् ने जीव के समझाने के लिए नाना अज्ञान की भूमिकाओं का वर्णन किया है। अष्टादहव एवं उन्नीसवें प्रभावों में 'कर्म' जीव के पृथक् पर उपनिषद् जीव को प्रह्लाद की कथा तथा धानि की कथा द्वारा ज्ञानोपदेश देती है। बीसवें प्रकाश में उपनिषद् ने जीव को मूर्छित तथा योग की सात भूमिकाओं का वर्णन कर ज्ञानोपदेश दिया है। इक्कीसवें अथवा अन्तिम प्रभाव में योग वर्णित है। सत रज तथा तम की व्याख्या करती हुई उपनिषद् प्रबोधोदय के लिए ग्रहण एवं भ्रम का नाश अनिवार्य समझती है। प्रबोधोदय होने पर ही जीव जीव-मुक्त हो जाता है। उपनिषद् के इस ज्ञानोपदेश के परिणामस्वरूप जीव को यह मिथ्या भासित होने लगता है और ब्रह्मज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक कथानक बड़ा कौतूहलवर्धक है। केशवदासजी के इस ग्रंथ का मुख्य आधार कृष्ण मिश्र द्वारा विरचित सस्कृत का प्रबोधचन्द्रोदय नाटक है। जहाँ कहीं अन्तरदृष्टिगत होता है वहाँ यागवाग्विष्ठ तथा धीमदभगवद्गीता का आश्रय लिया गया है। कथावस्तु में यत्र-तत्र कवि ने मौलिकता से भी काम लिया है। विज्ञानगीता एवं प्रबोधचन्द्रोदय में अन्तर होना स्वाभाविक भी है क्योंकि विज्ञान

१ एक समय नृपनाथ सभा मध्य बैठे सुमति ।

नूनी उत्तम गाथ, कवि नृप कैमकास सों ॥

—विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव छन्द २७-२८

२ विज्ञानगीता तेरहवां प्रभाव छन्द २२

३ विज्ञानगीता चौदवां प्रभाव

४ विज्ञानगीता पंद्रहवां प्रभाव

५ विज्ञानगीता सोलहवां प्रभाव

गीता' एक काव्य-ग्रन्थ है तो 'प्रबोधन-द्रोह' एक नाटक ।

'रामचरित्रिका' की भाँति विज्ञानगीता में भा प्रत्यक्ष प्रभाव के आरम्भ में क्या सार देकर प्रतिपाद्य विषय का उत्प्रेषण कर दिया गया है ।

महामोह इस प्रबोधकाव्य का नायक है किन्तु पन्नागम उसके प्रतिबल होते हुए भा मामात्रिकों के लिए मुक्तकर है । केवल की प्रतिभा कल्पना और मूक मन्त्रमुक्त सराहनीय है । महामोह के प्रस्थान पर चार्वाक द्वारा वर्णित चरद् का सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है ।<sup>१</sup>

क्या के दोष में आगत व्यक्ति परिचा स प्रतिपाद्य विषय के प्रतिपादन में रोचकता और उसकी बोधयम्यता की अभिवृद्धि हुई है । कवि के मत में दिल्ली दम्प्रपुरी और मधुरा पालम्पपुरी है । केवल वाराणसी ही बिन्दुमायव और विवनाय के निवान के कारण विवेकनगरी के रूप में प्रतिष्ठित है और हो भी क्या न इसका मूजन भी तो वरणा और नागी के योग में हुआ है । इसका स्थान निकुटी में बनजाया गया है ।<sup>२</sup>

महाकाव्य की रूपक और रूपक की महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत न करते हुए भी उनका प्रयाम स्तुत्य कहा जा सकता है । यह प्रबोध हिन्दी-आहित्य में एक विद्या का प्रवक्तृ है । परन्तु वेद का विषय है कि रीतिकाल में केवल के समान कोई दूसरा प्रतिभागाती कवि पक्ष नहीं हुआ जो इस विद्या को आगे बढ़ाता । इस दृष्टि में केवलवासजी का यह रूपक प्रबोध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ।

### जहांगीर-जस चरित्रिका

'जहांगीर-जस चरित्रिका' भी केवल का एक छोटा प्रबोधकाव्य है । इसमें प्रतिपाद्य विषय का उचित विकास हुआ है । इसकी रचना 'वीरमहिम्नचरित' की पद्धति पर हुई है । राजधानी की ध्वजा दृश्यनीय है । उद्योग और भाग्य के तकपूर्ण वाद-विवाद से ग्रन्थ आरम्भ होता है । निम्नवाल्गाह जहांगीर करते हैं । जहांगीर का शुभ मंग और गाजस प्रताप देखते ही बनता है । अपने देशवासियों के अनुकूल वेशवास ने जहांगीर को एक साहि कहा है और उन्हें अनेक मुन्नानों से श्रेष्ठ माना है । इनमें महत्त्वपूर्ण बात गिव की मदुरा में अधिष्ठित देखना है । भाव्य और उद्यम को जहांगीर के माय और प्रभूता की शरण में भेज दिया जाता है । आगरा के दरबार की मुयमा और अनुमानन विप्र-वेशधारी भाग्य और उद्यम पर अपना अधिक प्रभाव जमाते हैं । वालगाह के समस्त अपन यथाय स्वल्प का उदघाटन कर दोनों अपन के भाजन बनते हैं । भाग्य और उद्यम में जिसे प्रमुख समझ जाए यह बात समा में पूरी गई, किन्तु मानसिक के अनुनय पर वालगाह निम्न देते हैं—

उद्यम भाग्य प्रति उचित मनि, मुनि सबत प्रमान ।

जय में उद्यम कम ये मेरे जान सुमान ।

१ विज्ञानगीता २ १२३

२ आशुतोषसिन्हा २

करम फले उद्यम करे उद्यम कमहि पाय ।  
 एके कम बुद्धि को कौनो विधि सुखाय ।  
 बहूँ विधि उद्यम कम है धाम शर भ्रम भ्रमणार ।  
 काटन या मसार की समझो बुद्धि उधार ।  
 ओलों ये ससार में तौलों यह संसार ।  
 इन्हें मसे ते नसत ह यह तिमरो भ्रम भार ॥<sup>१</sup>

वाङ्मय के इस समाधान से सभी सन्तुष्ट हो गए । भाग्य और उद्यम से सराहना करते हुए वरदान मागने को कहा तो उन्हें ही सपरिवार रहने का कहा गया । केनाव के वाक्य पर मुग्ध हाकर जहागीर ने कुछ माँगने के लिए कहा । इसपर केनावदास ने ब्राह्मणों चित्त मम भरा उत्तर दिया है ।<sup>२</sup>

जसावि पुस्तक के दीपक से प्रतीत होता है कवि को जहागीर की 'बन्धिका' अभीष्ट है यद्यपि क्याण बहुत सूक्ष्म है तथापि उसमें सम्बद्धता है । बीच-बीच में नाना वणन रमानुभूति कराने में अत्यन्त सहायक हैं । सवादा में सिद्धहस्त एक पारसी यहां भी उद्यम एक भाग्य का मवाज प्रारम्भ कर देते हैं । सवाज अत्यंत सकयुक्त सरस एक भाव पक है । कवि की अंतिम रचना होने के कारण इसमें कवि प्रतिभा मुस्वरित हो उगी है । कथा का मूल कही भी टूटने नहीं पाया है । यद्यपि यह प्रगल्भी-वाक्य है तथापि उसे हम खण्डवाक्य की कोटि में रख सकते हैं ।

### रतनबावनी

यह ग्रंथ केनावदासजी की प्रथम रचना है । इसमें मधुकरदास के सोलह वर्षीय पुत्र रतनसेन के शौच का वणन है । स्वाभिमान के लिए पिता के आदेश पर यह मुट्ट भक्कर के साथ होता है । राजकुमार का सम्मान के लिए ब्राह्मण रूप में भगवान तक भाते हैं परन्तु वह अपने निश्चय से नहीं डिगता । मुट्ट होता है और रतनसेन उसी मुट्ट में बीरता धूक मारा जाता है । साधारण रूप में देखने से यह ग्रंथ मुक्कर की कोटि में प्रतीत होता है परन्तु जब हम इसके कथामूल पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि इसका कथानक उलझा हुआ नहीं है । बीररस का सुन्दर परिपाक हुआ है । नामक के चरित्र का स्वाभाविक विकास हुआ है । कथानक बहुत छोटा होने पर भी कथा का मूल निरंतर चलता रहता है ।

### रसिकप्रिया, कविप्रिया एवं छन्दमाता

महाकवि केनाव की 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' को प्रमथ राम प्रबंध प्रसन्नार प्रबंध का नामा ने अभिहित किया जा सकता है । इन नामों को संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने भी मायता की है । श्री विश्वनाथजी का वचन है—

१ जहागीर अम-चन्द्रिका, १ पृ. १०.

२ जहागीर अम-चन्द्रिका १४८

पूर्वभ्यो भामहादिभ्यः सावरं विहितांजलिः ।  
 वन्द्ये सम्यगलङ्काराणां सत्त्वस्वसप्रहमः ।  
 चिरेण चरितार्थोऽभूत् काव्यासङ्कारसंग्रहः ।  
 प्रतापद्वयेवस्य कीर्तयेन प्रकाशयते ।  
 रसप्रधानां वाक्यार्थां गुणालङ्कारवत्तयः ।  
 रीतयश्चेयती वास्य प्रमेयं काव्यपद्धतिः ॥  
 यद्यप्यतो प्रबन्धेषु प्राचीं साधुनिरूपिताः ।  
 तथाप्यस्या स्वयं नेतुर्नोदाहरणमाहृतम् ।  
 पुण्यश्लोकस्य चरितमुदाहरणमहतिः ।  
 न कश्चित्तादृशः पूर्व प्रबन्धा भरणीकृतः ।  
 प्रबन्धानां प्रबन्धणामपि कीर्तिं प्रतिपद्यते ॥  
 मूलं विषय भूतस्य नतुगुण निरूपणम् ।  
 यद्देवताप्रभु समितारविपिगत गद्य प्रधानाच्चिरः ।  
 यद्यथा प्रवणान्धराण यद्यनादिष्ट मुहुत समितात् ।  
 कान्ता सम्मितया यथा सरसतामापाद्य काव्यश्रियाः ।  
 कत ध्ये कुतुकी मुधो विरचितस्तस्य स्पृहा कुमहे ।  
 प्रतापद्वयेवस्य गुणानाधित्य विमितः ।  
 अलङ्कारप्रबन्धोऽयम् सन्त कर्णोत्सवोऽस्तु ॥<sup>१</sup>

इस महत्त्वपूर्ण अवतरण के द्वारा भामह से लेकर विश्वनाथ तक प्रबन्ध धारा का प्रवाह दिखाकर 'अलङ्कार प्रबन्ध' की पद्धति का निर्देशन किया है। 'रसिकप्रिया' में नन्द नन्दन की रति व्रीह्यामसमी रसा का वात्सान्ध्र्य मिलता है। 'कविप्रिया' में अलङ्कारशास्त्र का व्यवस्थित वर्णन है। 'आरम्भासा' एवं 'नखगिल' मुक्ताङ्क प्रतीत होते हैं परन्तु जब वे 'कविप्रिया' में भी पाए जाते हैं तो उनका वर्णन उसी अलङ्कार प्रबन्ध के अन्तर्गत हो जाता है। उसी प्रकार 'छन्दमाला' भी छन्द प्रबन्ध के अन्तर्गत आती है।

उपयुक्त विवेचन से निष्पन्न निकलता है कि केवल प्रबन्ध में पद ही नहीं अपितु उसके पारंगत भी थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में प्रायः प्रबन्धारम्भता पाई जाती है।

### केशव का चरित्र-चित्रण

काव्य जीवन-विटप का मधुमय सुमन है। यदि प्रबन्धकाव्य का विषय मानव है तो चरित्र-चित्रण उसका सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण तत्त्व है क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र ही वे आधार पर मनुष्य मनुष्य में अन्तर किया जा सकता है।



तीना स्त्रियों में स्वीकार किया है। निराकारावस्था में राम साक्षात् ब्रह्म हैं।<sup>१</sup>

भक्तवत्सल राम निगुण होते हुए भी भक्तों के स्नेह के कारण सगुण बन जाते हैं। दंगरथ के घर भी उन्होंने भक्तवत्सलता के कारण ही अभ्यस्य ब्रह्म किया। वे विष्णु रूप में तीर-सागर में गायन करते थे। ब्रह्मादि देवताओं की विनय से उन्होंने दंगरथ का पुत्र होना स्वीकार किया है।<sup>२</sup>

अपनी साकारावस्था में वे परम सत्यसंघ भगन् महादानी अनोधी मर्यादा नायक और दंगस्वी आदि सभी कुछ हैं।<sup>३</sup>

## सीता

कवि ने जग-जननी जानकीजी को एक अष्टदश पत्नी के रूप में चित्रित किया है। अग्रतिथ सुन्दरी पतिपरायणा साध्वी सीता में सभी गुण निहित हैं। हा उसमें आधुनिक युवती की आत्मा भी परिमलित होती है। अपने काय-बलाप से वह बहुत कुछ राधा के समान प्रतीत होती है। अपने पति के साथ वह बन-बो जाती है। आदर्श पत्नी सच्चे अर्थों में वही है जो अनेक आपत्तिप्रा के बीच पति के समस्त सुख-राश्री रहे न कि विषादमग्ना होकर उसके अवसाद का और बढ़ाए। ठीक इसी सिद्धान्त के अनुरूप—

अम तेज हरे तिनको कहि केनव खंचल चाव दूगचल सों।<sup>४</sup>

केनव की सीता आधुनिक सम्भ्रता में परी युवती के सद्गुण बीणा-वादन में प्रवीण है। वन में अभयमनस्क अपने पति का रिझाने के लिए इसीका सहारा लेती है—

जब जब धरि सोना प्रकट प्रबोना बहु गुन सोना मुख सीता।

पिय जियोह रिभाव दुखनि भजाव विविध बजाव गुनगीता।<sup>५</sup>

केनव की सीता पतिपरायणा नारी है। उसमें चातक का सा प्रेम है। चाहे वह अपना कमवावे उपल-वर्णन करे पर चातक कभी अपने प्रिय पयोद के दोषों की ओर दृष्टिपात करता है? कभी नहीं क्योंकि जिस एव बार प्रिय मान लिया फिर उसके अवगुणा का अवलोकन प्रेम राज्य की सीमा से प्रसंग की बात है। पानी पीकर भी क्या जाति पूछी जाती है? राघवेन्द्र ने स्वयं उसको निरपराध बनवास दिया था फिर भी परिवारसहित परिजन-समस्त राम की पराजय की सूचना कुग से पाकर केनव-व्यथित सीता उनमें महा तक बहती है—

थाव कहां हति बापहि जहो ।

सोक अतुल्य तीर न पहो ॥

१ रामचन्द्रिका राम प्रकाश खण्ड ४

२ रामचन्द्रिका ग्यारहवां प्रकाश खण्ड २२

३ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश खण्ड २७

४ रामचन्द्रिका वन-प्रसंग

५ रामचन्द्रिका, ग्यारहवां प्रकाश खण्ड २७

राज कुमार कहै नहि कोऊ ।

आरज जाइ कहावहु सोऊ ॥<sup>१</sup>

वह कोई सामान्य वेदना न थी । उसमें सीताजी की सारी जलन बसी थी ।

वेशव के राजनीतिज्ञ कौटिल्य के कारण जनम भी सन्नेह का भाव भरा है । हनुमान के वचन को वे योही नहीं मान लेतीं और न रावण की प्रवचना का शिकार होती हैं ।

लक्ष्मण

लक्ष्मणजी उन्हीं भारतीय धार्मिक चरित्रों में से एक हैं जिनका गौरव देश के सांस्कृतिक इतिहास में प्रसर है । रामकथा के सभी पात्रों में लक्ष्मण का चरित्र परमोज्ज्वल है । 'रामचन्द्रिका' के लक्ष्मण बहुत ही शिष्ट एवं धनुर्वासित हैं । परशुराम के प्रकोप के समय भी वे भरत और शत्रुघ्न के साथ ही कुछ बोझते हैं सो भी यही कि—

जिनको सु धनुर्ग्रह बद्धि कर । तिनको किमि निग्रह बिस पर ।

जिनके जग ध्वस्त सीस धर । तिनको तन सक्षत कौन कर ॥<sup>२</sup>

किन्तु भृगुनन्दन इस विनीत वाणी को चान्कारिता समझकर राम के विनय की भी उपेक्षा करते हैं सो लक्ष्मण का खून खौन उठता है । वे व्यग्य करते हैं—

क्षत्रिय हूँ गुह लोगन को प्रतिपाल कर ।

भूलिहु तो तिनके गुन भोगुन औ न धर ।

तो हमकों गुह बोध नहीं अब एक रती ।

औ प्रपनी जननी सुम हो मुख पाइ हती ।<sup>३</sup>

राम को वनवास मिलने पर लक्ष्मण को राजसेवा और भरत की गतिविधि का देखने का आदेश मिला पर राम के अनन्य भक्त लक्ष्मण का कण्ठावरोध हो गया । वे केवल इतना भर कह सकें—

गासन भेटो जाइ क्यों जीवन मेरे हाथ ।

ऐसी कसे भूझिए धर सेवा बन नाथ ॥<sup>४</sup>

प्रमाय की आशवा-मात्र से उस निसर्ग धूर का पारा गरम हो जाता है । भरत के दलबल का बोध होते ही वे भावेन भ्रम जाते हैं ।<sup>५</sup>

उनके कोमल हृदय में करुणा भी है । वानरराज सुग्रीव की ओर से जब सचि का प्रस्ताव आता है तब लक्ष्मण हनुमान का अनुमोदन करते हैं ।<sup>६</sup>

स्वभाव गूर लक्ष्मण की भाव उत्पन्न अधिक आस्था लगता है । वे गारुणागत-वत्सल

१ रामचन्द्रिका अन्तर्लीमर्का प्रकाश छद्म ३

२ रामचन्द्रिका अ३२

३ रामचन्द्रिका अ३५

४ रामचन्द्रिका, ११२=

५ रामचन्द्रिका १०१२५

६ रामचन्द्रिका १०१५८

हैं। रावण की ब्रह्म शक्ति विभीषण पर दौड़ पड़ी है और उसका अन्त होनेवाला है कि लक्ष्मण उस प्रमोद शक्ति को स्वयं अपने ऊपर ले लते हैं—

राक्ष्यो गले शरनागत लक्ष्मण धुत्तिक फूल-सी धोड़ि लई है।

भीषण द्वारा जब उनकी मूर्छा दूर हुई तो वे सनवार उठे।<sup>१</sup>

मर्यादा का ध्यान उन्हें इतना है कि साकेत लौट जाने पर राम के सामने नहीं बिस्तु—

योधि बुरि सञ्जुधन प लखन पुवाए पाइ।

शरन सुमित्रिपत्नारियो अगवादि के पाइ ॥<sup>२</sup>

जब राम अयोध्या की ओर रथ पर आसीन होते हैं तो भरत तारपी बनते हैं पर उन्हें सिमा बनना ही अभिप्रेत है—

सीनी छरो बुहुं धोर, सञ्जुधन लक्ष्मण धोर।

टार जहाँ लहै भीर, आनखजुवत सरोर ॥<sup>३</sup>

जिन मां जानकी के लिए उन्हें धोर सशाम करना पड़ा था उन्होंने बन छोड़ने की आज्ञा मिलने पर तो उनपर वज्रपात हो गया। निर्बलित बदेही का कण कदन सुन कर तो अति प्रखर रोदिरपिदनति वषम्य हृदयम् की हासत हो गई। बौद्ध कवि ङिङनागाधाय के लक्ष्मण की वरुणा शत शत पायथा मे बहु निकसी—

आर्या स्वहस्तेन वने विमोक्षु धोतुं च तस्या परिदेवितानि।

गुञ्जन लकासमरे हत मामजीवयन् आश्रितिरात्तवेर ॥<sup>४</sup>

केशव के लक्ष्मण का कठोररोष हो गया है। नयन जलपूरित हैं। इस घटना के बाद तो उन्हें ससार में विराग हो गया। कुश के सापने के एक बाण से अधिक न बना सके और अंत में मृत्यु होकर रथ पर गिर पड़े। उनकी असफलता पर आश्चर्यचकित राम का भरत समाधान करते हैं—

लक्ष्मण तीव्र तजो जब तें बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।

छोड़ोइ बाहुत ते सब तें तन। पाइ निमित्त करयो मन पावन ॥<sup>५</sup>

लक्ष्मण की अनेक युगों का अधिष्ठान तो अब समाप्त जाता है जब उसने आपस्य राम सुमित्रा से कहते हैं—

घोरिया कहीं कि प्रतिहार कहीं कियों प्रभु।

पत्र कहीं मित्र कियों भंजो सुलखानिय।

१ रामचन्द्रिका, १७४

२ रामचन्द्रिका २१५३

३ रामचन्द्रिका, भारमना प्रकाश ध्वज २

४ कुन्वाणा नाटक

५ रामचन्द्रिका, अष्टमोदश प्रकाश ध्वज ३ ३१

सुमद कहौ कि गिष्य रास कहौ किषौ दूत ।  
केसोरास हाथ को हथ्यार उर धारिय ।  
नन कहौ किषौ तन मन किषौ तन प्रान ।  
बुद्धि कहौ किषौ बत विभ्रम बनानिय ।  
देखिब को एक है धनक भाति कोटौ सदा ।  
सघन के मान कौन-कौन मन मानिय ॥<sup>१</sup>

## भरत

बान्सीकि और तुलसी क समान कवच न अपनी बान्सी-कृतिया के माध्यम से भरत क आदेश करिब का राम स भी बड़कर चित्रित किया है ।

उस बौद्ध चपत्ता के गान्त मानस म परशुरामजी के कवचन सुनकर सीता की उमियां उलझ हो जाता है । व सत्रम पूव कहना आरम्भ कर देत है और परशुरामजी को तनकार उठत है ।<sup>२</sup>

तुलसी क भरत के समान वैभव क भरत भी राम क धन्य भक्त हैं । उन्हें राम विरापी स कोई सहानुभूति नहीं । अपनी माया बनेया को भा जीम जलन और मुख म कीड़ा पकन का बात कहकर जा गिप्टावार का भग किया गया उसक मूल म राम के प्रति अनुपम मावना ही है । वैभव के भरत जब राम को लौगते जाते हैं और जब राम नीति धम क प्रमाण प्रस्तुत करके लौटना नहीं चाहत तो बान्सीकि क भरत के धनपन वत की तरह हठ करके बत जात हैं सामान भागीरथा प्रकट होकर राम क बहुरूप का उद्घाटन करती है ।<sup>३</sup>

भरत की धीमे तनी तो राम की पाहुना भकर राम और सीता की प्रशिक्षा देकर भिक्षाम म धा बस । भरतजी राम के धात्तापालक हैं उनके भक्त हैं । वे ऐसे न्यायप्रिय हैं कि जब राम सीता के निर्वासन का प्रश्न उठात हैं तो वे बहुरूप उनका विरोध भी करते हैं ।<sup>४</sup>

सीताजी के वनवास म वे विषादमय रहन लगत हैं ।

## रावण

वैभव के रावण का करिब अपनी निजी बिशेषता लिए हुए है । उनका रावण स्वभाव में धर्मिमानी है । बाणासुर जब धनुष तोड़ने को मत्तकारजा है तब उसका धर्म मान फूट पड़ता है ।<sup>५</sup>

धम के पाउक पवन-जनय के मुह म मेनु बांधकर सीता क चार का मारने के

१ रामचरित कौमर्ष प्रकाश पृष्ठ २१

२ रामचरित कौमर्ष प्रकाश पृष्ठ २२

३ रामचरित कौमर्ष प्रकाश पृष्ठ ३१

४ रामचरित ३३।३२ ३४

५ रामचरित ४१

लिए राम का आग्रह सुनकर वह एकदम भागबूला हो जाता है।<sup>१</sup>

‘रामचन्द्रिका’ का रावण कूटनीतिज्ञ है। सीता का राम के चरित्र में दोष लगा कर अपनी ओर मिलाना चाहता है—

सुम्हें देखि बूझ हितु ताहि माने ।

उदासीन तोसों सदा साहि जाने ।

महा निगुणी नाम ताको न सीजे ।

सदा दास भोपे कृपा क्यों न कीज ॥<sup>२</sup>

यहाँ पर कोई साधारण स्त्री रही होती और वह रावण की यह चाल समझकर बच निकलती तो उसका चरित्र कुछ ऊँचा हो गया होता। परन्तु सीताजी का चरित्र पहले न ही इतनी उच्चता पर प्रतिष्ठित है कि इस कल्पना से उनके चरित्र में कुछ बिभोपता नही आती। किन्तु रावण की ओर से देखने से यह चान बहुत ही स्वामाधिक प्रतीत होती है।

रावण का भगद को फोड़ने का प्रयास भी बहुत कूटनीति से युक्त है। वह भगद संवहता है कि देखो ये रामचन्द्र कुछ बहुत भले आत्मी नहीं हैं। उन्होंने हमारे परम मित्र तथा तुम्हारे बाप बालि को निरपराध मार दिया। तुम्हारे ऐसे सपूत के लिए यह बहुत नज्जा की बात है। तुम हमारा सब दल लेकर उसे आज ही क्यों नहीं मार डालते ?<sup>३</sup>

इन चालों से रावण की कूटनीतिज्ञता तथा क्षुद्रता प्रकट होती है। राम और रावण के बीच में भी केशव ने कुछ कूटनीति के दाव-येव दिखाए हैं। रावण का दूत राम से आकर कहता है कि ब्रह्मा विष्णु आदि तो हमसे विनती करते हैं इससे हमारा प्रताप और ऐश्वर्य समझ लो और मुझ होम की एक नवीन रीति भी ज्ञात हो गई है जिसका अनुष्ठान करने पर मैं तुम्हारे वंश का न रहूँगा।<sup>४</sup> अपने माय्य पुत्र के आकस्मिक निधन के कारण वह विषादमग्न हो जाता है किन्तु रावण सदा रावण ही है। पुत्र-शोक उसे कायर नहीं बना सकता। निदान मन्दोदरी की जातर बाणी को सुनकर तड़प उठता है और गरजकर धीरज बघाता है।<sup>५</sup>

वह सग्न मुक्ति का पुजारी रहा। वह केवल बाग्वीर ही नहीं युद्धवीर भी था। वह कहता ही नहीं करता भी था। हस्तलाभ की दगा यह है कि—

भोगरा द्विविध तार कटरा कुमुद नेजा ।

धर्मद गिला गवाक्ष विटप बिदारे ह ।

१ रामचन्द्रिका ४१२

२ रामचन्द्रिका

३ रामचन्द्रिका मो. इना प्रकाश खन् १५

४ रामचन्द्रिका, उन्नीसवाँ प्रकाश खन् १६

५ रामचन्द्रिका उन्नीसवाँ प्रकाश खन् २५

मधुना सरभ चक्र दधिमल सेप सवित ।  
मान तीन रावन थीरामघ्नर मारे ह ।<sup>१</sup>

### धीरसिंहदेवचरित

धीरद्वानरेण थी धीरसिंह के दरबारी बबि होने के नाते केशव ने उनके चरित्र की अनेक विगपताओं को व्यक्त किया है। राजनीति विघमण वह सेवक-सेव्यभाव को भली भाँति समझता है। जब सलीम अनुसुय्यन की हत्या का उपक्रम करता है तो वह समझता है—

वह गुलाम तू साहिब ईग तासो इतनो बीजहि रीत ।  
प्रभु सेवक को भूमि विचारि प्रभुता यह जो लेहि समारि ॥<sup>२</sup>

वह रणक्षमा में निपुण है और निर्भीक वीर है। उसके सामने गनु डट नहीं पाते।<sup>३</sup> धीरसिंह ने सलीम के साथ मित्रता करके उसीकी हित-साधना के लिए जो कार्य किया उसको उसने बहुत सराहना की। यहाँ तक कि वह उसके सुख दुःख का साथी बन गया।<sup>४</sup>

वह एक महत्वाकांक्षी पुरुष है। उसकी रणनीति अपने समय की धष्ट है। समय पर अपने प्राण बचाने के लिए वह रणभय से भ्रमण भी गहता है, पर उचित समय जान कर दूट पड़ता है और गनु का सहार कर डालता है। उसके हृदय में बहणा के लिए भी स्थान है। उसका दरबार बबियाँ से भरा रहता है। वह अक्सर देवदर काम करता है। रतनसेन

धीरद्वानरेण मधुनरगाह के आज्ञाकारी धमपरायण पुत्र का चरित्र बहुत रोमांचकारी है। रतनसेन के कारणिक भक्त को देखकर पाठक गोकाकुल हो जाता है।

राजा मधुनरगाह एक बार दरबार में पहुँचे। राजासाह धीर साह के बीच दोनों के झगड़ की टक्कर होने लगी। अन्तर ने कहा 'हाँ देवों तेरो भुवन। तीर के समान उनके वचन ममस्थान को घेप गए। उन्होंने तुरन्त ही अपने धरैय्य पुत्र के लिए पत्र लिखा।

पुत्र ! गिन्तीपति धारद्वान देखना चाहता है और समूचे दलबल के साथ। तुम्हारी भुजाओं पर अब पूर्वजों की आज्ञा बचाने का भार है।

उस पितृभक्त राजकुमार ने प्रण किया कि चाहे जीवन-सीला समाप्त हो जाए परंतु पिता के वचना का मन अभिप्रत नहीं। उसने रण का डका बजा दिया और वीरो चित्त मनोसहित प्रस्थान किया।<sup>५</sup>

भाग में भगवान् ब्राह्मण-वेद में उनकी परीक्षा लेने हैं। यदि भूमि बच रहेगी तो

- १ रामचंद्रिका उन्नीसवाँ प्रकाश पृष्ठ ४६
- २ धीरसिंहदेवचरित पाँचवाँ प्रकाश पृष्ठ ६१
- ३ धीरसिंहदेवचरित छठा प्रकाश पृष्ठ ७४
- ४ धीरसिंहदेवचरित सातवाँ प्रकाश, पृष्ठ ९२
- ५ रतनरावनी, ३

सताए धनेक हो जाएगी। एक सता के लिए भूमि खोदना जसे ठीक नहीं, वैसे ही बल्लरी शेष है तो सुमन धनेक लग सकते हैं। एक पुष्प के पीछे पूरी सता को खो देना कहीं की बुद्धिमानी है। ठीक वैसे ही यदि प्राण शेष रहते हैं तो फूल की साज फिर भी बचाई जा सकती है, अतः मर्यादा रखा मे प्राण विसर्जन मत कीजिए। लेकिन यह धर्मवीर समुचित उत्तर देता है—

गई भूमि पुनि किराँह बेलि पुनि जये जरे तें।

फल फूले तें लगहि फूल फूलत भरें तें॥

✓

×

×

किरि होइ स्वभाव मुशीस मति जगन् गीत यह पाइए।

प्राण गए किरि किरि मिलहि पतिन गए पति पाइए।<sup>१</sup>

दानो म जो उत्तर प्रायुत्तर होते हैं वे वचन साहित्य की मर्यादा हैं।

वह बहादुर मट्टी भर धीर सनिक। के साथ मरनों की विद्याल बाहिनी के सामने घट जाता है। रतनसेन का रण-वीर्य यथनीय है।<sup>२</sup>

वाद म धनेक मरना के एकसाथ उसीपर बार होने लगते हैं। साथी सितक जाते हैं। मड गिरता है तो कण्ड ही प्रमोद समय तक युद्ध की विभीषिका की समिवृद्ध करता रहता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव के चरित्र-चित्रण में कई के विशेषताएँ हैं जो उनके महाकविता की साक्षिणी हैं। उनके चरित्र भावार्थ हैं किन्तु तुलसी के समान प्राण-वांछा ने उनकी स्वाभाविकता का विसर्ग नहीं किया। वस्तुतः उनके चरित्र-चित्रण में बाल्मीकि की यथायथा एवं तुलसी की भाव-वादिता का सामंजस्य है। सभी उनके पात्रों की रेखाएँ तुलसी से भी स्पष्ट हैं। उनके पात्रों में धनेक स्थलों पर आधुनिक युग के प्रभु रूप मनोवैज्ञानिकता का भी समावेश हुआ है।

### केशव के संवाद

काव्य की आत्मा रस है तथा आव-रस एवं बला पदा दोनों का सुन्दर सामंजस्य ही कविता की सच्ची मर्यादा है। इस दृष्टि से भी जब हम केशव पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि उनकी कविता में धनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। ऐसे स्थानों में केशव के मवालों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्हें मवालों में धार्य पिक सम्मना मिली है। उनमें निम्नाना एवं सुदोस्तर धारि धारकाओं की सुन्दर ध्वनना हुई है। वहाँ धारधार सचमुच धारधार रूप में ही आए हैं कुछ भार के रूप में नहीं।

१ रतनबाणी, २

२ रतनबाणी

नाटक में जो प्रत्यक्षानुभूति अभिनय द्वारा प्राप्ती है वही महाकाव्यो में सुन्दर सजीव एवं उत्कृष्ट मवाणों द्वारा प्राप्ती है। उन स्थानों पर उनका काव्य साधारण भूमि से बहुत ऊँचा उठ जाता है। केवल के भासाचक प्रायः उनके चरित्र-चित्रण के विषय में कहते हैं कि केवल अपने पात्रों में प्राण प्रविष्ट न कर सके। परन्तु काल्पनिक म वास्तविकता नहीं। कपोपकपन में केवल अपने पात्रों के पीछे स्वयं खड होकर नही बातने और न दाए बाए में झुकने ही हैं। कपोपकपन की यह बहुत बड़ी विगपना है। इस शेष में स्वनाम धन्य गोस्वामी तुलसीदास भी न बच सके। उनके बहुत-से पात्रों का बानधोत में उनके माधुस्वभाव की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। केवल ने अपने पात्रों की व्यक्तित्व विशेषताओं का निर्वाह कपोपकपनों में बड़े कौशल से किया है। उनके पात्रों में हम जीवन का पूरा स्थान पाते हैं।

केवल का जीवन ही राज-रवारा में व्यय हुआ था भव राजनीतिक दाव-पेच और कटनीति का जितना ज्ञान केवल का था उनका हिन्दी-साहित्य के किसी अन्य कवि को नहीं। भाषा प्रवीणता और व्यवहार-कुशलता जवे गुण जो एक सवा-लेखक के लिए अनिवार्य हैं केवल में पूरा रूप से विद्यमान हैं। केवल के सवाद उनकी प्रत्युत्पन्नमति और सूक्ष्म मनोविज्ञान के परिचायक हैं। अन्य केवल के मवाणों की प्रमुख विगपना है।

उनकी सभी कृतियों में सवादों का प्रयोग मिलता है। अब हम सबसे पहले केवल की अमर कृति 'रामचरित्र' के सवादों पर विचार करेंगे। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित सवाद महत्वपूर्ण हैं—

- १ सुमति-विमति-सवाद
- २ रावण-बाणामु-सवाद
- ३ परगुराम-सवाद
- ४ भरत-वैद्य-सवाद
- ५ धूपलखा राम-सवाद
- ६ सीता रावण-सवाद
- ७ सीता हनुमान-सवाद
- ८ रावण भग-सवाद
- ९ लव-कुश भरत-सवाद

'रामचरित्र' के तृतीय प्रकाश में सुमति एवं विमति का सवाद 'असन्नराज' के प्रथम अंक के मूलक तथा मन्त्री का सवाद है। केवल नामों में अन्तर है। जयन्त के शिष्या की केवल ने कहा लक्ष्य अपनाया है यह बान दोनों का तलना न स्पष्ट हो आणी। मेरे बस इतना ही है कि नाटक गद्य में बातना है तो काव्य पद्य में। असन्नराज में मूलक कहता है—

वयस्य मन्त्रीय, को इसी सीताकरणहवातनतन्ततप्योदिततनुपुतधनुत



जासमण्डिदं निमभुसहभारसाहिजभसं पसोवता धिदुठावि ।<sup>१</sup>

मजरीक उत्तर देता है—

स एष निजयग परिमलप्रभोदितचारणचंचरीकघयकोलाहलमुसरितविकचक्र  
पालकमापालकुन्तलासकारो मल्लिकापीडो नाम ॥

प्राकृत एवं सस्कृत की बात को केशव सुमति विमति के संवाद में इस प्रकार  
परिणत करते हैं—

सुमति पूछता है—

को यह निरस्तति आपनों, कुत्तजित बाहु विसास ।

सुरभि स्वयवर अनु करी, मकुलित सास रसास ॥<sup>२</sup>

विमति उत्तर देता है—

जहि जस-परिमल-भस, चंचरीक चारन फिरत ।

दिसि विविसन धनुरवत सुती मल्लिका पीड नुप ॥<sup>३</sup>

केनव का यह पूरा प्रसंग जयदेव का प्रसाद है। चौथे प्रकाश में 'रावण-बाणासुर  
संवाद' है वह भी प्रमन्नराघव के प्रथम अंक के आधार पर है। यह संवाद आदि से अन्त  
तक नाटकीय है। बातचीत दोनों समान चलानेवाली योद्धाभा के उपयुक्त है। दैनिक बोल  
चाल की भाषा में दोनों एक-दूसरे पर बड़े ही मनुष्य ढंग से व्यंग्य प्रहार करते हैं। रावण  
रंगमाला में प्रवेश कर अपनी वीरता के उपयुक्त शब्दों का ही प्रयोग करता है—

शत्रु कोदण्ड है। राजपुत्री किते ।

दूकड़ तीन क। जाउं लंकाहि ले ॥<sup>४</sup>

अब उरा बाण का व्यंग्य सुनिए—

जुपे जिघ मोर। तजो सब सोर ।

सरासन तोरि। सहो सुख कोरि ॥<sup>५</sup>

इस प्रकार उक्ति वैचित्र्यपूर्ण व्यंग्यात्मक संवाद चलता है।

परशुराम-मवाक में राम अत्यन्त गंभीर शब्दों के प्रति पूज्य-बुद्धि रखनेवाले सबसे  
सच्चा उचित भाषा का प्रयोग करनेवाले चित्रित किए गए हैं। सुलसी के लक्ष्मण का प्रति  
निधित्व महा भरत करते हैं। केवल एक बार हम लक्ष्मण के मुख से यह सुनाई पड़ता है—

अपनी जाननी तुम ही सुख पाइ हती ।<sup>६</sup>

१ प्रमन्नराघव प्रथम अंक पृष्ठ २७

२ प्रमन्नराघव प्रथम अंक पृष्ठ २७

३ रामचन्द्रिका तृतीय प्रकाश छन्द १८

४ रामचन्द्रिका तृतीय प्रकाश छन्द १९

५ रामचन्द्रिका चौथा प्रकाश छन्द ४

६ रामचन्द्रिका चौथा प्रकाश, छन्द ८

७ रामचन्द्रिका, सातवां प्रकाश छन्द ३५

उन्होंने रामबामा तुलनादामजी के समान की भाँति बहकने नहीं दिया है। गिण्ठा एव सम्पत्ता की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करने दिया है। जिन परगुरामजी ने पृथ्वा की क्षत्रिय-विहीन इच्छाम बार बनाया था बड़े-बड़े महर्षि एव राजपूत्रिजिनका घोर घात लगाकर नहीं देखा सकता था उन्हें नम्रमय मंत्र प्रकार का उल्लास-भीषो सुनाते हैं।<sup>१</sup>

वेशव के मरने को कुछ काय जाता है परन्तु वह धर्म्य गिण्ठा एव मर्य है। राम के प्रति परगुरामजी जब धर्ममाननूचक गाने कहते हैं तो मरने कहते हैं—

चन्दन हूँ मैं प्रति तन धरये भाँति जठे यह गुनि सब सौज।

हैह्य भारे, नपति सघार सो जसल किन जूय जुग जोज ॥<sup>२</sup>

परगुराम के पृथ्वी पर कामदेव कहता है—

महादेव की धनुष यह परगुराम रिविराज।

तोरयो 'रा' यह कहत हो समुझ्यो रावनराज ॥<sup>३</sup>

भाग चलकर सीता-हनुमान-नवाह हनुमान रावण-नवाद तथा भगद रावण नवाह भी केन्द्र का वाग्दाम्य के मुन्दर प्रमाण हैं। बीच-बाच म मुन्दर मनोहारिणी तथा ममस्पर्शिता उक्तियो कहकर केन्द्र ने केन्द्रना का ही नहीं अपितु मौनिकता का भी परिचय दिया है। जन सीताजी द्वारा कही हुई मुक्ति के प्रति यह उक्ति—

ओनुर मैं वनमध्य ही तू मग करो खनीति।

कहि मुदरोशब तियन की की करिहै पचितोति ॥<sup>४</sup>

हनुमान एव रावण-नवाद की व्यर्थ एव वैयर्थ्यपूर्ण गानी दसिए—

रे कपि कौन तू ? कप की घानक दूत बलो रघुनन्दन जू को।

को रघुनन्दन रे ? त्रिगिरा-भरदूषन-दूषन भूषन भू को।

सागर कते तरयो ? जस गोपद काज कहा ? तिय चोरहि देख्यो।

कते बघायो ? जु मुन्दरि तेरो छुई दग मोवत बातक लेख्यो ॥<sup>५</sup>

कवि ने मानी सागर म सागर हा भर दिया है।

इसके प्रतिरिक्त हनुमानजी तुलसी के हनुमानजी की भाँति सठ महा अभि मानी प्रथम मूड गानिमा स रावण का मुगामिन नहीं करते घोर न राम के परब्रह्म स्वरूप के सबध म एक बड़ा व्याख्यान देने हैं।

भगव रावण-सुवाह की मर्यता एव मजीवता स्वन ही धारणक है—

कौन के सुत ? बासि के यह कौन बासि ? न जानिये।

कौन बासि तुम्हें जो सागर सात ग्हात बनाविये ॥

१ रामचरितमानस गोस्वामि तुलसीदास बनारस पृष्ठ २३७

२ रामचरितमानस सप्तम प्रकाश अ. २२

३ रामचरितमानस सप्तम प्रकाश, अ. २४

४ रामचरितमानस सप्तम प्रकाश अ. २५

५ रामचरितमानस सप्तम प्रकाश अ. २६

है कही यह ? और अगद देखलोक बताइयो ।

क्यों गयो ? रघुनाथ बान विमान बठि तिषाइयो ॥<sup>१</sup>

गूढोत्तर भ्रमवार की बितनी सुन्दर व्यञ्जना हुई है इसने कहने की भावश्यकता नहीं, साथ ही साथ अगद ने मर्यादा का ध्यान भा रखा है। ऐसे उत्सृष्ट मवादों से 'रामचंद्रिका' भरी पड़ी है। परिणामस्वरूप महाभाष्य नाट्य की समीक्षता से फटक उठा है।

बीरमिहदेवचरित 'विज्ञानगीता' जहाँगीर-अस चंद्रिका तथा 'रत्नवाक्य' आदि ग्रंथ तो आदि से अन्त तक सवाद के रूप में ही लिखे गए हैं। 'वीरसिंहदेवचरित' में क्या का प्रारम्भ दान एवं लोभ के संवाद से होता है।<sup>२</sup>

दोनों एक-दूसरे को मोचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं।<sup>३</sup>

मनोविज्ञान की दृष्टि से यह सवाद बहुत सुन्दर है। लोभ हृदय की सकीर्णता का चोतक है और दान हृदय की विपालता का। हृदय की इसी सकीर्ण मनोवृत्ति को लेकर लोभ दान को बुरी जनी खरी-खोटी सभी सुनाता है। उधर दान हृदय की विपालता के कारण लोभ के मित्र राजाओं की दुस्सा का केवल सकेत मात्र करता है।<sup>४</sup>

कुछ सवाद व्यर्थ के तक एक उपदेश से परिपूर्ण हैं। उपदेशों में आदर्शवाद का तथा उनकी में दरबार का प्रभाव है।<sup>५</sup>

विज्ञानगीता में आद्योपान्त निबन्ध-भावती-सवाद हैं। यद्यपि इसके अन्तगत भी बहुत से सवाद हैं जैसे—बलहरति-नाम सवाद, अहंकार दम्भ-सवाद मिथ्यादृष्टि भ्रमामोह-सवाद तथा विवेक-जीव-सवाद आदि। महामोह की जब रण की सूझी तो उसने अपनी स्त्रा मिथ्यादृष्टि से कहा कि अपने शत्रु विवेक को समाप्त करना चाहता हूँ।<sup>६</sup> उसपर मिथ्यादृष्टि ने समझाया कि वह सहसा कोई कार्य न करे।

आग मिथ्यादृष्टि ने यह कह दिया—

गगा धर वाराणसी, महादेव तिहि ठौर।

पाउ न धरिये पंच तिहि सुनो रतिव शिरधोर ॥<sup>७</sup>

तब तो महादेव की क्रोधाग्नि भड़क उठी।<sup>८</sup> काशीपुरी में भी उनके शव पड़व गए।<sup>९</sup>

१ रामचंद्रिका मोनइया प्रकार छन्द १

२ बीरमिहदेवचरित द्वितीय प्रकार छन्द ५

३ बीरसिंहदेवचरित द्वितीय प्रकार छन्द ६५, ६६

४ बीरमिहदेवचरित द्वितीय प्रकार, छन्द १, ११

५ बीरमिहदेवचरित पृष्ठ ११४

६ विज्ञानगीता पांचवां प्रभाव छन्द १५

७ विज्ञानगीता पांचवां प्रभाव, छन्द १७

८ विज्ञानगीता, पांचवां प्रभाव छन्द १८ १९

९ विज्ञानगीता, पांचवां प्रभाव छन्द २

इस ग्रन्थ का आधार नस्तुत का प्रसिद्ध रूपक 'प्रबोधन-द्रोण' है।

त्रिम प्रकार म 'बीरसिंह-वचरि' म दान-लोभ का नवाद है उसी प्रकार 'जहाँ गोर जस चरि' में उद्योग एवं भाग्य का सुवाच है। अन्त म निषय वाग्गाह जहागीर करत है। वाग्निवा म उद्यम एवं भाग्य के उत्तर प्रत्युत्तर बहून हो सुन्दर हैं। भाग्य एवं उद्यम दोनों हा जहागीर की प्रशंसा करत हैं।<sup>१</sup>

भाग्य और उद्यम दोनों ही अपने अपने पथ का समयन करत हैं। दोनों विप्र रूप धारण किए हुए थे। जब जहागीर पर यह रहस्य सुना तो उन्होंने उद्यम एवं भाग्य में कौन बड़ा है इसका निषय लिया।

उद्यम भाग्य प्रति उदित मति सुनि सवज्ञ प्रमान  
जग में उद्यम कथ ये मेरे जान समान।  
करम कने उद्यम करे उद्यम कमहि पाय।  
एक कम दुहुनि को कौनो विधि सुखदाय ॥  
औसों ये सत्तार में सोसों यह सत्तार।  
इहें नसे ते नसते है यह सगरो भ्रमभार ॥<sup>२</sup>

उपयुक्त ग्रन्थों के प्रतिरिक्त 'रत्नवावनी' में भी सुन्दर मवाद पाए जाते हैं। यह सपूर्ण ग्रन्थ सुवानों पर ही आधारित है। राजकुमार रत्नमेन पिता की आज्ञानुसार भक्त से मुक्त करने के लिए नदिबद्ध है। इसी लोभ समझाते हैं परन्तु किसीकी न मानकर दल बल के साथ गगन की कपाता हुआ मुक्त के लिए चल देता है। यह देखकर भगवान स्वयं विप्र-वग में रत्नमेन को समझाने के लिए आन हैं<sup>३</sup> और मुक्त से विरत करने की चेष्टा करत हैं।

जो कन पक्ष तो काम सब परिपक्वहि जग मझिये।  
प्राण जुती पति बहु रहै पनि सपि प्राण न छुझिये ॥<sup>४</sup>  
राजकुमार रत्नमेन विप्र-वचनों को सुनकर मोघ हो उत्तर देते हैं—  
किरि हाइ स्वभाव सुगील मति जगत दोत यह पाइये।  
प्राण गये किरि किरि मिलहि पतिल गये पति पाइये ॥<sup>५</sup>

अप्य म यह मवाच बहून दूर तक चलता है। इस सुवाच के प्रतिरिक्त रत्नमेन का अन्य साधियों के साथ सुवाच चलता है। इन सुवानों की सदन बड़ी विरोधना यही है कि उनमें सिद्धिपत्रा नहीं आन पाई।

केवल के सुवानों पर एक विहंगम दक्षिण करत हुए हम इस निषय पर पहुच

१ जहागीर उद्यम-द्रोण छन्द १६० १६८

२ जहागीर उद्यम-चरिका छन्द १०

३ यह है दान गान विप्र भो मुनिव वन।

४ केवल-वचन छन्द ११ लया म-वनइन

५ केवल-वचन छन्द १ लया म-वननैन

जाते हैं कि केशव दरबारी कवि होने के कारण दरबारी कूटनीति तथा राजनीतिपूर्ण वार्ता में प्रवीण थे। अथर्व एव चार्म्वदग्ध म पत्न होने के कारण मवादों के पारखी केशव के अधि कांश सवाद सुन्दर बन पड़े हैं। फड़कती हुई सजीव भाषा म पानानुकूल रस-व्यञ्जना, अथर्व विदग्धता मुहूर्तोद उत्तर प्रत्युत्तर तथा भावानुकूल छन्द-योजना इनके सवादों की कति पय विशेषताएँ हैं। सवादों में केशव की आत्मा मुखरित हो उठी है। हिन्दी-साहित्य में वही भी अन्यत्र इतने सुन्दर संवाद नहीं मिलते और इस दृष्टि से केशव का स्थान निर्विवाद सर्वोच्च है। सक्षप में केशव के सवाद ही केशव का स्वस्व हैं और उनका अर्थ ही केशव का सब कुछ।

### केशव की छन्द योजना

वेद भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ रत्न हैं। वेद की श्रुत्याएँ और मन्त्र छन्दों के आवरण में अपना कलेवर मभास हुए हैं। वेद के छन्द अर्थात् मान्य होने के कारण छन्द शास्त्र की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

छन्द पादोऽसु वेदस्य हस्तौ कस्पोऽय कथ्यते।<sup>१</sup>

छन्द वेदा का वरण होने हुए सर्वप्रथम वर्णित होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण है। फिर भारतीय वाक्य या गान् एव अर्थ के सम्मिलन से बनता है नाद पर अवलम्बित है। जहाँ अर्थ है वहाँ गान् का हाना अनिवार्य है। पाठवाक्य साहित्य में गान् का अन्वय हान के कारण अर्थ-व्यञ्जना मुखर हो उठती है सभी तो उसे संगीत-कला में अधिक श्रेष्ठ माना है पर भारतीय साहित्य तो संगीत से अधिक मेल रखता है। संगीत जीवन है। उसमें न केवल चेतन अपितु अचेतन की भी मुख्य करने की अपूर्व क्षमता है। यदि वाक्य जीवन के लिए है तो संगीत अर्थात् छन्द-व्यञ्जन की अवहेलना करना उसकी सम्मोहक शक्ति को कम करना है क्योंकि छन्दशास्त्र नाद-मोन्दय (संगीत) उत्पन्न करने के नियमों का शारङ्ग ही तो है। छन्दी की सजना मानव-मूर्ति के साथ साथ हुई वह कहना ही समुचित प्रतीत होता है।

छन्दों के प्रकार

वाक्य मनीषी छन्दों को दो प्रकार का मानते हैं एक बहिक और दूसरे लौकिक। लौकिक छन्द भी तीन प्रकार के बननाएँ जाते हैं मात्रिक बाणिक तथा अक्षर छन्द। हिन्दी-साहित्य में तीसरे प्रकार के छन्द नामावली है। उन्हें पूर्णवृत्ता में ही मन्तभूत कर दिया गया है।

केशव के छन्द विकास क्रम की श्रम परिणति है। बहिक युग से लेकर महाकवि वराह के समय तक अनेक पात प्रतिपाता से टकराते सुधारते-सुधरते वे अन्तिम बहिकर पा गए। सीधे शब्दों में यो कहा जा सकता है कि छन्दों में श्रमवेद में जन्म ग्रहण किया,

शास्त्र पुराण और संस्कृत काव्य-ग्रंथों में परिष्कृत हाथे रह और हिन्दी के जैन-साहित्य तथा नामप्रदियों के साहित्य से सनन कवि केवलतक अनन्य प्रकार की साज-सज्जा प्राप्त करके उन्होंने अन्तिम स्वरूप केवल में प्राप्त किया।

### केशव की छंदावली

महाकवि केशवदासजी ने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। हिन्दी के किसी कवि ने उनसे छन्दों का प्रयोग नहीं किया जितना अनेक केवल ने। इनके ग्रंथों में हिन्दी-साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध सभी छन्द प्राप्त मिल जाते हैं। हिन्दी के प्रारम्भयुग में 'दोहा' छन्द का प्रचलन रहा। उसके बाद 'रासो' नामक ग्रंथों में छन्द, तोमर, दोहा गाथा आदि एक आधा आदि प्राप्त हाथ हैं। भक्तियुग की निगुण शाला के सत्रों में दोहा छन्द ही अधिक अपनाया। प्रेमाश्रयी भक्तान् मूर्खों से भक्त भवती दोहा चौपाई शनी के लिए ही प्रसिद्ध रहे हैं। अष्टछाप के कवि अधिकतर पद रचना में व्यस्त रहे। उनमें से कुछ ने—मूर, नन्दास परमानन्द आदि ने—सार सरसी दाहा चौपाई और रोला आदि का भी प्रयोग किया है। कवन एक कवि तुलसी ही उस हैं जो केवल के सामने इस क्षेत्र में भी मीना साने खड़े हैं। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि छन्दों के क्षेत्र में केवल उनमें भी आग बढ़ गए हैं। उन्होंने लिखा भी है—

भाषाकवि समुहें सब सिंगरे छन्द सुभाइ।

छन्दन की भासा करी सोभन केसरदाइ ॥'

केवल ने अपने विभिन्न ग्रन्थों में जितने छन्दों का प्रयोग किया है उनकी नामावली से परिचित हो जाना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

### रसिकप्रिया

मात्रिक—दोहा छन्द और सबैया।

वर्णिक—वर्णित।

### कविप्रिया

मात्रिक—दोहा छन्द सबैया पद्यावती रोला सारदा और चौपाई।

वर्णिक—वर्णित और प्रमानिका।

### नखसिख

मात्रिक—दोहा और सबैया।

वर्णिक—वर्णित।

### रामचन्द्रिका

इस ग्रंथ की रचना में भिन्न भिन्न छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने की ओर कवि का आग्रह रहा है। क्योंकि आचार्य्य में ही कवि ने इस छन्दों को प्रवर्ण कर दिया है।

जागति जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छंद ।

रामचन्द्र की चन्द्रिका मरनत हौं बहु छन्द ॥<sup>१</sup>

मात्रिक छन्द—दोहा रोला घस्ता, छप्पय, पञ्चमटिका भरिल्ल पादाकुन  
त्रिमयी सोरठा कुण्डलिया सबया, गीतिका डिला मधुमार मोहन, विजया शोभना,  
सुमदा हीर, पद्मावती हरिणीतिका धौबोता हरिप्रिया और रूपमाला ।

वर्णिक छन्द—श्री सार दहक तरणिजा, सोमराजी कुमारललिता नग  
स्वरूपिणी हस समानिका नाराच विशेष चंचला दाशिवदना शार्दूलविकीरित  
चचरी मल्ली विजोहा सुरगम कमला सप्रता मोदक तारक कसहम स्वागता  
मोटनक अनुकूला भुजगप्रयास तामरख मलययद मासिनी चामर चन्द्रला किरीट  
सर्वया मदिरा सबया सुन्दरी सर्वया, तवी सुमुखी कुसुमविचित्रा बसन्ततिलका  
मोतिपदाग्र सारवती त्वरितगति द्रुतविलंबित चित्रपदा, भक्तभातग सीलाकरण  
दण्डक भनगोसर दण्डक दुमित सबया इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा रघाद्वता चन्द्रवरय  
वद्यस्पर्शितम् प्रमिताक्षाय धृषी मल्लिनग गगोदक मनोरमा और कमल ।

वीरसिंहदेवचरित

मात्रिक—छप्पय चौपही दोहा हीर कुण्डलिया और सोरठा ।

वर्णिक—नगस्वरूपिणी, भुजगप्रयास कवित्त, दण्डक नाराच ।

रतनबावनी

मात्रिक—दोहा और छप्पय ।

विज्ञानगीता

मात्रिक—छप्पय सबया दोहा सोरठा कुण्डलिया रूपमाला मरहट्टा हरि  
गीतिका, गीतिका त्रिमयी और सोमर ।

वर्णिक—नाराच दण्डक तारक हीरक भुजगप्रयास दोषक नगस्वरूपिणी,  
कवित्त चामर, मल्लिका सुन्दरी तोटन हरिलीला नतिनी स्वागता मदिरा और  
समानिका ।

जहाँगीर-जस चन्द्रिका

मात्रिक—छप्पय दोहा सबया सोरठा चचरी, रूपमाला ।

वर्णिक—कवित्त भुजगप्रयास समानिका निक्षिपामिका ।

यह सूची इस बात की सूचक है कि केशव ने अपने ग्रन्थों की अपेक्षा 'राम  
चन्द्रिका' में छन्दों का अधिक प्रयोग किया है। अपने सहाय-ग्रन्थों 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया  
और 'नलशिल' में उन्होंने परिभाषाएँ दोहों में दी हैं तथा उदाहरणों के लिए बहुधा कवित्त  
और सर्वया का प्रयोग किया है। केशव के पूर्ववर्ती मोहनलाल गोप आदि के ग्रन्थ अब  
अप्राप्य हैं। भक्त स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने किस-किस छन्द का प्रयोग

रिया। परन्तु केशव के बाद के कवि प्राचार्यों ने केशव प्रयुक्त छन्दों को ही अपनाया है। भाव-यकता के अनुरूप बड़े घोर छोटे छन्दों का प्रयोग किया गया है। छन्द-बहुल रचना 'रामचन्द्रिका' का अनुशीलन करने के पश्चात् स्वर्गीय डा० बड़ध्वातजी ने उसके सम्बन्ध में छन्दों का अजायबघर कहकर अपना लोभजनित अभिमत प्रकट किया है। केशव ने छोटे स छोटे घोर बड़े से बड़े छन्दों का प्रयोग करके अपनी रचना-शक्ति और बहुपता का परिचय दिया है। एकाग्रता से लेकर अष्टांगरी छन्द तक के अनेक नमूने एक ही स्थल पर लिए गए हैं। यद्यपि प्रबंध-काव्य में इतने छोटे छन्दों का प्रयोग काव्य-समीक्षकों की दृष्टि में बहुत अनुपयुक्त है।

निदर्शन के लिए कुछ छन्द प्रस्तुत किए जाते हैं।

एकाक्षरी श्रीछन्द

सो घी। रो घी।<sup>१</sup>

सार छन्द

राम नाम। सत्य धाम।

और नाम। कौन काम॥<sup>२</sup>

रमण छन्द

दुःख श्यों। हरि है।

हरि जू। हरि ह॥

बरनिषो, बरन सो। जगत को सरन सो॥<sup>३</sup>

सोमराजो

गुन एक रूपी सुनी वेद गाव।

महादेव भाकों सदा बिस सावें॥<sup>४</sup>

अष्टाक्षरी नगस्वरूपिणी छन्द

असो बुरो न सु गुन।

बुरा कया कहै गुन।

न राम देव पाइ ह॥

न देव सोऊ पाइ ह॥<sup>५</sup>

छन्दों में केशव की मौलिकता

महाकवि केशव छन्दशास्त्र के निष्णात विद्वान थे। कौन-से भाव को अभिव्यक्त करने के लिए कौन-सा छन्द उचित रहेगा यह ठीक से वह जान था। यथावधान के लिए

१ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ८

२ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ११०

३ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ११११

४ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द १५

५ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द १६



मूर्ति और सर्वयो का अपनाया जाना 'रत्नबावनी' में औररस का वणन और-गाथा बाल की द्विवाक्षर-सवलित दाम्पायली में दोहे और छप्पयों में प्रस्तुत करना इस बात का प्रमाण है।

इसके साथ उन्होंने अपने छंदा में संयोग में अपने नवान् मौलिक प्रयोग भी किए हैं। रामचन्द्रिका का तेईसवां प्रकाश इस दृष्टि से विशेष द्रष्टव्य है। उस प्रकाश में दो स्थलों पर चौबोला और जयकरी छन्द का असूतपूर्व मिश्रण किया गया है। वही पहले दो चरण चौबोला के हैं तो बाद के दोनों जयकरी के और नहीं इसके विपरीत। नीचे तिसरे उदाहरणों से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो सकेगी।

सोहर मन्त्रिन के जु चरित्र । इनके हम प सनि महामन्त्र ।

इनहीं लगे राज के काज । इनहीं लें सब होत भकाज ॥<sup>१</sup>

कालकूट लें मोहन रीति । मनिगन लें भति निन्दुर प्रीति ।

महिरा लें मावकता सई । मन्वर-उदर भई भ्रम भई ॥<sup>२</sup>

संस्कृत भाषा के वाक्य-सूत्रों में एक विशेषता यह है कि एक ही भाव की अभिव्यक्ति में कई श्लोक में करते हैं। केशव को छोड़ हिन्दी के किसी कवि ने इस परिपाटी का नहीं अपनाया। हिन्दी के कनाकार तो एक पद्य में अथवा अनेक पद्यों में एक भाव की अभिव्यक्ति करते रहे हैं। केशव ने राम के अन्त पुर की नारियों का नख शिख-वणन करते समय संस्कृत के अपने पाठित्य का पूरा परिचय दिया है।

सोत फूल सुभ जर्मो जराध । माँगूल सोहै सुभ भाप ।

बेनी फूलन की बरमास । भास भले बँदा जूत सास ।

तम-मगरी पर तेजनिधान । बडे मनी बारहो मान ॥<sup>३</sup>

साटक और स्नान के बाद कामिनी के शरीर की शोभा का वणन पढ़ादिया और हावलिना छन्द के बँवस दो चरणों में ही किया गया है—

भति भलमलीन सह भलक लीन । फहरत पताका अनु नवीन ॥<sup>४</sup>

अथवा—केतनि औरनि लीकर रम । रिलनि को तमपो अनु वम ॥<sup>५</sup>

इसी सम्बन्ध में केशव के चौबोला और कुदलिया छन्द भी उल्लेखनीय हैं। चौबोला पत्रह मात्राओं का छन्द है जिसके अन्त में लघु और गुरु आता है। केशव का चौबोला इस लक्षण के अनुरूप रहते हुए भी वर्णवत्त है जिसमें तीन भाग और अन्त में लघु-गुरु रख जाते हैं—

१ रामचन्द्रिका तेईसवां प्रकाश छन्द १४

२ रामचन्द्रिका, उद्देशवां प्रकाश छन्द २४

३ रामचन्द्रिका शकरीसवां प्रकाश छन्द ६

४ रामचन्द्रिका, शकरीसवां प्रकाश छन्द १५

५ रामचन्द्रिका, शकरीसवां प्रकाश छन्द ४१

संग लिये रिवि सिव्यन धने । पावक से तप तेजनि सने ।

बेजत बाप सहायन भले । देखन श्रीधपुरी कहें चले ॥<sup>१</sup>

आदि में एक दोहा और अन्त में एक रोना छन्द का प्रणिधान करने में कुडलियों में सत्यप्रतिष्ठ गिरिधरदासजी ने इस छन्द के दूसरे चरण की तीसरे के साथ एकरूपता रखी है किन्तु कुछ ने इस पद्धति के साथ चौथे चरण को पाँचवें के साथ भी एकरूप रखकर अपनी छाप लगा दी है । महाकवि वेधव ने दोना भागों में अनुसरण किया है ।<sup>२</sup>

छन्दों के क्षम में गैराव की नवीन देन है भक्तकान्त छन्दों का प्रयोग । यद्यपि उस समय के प्राय सभी हिन्दी काव्य ग्रंथों में और हिन्दी हों के क्या मराठी गुजराती पंजाबी फारसी बंगला तथा अंग्रेजी के काव्य ग्रंथों में तुकान्त का ही प्रयोग दिसलाई देता है और इसका कारण है अन्त्यानुप्रास अथवा तुकान्त के कारण उत्पन्न हुई सरसता एवं वन-मधुरता । हाँ संस्कृत में अधिक काव्य रचना भिन्न-तुकान्त ही है और संस्कृत वृत्तों में इसकी उपयोगिता है । उसीकी झली पर हर्षिधौष और अनूप शर्मा ने प्रेमप्रवास एवं सिद्धाय में अपना सफल काव्य-बोझल दिखमाया है । किन्तु महाकवि गैराव के ग्रंथों के अवलोकन से यह बात सिद्ध होती है कि हिन्दी में यह नवीन प्रयोग नहीं है । हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास नामक ग्रंथ में अतकान्त के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए उपाध्यायजी न बतलाया है कि कविवर चन्दबरदाई के काव्य में भी भक्तकान्त रचनाएँ उपलब्ध होती हैं । आज से तीन शताब्दों पहले कविवर केराव ने 'रामचन्द्रिका' में एक अनूठे ढंग में जिसमें मध्य में तो अन्त्यानुप्रास या अन्त में नहीं अतकान्त छन्द का सफल प्रयोग करके अपने परवर्ती बलाकारों का मार्ग प्रशस्त किया है—

गुन गन-भनि भासा बिस आतुसाला ।

जनक सुख गीता पुत्रिका पाइ सीता ।

अभिल भुवनभर्ता ब्रह्मचरि कर्ता ।

धिर-धरप्रभिरामी कीय आमातु मरमी ॥<sup>३</sup>

रस एवं भाव के अनुकूल छन्द

किसी विषय छन्द में कोई विषय भाव अथवा रस अधिक मनोरम प्रतीत होता है जबकि किसी किसीमें आभाहीन हो सकता है । यद्यपि केराव का चमत्कार प्रशंसन का प्रायः साग्रह रहता है फिर भी उनकी नैसर्गिक सहृदयता के कारण अनेक स्थानों पर भावों और रसों के सर्वथा अनुकूल छन्दों की रचना मिलती है । हिन्दी के सर्वथा, बरबे एवं भाविलो वृत्तों में शृंगार चरण और शान्त जैसे कोमल रस प्रायः अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं ।

धीर शीघ्र एवं भयानकरस की उत्तम अभिव्यजना छण्य नाराच धीर वास्य

१ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ३६

२ रामचन्द्रिका नवम प्रकाश छन्द १६ २८

३ रामचन्द्रिका छठवाँ प्रकाश छन्द २७

आदि छन्दों में होती है। यही कारण है कि कविने अपने बीररसात्मक प्रथम रत्नवावनी में अधिकतर छन्दों का ही प्रयोग किया है।

अहं भवान् पठान ठान हिष बान सु उठठिष ।  
तहं केशव काशी-नरेश इस रोष भरिठिठिष ॥  
अहं तहं पर सुरि जोर भोर चहु हु-बुनि बज्जिय ।  
अहं रत्नसेन रण कहूं चलिष हस्तिष महि कंधो गगन ।  
तहं हूं बपाल गोपाल तब विप्र भेप बुलिष बपन ॥<sup>१</sup>

वगैरह का प्रयोग भी बीररस में सफलतापूर्वक हुआ है।<sup>२</sup>

जानकीजी की खोज में जाते हुए बानरा की गति त्रिमयी छन्द में स्पष्ट भ्रमवती है। इसी रस में त्रिमयी का भी प्रयोग देखिए—

सुधीच-सघाती, मुसबुति राती केशव सायहि सूर नए ।  
आकास बिसासी सूर प्रकासी, तबहीं मानर आइ गए ।  
बिसि बिसि भवगाहन, सीतहि चाहन जूषप जूष तब पठए ।  
नल-नील रत्नपति अगद के संग दक्षिण दिसि की बिदा भए ।<sup>३</sup>

आटिका-विहार के लिए भगवान् राम भगव पर आरुढ़ होते हैं। कवि थोड़े के वणन में चबला छन्द को चुनता है जिसकी गति भगव की गति से मिलती है। छन्दों पढ़ने से प्रतीत होता है मानो थोड़ा खुद रहा हो—

भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाग ।  
बाजि आनिमो सु एक दगितत सानुराग ।  
सुध सुठ चारिहूँ अत रनु के उबार ।  
सीलि सीलि सेत ह ते जित्त चबला प्रकार ॥<sup>४</sup>

'रामचन्द्रिका' में छन्दों के विविध एवं क्षण क्षण परिवर्तित प्रयोग के कारण दो बातों की ओर आलोचक का ध्यान जाना स्वाभाविक है। एक तो यह कि एक प्रबन्धकाव्य में इतने शीघ्र छन्द बदलने के कारण प्रबन्ध-धारा में अस्थिरता आता है दूसरे यह कि किसी भी वणन का समन्वित प्रभाव नहीं पड़ता। निस्सन्देह यदि कवि प्रबन्ध धारा एवं समन्वित प्रभाव को ही उद्देश्य बनाकर अपने इस प्रकार का छन्द-परिवर्तन दोषपूर्ण नहीं किन्तु बेशक 'रामचन्द्रिका' में इतना ही उद्देश्य बनाकर नहीं बने। प्रबन्ध-धारा में बहने और बहाते चलने की अपेक्षा राम कथा के अनेक पड़ावों को समस्यारी मनन दिखाने परना उन्हें अधिक इष्ट है। निश्चय रूप से उन्होंने रामचरितमानस का धनुषमन न बनाना यष्ट

१ रत्नवावनी पत्रालय छन्द २

२ रामचन्द्रिका सोनहरी प्रकाश छन्द २०

३ रामचन्द्रिका तेरहवीं प्रकाश छन्द ३१

४ रामचन्द्रिका दशमीसर्ग प्रकाश छन्द १

की परवर्तिनी महाकाव्य-परम्परा का सामने रखा है। सस्कृत के महाकाव्या म पाण्डित्य प्रशान एव चमत्कार छोड़न का इच्छा से ही न कि एक दो सगों की विविध बदनत छाना में यमक आदि चमत्कारोत्पात्क भनकारा के साथ रचना करत थे। इस चमत्कारी प्रवृत्ति का उदय कालिदास से ही हो चुका था और भारवि भाष श्रीहृष तक प्रत्येक पग पर यह यन्त्री हुई दिखाई पड़ता है। मस्कृत महाकाव्या म जा पढ़नि एक-एक सग तक ही सीमित थी केव म आकर सारे महाकाव्य के क्षेत्र को घेर बठी। गायद केव को उनसे अधिक चमत्कार की आवश्यकता अनुभव हुई हा। रही वष्य-वस्तु क समन्वित प्रभाव की वान। वह भी लगभग उपयुक्त प्रकार की हा है। केव का उद्देश्य किसी भी वष्य-वस्तु को लेकर विविध छानों म विविध भलकारा के साथ विविध रूप स वणन करन की क्षमता निमा कर पाठक का विगणन अपनी राजसभा का मन-मुग्ध कर दना है। स्थान और भव सरा पर व उमे रम भावभीन भा करले चनन ही हैं। कहा रसमग्नता उत्पन्न करे और कहा चमत्कार का मात्र प्रयोग इसका चुनाव पाठक की अपनी उनपर ही अधिक है।

कही-कही एम छान भी दिखाई पड़ जात हैं जा रमणा की कमी पर ठीक नहीं उतरते। इनम अधिक सख्या उही पुस्तका क उद्धरण की है जो अभी तक प्रकाश म नहीं आ सकी। हा सकता है कि प्रतिनिधित्व ही कुछ का कुछ समझ बठ हा। विभिन्न उप सध प्रतिलिपिया का मिलाकर वज्ञानिक शोध-पद्धति के साथ उनके साहित्य के प्रकाशन की आवश्यकता भव भा बनी हुई है।

यत्र-तत्र कुछ सुमम्पानि प्रथा म भी एम उगाहरण दिखाई पड़त हैं जिनम यति भग मात्र भग आनि दोष हों। जहा तक यति का मवष है सामायत कुछ भिन्नता के साथ एक भिन्न प्रवाह म पड़न पर व दाप खटकनवान नहा रहन। भन अनुमान दिया जा सकता है कि केव न गयना एव पठयता का ही यति क अपर स्थान दिया है। किनु यह दणि व्यावहारिक-मात्र ही है। उन्तान शब्दतव गरीपसा बाल सिद्धान्त का गान्धीय रूप म नहीं निमा। दोष विवचन म उन्नि यति-भग का दाप हा माना है। एही मात्रा भग की बात उसके विषय म भी कई बानें समझ हा सकता हैं।

१ केव ने अपि भाषस्य भय नुयान छन्दोभगन कारणन की कवि-भाषाक्ति की अपनीकर शब्दों का परिवर्तित करक छाना क अनुमूल रखा हा और लिपिका न उन गाना के स्थान म फिर पूरा गान रम नि हो।

२ केव सधु-शेष के उच्चारणा म कुछ स्वतंत्रता अपनीकर चनन हों और पाठक का असन्ताप उठना हा न हा।

३ उनकी म वास्तविक भूने हा। किसी भी सम्भावना का मान सन पर उनका महत्व भगन है। पिछला सम्भावना का भा यदि स्वीकार कर लिया जाए, तो भा एत स्पष्ट इनने नगण्य हैं कि इनने बड़ साहित्य का इनन अधिक छानों म पूरी कुशलता से प्रस्तुत करनेवान साहित्यकार क महत्व में उमम काई फर नहीं पड़ना।

केव क साहित्य म मगवन्धरितगान के साथ विभिन्न प्रकार का कथा-कीर्तन

अनुस्यूत है जो सोने में सुगन्ध है अथवा एक पथ हो राज की बहानस को चरिताप करता है। 'गोतगोविन्द' के रचयिता के समान ही हमें तो यह कहना ही उचित लगता है कि यदि हरिस्मरण में आपना मन लगता है, यदि कसा बिनास में कुतूहल है तो अनेक छन्दों से भरी अन्वयों से आवृत केशव की सरस्वती का सहारा लीजिए।

## केशव का भाषाधिकार

कवि केशव उनमें से नहीं थे जो विश्व की सौन्दर्यमयी कृतियों को देखकर अपने हृदय-मण्डल पर अक्षित चित्रों का उसी भाषा में व्यक्त करें जिसमें वे उनके मन में उठते हैं। वे संस्कृत में सोचने से और हिन्दी में लिखने से। यद्यपि हिन्दी में लिखने का उन्हें पश्चात्ताप भी था।<sup>१</sup>

पंडितकुम की छाप स्थल-स्थल पर उनकी भाषा में परिलक्षित होती है। उनकी वाच्य भाषा बज ही है, परन्तु संस्कृत तथा बुदेनी आदि अन्य बोलियों का भी प्रभाव उनकी भाषा पर पड़ा।

### संस्कृत का प्रभाव

केशवदासजी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। यद्यपि इन्होंने रचना भाषा में की पर वास्तविक प्रेम संस्कृत से था। इन्होंने संस्कृत का प्रगाथ अध्ययन किया था। वग्न-परम्परा से उनके पूर्वज संस्कृत ज्ञान के लिए प्रतिबद्ध रहे थे। कवि के अध्ययन का प्रभाव उनकी विचारधारा पर अवश्य पड़ता है। संस्कृत-ग्रन्थों में जो सुन्दर भाव और उक्तिया केशव का मिलीं उनकी कवि ने मुक्त हृदय से स्वीकार किया है। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में संस्कृत शब्दों का सस्मर रूप में बहुल प्रयोग हुआ है। संस्कृत व्याकरण का वन के प्रयोग भी हैं।

कसुभापनु अघि अथ गनि अंसति।

कल पतितम की ऊरध पतन्ति।<sup>२</sup>

संस्कृत की विभक्तियों-सहित प्रयोग देखिए—

स्वलीलया निजेषध्या सीतयेव।<sup>३</sup>

केशव की कृतियों पर शर्मा की दृष्टि से भाव की दृष्टि से अनुवाद का दृष्टि से संस्कृत का पूरा-पूरा प्रभाव है। इस समय की विषय विवेचना हम आगे चलकर करेंगे।

### बुदेसखण्डी का प्रभाव

केशव की साहित्यिक ब्रजभाषा में बुदेसखण्डी का मिश्रण काफी मिलता है और यह स्वामाविन भी था। क्योंकि उनमें जीवन का अधिकार भाग वही नीता और ग्रामों का निर्माण भी वहीं हुआ। बुदेसखण्डी सख जसे—स्या (सहित) समदी भादयो मोर, मँडूभा (तकिया) गसभुई (छोटा तकिया गले के नीचे लपाना) गोरमगहन,

१ कविप्रिया, द्वितीय प्रकाश, अन्त १७

२ रामचन्द्रिका, प्रथम प्रकाश, अन्त २६

३ रामचन्द्रिका, प्रथम प्रकाश, अन्त ४२

(इच्छनुष) छन्दो (तग गया) आनिबी मानिबी आनिबी बरणा (नडा) घोरिला (मूटा) छारक (छहारा) मसहर (मुन्किसें) उपदि (गुहबनों की इच्छा कविच्छ) उरण (स्वीकार करना) पचम (कुन्नेना) चोला (पान रखने की पिटाही) छीय (छए) घानि घनक बुन्नेमन्नी गणों का प्रयोग किया है—

देवन स्यों अनु देवसमा मुभ सीय स्वपवर देसन आई ।<sup>१</sup>

इहिता समरी मुज पाइ घब ।<sup>२</sup>

कहू माट मान्यो करे मान पाबे ।<sup>३</sup>

कहू बोक बनि कहू भय सूर ।<sup>४</sup>

अगको कि अगराग गेहू आ कि गलमुई ।<sup>५</sup>

घनु है यह गोरमहाइन नाहों ।<sup>६</sup>

आही में घानको आनिबी दाहिबी ।<sup>७</sup>

मंसह समान मन मेनदान मानिबी ।<sup>८</sup>

केसोदास रति में रतीक ज्योति आनिबी ।<sup>९</sup>

वहीं-वहीं पर मुहावरे और लाकोक्तियों का भी प्रयोग किया है—

रामचन्द्र बटि सों यह बांध्यो ।<sup>१०</sup>

अब घनु श्री रघुनाथ जू हाथ क सीनो ।<sup>११</sup>

घोली घोड़त हों ।<sup>१२</sup>

बड़ कारी भूरी माधरी ।<sup>१३</sup>

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केन्द की भाषा में बुन्नेमन्नी गणों का प्रयोग अधिक मात्रा में मिलता है। अत्र का भाषा में बुन्नेमन्नी गणों की घलन करना अनुभव है।

अवधो का प्रभाव

मस्तुन और बुन्नेमन्नी के अतिरिक्त अवधो भाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

- १ रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड १३
- २ रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड १
- ३ रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड १३
- ४ रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड १४
- ५ रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड ६२
- ६ रामचन्द्रका, देवदण्ड प्रकरा दण्ड १६
- ७ रमिङ्गिया पृ ३३
- ८ रमिङ्गिया चौपा प्रकरा दण्ड १४
- ९ रमिङ्गिया चौपा प्रकरा दण्ड १४
- १० रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड ४२
- ११ रामचन्द्रका दण्ड प्रकरा दण्ड ४२
- १२ रमिङ्गिया दण्ड प्रकरा दण्ड २३
- १३ केन्दिकावली पृ ६

परंतु जिस प्रकार उनकी 'रामचंद्रिका' पर संस्कृत का प्रभाव अधिक लक्षित होता है और संस्कृत के शब्द अधिक पाए जाते हैं उसी प्रकार उनके 'वीरसिंहदेवचरित' नामक ग्रंथ में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक भाषा के शब्द जसे इहा उहा दिखाए रिझाउ समुझि, दीन, कीन आदि का बड़ा ही सुंदर प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए—

एक इहाँ ऊ जहाँ प्रति दीन मुखत बूहु बिसि के जन गारी ।<sup>१</sup>

प्रभाउ आपनो बिसाउ छाँड़ि भास भाहि क ।

रिझाउ रामपुत्र मोहि रामस लड़ाइ क ।<sup>२</sup>

म तेरो बलि बंधु बधायो वामन यह है ।<sup>३</sup>

गनि दुष्टता सहसोन ।

धृति नासिका बिनु कीन ॥<sup>४</sup>

'वीरसिंहदेवचरित' में अधिक भाषा के आधिक्य से प्रयोग का कारण यह भी हो सकता है कि यह ग्रंथ अधिकांश दोहा चौपाई छंदों में है। मानस की रचना भी इसी प्रणाली में हुई थी और इन छन्दा के लिए अधिक उपयुक्त प्रमाणित भी किया गया है।

### विदेशी शब्दों का प्रयोग

केनव के सभी ग्रंथों में प्रायः अरबी फारसी विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। कारण यह है कि जिस दरबार में वे रहते थे उसका लगाव अब मुगल-दरबार से हो गया था और स्वयं केरावदास किसी दरबारी के दरबार में बिना गोक-जोक पहुँचना चाहते थे। अतः यह स्वाभाविक था कि उनकी रचनाओं में अरबी-फारसी के शब्द भी पाए। लेकिन केनव विदेशी को अपना देनी बनाना जानते थे। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—

क बिनती भिम कश्यप के तिन बब अदेव सब बकसाए ।<sup>५</sup>

और भी—

बगौदास तेही काल कारोई हू आपोकाल ।

मुत्तन अवन बकसीस एक ईस की ॥<sup>६</sup>

केनव ने बरस में बकसाए बकसीस बनाकर यह दिखा दिया कि किस प्रकार बाहरी शब्दों को भी कवि ने अपनी अनुगामन में रखा है।

निज इत अभूत जरा के कियो बफतासी जरा जनु लायक के ।<sup>७</sup>

१ रामचंद्रिका छंदा प्रकाश छन्द २४

२ रामचंद्रिका, सान्ना प्रकाश छन्द २३

३ वीरसिंहदेवचरित पृष्ठ ६

४ रामचंद्रिका श्यामदास प्रकाश, छन्द ४०

५ रामचंद्रिका उन्नावर्षा प्रकाश छन्द १६

६ कविप्रिया छंदा प्रकाश छन्द ६७

७ कविप्रिया, पार्षदा प्रकाश छन्द १६

मपनानी—वह धम्मर जो राजा की भाषा में पहले भाग के पुराण में जाकर  
भाषण का प्रबंध करे । एन हा रत्न गण का प्रयोग तो तुलसी ने भी किया पर उसमें  
क्रिया का काम लना बेगव जैन कवि का हा काम था—

देवास्तक नारास्तक अतक एषो ममुकान ।

विमोघन-धन तन कानन रथाए ज ।<sup>१</sup>

फारमो ग तावनो (नाजियाना)—कीडा ।

विष्णो भाषा के गण का अधिक प्रयोग 'वीरभित्तिचरित' में ही लक्षित होना  
है । उनके द्वारा प्रयुक्त विष्णो भाषा के गणों की छटा भी देखिए—

गनपति मुखदायक पमुपति नायक सूर सहायक कौन गते ।<sup>२</sup>

पुनि तुम होन्ही कम्यका त्रिभुवन की सिरताज ।<sup>३</sup>

जामवत हुनमन्त नल नील मरातिव साथ ।<sup>४</sup>

कूरर एक किराहि घायो ।<sup>५</sup>

बेसि तिह तब कूरि से मराना प्रतिहार ।<sup>६</sup>

मिरहविनोद फानि पतिपन पधिक ।

गौर नयो सकुवेममम ।<sup>७</sup>

सनरज बसो साजा राखी रवि क ।<sup>८</sup>

बुनिव की जन् सागो है बान्हि ।<sup>९</sup>

नोके ही न की बनम ।<sup>१०</sup>

गैरगाह भमनम के उरसासी मुकनर ।<sup>११</sup>

घरण घरत सिना करत नौद न जावन गौर ।<sup>१२</sup>

मुनत श्रवण वचनाम एक ईस की ।<sup>१३</sup>

१ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द २

२ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ४२

३ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७३

४ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द २७

५ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

६ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

७ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

८ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

९ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

१० रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

११ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

१२ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

१३ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७

१४ रानवर्द्धका प्रथम प्रकाश छन्द ७



मधुकसाहि को तेग बाढघो दिन ही बनपानी ।<sup>१</sup>  
 कूचन कोज राज भव, आयो घरया कास ।<sup>२</sup>  
 मुप मायक के दरवार गय ।<sup>३</sup>  
 सोचहि सातह सिंघ सात हजार रसात्म ।<sup>४</sup>  
 ऐसो भयो करम को जोग सख्यो न कारो मालय सोम ।<sup>५</sup>  
 हमसे बीन नहीं नी दादि ।<sup>६</sup>  
 देखि पयायो बल को काम ।<sup>७</sup>  
 भूसिए न बन ऐन धाक को सो फल है ।<sup>८</sup>  
 कहिये कछु न रूप मोह को महल है ॥<sup>९</sup>  
 हौं गरीब तुम प्रकट ही सदा गरीबनिवाज ॥<sup>१०</sup>  
 साहि सनम कियो फरमान ॥<sup>११</sup>  
 करौ निवाजु सु बाकी आई ॥<sup>१२</sup>

### शब्दों की तोड़-मरोड़

विद्वन्नी कविता को कविता या रचना करने में एक स्वतन्त्रता है कि वे शब्दों को तोड़-मरोड़कर अपने अनुसार कर सकते हैं। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे शब्दों को ऐसा परिवर्तित रूप दे दें कि उसका स्वरूप ही विलकुल चला नाग और यह भालूम ही न पड़े कि यह कौन-सा शब्द है या उस शब्द का अर्थ हो बतल जाए। केदाव ने इस अधिकार का पूर्ण उपयोग किया है। कई स्थलों पर तो शब्दों को ऐसा रूपान्तरित कर दिया है कि वह दूसरा ही प्रतीत होने लगता है। साधु के स्थान पर साध साधक के स्थान पर सायक वेश्या के स्थान पर विम्बा।

बिहना फून्सी अंग न माई ।<sup>१३</sup>

- 
- १ विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव छन्द १७  
 २ विज्ञानगीता प्रथम प्रभाव छन्द ४  
 ३ वीरसिंहदेवचरित पृ० ५२  
 ४ वीरसिंहदेवचरित पृ० ७  
 ५ वीरसिंहदेवचरित पृ० ५१ छन्द ८  
 ६ वीरसिंहदेवचरित, पृ० ४६  
 ७ वीरसिंहदेवचरित पृ० ५३  
 ८ कविप्रिया, सत्ताशम्या प्रभाव छन्द ६  
 ९ कविप्रिया सत्ताशम्या प्रभाव छन्द ६  
 १० वीरसिंहदेवचरित, पृ० ३२  
 ११ वीरसिंहदेवचरित, पृ० ४२  
 १२ वीरसिंहदेवचरित पृ० ४७  
 १३ वीरसिंहदेवचरित, पृ० ६

अथ शास्त्र विचार क जिन जाग्योयत साथ ।<sup>१</sup>  
 धरत फल फूल न जायक की ।<sup>२</sup>  
 महिरा पी विस्वा यहै जाइ ।<sup>३</sup>  
 कहीं-कहीं बीरगायाकालीन शब्दा और तर्कों का प्रयोग है—  
 हसि बाग अनुराग उपजिय ।  
 बोलत कल प्यमि कोकिल सजिय ।<sup>४</sup>

### असाधारण शब्दों का प्रयोग

केवदासजी ने तत्वासीन साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त न होनेवाले शब्दों का प्रयोग भी किया है—

अन्त—विशेष  
 आसोक—बसक—हे (ये)  
 शत्रुघ्न—रघुनन्दन  
 लाच—रिचत  
 बपभारे—(पाप के मारने के घय में) बार (बर)  
 ऐनो—आइ—निघूत (जिसे घुगान लगे)  
 नारी—समूह  
 सहज—सुख

निरयक शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे सुधीर जु । इन्होंने कुछ शब्द अपने आप बना भी लिए हैं जैसे वासकठा घातकता बरख्यो, जेप नेय देयमान मुचावन दिखसाय आदि ।

अति कोमल केतव बालकता ।  
 यह बुकर राजसघातकता ॥<sup>५</sup>  
 देवन गुन परख्यो पुष्पनि बरख्यो हरख्यो अति सुरजाह ।<sup>६</sup>  
 अलखट कीर्ति लय भूमि देयमान मानिये ।<sup>७</sup>  
 मान मुचावन घात तजि कहिए और प्रसव ।<sup>८</sup>

- 
- १ रामचन्द्रिका पूर्वार्ध पृ ५
  - २ रामचन्द्रिका अष्टाव प्रकाश छन्द १३
  - ३ बेरमिहदेवचरित पृ ६
  - ४ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ३
  - ५ रामचन्द्रिका दूसरा प्रकाश छन्द १७
  - ६ रामचन्द्रिका, तीसरा प्रकाश छन्द १०
  - ७ रामचन्द्रिका, सातवा प्रकाश छन्द १६
  - ८ रसिकप्रिया पृ १८८

भाजू कहा दिससाथ सगी है ।<sup>१</sup>

तुव के लिए भसाधारण प्रयोग भी देखिए—

जहँ तहँ ससन महा मदमस ।

धर धारन धार न बलवस ॥<sup>२</sup>

महा बलदत्त दास या भय है सेना की दना करने में ।

## मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

मुहावरे और कहावतों के प्रयोग से उनकी भाषा की व्यञ्जकता में यथेष्ट अभिवृद्धि हुई है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा की सुन्दरता की वृद्धि करते हैं। केशव ने मुहावरे का प्रयोग तो किया है पर लोकोक्तियों की ओर उनकी रुचि कम थी। भालचारिक टीमटाम के कारण मुहावरों का प्रयोग भी थोड़ा स्थलों पर किया है।

## मुहावरे

केशव की सभी रचनाएँ में मुहावरे मिलते पाए हैं।

हँसि बोलत हो सु हँसे सब 'केशव' साज भगावत लोक भय ।

कछु बान बलावन धर धले मन मानतहीं मनमथ जग ।

तल्लि तू जु कहौ सु ठुतो मन मेरहु जानि यहै न हियो उमग ।

हरि रघों टक बीठि पमारत हो धंगुरीन पसारन लोक लग ॥<sup>३</sup>

राजि सभा तिनु का करि लेखी ।<sup>४</sup>

बीत जिसे व्रत भंग भयो ।<sup>५</sup>

बंघक बठोर ठेनि बीज धारावाह भट्ट ।<sup>६</sup>

भूँठ पाठ बंठ पाठकारी फाठ मारिए ।<sup>७</sup>

बोलत बोल कूल से भरें ।<sup>८</sup>

बाकी धर घालिये की बते बहा घनश्याम ।<sup>९</sup>

अब जो तू मुल मारिहै ।<sup>१०</sup>

१ रसिकप्रिया, पृ० २ ६

२ रामचंद्रिका, प्रथम प्रकाश पृ० २८

३ रसिकप्रिया लोकद्वय प्रमाण पृ० ६

४ रामचंद्रिका, पूर्वार्ध, पृ० ४१

५ रामचंद्रिका पूर्वार्ध पृ० ७४

६ रामचंद्रिका पूर्वार्ध पृ० १११

७ रामचंद्रिका पूर्वार्ध पृ० ११२

८ रामचंद्रिका, इकलौगवाँ प्रकाश पृ० १०

९ रसिकप्रिया पृ० १७३

१० रसिकप्रिया, पृ० १७८

## लोकोक्तिया

होनहार है रहै मिट मेटी न मिटाई ।

× ×

होय निनुका बख बख तिनका ह्व दूट ।<sup>१</sup>

घाग का तो दाघ्यो घग घाग ही मिरातु है ।<sup>२</sup>

घग्हि घग्गहारहि भावे ।<sup>३</sup>

कहि केगव घापनि जाय उघारि के घापहि साजन को माई ।

सोने मिगारहु सोपे सवारहु पीनर को पितराई न जाई ।

सातो है दूध सिराई न पीज ।<sup>४</sup>

प्याम बुन्दाई न घोम के छाट ।<sup>५</sup>

मह पारी मूंजी बाहरी ।

बिहना फूल्यो अगन भाइ ।<sup>६</sup>

अगि हाहि जरे ।

ओली ओड़त हो ।<sup>७</sup>

गाइन जाने नाचि मांगि घावे नहि मोहो ।<sup>८</sup>

## श्रीज, माधुर्य एवं प्रसादगुण

काव्य का भाषा में माधुर्य श्रीज और प्रसाद ये तीनों गुण वयास्यान मिल जाते हैं । माधुर्यगुण का सम्बन्ध वित्त का द्रवीभूत तथा आह्लासित करने में है श्रीमति उमको स्थिति शृंगार कहा आनन्द में होती है । रमिकप्रिया के शृंगारिक छन्दों में माधुर्य गुण की प्रधानता है ।

## माधुर्य

एक रदन गजवरन सदनबुधि मदन-कदन-सन ।

गौरि-नन्द धान-द-नन्द जगधन्व चर-पुत ।

सुल-दायक दायक मुकीति जगनायक-नायक ।

सतपायक पायक-वरिष्ठ सब सायक-सायक ।

१ रामचन्द्रा सप्तम श्लोका द्वा

२ कविप्रिया पृ ६०

३ रमिकप्रिया पृ ३३

४ रमिकप्रिया पृ ३३

५ रमिकप्रिया पृ ३३

६ रमिकप्रिया पृ ३३

७ रमिकप्रिया पृ ३३

८ रमिकप्रिया पृ ३३

९ रमिकप्रिया पृ ३३

१० रमिकप्रिया पृ ३३

११ रमिकप्रिया पृ ३३, पृष्ठ ७७

गुह धन धनंत, भयवन्त भय, भगतिवन्त भय भय-हरन ।  
जय कंसवदास निवासनिधि सम्बोहर भतरन सरन ॥<sup>१</sup>

भोज

भोजगुण दोर बीमत्स और रीदरस से सम्बद्ध है, क्योंकि यह गुण वित्त को उद्दीप्त करता है। 'रामचन्द्रिका' में बीररस की प्रधानता होने के कारण भोजगुण की प्रधानता है।

प्रथम दंकारि भुक्ति भारि संसार मर,  
छन्द कोदण्ड रह्यो मण्डि नव खण्ड कों,  
धाति प्रचला प्रचल धाति दिगपाल बल,  
धाति रिदिराज के धधन परधण्ड को ।  
सोयु व ईत कों कोयु जगबीन कों  
कोयु उपजाइ भुगुनद बरिबंन कों,  
बीधि वर स्वर्ग कों सार्धि अपचग धनु  
अंग को गण्ड मयो भेदि सहण्ड कों।<sup>२</sup>

प्रसाद

यद्यपि कुछ बट प्रालोचकों ने केनव पर विलम्बना का आरोप लगाया है परन्तु उनकी कविता में प्रसादगुण का भी अभाव नहीं। देखिए—

हाथी न साभी घोरे न चरे न, गार्जे न ठार्जे कुठार्जे मिलहे ।  
तात न मान न पुन न मित्र न विल न सोय कर्हें सग रहे ।  
बेसब काम के राम बिसारत और निकाम रे काम न ऐहे ।  
चेति रे चेति प्रजो वित भंतर अन्तक लोक अकेसोई जहे ।<sup>३</sup>

केनव की रचनाओं में इन गुणों की पूरा वाक्यापयोगिता में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती। इसीलिए डॉ० पीताम्बरान्न बहध्वात का यह कथन कि भाषा भी उनकी काव्योपयोगी नहीं है। माधुस और प्रसादगुण से तो उसे वे सार स्वाए बठ से अनगल प्रतीत होता है। इतना ही नहीं कुछ ने तो उन्हें 'कठिन काव्य का प्रत्येक कहर उनकी रचनाओं की ओर धांस उगान का कष्ट भी नहीं किया। एक साहब ने तो यहाँ तक करमाया है कि—

कवि को बीन न यहै विवाई । यूँसे केनव की कविताई ।<sup>४</sup>

लेकिन वास्तव में इन तथ्यों में सत्य का अंश बहुत ही कम है। यद्यपि यह बात

१ रत्नचन्द्रिका, प्रथम प्रमेय पृष्ठ १

२ रामचन्द्रिका, पाँचवाँ प्रमेय, पृष्ठ ४३

३ रामचन्द्रिका, सोनहवाँ प्रमेय पृष्ठ २९

४ अज्ञात

प्रत्यक्ष है कि यत्र-तत्र रसचर्चिका और कविप्रिया में कुछ कठिन छन्द भी पाए जाते हैं। लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है।

भाषाएँ 'गुन गुन छन्दों के आधार पर अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखत हैं—

“केवद को कवि हृदय नहीं मिला था उनमें वह सहृदयता और भावुकता नहीं जो एक कवि में होनी चाहिए। वे मस्कृत-साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाण्डित्य और रचना-कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस काम में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर ज़रूरी अधिकार चाहिए, वरता उन्हें प्राप्त न था। अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक संस्कृत-शब्दों की उक्तिवा नकर भरी हैं। पर उन उक्तिवाओं की स्पष्ट रूप से व्युत्पत्ति करने में उनकी भाषा बहुत कम समय हुई है। वदो और काव्यों की न्यूनता अत्यन्त कालतुल्यता के प्रयोग और सम्बन्ध के अभाव आदि के कारण भाषा भी अशुद्ध और ऊबड़-खाबड़ हो गई है और तात्पर्य भी स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो सका है। केवद को कविता जो कठिन कही जाती है उसका प्रधान कारण उनकी यही त्रुटि है—उनकी मौलिक भावनाओं की गम्भीरता या अद्वितीयता नहीं।” कठिण स्वतन्त्र को छोड़कर सब ही केवद की भाषा अत्यन्त सरल तथा प्रसन्नपूर्ण है।”

निस्सन्देह केवद को अपनी काव्य भाषा पर पूरा अधिकार है। केवदास के किसी छन्द में पाँच-पाँच छय निकलते हैं जैसे—

भावत परम हंस आत गुण सुनि सुख ।  
पावन संगति अनि विदुष ब्रह्मनि ।  
सुखद सकति कर समर सनेही बहु,  
अवन विदित यग केवदास गनि ।  
राजे निज राज पह भूषन विभल कमला  
सन प्रकासे परशर प्रिय मानि ।  
ऐसे लोकनाय क त्रिलोक नाय नाय ।  
नाय कर्षो रघुनाथ के अमरसिंह जानि ॥<sup>१</sup>

### शब्द शक्तियाँ

सत्कार के महान कवियों में एक भी ऐसा नहीं है जिसकी सारी रचनाएँ केवल लक्षणा अथवा व्यङ्गनामय हों। अतः हमें केवदासजी से यह धारा नहीं करनी चाहिए कि उनका सारा काव्य लक्षणा एवं व्यङ्गनामय होगा। हाँ उनकी रचनाओं में अनेक स्थला

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास भा. रामचन्द्र राय पृष्ठ २३

२ (क) रामचन्द्रिका सप्तम प्रकाश छन्द २०

(ख) रामचन्द्रिका तीसरा प्रकाश छन्द १५

(ग) विश्वामोक्ष सुनीय प्रभाव छन्द २७

३ कविप्रिया पृष्ठ १३१, छन्द २३

पर लक्षणा एवं व्यंजना के दशन होते हैं। उनके सवादा में तो इन दोनों शक्तियों का बहना ही गया। इसका बहुत विवेचन मवादों में कर चुके हैं। इन यहाँ केवल एक उदाहरण देने हैं—

सागर कसे तटयो ? जल गोयव, काज कहा ? सिय चोरहि देखा ।

कसे बंधाया ? ज सुन्दरि तेरी धुई बूग सोवत पासक लेखो ।<sup>१</sup>

केशवदासजी न साकेतिक अर्थ भी दिए हैं। जहाँ पर कवि पाठक को भाव व स्थल तक ले जाता है और सर्वोच्च गोक आदि के कारण से मीन होकर उगसी से इस तरफ सकत करता है। एक उदाहरण लीजिए।

राजा दशरथ बुढ़ापे की नन्धान गम एवं लक्षण को विश्वामित्र के साथ भेजना नहीं चाहते परन्तु वसिष्ठजी के समझाने पर भेजने के लिए विवश हो जाते हैं। दशरथ की मानसिक स्थिति का चित्रण केशव निम्न पंक्तियों पर करते हैं—

राम चलत नय के धुग सोवन ।

बारि भरित भए बारिद रोवन ।

पायन परि श्वायि के समि मोनहि ।

केशव उठि गए भीतर भीनहि ॥<sup>२</sup>

यहाँ कवि न केवल दशरथ के ही दशरथजी के हृदय की सारी वेदना बह रही है। सभा में रोना मर्यादा के विपरीत था अतः धीरे से कवि ने दशरथजी को सभा में घटकी भेज दिया है। सम्भवतः घर में जाकर वे फूट फूटकर रोए हों। इसी प्रकार राम की सेना के प्रस्थान द्वारा पृथ्वी कैसे धसकती-सी प्रतीत होती है इसके लिए तदनुकूल ही शब्दों का प्रयोग किया है। देखिए—

उच्चरि चलत हरि दक्षकनि दक्षरत ।

मच ऐसे मचकत भूतल के चल पत ।

लचकि-लचकि जात सेव क घसेव कन ।

भागि गई भोगवति मतल मिलत तल ॥<sup>३</sup>

दोष

लेकिन इसका साथ केशव में कुछ दोष भी पाए जाते हैं। उनकी 'रामचन्द्रिका' में बिच्छेपत य दोष परिलक्षित है—

१ च्युत-मस्कति दोष

बीछे मयवा मोहि साथ बई ।<sup>४</sup>

१ रामचन्द्रिका, चौदहवां प्रकाश पृष्ठ १

२ रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, पृष्ठ २७

३ रामचन्द्रिका चौदहवां प्रकाश पृष्ठ १८

४ रामचन्द्रिका बारहवां प्रकाश पृष्ठ ३४

अगद रक्षा रघुपति कीर्ति ॥<sup>१</sup>

२ पुनरुक्ति दोष

ले धनुवान बली तब पायो ।  
पल्लव ज्यों बल मारि उड़ायो ।  
कर साधना एक परसोक हो कीं ॥<sup>२</sup>

३ अत्रमत्व

अमानुषी नृमि मानरी करी ॥<sup>३</sup>

४ अघिक-पदत्व

अति द्वार द्वार यह जुट भए । बहुत रिल कगूरनि लागि गए ॥  
तब स्वम-संक यह सोम भयो । जनु अग्निशब्द यह धूम भयो ॥<sup>४</sup>  
यहां भयो 'अ' अघिक है ।

५ निहितापत्व

विषय यह गोदावरी धमसन के फल देति ।  
केसव जीवन हार के दुख असेव हरि लेति ॥<sup>५</sup>  
यहां विष और जीवन का प्रयाग पानी के अथ म अघिक प्रसिद्ध नहीं है ।

६ अदलीतत्व

दुख देख्यो ज्यों काहि स्थों आजहु देखो ।

७ समाप्त-मुनरातत्व

गाइ द्विजराज तिय काज न पकर लाग ।  
भोगव नरक घोर खोर को अमयदानि ॥<sup>६</sup>

यहां भागव नरक घोर के साथ वाक्य समाप्त हो गया था किन्तु फिर से उने धार की अमयदानि इतना जोड़कर ठठा लिया गया है ।

किन्तु इन दोषों के विषय में एक बात सामने आती है । दोष का दोषत्व तभी तक है जब तक रसानुवृत्ति<sup>७</sup> में या मुख्याप प्रतीति<sup>८</sup> में बाधा देता है अथवा दोष दोष

१ रामचंद्रिका तरङ्ग प्रकाश अ० ३७

२ रामचंद्रिका अक्षय प्रकाश अ० १३

३ रामचंद्रिका तरङ्ग प्रकाश अ० २१

४ रामचंद्रिका मानस प्रकाश अ० ३

५ रामचंद्रिका मन्त्र प्रकाश अ० ६

६ रामचंद्रिका अक्षय प्रकाश अ० २६

७ रामचंद्रिका अक्षय प्रकाश अ० २१

८ रामचंद्रिका तरङ्ग प्रकाश अ० ३६

९ रसप्रकाश प्रकाश । —साहित्य-संस्कृत-परिच्छेद

१० गुणादिति प्रकाश ।



लक्ष्य केवल भाव-साम्य ही को दिखाना है। कथानक-सम्बन्धी साम्य हम यथास्थान पहले ही दिखा चुके हैं।

विस्तारमय से केवल प्रमुख कृतियों पर ही यहाँ विचार करेंगे।

**रामचन्द्रिका एवं सस्कृत-ग्रन्थों में भाव-साम्य**

कविवर केशव की महत्त्वपूर्ण रचना 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ वाल्मीकि भूनि स्वप्न में दरसन दी हो चारु<sup>१</sup> के आधार पर आदिकवि की प्रेरणानुसार हुआ था। यद्यपि कथावस्तु 'वाल्मीकि रामायण' के अनुरूप ही चली है परन्तु जहाँ तक विस्तार तथा संवाद-वर्णन आदि का प्रश्न है, उक्त रचना के आधार स्तम्भ सस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध नाट्य प्रसन्नराधव तथा हनुमन्नाटक आदि<sup>२</sup> ही हैं। शैली का दृष्टि से कवि केशव 'कादम्बरी' से भी प्रेरित सिद्ध होते हैं। साथ ही नपथीयचरितम् 'अम्मात्मरामायण' एवं भीमदुर्गावदगीता आदि कृतियों का प्रभाव भी यत्र-तत्र स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भाव भाषा अथवा अनुवाद की दृष्टि से कथा के सूत्र निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

'रामचन्द्रिका' के प्रारम्भ में केशवदासजी ने प्राचीन परिपाटी के अनुसार कवि वंश-परिचय<sup>३</sup> में आत्मपरिचय दिया है। तत्पश्चात् मूल कथा प्रारम्भ करते हुए हनुमन्नाटक के अनुकूल ही दशरथ-पुत्रो<sup>४</sup> का उल्लेख किया है। द्वितीय प्रकाश में वर्णित राजसभा<sup>५</sup> आदि का आधार 'वाल्मीकि रामायण' ही है। तृतीय प्रकाश के आश्रम-वर्णन<sup>६</sup> में कादम्बरी की शैली की स्पष्ट छाया प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकाश में मन्त्रीक और नूपुरक प्रसन्नराधव के इन दोनों पात्रों का अनुकरण केशव के 'सुमति और विमति' के रूप में मिल जाता है। चौथा प्रकाश भी 'प्रसन्नराधव' से ही प्रेरित सिद्ध होता है। 'बाण रावण-संवाद'<sup>७</sup> से इसका प्रमाण मिल जाता है। इस संवाद में बह्वी-बह्वी तो मूल भाव स्पष्ट ही दृष्टिगत होता है।

पाचवें प्रकाश के अन्तर्गत 'अहल्या-वन्दन' के लिए केशवदास जयदेव के कृणी हैं। सूर्योत्प-वर्णन पुन 'प्रसन्नराधव' के आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार विन्नामित्र-व्रतक मिलन में राजादि के परिचय प्रमर्श में बह्वी तो कामलकान्त पदावली के मूल स्रोत कविवर जयदेव की रचना का शास्त्रानुवाद मिलता है तो बह्वी भावानुवाद दृष्टिगोचर होता है। किन्तु छठे प्रकाश में वर्णित ज्योत्नार, 'पल्लवाचार'<sup>८</sup> आदि के बिना जनक समसामयिक रीति-नीति-व्यवहार के निर्वाह में कवि ने निस्सन्देह अपनी मौलिकता

१ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द २२

२ रामचन्द्रिका तृतीय प्रकाश छन्द ४ २२

३ रामचन्द्रिका तृतीय प्रकाश छन्द १ ४

४ रामचन्द्रिका तृतीय प्रकाश छन्द १७-२४

५ रामचन्द्रिका, चतुर्थ प्रकाश, छन्द २ २४

६ रामचन्द्रिका छठवाँ प्रकाश, छन्द १६ ४५

का परिचय दिया है। सातवें प्रकाश में प्रस्तुत धनुमण तथा परगुराम-मवा<sup>१</sup> आदि प्रमग भी प्रसन्नराधव<sup>२</sup> से ही प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। आठवें प्रकाश में बणिन 'वारत' आदि कवि पुनः केय की मौलिक प्रतिभा के परिचायक हैं। इसी प्रकार नवें प्रकाश में मयरा का जो भयहेतना की है उसका आधार भी 'प्रसन्नराधव तथा 'हनुमन्नाटक' ही है। 'राज-सीता'<sup>३</sup> अथवा 'राम-सदमण-मवाद'<sup>४</sup> 'बाल्मीकि रामायण' से अनुप्राणित है।<sup>५</sup> हा 'भरत-कनयो-मवा'<sup>६</sup> 'हनुमन्नाटक' से ही प्रतिबिम्बित दृष्टिगोचर होता है।

दशहवें प्रकाश में जहाँ राम भारद्वाज-मवा<sup>७</sup> 'अध्यात्मरामायण' में प्रभावित दृष्टिगोचर होता है वहीं 'पञ्चवर्ग-वर्णन'<sup>८</sup> केयवराजजी ने 'हनुमन्नाटक' का अनुकरण किया है। इस प्रकार दशहवें प्रकाश में बणिन सीता-विवाह राम की विरहावस्था आदि अनेक प्रमग 'हनुमन्नाटक' एवं 'प्रसन्नराधव' नामक नाटकों के आधार पर ही प्रस्तुत किए गए हैं। तेरहवें प्रकाश में साता-हनुमान-मवाद<sup>९</sup> 'लका-महन'<sup>१०</sup> तथा विभीषण विरम्कार<sup>११</sup> आदि का वर्णन या 'हनुमन्नाटक' 'अध्यात्मरामायण' एवं प्रमन्नराधव आदि संस्कृत रचनाओं के आधार पर ही किया गया है।

सोलहवें प्रकाश में प्रस्तुत 'रावण-विभव-वर्णन' हनुमन्नाटकार की ही देन है। सत्रहवां प्रकाश भी 'बाल्मीकि रामायण' 'अध्यात्मरामायण' तथा 'हनुमन्नाटक' से प्रतिबिम्बित होता है। लक्ष्मण का पुनर्जीवित करने की युक्ति का उल्लेख केयव ने विभीषण के मुख से जिस प्रकार कराया है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। अतः उमे हम पुनः कवि की मौलिक प्रतिभा ही कह सकते हैं। छठारहवें तथा उन्नीसवें प्रकाश भी हनुमन्नाटक से ही प्रेरित होकर लिखे गए हैं। इसी प्रकार दोषकाय की रचना भी परासन संस्कृत कविता का ही प्रसाद-रूप है जिसका मसिप्त विवचन इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं।

कवि प्रवर केयव ने देव-स्तुति तथा रामराय-वर्णन अध्यात्मरामायण के आधार पर प्रस्तुत किया है। ब्रह्मा-विनय लव-भगद-युद्ध सीता का शाप आदि प्रमग कवि की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इसी प्रकार सीता निर्वासन के पारा भी कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। लव-कुग के राम-सत्ता के साथ युद्ध का जो चित्र हनुमन्नाटकार ने अंकित किया है उसीका प्रतिबिम्ब 'रामचन्द्रिका' में दृष्टिगोचर होता है। साथ ही कुछ प्रकरण ऐसे हैं जो कवि केयव की मौलिक सूझ-बूझ और कल्पना-शक्ति के परिचायक हैं।

१ रामचन्द्रिका भावार्थ प्रकाश छ० १३५

२ रामचन्द्रिका नवम प्रकाश छ० २२२

३ रामचन्द्रिका नवम प्रकाश छ० २७-२८

४ रामचन्द्रिका भावार्थ प्रकाश छ० ४७

५ रामचन्द्रिका मयराज प्रकाश छ० १७-१८

६ रामचन्द्रिका तेरहवें प्रकाश छ० ६३-६४

७ रामचन्द्रिका चौदहवें प्रकाश छ० ४१३

यथा—चीगान<sup>१</sup> छप्पन प्रकार<sup>२</sup> भाजन<sup>३</sup> स्नान-संयासी अभियोग<sup>४</sup> तथा सत्यवतु का भाष्यान<sup>५</sup> आदि ।

प्रसन्नराघव

उक्त पद्यन के उपरान्त अब हम रामचन्द्रिका में प्राप्त भाव-साम्य के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । सद्यप्रथम हम जयदेववृत्त 'प्रसन्नराघव' की ही बातें हैं जिसका सर्वाधिक प्रभाव उनकी 'रामचन्द्रिका' पर पड़ा है । 'प्रसन्नराघव' का प्रथम अंक में संस्कृत कवि जयदेव ने नृपुङ्गव-मजराव-मवाद के अन्तर्गत मञ्ज की शाखा का वर्णन किया है ।<sup>६</sup> इसी भाव को 'रामचन्द्रिका' में इस प्रकार लिया गया है—

मञ्जति मञ्ज पञ्चालिका कर संकमित अपार,  
माञ्जति है जनु मृपन की चित्तवृत्ति सुकुमार ॥<sup>७</sup>

एक अर्थ स्थल पर मजरीव उपस्थित राजाभा का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए भाषण करता है ।

इसी भाव का वेशव का विमति इस प्रकार व्यक्त करता है—

कोठ आबु राज समाज में बस सभ को घन कपि है ।  
पुनि अवन क परिमान तानि तो चित्त में भति हपि है ॥  
वह राज होइ कि रक कणवदास सो सुख पाइ है ।  
नृपकर्मका यह तासु के उर पुण्य भासहि भाइ है ॥<sup>८</sup>

बाण 'रावण-मवाद' में भी पूरा साम्य दृष्टिगत होता है ।<sup>९</sup>

वेशव के 'बाण' द्वारा उल्लिखित छन्द में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति कराई गई है ।<sup>१०</sup>

१ रामचन्द्रिका, उन्नामर्वा प्रकाश छन्द १ १५

२ रामचन्द्रिका तीसरा प्रकाश छन्द २८ ३१

३ रामचन्द्रिका चौतमर्वा प्रकाश छन्द १ १८

४ रामचन्द्रिका चावतीसवी प्रकाश, छन्द २ ३४

५ नृपि नरकरामवधमृगाधमन्दिपशानशानाका मञ्जकालिनेयम् ।

त्रिपुर मथन आपारोपणोक्तपिठानामतिरममवाव चामामूर्ध चित्तवृत्ति ॥

—प्रसन्नराघव प्रथम अंक, श्लोक १८

६ रामचन्द्रिका, तृतीय प्रकाश, छन्द १६

७ आकशाल त्रिपुर मथनोदय कोट्य नद्या । भौवीभुवीवलयतिवक कोट्यि व कपत ।  
तरयायानी परितरमुव रामपुत्री भवित्री । नृजगन्त्री सुगरजपता भापनेपोलवाप ॥

—प्रसन्नराघव प्रथम अंक, श्लोक २१

८ रामचन्द्रिका तृतीय प्रकाश छन्द ३१

९ यदीदरी वीराम्बर तदिहमारोप्येव हरकामुक् न नीये स्त्रीत ।

—प्रसन्नराघव, प्रथम अंक, पृष्ठ ४६

१० रामचन्द्रिका चतुर्थ प्रकाश छन्द ८

यही वाद विवाद जब उग्र रूप धारण कर लेता है तो 'प्रसन्नरागव' के वाण के मुख से युक्तिसंगत बात निकल पड़ती है ।<sup>१</sup>

केगव का वाण भी व्यय के वाद विवाद को महत्त्व न प्रदान करते हुए रावण से कहता है—

एवमुक्तं नहि ब्रूयिष्य विश्वमवाद अतश्च ।

यद्यजुष्यै कहि देहिगो मवनकदन-कोदण्ड ॥<sup>२</sup>

भारमन्नाथी रावण फिर भी अपने दुराग्रह पर अट्टा रहता है। वह सीता को हठपूर्वक से जाने की प्रतिज्ञा करता है।<sup>३</sup> केशवदासजी ने मानो मूत्र श्लोक को ही अपने काव्य में रच दिया हो—

अब सीय सिधे बिन हों न टरौ ।

बहुं जाहु न लौ लगि नम धरौ ।

जब लो न सुनौ अपने जन को ।

अति भारत सख हतै तन को ॥<sup>४</sup>

एक अन्य स्थान पर राम निमिवणी राजाओं की प्रशंसा करते हुए कहते हैं इन निमिवणी राजाओं की कीर्ति-ज्योति एसी ही है जिसको कोई क्षत्रिय स्पर्श नहीं कर पाया जिसका स्पर्श नहीं किया जा सकता जिसे हाथियों के गण्डस्थल से सखित मद का पक् पवित्र नहीं कर सकता तथा जिसे चमरो की वायु धमित नहीं कर सकती।<sup>५</sup> इसी भाव को केगव के द्वारा प्रकट किया गया है।<sup>६</sup>

विश्वामित्र ने भी जनक की प्रशंसा करते हुए कहा है राजा दशरथ ने चन्द्रमा के समान सुन्दर गरीरवास राम को जन्म दिया है तथा आपने ससार के नेत्रों को भ्रान्त प्रदान करनेवाली कुसुदिनी के समान सीता को।<sup>७</sup> केगव ने यह भाव भी ग्रहण किया है।<sup>८</sup>

१ किमनीक वाचिषदेष्टु । तन्निधनुःपथोत्तरास्तथ निरूपयिष्यति ।

—प्रमन्नरागव प्रथम अंक सूक्त ४८

२ रामचन्द्रिका चतुर्थ प्रकाश छन्द १६

३ अनादित्य वृथा मीना नान्यतो गन्तुमुत्सहे । न शोमि यदि कूरमात्रन्मनुजीविन ॥

—प्रमन्नरागव प्रथम अंक श्लोक ६

४ रामचन्द्रिका चौथा प्रकाश छन्द २६

५ छन्दःप्राया निरवनि न यथन् न यथष्टमाष्टे । त्वन्वधद्विपत्तमसी पञ्चनामा वयका ।  
लालाल शमयति ॥ यच्चामराया समीर । रहीन ज्योति किमपि तन्मीभूमुन शलवन्ति ॥

—प्रमन्नरागव तृतीय अंक श्लोक १२

६ रामचन्द्रिका पांचवां प्रकाश छन्द २२

७ अश्विनान्तराथ स हि राजा राममिन्दुमिव सुन्दराग्रम् ॥

शोकलोचनविगाहनशीलां त्व पुन कुसुदिनीमिव सीताम् ॥

—प्रमन्नरागव तृतीय अंक श्लोक २६

८ रामचन्द्रिका पांचवां प्रकाश छन्द २३

राम के द्वारा प्रशंसित राजा जनक भी राम के चरित्र से कम प्रभावित नहीं हैं किन्तु धनुष की गहनता ने उनके चित्त को अस्थिर कर दिया है अतः वह स्वगत भाषण के रूप में कहते हैं 'जिनकी कात्तिमारहित तपस्वी समस्त ससार में विख्यात है उन विन्वामित्र की उत्कटा निम्न्य कैसे हो सकती है'। फिर भी एक बात है तथा शिवधनु गहन है अतएव मेरी चित्तवृत्ति दोला के समान चंचल हो रही है।<sup>१</sup> इसी भाव को केशव ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

रिधिहि देखि हरष हियो राम देखि कबिताइ,

धनुष देखि डरप महा चिन्ता चित्त डलाइ ॥<sup>२</sup>

जमदग्नि का कथन भी दोनों ग्रन्थों में पूर्ण भाव-साम्य के साथ उपलब्ध होता है।

कोपाविष्ट परशुराम दगानन का हनन करने में उद्दय से अपने परशु की सम्बाधित करते हैं सैकड़ों राजाओं के कोमल बण्डों को काटने की कला में कुशल परम तू शीघ्रातिशीघ्र दगानन के कठार कण्डों का कानन का विनाशपूर्ण आनुय दिखलाए।<sup>३</sup> केशव भी अपने परशुराम के मुख से उक्त भाव की अभिव्यक्ति इस प्रकार कराते हैं—

अति कोमल नृप सुतन की प्रीति इसी अपार।

अब कठोर दसकंठ के काटहि कंठ कुठार ॥<sup>४</sup>

रामचन्द्रिका के सप्तम प्रकाश में परशुरामजी शिवजी का धनुष तोड़नेवाले भगवान से क्रुद्ध होते हुए कहते हैं 'शिवजी का धनुष तोड़ने के कारण दस रूपी भवनेप विनेप से विकसित सुम्हारी भुजाओं के मधु के समान शरिर से आज मैं अपने कठार कुठार का धाराधन करूँगा।'<sup>५</sup>

इसी भाव को ग्रहण करते हुए केशव ने अपने परशुराम के मुख से इसी प्रकार कहलवाया है।<sup>६</sup>

१ रामचन्द्रिका, तृतीय अंक श्लोक ३५

२ रामचन्द्रिका सातवां प्रकाश, सूत्र ४०

३ नृपरातसुहृमारकठनालीकानकलानुराल परश्वी मे।

दशवदनकठारकठपठिकानविनाविगम्य दशानु ॥

—रामचन्द्रिका चौथा अंक श्लोक ६

४ रामचन्द्रिका सातवां प्रकाश सूत्र ५

५ चण्डीशरामुक्त विमर्षविषयमानरर्षावलेपमविशेषविकारामाश्री।

बाहोस्तनादमधुना मधुना समानैराराधयामि शरिरे कठिन कुठारम् ॥

—रामचन्द्रिका चतुर्थ अंक श्लोक १६

६ रामचन्द्रिका, सातवां प्रकाश, सूत्र १६

'प्रमथरायव' के राम ब्रह्म परगुराम की शान्त करने की चेष्टा करते हैं ।<sup>१</sup> केगव ने राम की उक्ति में उपयुक्त श्लोक का भाव-साम्य दृष्टव्य है—

भृगुकुल कमल दिनेम मुनि, जीति सकल संसार ।

क्यों धतिहै इन सिमुन प डारत हो जस भार ॥<sup>२</sup>

राम के उपयुक्त कथन के उपरान्त तो परगुराम का अभिमान चरम सीमा पर पहुँच जाता है । यह न केवल राम का ही अपितु गुरु विन्वामित्र का भी तिरस्कार करत हुए जो कहते हैं<sup>३</sup> वही उक्ति केगव में भी प्राप्त होती है ।<sup>४</sup>

उक्त विवचन का सात्त्विक यह है कि केगव विरचित 'रामचंद्रिका' मस्कृत कवि जयदेवहृद 'प्रमथरायव' नाटक से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है ।

### हनुमन्नाटक

केगव पर 'हनुमन्नाटक' का प्रभाव भी विनेय रूप से उल्लेखनीय है । राम-परगुराम-सवाद भाव-साम्य की कसीटी पर खरा उतरता है । परगुराम अपने कुठार द्वारा सम्पन्न भयंकर कुर्यों का व्याख्यान देते हैं परन्तु राम अपने सहज सीम्य का ही परिचय देते हैं ।<sup>५</sup>

केगववास ने उक्त दोनों दोनों का भाव अपने एक छन्द में इस प्रकार व्यक्त किया है—

कठ कुठार पर अथ हार कि फूल भसोक कि लोक समूरो ।

क चित्तसारि चढ़ कि चिंता तन धदन चित्र कि पावक पूरो ।

१ प्रमथराय रोषारिम नुरु मे सेतमि गिर ।

विर कचायामैवकुमिरिह वारैविमभूत ॥

यरोवन्विच किउर दन सिद्धोमकरल

तैतमिन वारे भंगु मिनक का हारय मुधा ॥

—प्रमथरायव चतुर्थ अंक श्लोक २५

२ रामचंद्रिका सागवा प्रकाश दृष्ट २८

३ ईशान्यगुरुराचयननमेदुम उगवोद्धति

अयम्य कतर स मे तव शुभ सो न रक्क शरान् ।

गुप्यन्तिवप्रमथरायव पयासनात्मनर

मन्नाराचयनयाचयन किल भाद्री तनु कौशिक ॥

४ रामचंद्रिका सागवा प्रकाश दृष्ट ४७

५ जान मोहि निनकरकुने अत्रिय मोविदेम्यो

विरवामित्रावि म्यावतो दृष्टिभ्यात्पार ।

अग्निम्बरो कथयतु मनो दुर्दशो का यशो का

विने शत्वदहयुगल माहमिक्वाभिभेगि ॥

—हनुमन्नाटक, प्रथम अंक, श्लोक ४१, श्लोक ४४ भी दृश्य

लोक में लोक बड़ो अपलोक सु बेगबदास जु होउ स होऊ ।

विप्रत के कुल को भूगनम्बन, सूरन सूरज के कुल कोऊ ॥<sup>१</sup>

इसी प्रकार वंशवक्ता सम्बन्ध-याजना में भी 'हनुमन्नाटक' के भाव-साम्य के अनुरूप स्थल उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए भरत-वंशेयो-संवात् प्रस्तुत किया जा सकता है। हे माता ! हमारा पिता कहाँ गए ? स्वर्गसाक को। हाय ! क्या गए ? पुत्र नाक के कारण। चारा पुत्रों में से यह कौन-सा पुत्र है ? जिससे तुम छोटे हो भयान् राम। उन राम का क्या हुआ ? वयन खसे गए हैं। क्यों ? राजाजा में। राजा ने ऐसा क्यों कहा ? मुझमें वचनबद्ध होने के कारण। तुमको इससे क्या फल मिला ? तुम्हारा राज्याभिषेक। हाय मैं मारा गया !<sup>२</sup>

कंगद ने भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

कहू मात कहाँ नृप ? तात गए मुरसो कहि, क्यों ? सुत सोक गए ।

सत कौन सु ? राम कहाँ ह धव ? बन लक्ष्मन सोय समेत गए ।

धनकाज कहाँ कहि ? केवल मो सुख, यामे कहाँ सख तोकों भए ?

तुमकों प्रभुता, धिक तोका कहाँ अपराध बिना सिगरेई हुए ॥<sup>३</sup>

हनुमन्नाटककार ने पंचवटी का जो वर्णन किया है<sup>४</sup> उसकी भी छाया वैराव के पंचवटी वर्णन पर है—

सम जाति फटी बल की बुपटी कपटी न रहै जह एक घटी ।

निघटी बधि मोचु घटी हूँ घटी जन जोब जतीन की छूटी तटी ॥

अध घोघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी ।

बहुँ धोरनि गार्वति मवितनटी गन धूरजटी जन पंचवटी ॥<sup>५</sup>

सीना वियोग का वर्णन भी दोनों ग्रंथों में समान रूप में ही उपलब्ध होता है।<sup>६</sup>

हनुमन्नाटक में एक अन्य स्थल पर जब भगद रावण के पास दीत्यकर्म के सम्पादनाय पत्रचना है तो रावण का प्रतिहार एक छन्द में उसके प्रताप का सूचित

१ रामचन्द्रिका साक्षात् प्रकाश छन्द ३३

२ हनुमन्नाटक ३।८

३ रामचन्द्रिका अर्थात् प्रकाश छन्द ४

४ एवा पंचवटी एषुत्तम कुटी यथास्ति पंचवटी ।  
पान्थयेकपरी पुररुजगटी सरुपमिसौ बनी ॥  
गोशयन ननी सरुगिनगटी बलबाल बंचपुनी ।  
दिम्बानो-कुटी मवाग्निराकटी मूर्तिरिया हुम्कटी ॥

—हनुमन्नाटक तृतीय अङ्क, स्तोत्र २२

५ रामचन्द्रिका, ग्यारहवाँ प्रकाश छन्द १८

६ तुलसी—हनुमन्नाटक ३।२६ तथा रामचन्द्रिका २०।४२

करता है।<sup>१</sup>

केवलमयी ने भी निम्नलिखित छन्द में इस भाव का व्यक्त किया है—

पद्मी विरचित मौन वेद जीव मोर छड़ि रे ।

कुवेर बेर के कही म जप मोर मडि रे ॥

दिनेत जाइ दूरि बडि नारदादि संप ही ।

म मोनु चंद मद बुद्धि इष्ट की समानहीं ॥

छन्द रावण-महा में भी इन छन्द भाव-शायि के उदाहरण म नरे पठ है ।

छन्द कपहुचन पर रावण उछन भनक प्रान पूछता है बिनका उत्तर स्वाभिमानो प्राद तलान गैता है और भन म अभिनाना रावण को ही नम्रित होना पड़ता है।<sup>२</sup>

काव का छन्द भी उक्त भाव क भाव का प्रकट करता है।<sup>३</sup>

यम परिचय म भा ननुछ न हाकर अब रावण यम परिचयामक प्रान करता है तो अवस्थान ही उने हनुमानजी का विनीतिका का स्मरण हा जाता है।<sup>४</sup>

केवल ने भी उक्त भाव का व्यक्त किया है।<sup>५</sup>

एक भन्य स्वन पर भाननाया कुम्भका युद्धभूमि में राव का भरना परिचय देता हुआ उन्हें प्रभावित करने का अनकव प्रयत्न करता है।

- १ इन्द्रजित्वा नैव मन्त्रायः । बहिः स्वात्  
स्वः स्वः ब्रह्मणः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ॥

—इन्द्रजित्वा कः कः कः कः, स्तोत्र ४५

- २ रामचन्द्रिका मन्त्रायः प्रकाशः स्वः २
- ३ इन्द्रजित्वा नैव मन्त्रायः । बहिः स्वात्  
स्वः स्वः ब्रह्मणः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ॥

- ४ रामचन्द्रिका मन्त्रायः प्रकाशः स्वः ३
- ५ इन्द्रजित्वा नैव मन्त्रायः । बहिः स्वात्  
स्वः स्वः ब्रह्मणः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ॥

—इन्द्रजित्वा कः कः कः कः, स्तोत्र ४६

- ६ रामचन्द्रिका मन्त्रायः प्रकाशः स्वः ४
- ७ नैव मन्त्रायः । बहिः स्वात्  
स्वः स्वः ब्रह्मणः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ।  
स्वः स्वः नैव मन्त्रायः । स्वः स्वः नैव मन्त्रायः ॥

—इन्द्रजित्वा कः कः कः कः, स्तोत्र ४७



केशव विरचित एक छंद में उक्त श्लोक का छायानुवाद प्रस्तुत किया गया है ।<sup>१</sup>

उक्त विवेचन के आधार पर यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि केशव की रामचंद्रिका प्रसन्नराघव की ही भांति हनुमन्नाटक से भी पर्याप्त प्रभावित है ।

## कादम्बरी

बाणभट्ट की कादम्बरी से भी केशव स्पष्ट रूप से यत्र-तत्र प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं । उदाहरण के लिए 'शुक्नासोपदेश' के अन्तर्गत महाकवि बाण ने ऐश्वर्य 'यौवन सौंदर्य एवं शक्ति' को अविनयो का स्थान तथा अनर्थ की परम्परा के नाम से अभिहित किया है ।<sup>२</sup>

कवि प्रवर केशव भी उक्त शिला से प्रभावित होकर निम्नलिखित छंद की रचना करने में सफल हुए हैं—

जोषन अथ अविदेकी रंग ।

विनस्यो को न राजसी संव ॥<sup>३</sup>

यद्यपि हम केशव की रचनाओं में 'बाण' से प्रभावित स्थला का बाहुल्य तो नहीं मिलता तथापि जो भाव-साम्य केशवदासजी ने प्रस्तुत किया है वह सफल एवं प्रगल्भीय है । उदाहरण के लिए कादम्बरी में प्रयुक्त भाव<sup>४</sup> को केशव ने भगीरथ पथ गामी गंगा कसो जल है<sup>५</sup> कहकर नये-तुले दाब्द में कसा सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

एक दूसरे स्थल पर<sup>६</sup> कविवर केशव ने 'विधि के समान हैं विमानिकृत राजहंस'<sup>७</sup> परिणत कर दिया है । इसी प्रकार राज्य के नागरिक स्वच्छ वेश भूषा धारण करते थे तथा मलिनता तो कही नाममात्र को भी न थी । यदि मालिन्य ही खोजना है तो वह केवल वायुमण्डल को पवित्र करने वाले हविर्धूम में ही मिल सकता है अन्यत्र नहीं ।<sup>८</sup>

बाण के इस भाव को केशव ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

होम धूम मलिनई जहां ।<sup>९</sup>

१ रामचंद्रिका अठारहवां प्रकाश छन्द २२ २३

२ गर्भस्वतन्त्रमभिनयैभक्त्यम् प्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चति महतीव रत्नचन्द्रपरम्परा सर्वा ।  
अविनयानामेवैकमन्येषामापननम् किमुन समवाय ।

—कादम्बरी शुक्नासोपदेश पृष्ठ २२९

३ रामचंद्रिका त्रिंशत्वां प्रकाश छन्द १७

४ गंगा प्रवाह इव भगीरथ पथ प्रवत ।

—कादम्बरी शूद्रकवचनम्, पृष्ठ ८

५ रामचन्द्रिका, द्वितीय प्रकाश छन्द १०

६ विमानिकृत राजहंस कमलयोनिर ।

—कादम्बरी, शूद्रकवचनम्, पृष्ठ ८

७ रामचन्द्रिका त्रितीय प्रकाश छन्द १०

८ यत्र मलिनता हविर्धूमेषु ।

—कादम्बरी, आवास्याप्रमथनम्, पृष्ठ ८६

९ रामचन्द्रिका, अठारहवां प्रकाश छन्द ८

नेशवन्धसजी का वन-वणन भी काव्यम्बरी पर आधारित है ।<sup>१</sup>

तरतालोत तमाल ताल हिन्तास मनोहर ।

मजस मंजुस तिसक सकुच कुल नारिबेर बर ॥

एसा सलित सबग सग पुगीप्स सोह ।

सारो सूर कुल कलित विसफोरित प्रति मोह ॥<sup>२</sup>

योगचरितम्

उत्ति-भविष्य के लिए प्रसिद्ध 'नैषधीयचरितम्' जसी उत्कृष्ट रचना से प्रभावित कवि प्रवर ने धनकायकाची पत्नी की रचना की है । उगाहरण के लिए सरस्वती दमयन्ती के सम्मुख इन्द्र अग्नि यम वरण तथा नल सभीक पञ्च म चरित होने दलोक प्रस्तुत किया गया है ।<sup>३</sup>

केगव ने भी निम्नलिखित छन्द म कई देवताओं का एकसाथ वणन किया है—

कविकुलविद्याधर सकल कलाधर राज राजवर वेध बने ।

गनपति सुखदायक पशुपति सायक सूर सहायक कौन मन ॥

सेनापति धुधजन मगल गुरु गन धमराज मन बुद्धि धनी ।

बहु सुम मनसाकर कदमामय अरु सूर सरगिनी सोभसनी ॥<sup>४</sup>

उसी प्रकार कविप्रिया म भी एव छन्द के पाव अर्थ निकलते हैं ।<sup>५</sup>

द्रविकम्

सुप्रसिद्ध नाटककार 'तून्व' ने गहन अघकार का वणन किया है ।<sup>६</sup>

केगव ने निम्न छन्द का भी वणन ऐसा ही है—

बरनत केगव सकल कवि विषम गाढ़ तम-सष्टि ।

कुवुरय सेवा ज्यों भई, सतत मिथ्या दृष्टि ॥<sup>७</sup>

१ तालत्रिकनमालहिन्तासकुलबहुलै इततन्व कुलितनारिकलकलपि- कलोललोभलवलल  
नंग पल्लवै उल्लसितवनरेणयल्लै अलिकुलमकार मुण्डर सहकारै वन- शोकिल कुलकलाप  
कोनाइनाभि ।  
—काव्यम्बरी नाकल्याभमवर्णनम् पृष्ठ ८३

२ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ४२

३ देव पतिविदुषि । नैषधराजवल्ग

निर्णयउ न विमु न विवडे भवत्या ।

नाम नव- सन तकानि महानामो

मयेननुम्भसि वर कनर परस्ते ॥

—नैषधीयचरितम् तेरहवा सग स्तोत्र २४

४ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द ४२

५ कविप्रिया छन्द २३ पृष्ठ २५१

६ निम्नोक्त तमोऽङ्गुलि वधनीकांवन नम ।

अमपुष्पमेवैव दृष्टिर्निजस्तनू गता ॥

—मृन्दकविक प्रथम अंक स्तोत्र २४

७ रामचन्द्रिका तेरहवा प्रकाश छन्द २१

केशव विरचित एक छन्द में उनका 'लोक' का छायानुवाद प्रस्तुत किया गया है ।<sup>१</sup>

उक्त विवेचन के आधार पर यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि केशव की रामचन्द्रिका प्रसनराधव की ही भाँति 'हनुमन्नाटक' से भी पर्याप्त प्रभावित है ।

### कादम्बरी

बाणभट्ट की कादम्बरी से भी केशव स्पष्ट रूप से ग्रन्थ-ग्रन्थ प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं । उदाहरण के लिए शुक्नासापदेश के अन्तर्गत महाकवि बाण ने ऐश्वर्य 'मौवन' 'सौंदर्य' एवं शक्ति को अविनयों का स्थान तथा मनन की परम्परा के नाम से अभिहित किया है ।<sup>२</sup>

कवि प्रवर केशव भी उक्त शिखा से प्रभावित होकर निम्नलिखित छन्द की रचना करने में सफल हुए हैं—

जोवन अरु अविनेकी रग ।

विनयो को न राजसी संग ॥<sup>३</sup>

यद्यपि हम केशव की रचनाओं में 'बाण' से प्रभावित स्थला का बाहुल्य तो नहीं मिलता तथापि जो भाव-भाव्य केशवदामजी ने प्रस्तुत किया है, वह सफल एवं प्रशंसनीय है । उदाहरण के लिए 'कादम्बरी' में प्रयुक्त भाव<sup>४</sup> का केशव ने अगौरव पद गामी गंगा कसो जल है<sup>५</sup> कहकर जपे-नुने शरणी में बैसा मुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

एक दूसरे स्थल पर<sup>६</sup> कविवर केशव ने विधिके समान हैं विमानीकृत राजहंस<sup>७</sup> में परिणत कर दिया है । इसी प्रकार राज्य के नागरिक स्वच्छ वेश भूषा धारण करते थे तथा मतिनता तो कही नाममात्र की भी न थी । यदि मातिय ही खोजना है तो वह केवल वायुमण्डल में पवित्र करने वाले हविधूम में ही मिल सकता है अन्यत्र नहीं ।<sup>८</sup> बाण के इस भाव को केशव ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

होम धूम मतिनई जहाँ ।<sup>९</sup>

१ रामचन्द्रिका अक्षरद्वया प्रकाश छन्द २२ २३

२ गौरवरत्नमभिनवमौवनत्वम् प्रतिमरूपत्वममानुपराक्षितम् अति महताय उत्पन्नपरम्परा सर्वा ।  
अविनयानामकैवगप्येषामापन्नम् विभुज समवाय ।

—कादम्बरी शुक्नासापदेश, पृष्ठ २१९

३ रामचन्द्रिका तीर्था प्रकाश छन्द २७

४ गंगा प्रवाह इव मगौरव पथ प्रवृत्त ।

—कादम्बरी, शूकरचरणम्, पृष्ठ ८

५ रामचन्द्रिका, तृतीय प्रकाश छन्द १०

६ विमानीकृत राजहंस कमलमोनिता ।

—कादम्बरी, शूकरचरणम्, पृष्ठ ८

७ रामचन्द्रिका द्वितीय प्रकाश छन्द १०

८ यत्र मतिनता हविधूम मेव ।

—कादम्बरी, गंगास्त्राप्रवणनम्, पृष्ठ ८६

९ रामचन्द्रिका अक्षरद्वया प्रकाश छन्द ८

रावण के द्वारा राम को सधियत्र प्रेषित करना 'ब्रह्मा विनय नयनागार' स्वान सन्यासी भूमिपाग' आदि प्रवरण कवि की मौलिकता के उत्तम उदाहरण हैं।

### विज्ञानगीता एवं सस्कृत-ग्रंथों में भाव साम्य

महाकवि केव का द्वितीय रचना विज्ञानगीता के दार्शनिक पक्ष एवं कथानक पर पहले ही विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। यहाँ केवल भाव साम्य के उदाहरण प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है। विज्ञानगीता पर मुख्यतः कृष्ण मिश्र रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक तथा मुनि बसिष्ठकृत 'योगवासिष्ठ' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

### प्रबोधचन्द्रोदय

कामदेव का स्वरूप-वर्णन करते हुए प्रबोधचन्द्रोदयकार ने लिखा है 'रति ने अपनी पुलकित मुद्राभा में आनिगन करते हुए अपने मुगटित तथा पीवर कुर्चों के द्वारा जिसका वनस्पल पीडित किया है वह श्रीमान नयनाभिराम मत्पूज नत्र कमलावाला कामदेव सम्मुख आ रहा है।' इस भाव पर आधारित केव का छन्द इस प्रकार है—

मूयण फूलमि के अंग अंग शरसन कूलन की अंग सोहै ।  
पञ्च चाव विलोचन धूमत मोहमई मदिरा दधि रोहै ॥  
बाहुलता रतिबँठ बिराजन केवध रूप को न्यक जोहै ।  
सुन्दर दयाम स्वकृप सने अगमोहन क्यों जग के मन मोहै ॥<sup>१</sup>

इसी प्रसंग में जब रति काम से शत्रु का प्रवर्तना का संकट करती है तो प्रबोध चन्द्रोदय का 'काम' जो उत्तर देता है,<sup>२</sup> वही केव ने भी व्यक्त किया है।

केव का 'काम' भी इसी भाव की अभिव्यक्ति करता है—

सखी फूल के ह धनुर्बाण मेरे ।  
करौ गोपि के जीव सत्तार घरे ॥  
गने की बलबीर वखी विकारो ।  
अणवय गूली हली चक्रपारो ॥<sup>३</sup>

१ उल्ला पीवर कुच्छर्षादिजागधानिगित पुनक्तिन भुवनरत्न ।

भीमा जगनि मन्मन्तवनाभिराम कान्ते बनेनि मन्मूर्च्छितनत्र परम ॥

—प्रबोधचन्द्रोदय प्रथम अंक श्लोक ॥

२ विज्ञानगीता द्वितीय प्रभाव छन्द ४

३ अपि यत्ति विशिष्ट शरामन का कुनुननय मयुगधुरन्यापि ।

मम अणवयन करोक नाकाभिमन्तिपण यत्ति मुन्ययनि य

—प्रबोधचन्द्रोदय प्रथम अंक श्लोक १३

४ विज्ञानगीता त्रितीय प्रभाव छन्द ८

## अध्यात्मरामायणम्

दगानन मारीच को सीताहरण में सहायक बनने के लिए न केवल प्रेरित ही करना है अपितु उसे मयमोत करने पर भी उत्साह हो जाता है। उस समय राम के शीघ्र में पूणरूपेण परिचित मारीच उस भूव घमुर को राम से धर न करने की भ्रमूय गिज्ञा देता है।<sup>१</sup>

उन भाव को लिख हुए केगव का छन्द इस प्रकार है—

रामहि मानुष क जनि जानो। पूरन धौदह लोक बलानी।

जाहु जहाँ तिय त सन देखो। हौं हरि कौ जस हू पस लेखौ ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि केगव प्रसन्नरायण हनुमन्नाटक का मारीच नपथीयचरितम् 'मृच्छकटिकम् तथा अध्यात्मरामायण आदि संहृत रचनाओं में पूण प्रभावित थे। इनके अधिकांश छन्दों पर उनके प्रयोगों की व्याप स्पष्ट परिलक्षित होती है। ऐसे स्थलों का भी अभाव नहीं जहाँ केशव की मौलिकता के दर्शन होते हैं।

रामचन्द्रिका के प्रथम प्रकाश में ही दिग्पाला द्वारा उपहारस्वरूप प्रदत्त हाथिया का वणन केशव ने इस प्रकार किया है—

बोहू बोहू दिग्गजन के केगव मनहु कुमार।

बोहूँ राजा बगरपहि दिग्पालन उपहार ॥<sup>३</sup>

इसी प्रकार पंचम प्रकाश में विन्वाविनजी ब्राह्मण के मुख से यह मुनते हैं कि यह विन्न सीता के भावी धर का है और राम के स्वरूप से बहुत कुछ साम्य रखता है तो प्रसन्नता के मारे पूरे नहीं समाते।<sup>४</sup>

एक अन्य स्थान पर कविवर केगव ने पलिकाधार के वणन में अपनी मौलिकता का अच्छा परिचय दिया है—

पठ जराय जरे पलिका पर राम सिया सबै मन मोह।

प्योतिममूह रही मद्रिक् सुर भूति रहे बपरा नर कोह।

केगव तीनहु लोकन की अवलोकि बुझ उपमा कवि डोह।

सोमन सूरजमंडल मौन मनी कमला कमलापति सोह ॥<sup>५</sup>

उन प्रसंगा में अनिरिक्त विभीषण द्वारा सद्मण के पुनर्जीवन का उपाय-वणन

१ अनोन मानुषो रामः श्वशाश्वतयलोऽश्वः  
मायामानुषवेधेन वनमागच्छति निर्मय ॥

भूभारहरणाय गच्छ तत्र गृहं मुमुक्षु ॥ —अध्यात्मरामायण छन्दोमणि छन्द २० २१

२ रामचन्द्रिका बारदवा प्रकाश छन्द ॥

३ रामचन्द्रिका प्रथम प्रकाश छन्द २६

४ रामचन्द्रिका पंचम प्रकाश छन्द २३

५ रामचन्द्रिका छठवा प्रकाश, छन्द ४५

का भाषार भी 'प्रबोधचन्द्रोदय' ही है। उक्त नाटक के अन्तगत महामोहकापरास्त होना हुआ देखकर मन एकसाय शोनाकुल आतनाद कर उठता है।<sup>१</sup> केगव ने भी यही भाव व्यक्त किया है।<sup>२</sup>

उक्त कथन के अतिरिक्त सरस्वती और मन का कथोपकथन भी कवि प्रवर केगव ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' से ही ग्रहण किया है। हम नाटक की उपनिषद् की शान्ति से वार्तानाप करते हुए देखते हैं।<sup>३</sup> यही भाव केगव ने निम्नलिखित छन्द से व्यक्त किया है—

निष्ठुर प्रीतम त्यों सखी, क्यों करिहों छवसोख ।

इत मुवतौ ओ जिनि दयो मोहि विरहमय गोक ॥<sup>४</sup>

यही नहीं 'शान्ति' और 'पुरुष' का वार्तानाप तथा 'पुरुष' एवं उपनिषद् का सम्वाद दोनों प्रकरणों को ही प्रबोधचन्द्रोदय<sup>५</sup> से लिया है।

उक्त कथन से प्रभावित होकर ही कवि केगव ने निम्नलिखित छन्द की रचना की है—

घरें एन जमस्तदा देह सोहें ।

जहाँ धनि तीनों द्विजा तीनि मोह ॥

चहूँ और यतजिया सिद्धिधारी ।

खले जात म वेद विद्या निहारी ॥<sup>६</sup>

'उपनिषद्' के समान ही राजा विवेक का कथन भी उक्त नाटक की ही देन है।

## योगवासिष्ठ

सबप्रथम सृष्टि की उत्पत्तिबाल प्रकरण की ही लते हैं। मुनि बसिष्ठ ने सृष्टि की उत्पत्ति किन्ना एक देव से नहीं मानी है। आपने ब्रह्मा विष्णु महेश और मुनीबरा

१ हा पुत्रकामिं स्वगतां स्वदत्त मे प्रियंगवान् । ओ मां कुनारकां रागद्वेषममालसयां च परिष्वज्य माम् । सेन्धि मनागानि हा कश्चिन्मां नुदमनथ सम्भावयति ।

—प्रबोधचन्द्रोदय पृष्ठ ३६ पृष्ठ १७

२ विद्यानगं स त्रयोन्ना प्रभाव द्द ४

३ सन्नि कथ तदा निरनुक्रागस्य स्वामिनो मुखनावाक्यिष्यामि । येनाहमितरजनयोयव दुरवि मङ्गाकिनी परित्यक्ता ।

—प्रबोधचन्द्रोदय पृष्ठ ३६ पृष्ठ १०

४ विद्यानगं स त्रयोन्ना प्रभाव द्द ७

५ शृणुमिनाग्निं समिदाज्यजुस्स वाग्निं पात्रिभ्योऽपिपशुभममुनेश्च ।

एष मया परिकृतस्तिस्रमङ्गा एव व्याप्तिं पदतिरयाध्वनि यवविदा ।

—प्रबोधचन्द्रोदय पृष्ठ ३६ श्लोक १३

६ विद्यानगं स त्रयोन्ना प्रभाव द्द १६

एक समय स्थल पर रति को यह सुनकर महान् आश्चर्य होता है कि शम दम्भ भादि का उत्पत्ति-स्थान भी वही है जो उसके पति कामदेव का है। आश्चर्य होना भी स्वाभाविक ही था क्योंकि 'कामपीडित' व्यक्ति का विवेक से क्या सम्बन्ध ?<sup>१</sup>

केशव की रति भी यही कहती है—

जो कुस एकद एक पिता ज्यों ।  
तो अति प्रीतम प्रेम निगार्यों ॥  
घापुस माँझ सहोदर सान्ने ।  
क्यों तुम घोर विरोधति रान्ने ॥<sup>२</sup>

दम्भ ग्रहकार सम्वाद' भी दोनों ग्रंथों में समान रूप से प्रस्तुत किया गया है।

विज्ञानगीता के सातवें प्रभाव में चार्वाक' एवं महामोह के कथनोपकथन में भी पर्याप्त साम्य पाया जाता है। प्रबोधचन्द्रोदय के छान्ति और श्रद्धा के वार्तालाप का प्रभाव भी केशव पर है।<sup>३</sup>

आगे चलकर 'छान्ति' श्रद्धा के विषय में बरुणा से बातचीत करती है।<sup>४</sup>

इसी प्रसंग के भाव-साम्य को केशव ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

मो बिना न अन्हति जेवति करस नाहिन पान ।  
मेकु के बिछुने भट्ट पट में न राखति पान ।  
धैतिका बरुणा रचो सब छान्ति और उपाइ ।  
क्यों जियो जननी बिना भरहु मिले जो आइ ॥<sup>५</sup>

इसी प्रकार विज्ञानगीता के श्रावक करुण सतोप श्रद्धा भादि के वार्तालापों

१ आयुज । यश्वन्तरिक निमित्त सोन्राखामपि परस्परमेतदरा वैरम् ।

—प्रबोधचन्द्रोदय प्रथम अंक पृ. २६

२ विज्ञानगीता द्वितीय प्रभाव छन्द १५

३ मुक्तातक कुरंग काननभुष शैला ग्लान्तारय ।

पुण्यान्धावननानि सततपोनिष्ठाश्च वैखानसा ॥

यस्या प्रीतिरभीषु सात्र भवती प्राणमलवैरमोदर ।

प्राप्ता गौ कपिलेश भोवति कथ पापहृत्प्रता ॥

—प्रबोधचन्द्रोदय, तृतीय अंक श्लोक १ तुलसीय विज्ञानगीता अष्टम प्रभाव, छन्द १

४ भामनालोक्य न स्नाति न मुक्ते न पिबत्यपि ।

न मया रहित्य श्रद्धा मुक्तमपि जीवति ॥ —प्रबोधचन्द्रोदय तृतीय अंक श्लोक २

तथा—तस्मिन् श्रद्धया मुक्तमपि शाठेनीवित विदम्बनमेष । तत्पत्ति करये मन्त्र चित्तमार

चय । यावन्विरमेव दुःखानामपरोक्ष तस्या मद्बन्धो भवामि ।

—प्रबोधचन्द्रोदय तृतीय अंक पृष्ठ १६

५ विज्ञानगीता अष्टम प्रभाव छन्द ४

तथा हस्तिनी आदि भेद किए हैं। चित्रिणी नायिका का ससन दोनों में समान है।<sup>१</sup>

इसी प्रकार 'दूती-वर्णन' के अन्तर्गत ब्याणमल्ल ने निम्नलिखित नामों का उल्लेख किया है—

माताकार वधू सखीच विधवा धात्री नटी नित्यता ।

सरप्रो प्रतिगोहिकाश्च रजकी दासी च सम्बन्धिनो ॥

भ्राता भ्रात्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रितिका ।

मायाकारवधू विवर्ण्य पदय प्रेय्या इमा भूतिका ॥<sup>२</sup>

आचार्य कदाच ने दूती को सखी का नाम देकर उस काटि में आनेवाली नारियाँ का वर्णन करते भाव-साम्य के साथ प्रस्तुत किया है—

धाइजनी, माइन नटी प्रकट परोसिनि नारि ।

मामिनि बरइनि सिलिपनी, चुरिहरिनी मुनार ।

राम-जनो सम्पासिनी पटु पन्था की बाल ।

केणव भायक नायिका सखी बरहि सब काल ॥<sup>३</sup>

## कामसूत्र

केशव विरचित रसिकप्रिया पर वात्स्यायनद्वारा कामसूत्र का प्रभाव भी 'यू नाधिक भात्रा म पडा है। वात्स्यायन ने भगव्या का जो निरूपण किया है " उसके आधार पर केशव ने निम्नलिखित छन्दों की रचना की है—

तजि तवनी सम्बन्ध की जानि मित्र द्विजराज ।

राकि सेइ बुल भूल तैं ताकी तिय तैं भाज ।

१ तन्वती गजगामिनी चरनद्वय सङ्गतिस्त्वन्विना ।

नो हृत्वा न बह्मणश्च सूत्राण्य मन्वे मयूरचना ।

पानधोपि पयोधय मुनसिने जवे बहन्तीकुलो,

कामाग्नौ मधु मध्यवौष्टमपि सानुब्धान्नवसभा ॥

कामागारमम्राद्रलोमम्भिन मन्वे मुहुः प्रायगो

विभ्रत्युल्लसित च वसुलमयो रत्नमुनारुय मग ।

भगव्यामननुन्त्याय अन्वप्रतिबोधमोने रता

चिरादास्तिननी रनेष्ट्यरविश भेदागना चित्रिणी ॥

—अनगरण स्तोत्र ११ १४ पृ ४ तुलनाय

रसिकप्रिया लीय प्रभाव छन्द ५ ६

२ अनगरण छन्द ५३

३ रसिकप्रिया वाग्दत्ता प्रमान छन्द १ २

४ भगव्यात्मनैवेना कुठिन्युन्मत्ता धनिताभिन्नरहस्यप्रकारा

प्रार्थिता गजप्रायशीवना अनिरुतेनानिहृष्टा दुःकृष्णाम्बन्धिन ।

मन्वे भ्रमजिज्ञा मम्बन्धि मग्निधोद्विषाजगाराय ।—कामसूत्र ४ १४ ४३, ४४ ४७



विषयाय कहते हैं—

सुकुमारता के साथ भर्गो का 'संचालन ही ललित हाव कहलाता है।' केशव दासजी का ललित हाव-वर्णन भी इसी प्रकार है—

भोसनि हंसनि बिलोबियो, धलनि मनोहर रूप ।

असैं तसैं धरनिध 'ससित हाव' भनरूप ॥<sup>१</sup>

रसाणवमुधाकर

सबप्रथम हम 'भवस्थानुसार' नायिका भेद में दोनों में साम्य के दान होते हैं। निरूपण में भी दोनों में साम्य मिलता है।<sup>२</sup>

इसी प्रकार दाठ' नायक का लक्षण आचार्य भूपाल ने इस प्रकार निश्चित किया है—गूढ़ अपराध करनेवाला नायक दाठ कहलाता है।<sup>३</sup>

आचार्य केशव के लक्षण का भी यही भाव है—

भूह भौठी बातें कहै निपट कपट जिय जानि ।

जाहि न डर अपराध को सठ करि ताहि बजानि ॥<sup>४</sup>

एक अन्य स्थल पर आचार्य भूपाल ने वासकसज्जा की चेष्टाओं पर प्रवाण डालते हुए इस ओर भी संकेत किया है कि वह प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती रहती है। यथा—

अस्यास्तु चेष्टा सम्पक मनोरथविचिन्तनम् ।

ससी बिलोबो हल्लेखोमहूर्द्धी निरोक्षणम् ।

प्रियाभिगमन मार्गोन्निबोधाप्रभृतयोभता ॥<sup>५</sup>

केशव की 'वासनसज्जा' नायिका भी ऐसी ही है—

वासकसज्जा होइ सो कहि केशव सविलास ।

चितव रति गूहद्वार त्यों प्रिय भावनि की पास ॥<sup>६</sup>

अनगरग

आचार्य केशव-निर्णित नायिका भेद का मुख्य आधार बल्याणमल्लवृत्त 'अनगरग' है। बल्याणमल्ल ने नायिकाभा का वर्णन करते हुए उनके पधिनी, बिनिणी घतिनी

१ सुकुमारतादानो विषयानो ललित भवेत् ।

—साहित्य वैश्व तृतीय परिच्छेद, स्तोत्र १२१

२ रमिकप्रिया दृढवां प्रभाव धृ-२४

३ उल्लङ्घ्य समय बरवा मेधानन्वोपभोगवान् ।

भोगवच्छाकिन प्रागराग-छेत् सा हि राशिना । —रसाणकमुधाकर श्लोक १३०, पृ ३२

४ शठोपापराधकृत् ।

—रमार्यकमुधाकर चारिका ८१, पृ ८

५ रमिकप्रिया, द्वितीय प्रभाव धृ-१९

६ रसाणकमुधाकर श्लोक १२७-१२८ पृ ३३

७ रमिकप्रिया सातवां प्रभाव धृ-१

तथा हस्तिनी आदि भेद किए हैं। चित्रिणी नायिका का सम्पन्न होने में समान है।<sup>१</sup>

इसी प्रकार 'दूतों-वर्णन' के अन्तर्गत चर्याणमत्स्य ने निम्नलिखित नामों का उल्लेख किया है—

माताकार बभ्रु सखीय विधवा धात्री नटी गिल्पनी ।  
सरधो प्रतिगोहिकाश्च रजकी दासी च सम्बन्धिनो ॥  
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवन्तिता तच्छस्य विकृतिका ।  
मायाकास्वधू विदग्ध पुरुष प्रेय्या इमा दूतिका ॥<sup>२</sup>

आचार्य केवल ने दूतों की सभी का नाम देकर उस कोटि में आनेवाली नारियाँ का वर्णन बड़े भाव-साम्य के साथ प्रस्तुत किया है—

थाइजनी नाइन नटी प्रकट परोसिनि मरि ।  
मासिनि बरदनि सिल्पिनो चुरिहरिनी मुनार ।  
राम-जनो संमासिनो पट्ट पट्टा की बाल ।  
केनाय नायक नायिका सखी बरहि सब बाल ॥<sup>३</sup>

## कामसूत्र

केवल विरचित रसिकप्रिया पर वात्स्यायनवृत्त कामसूत्र का प्रभाव भी 'दूत नायिक मात्रा' में पड़ा है। वात्स्यायन ने अगम्या का जो निरूपण किया है<sup>४</sup> उसके आधार पर केशव ने निम्नलिखित छंदों की रचना की है—

तति तलनी सम्बन्ध की जानि मित्र विजराज ।  
रासि लेइ दुल भूत तैं साकी सिय तैं भाज ।

- १ तन्वया गज्यामिनी चरुद्वय सतीवशिष्टान्विता ।  
तो ह्वा न वन्द्योप सृष्ट्या मध्ये मयूरवना ।  
वनमोपि पयोधय सुलसिते जय बहन्तीकरो  
कामाग्नी मधु गन्धधौष्टमपि सातुवक्षोन्नतसना ॥  
कामाग्न्यामया जलोमयहिम मध्य मधु प्रापतो  
विभ्रत्युल्लसित च पशुलमधो रत्नमुनादय सदा ।  
भगवत्पामनकुलपाम बन्धवर्धनोपयोगे रत्न  
विजराजिनमनी रतेऽन्यविका वेदागना चित्रिणी ॥

—अनगराग स्तोत्र १३ १४ पृ ४ तुलनाय  
रसिकप्रिया मृत्तप प्रभाव छन्द ५ ६

२ अनगराग छन्द ५ ६

३ रसिकप्रिया बरहर्षा प्रभाव छन्द १ २

४ अगम्याम्यैरेण कुष्ठिन्युमस्य धनिप्रभिनिरहस्यवारा  
नर्पिना गजप्रायवौवना अनिरुद्वेगनिहृया दुःखमममपिन ।  
मध्ये प्रव्रजिता सम्बन्ध सखीमोविजराजगरारव ।—अनगराग स्तोत्र, १३, पृ ६०

अधिक धरन, अरु अंग घटि, अत्यजजन की नारि ।

तजि विधवा अरु पूजिता, रमियहु रसिक विचारि ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार कामसूत्रकार ने दूती-वर्णन में विधवा दासी मिथारित तथा शिल्पिन आदि की दूतियों की कोटि में रखा है ।<sup>२</sup> इसीसे प्रेरित होकर केशव ने भी—

धाइ जनी नाइन नटी ।<sup>३</sup>

आदि की दूतियों में गिनाया है ।

आचार्य केशव ने अथ सस्कृत-ग्रन्थों से सामग्री जुटाने के साथ-साथ अनेक स्थलों पर अपनी मौलिक प्रतिभा का भी परिचय दिया है । सबप्रथम आचार्य केगव के 'मध्या धीराधीरा नायिका के लक्षण मौलिक हैं । उनका कथन है—

पियसों वेइ उराहनो, सो धीरा न अधीर ॥<sup>४</sup>

इस लक्षण के उदाहरणार्थ आचार्य केगव ने यह छन्द प्रस्तुत किया है—

काह भलें जु भलें समुझाइहों, मोह समुह को क्यों उमह्यो हो ।

केसव आपनो मानिक सो मन, हाथ पराए बे कौन लह्यो हो ॥

नननि ही मिलिबो करिय अब बननि को मिलिबो सो रह्यो हो ।

जाइ कह्यो तुम जसैं सखीनि सों एहा गुपाल में ऐसे कह्यो हो ॥<sup>५</sup>

इसी प्रकार आचार्य केशव का प्रथम भिनन-स्नान-वर्णन भी पूरा तथा मौलिक है ।<sup>६</sup> केशव के इन स्थानों का वर्णन किसी भी सस्कृताचार्य की रचना में उपलब्ध नहीं होता ।

सखीजन-वर्म-वर्णन भी केशव की मौलिक उद्भावना ही है । आचार्य केगव ने सखियों के निम्नलिखित कर्म निश्चित किए हैं—

सिक्षा विनय मनाइबो, मिलिबो करि सिंगार ।

भुकि अरु वेइ उराहनो यह तिनके ब्योहार ॥<sup>७</sup>

मनाना और उलाहना देना आदि कर्मों का उल्लेख भी किसी सस्कृताचार्य ने नहीं किया है । एक सखी द्वारा वृष्ण को मनाने का वर्णन मौलिक है ।<sup>८</sup>

१ रसिकप्रिया सातवां प्रभाव छन्द ४३ ४४

२ विषयेष्टिका गौरी भिक्षुकी शिल्पकारिका ।

प्रविरात्पाशु विरवाम दूती कार्य च विन्ति ।

३ रसिकप्रिया, बारहवां प्रभाव छन्द १ २

४ रसिकप्रिया तृतीय प्रभाव छन्द ४६

५ रसिकप्रिया लयाय प्रभाव छन्द ४६

६ रसिकप्रिया दशम प्रभाव छन्द २४ २५

७ रसिकप्रिया, तेरहवां प्रभाव छन्द १

८ रसिकप्रिया, तेरहवां प्रभाव छन्द ८

कविप्रिया एव सम्भृत ग्रन्थों में भाव-साम्य

‘कविप्रिया में चन्द्रामोक’ काव्यान्त तथा अलङ्कारमूत्र में प्रभावित नामग्री का विवचन हम आचार्यन्वयान परिच्छेद म कर चुके हैं। यहाँ पर केवल ‘वृत्तरत्नाकर’ अलङ्कारोत्तर ‘काव्यरत्नप्रतापति तथा ‘भोतिगमक’ आदि ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट करेगे।<sup>१</sup>

वृत्तरत्नाकर

‘कविप्रिया के नीचरे प्रभाव में आयेन ‘दाप-वणन’ वण भगण पर विचार व्यक्त किए हैं। आयेन गुम और अगुम गणों का उल्लेख निम्न प्रकार किया है—

मगन मगन भनि मगन अह मगन सदा सुभ जानि ।  
जगन रगन अह सगन पुनि सगनहि अगुम बन्धानि ॥  
मगन विगुह जुत त्रिलघु भय केगव नगन प्रमान ।  
मगन आविगुह आदि सघु वगनहि भनत सुजान ॥  
जगन मध्य गुह जानिय रगन मध्य सघु होइ ।  
मगन अन गुह अत सघु सगन कहै सब कोइ ॥<sup>२</sup>

इसीके भाग के दाहों में उहाने मगन नगन जगन आदि सभी गणा के सम्यक् सघु और गुह के अनुसार निर्दिष्ट किए हैं। उक्त वचन का आधार ‘वृत्तरत्नाकर’ नामक छन्दशास्त्र है जिसमें गणा के देवता मन्त्री-रत्न तथा उनकी शरणा आदि पर पूरा प्रकाश माला है।<sup>३</sup>

मही देवता मगन को नाग नगन को देखि ।  
जग त्रिध जानहु वगन को चह भगन को देखि ॥  
मगन नगन को मित्र गन भगन वगन भनि दास ।  
उदासीन जन जानिय रस रिपु केगवदास ॥<sup>४</sup>

अलङ्कारोत्तर

आचार्य केगव के आधम-वणन तथा कवि रीति-वणन ‘अलङ्कारोत्तर’ से

१ कविप्रिया पांचवा प्रभाव सूत्र १

२ कविप्रिया पांचवा प्रभाव सूत्र १८ १६ २

३ श्री भूमिनिगुप्त विविधरत्न को बहिरंग चान्दो  
रोनिनय सपुर्नगाहभनियो दशादल सैन्य ।  
सी भेनय सपुर्नगाहभनियो जोरों २३ मयगो  
मरचदो मया दशभन मुष्टरुनेनाकभापुनिवध ।  
मनी निवे मनी मयादशमनी मयरी मयरी ।  
रमयत नय मयी केगवदो मयरी ॥

—वृत्तरत्नाकर, पृष्ठ ११

४ कविप्रिया पांचवा प्रभाव सूत्र २२ २४

अनुप्राणित प्रतीत होते हैं। कविवर केशव ने एक स्थान पर आश्रम-वर्णन के प्रसंग में हिंसक जीवों के सहज घर विनाश की घोर मनेत करते हुए लिखा है—

होम धूम-जुत घरनिय ब्रह्म घोष मनि वास।

सिधादिक मय मोर ग्रहि, इम सब घर विनास॥<sup>१</sup>

इसी भाव की अभिव्यक्ति आचार्य केशव मिथ बहुत समय पहले ही कर चुके

थे—

आश्रमे तिथि पूजन धिन्वातो हिलगातता।

यस धूमो मुनि सतावुसको वल्कल द्रुमा॥<sup>२</sup>

एक भय स्थल पर आचार्य केशव ने विरह-वर्णन में चिन्ता का उल्लेख किया

है—

स्वास नित्ता चित्ता बद्ध हृदन परेख बात।

कारे धीरे होत कृत तारे सोरे गात॥<sup>३</sup>

इसी भाव का इनके नाम रागि केगव मित्र ने व्यक्त किया था—

विरहे ताप निश्वासश्चिन्ता भौन कृशागता।

अरुजशय्या निशा दैव्य जागर गिगिरोष्मता॥<sup>४</sup>

राज्यप्री-वर्णन भी दाना आचार्यों ने समान रूप में ही किया है। भलकार दोस्तर के प्रणताने स्वयंवर के प्रकरण में 'गचीरला मंच मण्डप 'सज्जा' राजकुमारी तथा राजाओं के आकार का जसा वर्णन किया है उसीको आचार मानवर केगव ने भी छन्द-योजना की है। भलकारदोस्तरकार का वचन है—

स्वयंवरे शचीरला मंच मण्डप सज्जना।

राजपुत्री नृपाकारावय चेष्टा प्रकाशनम्॥<sup>५</sup>

केगव ने भाव एवं भाषा के साम्य को प्रस्तुत करते हुए निम्न छन्द उद्धृत किया

है—

सची स्वयंवर रलिय मंडल मंच बनाउ।

रूप पराक्रम यसगुन घरनिय राजा राउ॥<sup>६</sup>

## काव्यवल्पलतावृत्ति

आचार्य भमरचन्द्रकृत काव्यवल्पलतावृत्ति नामक ग्रन्थ से भी कविप्रिया

१ कविप्रिया सप्तम प्रभाव छन्द १

२ भलकारदोस्तर पृष्ठ ६

३ कविप्रिया आठवा प्रभाव छन्द ३८

४ भलकारदोस्तर पृष्ठ ६

५ भलकारदोस्तर, पृष्ठ ५६

६ कविप्रिया आठवा प्रभाव छन्द ४४

पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। स्वयंवर-वर्णन में भ्रमरचन्द्र ने निम्नलिखित श्लोक प्रस्तुत किया है—

स्वयंवरे गीघोरला यच्च मण्डप सज्जता ।

राजकुत्री नृपाकाराग्वय्य चेष्टा प्रकाशनाम् ॥<sup>१</sup>

इस उद्गाहरण से स्पष्ट है कि भ्रतकारगीघर' और आचाय भ्रमरचन्द्र के वर्णन में केवल 'सज्जना तथा 'सज्जना' का ही अन्तर है दोष सम्पूर्ण श्लोक समान है। आचाय प्रवर उक्त दोनों ही आचायों से प्रभावित थे।

सूर्योदय-वर्णन आचाय केशव ने उक्त दोनों ग्रन्थों के आधार पर किया प्रतीत होता है। आचाय भ्रमरचन्द्र ने सूर्योदय-वर्णन के अन्तर्गत अष्टांगना 'रविमणि 'वमल' पयिक' तथा तारावली आदि का उल्लेख करना आवश्यक माना है—

सूर्योदयता रविमणि चन्द्राब्ज पयिक लोचन प्रीति ।

तारेन्दुदीपकोपयिषूक्तमङ्गीरकमुद्रकृतटाति ॥<sup>२</sup>

आचाय केशव ने भी उपर्युक्त बातों का ध्यान धुनकपेन रखा है—

सूर उदय त भ्रमरता, पय-पावनता होइ ।

सल वेदधुनि मुनि कर पय लग सब कोइ ॥

कोर, कोहनव सोरहृत दुल कृवलप कतटानि ।

तारा घोषधि दीप सनि, धूक और तम हानि ॥<sup>३</sup>

इसी प्रकार देव-वर्णन भी दोनों का एक-सा है। आचाय भ्रमर ने देव-वर्णन के अन्तर्गत रत्न खानि पद्म घाम दुग तथा घाम आदि का उल्लेख किया है।<sup>४</sup>

आचाय केशव ने भी उक्त वस्तुओं का वर्णन उसी रूप में किया है।<sup>५</sup>

मन्दिर वस्तुओं के वर्णन में आचाय भ्रमर ने पृथ्वी शल घम तथा प्रथम आदि का उल्लेख करत हुए लिखा है।<sup>६</sup> आचाय केशव ने भी लगभग उक्त वस्तुओं का ही वर्णन किया है।<sup>७</sup>

काव्यकल्पलतावृत्तिवार ने मत्स्य का भूट रूप में वर्णन किया है।<sup>८</sup>

१ काव्यकल्पलतावृत्ति श्लोक ८४, पृष्ठ २

२ काव्यकल्पलतावृत्ति, सूर्योदय-वर्णन

३ कविप्रिया सप्तम प्रभाव, पृष्ठ २२, २३

४ देशे वसु क्षति द्रव्य पश्य चान्य करोमहा ।

दुग घाम अनाधिक्य नाना मानकान्त ॥ —काव्यकल्पलतावृत्ति श्लोक ६२, पृष्ठ २२

५ कविप्रिया सप्तम प्रभाव, पृष्ठ २

६ मन्दिराय पृथ्वी शैवी प्रथमौ सर्ग मन् । सप्तौ रीग रये चरन् प्रथमन् मशमनम् ॥

—काव्यकल्पलतावृत्ति प्रश्न ४ श्लोक ४, पृष्ठ १४०

७ कविप्रिया पृष्ठ २३ प्रभाव पृष्ठ २३

८ वमने मात्रा पुष्प फल पुष्प च वमन । असौ वमन फल कपेरना चामे कृष्णानाम् ॥

—काव्यकल्पलतावृत्ति, पृष्ठ १७

केशव ने भी उनका आचार्य से अनुप्राणित होकर निम्नलिखित छन्द की रचना की है—

कैसवदास प्रकास सब, चन्दन के फल फूल ।

कस्नपक्ष की जोहूँ ज्यों सुखसपक्ष तम तुल ॥<sup>१</sup>

उनका उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि आचार्य केशव काव्य कल्पलतावृत्ति से असी भाति प्रभावित थे ।

नीतिशतक

केशव की महत्त्वपूर्ण रचना कविप्रिया भक्त हरि के 'नीतिशतक' से भी अनुप्राणित हुई है ।

भक्त हरि ने पुरुषों की विभिन्न कोटियाँ पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि सत्पुरुष स्वाय को त्यागकर परार्थ में रत रहते हैं । सामान्य पुरुष स्वाय का विरोध तो नहीं करते किन्तु परार्थ से भी जो नहीं चुराते । जो पुरुष स्वाय सिद्धि के कारण परहित हानि करते हैं वह हमनर पिशाच के नाम से पुकार सकते हैं किन्तु जिनकी न तो स्वाय सिद्धि ही होती है और न परमार्थ की ही प्राप्ति होती है फिर भी दूसरों के अहित की ही बात सोचत रहते हैं उन्हें मैं बिस कोटि में रखूँ यह नहीं जान पाया ।<sup>२</sup>

आचार्य केशव ने भी यही वर्णन किया है—

हूँ अति उत्तम ते परधारण जे परमारण के पथ सोह ।

केशवदास अनुत्तम ते नर सतत स्वारण संजड़ जो ह ।

स्वारण हूँ परमारण भोग न मध्यम सोगनि के मन मोह ।

भारत पारण भीत कहुँ परमारण स्वारण हीन ते कोह ॥<sup>३</sup>

केशव और उनके पूर्ववर्ती एवं समकालीन हिन्दी-कवि

जहाँ केशव एक ओर सत्सृष्टाचार्यों से प्रभावित हुए हैं वहाँ दूसरी ओर पूर्ववर्ती एवं समकालीन हिन्दी-कवियों का प्रभाव भी इनकी रचनाओं पर 'यूनाधिक मात्रा में पड़ा है । जायसी तुलसी और सूर की रचनाओं से अनुप्राणित होकर आचार्य केशव ने अथ प्रणयन में जो प्रेरणा प्राप्त की है इसका सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है ।

जायसी एवं केशव

जायसी के सवाद-लेखन की शली में प्रत्युत्पन्नमति केशव पर्याप्त मात्रा में प्रभा

१ कविप्रिया चतुर्थ प्रभाव, छन्द ५

२ ये ते सत् पुराण परार्थका स्वाय परित्यज्य ये ।

सामान्यास्तु परार्थमुपभूत स्वायविरोधेन ये ॥

तेऽमी मानव राक्षसा परहित स्वार्थानिघ्नानि ये ।

ये ते भन्ति निरपक्व परहित न के न जानीमहे ॥

—भक्त हरि नीतिशतक श्लोक ७५, ४ ।

३ कविप्रिया चतुर्थ प्रभाव, छन्द ३

वित्त हुए हैं। आपन राज-रवारों में समझाने जीवन व्यनान कर जिन नवान-लेखन-शाली के द्वारा कवि प्रतिभा का परिचय दिया है वह जायसा न ब्रह्म कृष्ण अनुप्राणित है। केवल विरचित 'रामचन्द्रिका विज्ञानगीता' तथा 'वीरनिहन्त्रचरित आदि' ग्रंथों का प्रणयन जिन नवान-शाली के आचार पर ही हुआ है। 'रायसी न जिन प्रकार 'पद्यावत' महाकाव्य के अनिरिक्त आखिरा बमाम' एवं 'अष्टगवट' नामक आधुनिक ग्रंथों का प्रणयन किया उनी प्रकार महाकवि केवल न रामचन्द्रिका महाकाव्य के अनिरिक्त विज्ञानगीता' जिन आधुनिक ग्रंथ का सज्जन किया है।

तुलसी एवं केवल

केवल ज्ञायमा की आपना तुलसी म अधिक प्रभावित थे। 'रामचन्द्रिका पर 'राम चरितमानस का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। 'तुलसी म कृष्ण धनर हो यह दूसरी बात है। राम भावना की जो पुनीत पाठ पोस्वादी तुलसी आम्मा न प्रवाहित की है उसको कवि वर केवल ने रामचन्द्रिका म आपणा रूप म प्रस्तुत किया है। राम-नहिमा राम-वरगुण राम नवान नारी निम्ना आदि प्रसंगों पर तुलसी का छाप स्पष्ट प्रमाण हुनी है।

तुलसी की अहंन्या उद्धार की क्या? का केवल ने अपनी 'रामचन्द्रिका' क पंचम प्रकाश म इस प्रकार व्यक्त किया है—

वनरामसिता वरती अबहीं तिय मुदर रूप भई तबहीं।

भूयो विस्वामित्र सों, रामचन्द्र अकृपाइ।

पाहन तें तिय क्यों भई, कहिये मोहि ममन्दाइ॥

राम का शका का समाधान करन हुए विस्वामित्रजी कहने हैं—

गौनम की यह नारि इन्द्र शेष दुगति गई।

देखि तुम्हें नरकादि परम पतितपावन भई॥<sup>१</sup>

आग तुलसी की अहंन्या भगवान राम के आन पाकर अनि प्रकृन्तित हो उन्नी है।

उनके प्रति आनार प्रवृत्त करती हुई एक अर्थ वर्णन माना है—

मुनि साधु बुद्धिहा अनिमल कीहा परम अनग्रह म माना।

देखत भरि सोचन हरि अथ सोचन यह साम सकर जाना॥

विनती प्रभु मोरी नै मति मोरी नाथ न वर भाग्यो आना।

पद पदम परागा रस अनुरागा भम मन भयुष कर जाना॥<sup>२</sup>

तुलसी की अहंन्या की हो मति केवल की अहंन्या भगवान के सम्मुख मग्ना वापी हो विनय करनी है।<sup>३</sup>

१ रामचरितमानस, वनकाण्ड पृष्ठ १०२ नवानकिशोर प्रेम, नवन मकरण

रामचन्द्रिका पंचम प्रकाश पृष्ठ ३४

२ रामचन्द्रिका पंचम प्रकाश पृष्ठ ५

३ रामचरितमानस, वनकाण्ड पृष्ठ १०१

४ रामचन्द्रिका पंचम प्रकाश पृष्ठ ६



इसके प्रतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस की समाप्ति पर लिखा है कि जा व्यथित रघुवधर्मणि भगवान राम के चरित का गुणानुवाद करेंगे वे कलिगुण की कालिमा में मुक्त होकर अपना ही मोक्ष प्राप्त करेंगे ।<sup>१</sup>

इसी दासी से प्रभावित होकर कवि प्रवर केनवदासजी ने अपनी प्रमुख रचना रामचन्द्रिका में लिखा है—

सहै सुभक्ति लोक लोक धत मुक्ति होहि ताहि ।

बहै सन पढ़ गुन ज रामचन्द्र चरित्राहि ॥<sup>२</sup>

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवि प्रवर केनव तुलसीदास की धम्मर कृति 'राम चरितमानस' से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुए हैं ।

सूर एवं केशव

जहां केशव ने एक ओर राम भक्ति गायका के मूढ-य कवि तुलसी से प्रेरणा प्राप्त की है वहां दूसरी ओर गुष्ण भक्ति गायका के मूढ-य कवि एवं विरोधमणि मूरदामजी से भी अनुप्राणित है । सूर के प्रभाव-वर्णन में जो कवि-य मिलता है वह उनके पाण्डित्य का दान करता है—

उद्यत अदण विगत सबरी ससक निरन ।

होय दीप दीपक मझोन बीन प्रति समूह तारे ॥<sup>३</sup>

केनवदासजी ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

तरनि किरनि उबित भई दीप जोति घसिन गई ।

सबय हूबय दीप-उदय ज्यों कबुद्धि नास ।

अकवाय निकट गई, चकई मन मुदित भई ।

जसे निज जोति पाइ जीव जोति भास ॥<sup>४</sup>

सूर के उद्धन-गोपी-सबाद का प्रभाव भी केनव पर परिलक्षित होता है । सूर की गोपी उद्धवजी ने कहती है कि हे उद्धव ! हमारा मन हमारे साथ नहीं है क्योंकि कृष्ण जब मथुरा की गए थे उस समय रथ पर लगाकर भाव ही ले गये थे ।<sup>५</sup> केनव ने भी इसी प्रकार कविप्रिया में लिखा है—

राधा राधारमन के मन पठयो है साथ,

ऊपय सुम ह्या कीन मो कहौ जोय की गाय ॥<sup>६</sup>

१ सूरदास भूपति चरित पत्र नर बहदि मुनिहि जे गावरी ।

कलमन मनोजय मोर विमु अम राम भाय मिश्रवही ॥

—रामचरितमानस उत्तरकाण्ड, पृ० १०५१

२ रामचन्द्रिका उन्नाय मया प्रकाश १०० ६६

३ मूरदास, प्रभाव-वर्णन

४ रामचन्द्रिका मया प्रकाश, पृ० १६

५ ऊषी मन हमारे, राय पत्र हरि मय ॥ गय मथुरा भई तिहारे ॥

—भगवद्गीता पर सम्पा ११

६ कविप्रिया, कृष्ण, पृ० १०

इसी प्रकार गजरज पान नायिका २२ अक्षर निरुपमा आदिवन्ध विषयों का पान भी भक्त मूरतानुशा का दन है। स्वकानिगमाक्षि जन अक्षरों में भा केशव ने मूर का हा नपना-परम्पराभा का निवाह करके उनमें प्रभावित हान का परिचय दिया है।

### प्रदान

#### केगव तथा भूषण

केगव न अना रचनाभा द्वारा परवर्ती हिन्ना आचार्यों एवं कविता का भाग प्रदान किया। भूषण अनिराम निबारीनाम दव पचात्तरभाति की कृतिभा केगवत्त न पूषण प्रभावित हैं। कविवर भूषण (१ ३० १३१२) क निबारा भूषण न पता चलता है कि उनके द्वारा निर्माण अक्षर अक्षरों के लक्षण आचार्य केगव की ही देन हैं। उदाहरण के लिए भूषण के अक्षरानुक्रम का हो तन है।

कह्यो अरथ जह होतिमो और अरथ उत्तेग।

सो अर्थानुक्रम्याम है कहि सामान्य विनोय ॥<sup>१</sup>

इस लक्षण का आधार आचार्य केगव का निम्नलिखित छन्द है—

और आनिमे अथ जहें औरे वस्तु बचानि।

अर्थान्तर को ग्यात यह चार प्रकार सु जानि ॥<sup>२</sup>

‘भूषण’ क विषाद का आधार भी केगव का परिवर्तन ही है, जिसका लक्षण केगव इस प्रकार प्रस्तुत करत है—

और कटू कीज जहाँ उपदि परे कटू और।

तासों परिवर्तन कहत हों केगव कवि सिरमौर ॥<sup>३</sup>

उक्त लक्षण का भूषण न निम्नलिखित छन्द में इस प्रकार व्यक्त किया है—

जहें धितचाह काज ते उपवन काज विपद।

ताहि विषादन कहत है भूषण बुद्धि विगड ॥<sup>४</sup>

विशेष अक्षरों के लक्षणानुसार आचार्य केगव निम्नांकित छन्द का प्रस्तुत करत है—

साधन कारण विकल जहें होय साध्य की विधि।

केगवदाम बलानिय सो विनोय परविधि ॥<sup>५</sup>

क्या उक्त लक्षण का ही भूषण न ‘वितीयविभावना’ की मझा नहीं प्रदान की है? उस कथन का पूरा पुष्टि निम्नांकित छन्द से हो जागी है—

१ गजरज भूषण छन्द २६ पृ ५२

२ कविन्द पञ्चमसम्भव छन्द ६२

३ कविन्द उदाहरण प्रभाव छन्द ३६

४ गजरज भूषण छन्द २१ पृ ७

५ कविन्द नवनन्दन छन्द २६

जहाँ हेतु पुरन नहीं उपजत है परकाज ।<sup>१</sup>

उपरिनिदिष्ट दोनों ग्रंथा में प्राप्त साम्य के उदाहरणों के आधार पर स्वर्गीय सासा भगवान्‌गीनजी ने तो यहाँ तक कहा है कि—

हमारा ऐसा अनुमान है कि जैसे बिहारी-सतसई के अनुकरण में अनेक कवियों ने सतसया लिखी है वैसे ही केगव रचित रतनधावनी के अनुकरण में भूपण ने धिवा यावनी लिखी है ।<sup>२</sup>

केशव तथा जसवन्तसिंह

भाषा भूपण के प्रणेता जसवन्तसिंह (स० १६८२ १७३८) के पर्यायोक्ति आदि अनेक अलंकारों के लक्षण के उक्त निर्णीत लक्षणों में पूरा साम्य रखते हैं । भाषाय केगव की पर्यायोक्ति का लक्षण निम्न प्रकार से है—

कोनहु एक अवृष्ट तें अनही किये जु होइ ।

सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोइ ॥<sup>३</sup>

उक्त छन्द के आधार पर ही भाषाय जसवन्तसिंह ने लिखा है—

जतन बिनु बाँधित फल जो होइ ।<sup>४</sup>

इसी प्रकार विषाद के लक्षण में भी दोनों भाषाकार्य बहुत बड़ा साम्य रखते हैं । भाषाय केगव का कथन है—

और कछु बीज जहाँ उपजि पर कछु और ।<sup>५</sup>

जसवन्तसिंह ने भी यही लक्षण दिया है—

सो विषाद चित चाहते उसटो कछु हँ जात ।<sup>६</sup>

यदि भन्तर है तो केवल नाम निर्धारण का । अर्थात् भाषाय केगव का जो परिधृत है वही जसवन्तसिंह का विषाद है ।

उक्त उदाहरणों के अतिरिक्त निम्नलिखित व्यतिरेक विद्योक्ति अर्थान्तरदास, स्वभावोक्ति रूपक और उपमा भाषा अलंकारों के वर्णन-साम्य केगवदास से प्रभावित होने का भरी भाँति परिचय देने हैं । भाषा भूपण में वर्णित १०८ अलंकारों में से अग्रे कांश लक्षण केगव की कविप्रिया की छाया लिए हुए हैं ।

केशवदास तथा भिखारीदास

हिन्दी वाच्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध भाषाय भिखारीदास (स० १६६० १८०७)<sup>७</sup>

१ शिवराज भूषण छन्द १८७

२ येराव पचरत भाषाशिक्षा, सा० भगवान्‌गीन १० १२

३ कविप्रिया, बारहवाँ प्रभाव, छन्द २६

४ भाषा भूपण छन्द १६ १ ३२

५ कविप्रिया बारहवाँ प्रभाव, छन्द ३६

६ भाषा भूपण छन्द १६६ १ ३२

७ भाषाय भिखारीदास जी नारायणदास सन्ता १ २६

नी केन्द्रगतवा स पदान्तराभा में प्रभावित है। स्वभावोक्ति नमन निरुद्ध दानों में सुनुन है।<sup>१</sup>

इसी प्रकार 'विशेषाक्ति' अनकारक सपना या ज्ञान न समान है। भावाय केन्द्र की विशेषाक्ति का सपना है—

विद्यमान कारण सकल कारण होहि न सिद्ध ।

साईं उक्ति विशेषमय कथा परम प्रसिद्ध ॥

निवारणसूत्रो ने भी इसा भाव का धर्मव्यक्ति करत हुए निरुद्ध है—

हेतु घनहृ कात्र नहि विनोयोविन नमदेह।<sup>२</sup>

यही नहीं 'उत्तरा' के उदाहरणों में भा पूरा साम्य दर्शाता है।<sup>३</sup>

निष्पन्ना व्यतिरेक रूपक तथा भावाय भादि अनकारों में भा भिन्नारी-तथा भावाय केन्द्र से प्रभावित हुए हैं।

केन्द्र तथा मतिराम

मतिराम भा भावाय केन्द्र से पुनः प्रभावित प। 'उत्तरा' 'साहित्यनार तथा 'उत्तरा' भादि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रस्ता भावाय मतिराम न 'तत्त्व' तत्त्व नमन नमन अनकार-मय की रचना कर हिन्दी-साहित्य की वा नवा का है उसका अर्थ कुछ अर्थ भावाय केन्द्रवत्त्व का ही है। इस उत्तरा के अनेक नमन 'सिद्धिप्रिया' के आधार पर निर्धारित किए गए हैं। यदा स्वकीया के नमन सुधा प्रीति भादि का वा स्वभाव हवे भावाय केन्द्र का रचना में मिलता है, उसीका स्पष्ट भावा मतिराम के 'उत्तरा' में परितन्त्रि हा जाती है। मध्या और प्रीति के भीरा भावाय और भावाय-भावा तत्त्व का वन्द ना दानों भावायों ने एक जडा किया है। इसी प्रकार नादिकों के उत्तरा मध्या और भावाय भादि नमन भा दानों का हा मन्त्र हैं। भावाय के दानों—यदा मध्या और मध्या—नेनों का वन्द भा दोनों भावायों का रचनाओं में समन का से ही उत्तम हाता है। इसी प्रकार विनोय का विनोय दशाओं का वन्द भावाय का न किता है उनमें से केवल 'नर' को छोड़कर नमन सना केन्द्र और मतिराम में समन का म उत्तरा हाती है।

केन्द्र तथा देव

मन्त्र भावायों की भाति देव (सं १३२० १२२५) भा भावाय केन्द्र मपदान्तराभा में प्रभावित हुए हैं। अन्तम हम भावाय केन्द्र के भावा पर हा विचार करते हैं—

१ कविप्रिय नमन मन्त्र देव ॥ सुनुन का मन्त्र देव ४ ५८ (१०)

२ कविप्रिय नरदेव मन्त्र देव १४

३ कविप्रिय देव २४ १ १३५

४ कविप्रिय नरदेव मन्त्र देव १ सुनुन का मन्त्र देव १३ २३

बेगम कौनहु काज स, प्रिय परदेसहि जाह ।

सासों कहत 'प्रवास सत्र बधि कोविद समुझाइ ॥'<sup>१</sup>

देव ने भी उक्त भाव को ही अपनी रचना में इस प्रकार व्यक्त किया है—

प्रीतम काहू काज ब अगधि गयो परदेस ।

सो प्रवास जह दुहुन की कष्टक ह बिमुघस ॥<sup>२</sup>

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर केशव ने उल्टा नायिका का लक्षण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है—

कौनहु हत न आइयो प्रीतम जाके घाय ।

ताकी सोचति सोच हिय बेसब उका नाम ॥<sup>३</sup>

देव ने भी यही भाव व्यक्त किया है—

पति के गह आए बिना सोच बहु जिय जाहि ।

हेतु विचारे बिस में उत्कण्ठा बहु सारहि ॥<sup>४</sup>

स्पष्ट है कि 'उल्टा' के स्थान पर 'उत्कण्ठा' कहकर देव ने आचार्य बेगम का ही अनुकरण किया है। यही नहीं देव ने सीसा नामक हाव का लक्षण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि कहा नायिका प्रीतिपूर्वक नायक के साथ हास-परिहास करे तथा बड़े बौदू हस्त के साथ उसीके बेग को धारण कर एक अद्भुत एवं चित्ताकर्षक दृश्य उपस्थित करे, वहाँ सीसा हाव होता है।<sup>५</sup> आचार्य केशव इस पद्ये ही व्यक्त कर चुके थे।<sup>६</sup>

देव का केवल आचार्यत्व पत्र नहीं, यद्यपि कविता-पत्र भी बेगमदासजी से प्रभावित हुआ है। वही-वही तो देव ने बेगम के भावों को इस प्रकार व्यक्त किया है कि कोई अन्तर ही प्रतीत नहीं होता। एक स्थान पर कवि बेगम लिखते हैं—

नननि के तारनि में राखी पारे पूतरी के

मुरली ज्यों लाइ राखी बसन-बसन में ।

राखी भुज बीच बनमाली बनमाला करि ।

खगदन ज्यों खतर अड़ाइ राखी तन में ॥

केतोराइ कलबठ राखी यति कठला के,

करम करम क्योंहू धानी ह भवन में ॥

१ रमिकप्रिया अक्षरप्रमाण अन् ७

२ भावविभास अन् ७ पृ ६२

३ रमिकप्रिया अक्षरप्रमाण अन् ७

४ भावविभास अन् ७ पृ ६४

५ कौतुक से प्रिय की करे, मृग मेघ उन्दारि ।

प्रानम परिहास कई लाना लेख विचारि ॥

६ रमिकप्रिया अक्षरप्रमाण अन् २१

धनकलसी ज्यों काहूँ सुधि सुधि देवता ज्या ।

लेहु मेरे सास ! इह मोसि राखी मन में ॥<sup>१</sup>

देव ने भी उक्त छन्द से प्रभावित होकर निम्नलिखित शब्दों की रचना की है—

लेहु ससा जठिसाई हों बालहि सोक की साजहि सो सरि राखी ।

करि इहें सपनेहु न पयत म अपने उर में धरि राखी ॥

देव ससा अबसा भवसा यह चन्दकला कठसा कवि राखी ।

बाओ सिद्धि नवी निधि ल घर बाहर भीतर हूँ भरि राखी ॥<sup>२</sup>

केव की बिरहिणो नायिका का चित्र देखिए—

छोखियानि मिली सखियानि मिली पतियाँ बतियानि मिली सजि मौनें ।

ध्यान बिधान मिली मनहीं मन ज्यों मिलि रक मनो मन सोनें ॥

केसव बसेहु बेगि खली मत ह्वै यहै हरि जो कछु हीनें ।

पुरन प्रेम-समाधि सगे मिलि जहें तन्हें मिलिहीं तब कीनें ॥<sup>३</sup>

देव ने अपनी दूती के मुख से यही भाव व्यक्त कराया है—

पूछत हो पछिताने कहा फिर पोछ से पावह ही को मिलोगे ।

काल की हाल में झूझति बास बिसोकि हलाहल ही को हिलोगे ॥

सीजिए ज्वाय सुधा मधु प्याय कि ज्वाय नहीं बिष गोली निलोगे ।

पंचनि पंच मिले परपच में चाहि मिले तुम काहि मिलोगे ॥<sup>४</sup>

केशव तथा पद्माकर

पद्माकर (म० १८१०-१८६० वि०) श्री आचार्य केव से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हैं। 'जगन्निभो' में प्राप्त भाव-साम्य के उदाहरण के लिए केव के किञ्चित् हाव को ही लीजिए—

अथ अभिलाष सगध स्मित श्रोत्र हृष भय भाव ।

उपगत एकहि वार जह, तहँ किलकिचित हाव ॥<sup>५</sup>

'पद्माकर ने उक्त छन्द से ही प्रभावित होकर अपने बिलंबित वा लक्षण इस प्रकार व्यक्त किया है—

होत जहाँ इह बारही, प्राप्त हास रस शेष ।

सामों किलकिचित नहत हाव सब निदोष ॥<sup>६</sup>

१ रसिकप्रिया, पंचर्षा प्रभाव छन्द २७

२ भावविभाग छन्द १०, पृ० ६६

३ रसिकप्रिया, आठवीं प्रभाव, छन्द ४०

४ भावविभाग, पृ० ६७

५ रसिकप्रिया अष्टमी प्रभाव, छन्द ३३

६ भाव नई छन्द ६६, पृ० ६

अलंकार-चमत्कार से अभिमत नहीं है ऐसा कोई पाठक नहीं कह सकता। 'कामायनी' का यदि कोई अलंकारों की दृष्टि से ही अध्ययन करे तो उसमें अलंकार पग-पग पर मिलेंगे किन्तु उनकी रचना जिस दृष्टि से हुई है उसी दृष्टिकोण से आज उनकी शाली चलायी जाती है। अलंकारों की शाली चलायी जाने की प्रवृत्ति उसकी साहित्यिक व्यंजकता पर दृष्टि रहती है।

चौथे महाकाव्यों में केशव ने मर्यादा-योजना की दृष्टि से नाटकीय शाली का बड़ा सुन्दर एवं सफल प्रयोग किया था। यह शाली उस युग में भी प्रभावोत्पादक समझी गई और आज भी। 'साकल्य' में तो इस शाली को पग पग पर धपनाया गया है और यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि सावेतकार का इस प्रयोग में बहुत कुछ सफलता मिलने पर भी केशव के समान सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार जगन्नाथदास 'रत्नाकर-कृत 'उद्धवधृतक' भी बला-वश की दृष्टि से केशव के शाली से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है।

कुछ भी हो आधुनिक महाकाव्य इस बात के साक्षी हैं कि कथावस्तु की योजना की दृष्टि से छंदों के प्रयोग की दृष्टि से शाली चमत्कार की दृष्टि से तथा सबाद योजना की नाटकीय शाली की दृष्टि से सभी केशव से प्रभावित हैं। महाकाव्य के रचयिताओं के अतिरिक्त आधुनिक काव्यशास्त्रियों पर भी केशव का प्रभाव परिलक्षित होता है। आधुनिक काव्यशास्त्रियों में स्व. कन्हैयालाल जोशी साक्षात् भगवानदीन श्री अजुन दास केडिया श्री रामदहिन मिश्र डा० रमाशंकर शुक्ल 'रत्नाकर' आदि विषय रूप से उत्प्रेक्षणीय हैं। यद्यपि इन सबका दृष्टिकोण विशेषतः विवेचनात्मक ही है तथापि किसी न किसी रूप में केशव-परिचासित रीति-परम्परा का निर्वाह सभीमें पाया जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध की सीमा में इनपर विनैय प्रकाश डालना सम्भव नहीं है।

### निष्कर्ष

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि बेशवराजजी ने प्राचीन मन्त्रों आचार्यों तथा समकालीन कवियों से प्रेरणा प्राप्त कर जिन अनेक परवर्ती कवि एवं आचार्यों का मार्ग प्रशस्त किया है वह उनके पाण्डित्य के साथ-साथ बहुज्ञता का परिचय भी देता है। आपने काव्यशास्त्र-सम्बन्धी मामलों को एकाग्र कर हिन्दी-साहित्य की दीर्घावधि करने में महान योगदान किया है। आपा-कवियों के साथ-साथ तन्त्रिक विज्ञानियों के लिए भी आपके ग्रंथ पथ प्रदर्शन का काम करते रहे हैं तथा भविष्य में भी अतिरिक्त तब उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण बनाए रखेंगे। इस और अलंकार शाली की शक्तों में आपकी अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट सदाचारों के साथ ही आपने अपने मौखिक सलाह भी प्रस्तुत किए हैं जो किसी भी मर्यादित रचना में दृष्टिकोचर नहीं होते। आपने सराहनीय एवं मूल्य प्रमाण के लिए हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में आपका कृणी रहेगा।

## अष्टम परिच्छेद

### केशव का हिंदी साहित्य में स्थान

हिंदी-साहित्य में केशव एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था उनका महत्त्व भी बहुमुखी है। उनका स्थान निर्दिष्ट करने के लिए उनके किसी एक पक्ष-मात्र को ध्यान में रखकर उन्हें किसी कवि से छोटा या बड़ा कह देना आलोचना-दृष्टि का मकास हो होगा। फिर उनके किसी पक्ष को लेकर किसी सजातीय पक्षवाला में ही तुलना ठीक होगी। देव का स्थान निर्धारित करते हुए डा० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि 'हिन्दी काव्य एक सागर के समान है। इसमें अनन्त धाराएँ प्रवहमान हैं जो ज्ञाना परिमाण तथा गुण समीप एक-दूसरे से भिन्न हैं। इन विभिन्नताओं का विचार न करते हुए किसी भी कवि का समस्त सजातीय कवियों में से एकसाथ स्थान निर्णय कर देना सबका भ्रामक एवं निराधार होगा।' केशव का व्यक्तित्व देव की अपेक्षा कहीं अधिक बहुपक्षी है अतः उनके लिए तो यह बात और भी अधिक आवश्यक है।

प्रतिभा और व्युत्पत्ति (शास्त्रज्ञान) साहित्यकार के दो घरातल हैं जहाँ से वह अपना निर्माण करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि केशव के दोनों घरातल पुष्ट हैं। उनकी प्रतिभा ने कवि रूप में ही नहीं आचार्य रूप में भी अनेकच चमक पदा की है। उनकी व्युत्पत्ति ने आचार्यत्व ही नहीं उनके कवित्व की भी प्राणप्रतिष्ठा की है।

केशव का व्युत्पत्ति ने उन्हें एक प्रौढ़ आचार्य बनाया है। उनकी व्युत्पत्ति की रचनाएँ तीन क्षेत्रों में अधिक स्पष्टता में उभरी हैं

१. काव्यशास्त्र

२. ज्ञान

३. धर्म भक्तिशास्त्र

इन तीनों में काव्यशास्त्रीय पक्ष अधिक मुखर एवं प्रसिद्ध है। काव्यशास्त्रीय पक्ष का मूल्यविन हम आचार्यत्व 'रीषक अध्याय' में कर चुके हैं। अपने समय तक परिनिष्ठित समस्त मसूदा-साहित्यशास्त्र का ज्ञान उन्हें है। उस ज्ञान का अध्यानुकरण नहीं। अपनी निजी अभिरुचि एवं मान्यताओं को भी पूरा स्थान मिला है। यद्यपि 'रसिकप्रिया



दृष्टिवाला आचार्य भय नहीं दिखाई देता।

हिंदी आचार्यत्व का आधुनिक स्वरूप बहुत परिवर्तित हो चुका है। केराव आधुनिक आचार्यों के सजातीय नहीं रह गए। अतः आधुनिक आचार्यों से उनकी तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि डा० नगेन्द्र जी ही आचार्यत्व की संस्था का निगम सजातीयों में ही हो सकता है।

इस प्रकार केराव ऐतिहासिक दृष्टि से ही हिंदी के प्रथम आचार्य नहीं हैं प्रीतिता ध्यापकता एवं मौलिकता की दृष्टि से भी रीतिकाल के सवधष्ठ आचार्य भी हैं। वे रीति-काल के युगनिर्माता साहित्यकार हैं यह बात कम महत्त्व की नहीं। युग निर्माण की दृष्टि से निगुण-मरम्परा में कबीर का कृष्ण भक्ति-मरम्परा में मुरारि का राम भक्ति-मरम्परा में तुलसी का जा स्थान है साहित्य की एक निश्चित धारा में मोड़ देने की क्षमता की दृष्टि से रीति-मरम्परा में वही स्थान आचार्य केराववास का है।

केराव का व्युत्पत्ति पक्ष काव्यशास्त्रीय क्षेत्र में ही प्रौढ़ नहीं है दणन एवं धर्मशास्त्र के क्षेत्र में भी उनकी धारणा पठ है। यह सत्य है कि केराव मनु के समान धर्म नियन्ता नहीं दावर के समान दार्शनिक नहीं तुलसी के समान भवन नहीं किन्तु धर्मशास्त्र दणनशास्त्र एवं भक्तिशास्त्र-सम्बन्धी उनका अध्ययन प्रगस्त है। दणन के क्षेत्र में वे तुलसी के समान ही सामाज्यवादी हैं। तुलसी की धारणा उनका सामाज्य भी अधिक प्रगस्त है। तुलसी के दशन की आज तक सीधतान हा रही है। केराव का दणन स्पष्ट है अन्तवाद जिसके व्यावहारिक पक्ष में द्वैत की भूमि है और इसके साथ ही भक्ति धर्मयोग वैराग्य आदि सबकी समझ है। विज्ञानगीता उनकी इस क्षमता की मूर्त प्रमाण है।

केराव की व्युत्पत्ति का एक क्षेत्र और है—इतिहास। रत्नबावनी और रतिहरेक धरित और जहाँगीर-अस चरित्रों का सांत्वानिक इतिहास की ऐसी सामग्री सुरक्षित है जिसका उत्तम ग्रन्थ ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं मिलता। विज्ञानगीता के रूप में प्रतीक धारण लिखकर तथा इन उपर्युक्त रचनाओं के रूप में ऐतिहासिक काव्य की रचना करके हिन्दी-साहित्य के समस्त केराव ने दो संबंधी नवीन साहित्य-विधियों के द्वार खोल दिए। मातृता के लिए चाहें रचना विधाएँ नवीन न रही हों किन्तु हिन्दी के लिए अवश्य नई चीज थी। खेन है कि परवर्ती रीतिगुण इन विधाओं में प्रवर्धन कर बना।

जहाँ तक केराव के अखिल पक्ष का संबंध है, केराव हमारे समस्त रामचरित्रों के मुक्तक कवि विज्ञानगीता के प्रतीक पाठ्यरूपक (Allegory) रचयिता तथा तीन ऐतिहासिक धार्य-कृतियों के निर्माता के रूप में धात हैं। जहाँ तक साहित्य की विधाओं का प्रश्न है विधानों की विधाएँ उनकी अपनी हैं यह हमें उपर बह चुके हैं। मुक्तक कवि के रूप में रमिकप्रिया की सरमता का जादू धुननजीतक की नवनी परवान धका है। अतः उसके विषय में भी अधिक बताने की आवश्यकता नहीं। धव रहता है उनका प्रवर्धकवि रूप। इस क्षेत्र में उनपर कई प्रकार के आगप सादे गए हैं। प्रवर्ध-योग्य माधुर्यता तथा

प्रकृति-निरीक्षण का अभाव एवं चमत्कार का फेर इन भाषणों में प्रमुख है। इन भाषणों में गुणवत्ता के मानदण्डों की प्रतिध्वनि है। गुणवत्ता के मानदण्ड तुलना का सामन रखकर बन प। प्रबंध रचना में कवि का दृष्टिकोण तुलना में मिल है। उन्होंने रामचरित के पात्रों का चुनाव वपन-वनवध के अवसरों को ध्यान में रखकर किया है तुलना की भाँति इन काव्य को दृष्टि में नहीं। 'रामचरितका' में व नायकत्व तत्त्वा में भी प्रभावित हुए हैं। इसी दृष्टि में उन्होंने महाभारत के सौम्य का उसमें पुनः किया है। प्रबंध-मूत्रा की नाटकीय योजना करने हुए उन्होंने वधा-सम्बन्ध मूर्तों के प्रतिपादित निर्वाह को धार भी प्राप्तिपूर्वक ध्यान नहीं किया। जहाँ तक भावुकता का प्रश्न है केवल की भावुकता तुलना-मूर्त की काँटि की भावुकता नहीं किन्तु रातिनाल के अन्य कवि-व्यक्ति का अपना उनका भावुकता कम नहीं। इस मुख भावे अनन्तर्गत केवल बाद उस स्थिति का लेकर गहनजी न केवल में हृदयहानता ही नहीं हृदयहोनता का हट दिखाई है। किन्तु प्रायः गुणवत्ता की पक्ष पातिना दृष्टि पहिचानी जा चुका है और बहुत-सा मान्यताओं में उनका पक्षपान सिद्ध हो चुका है। रही प्रकृति निराक्षण एवं चमत्कार की बात। कवि के कई शताब्दी पूर्व से ही मस्कृत-काव्य प्रकृति-निरीक्षण से दूर हटना हुआ चमत्कार की ओर चला आ रहा था। वदव उसी परम्परा के कवि हैं। निस्सन्देह प्रकृति के जन्मजात कवि नहीं। उनमें प्राकृतिक चमत्कार का माह भी सजग है। किन्तु उनके प्राकृतिक चमत्कार में दुर्कृता नहीं है। इत्येव यमक प्राप्ति के कुछ स्थिति में दुर्कृता का सामान होता है। उनके दो कारण हैं। एक तो हम इस प्रकार की काव्य-परम्परा में दूर पड़ चुके हैं दूसरे इन प्राकृतिकवाले स्थिति का हम विवनाय जयन्ते प्रादि के लक्षणों का छाया में समझना चाहते हैं। केवल के लक्षण इन विद्वान् प्राचार्यों में मिल है। उनके इत्येव यमक प्राप्ति उनके ही लक्षण के अनुसार समझने पर उत्तम दुर्कृता नहीं रह जाते जिनमें प्रायः समझ जाते हैं।

निस्सन्देह हम 'रामचरितका' की रामचरितमानस के समकक्ष नहीं रख सकते। किन्तु हम ध्यान रखना चाहिए कि 'रामचरितका' और 'रामचरितमानस' दो भिन्न कोटि के महाकाव्य हैं। मानस के खोले में साहित्य-ममज्ञ पंडित और हस्तबान विद्वान् समान रूप में अवगाहन करते हैं। दोनों उसकी समान पूजा करते हैं। मानस भक्ति का भाव काव्य है। 'रामचरितका' दूरवारी काव्य है। इसी कारण उसमें प्रभावोत्पादन एवं चमत्कार के प्रति कलाकार की जागरूकता है। विद्वान्-साहित्य का इतिहास उदासीनता के साथ और कुटिया के काव्य में कला की जागरूकता और अवगाहन का अन्तर मिला। 'रामचरितका' मानस की अपेक्षा मस्कृत-साहित्य के उत्तरयुगीन महाकाव्य में अनुप्राणित हुई है। सरय वान ना यह है कि धोरछा के रजत घासनी पर बैठकर सम्मान के मारों में बालिन मस्तिष्क सत्ता रामचरितका ही लिखने धाएँ हैं धोर मुर-सरिता के पावन तट पर रामानन्दा तिरक जगादी सगाकर 'रामचरितमानस'। न धोरछा में तुलसी मानस लिख पाते न कानी में केवल की वसम पन्दिता।

केवल में भावुकता वपना रम अनवार वपन-वभव चमत्कार—ध्यान ध्यान

स्थान पर अलग अलग रचनाओं में सब कुछ है। सब मिलाकर केशव का कवि प्रतिभावान कवि की अपेक्षा शास्त्रकवि अधिक है। उनका कला-यक्ष भाव की अपेक्षा अधिक मुखर है। कला-यक्ष की दृष्टि से वे मूर और तुलसी से भी बढ़कर हैं। भाव और कला के सामंजस्य को ध्यान में रखकर उनका नम्र मूर-तुलसी के निस्संदेह पश्चात् है। तुलसी की अपेक्षा मूर का भाव-यक्ष सज्ज है। तुलसी में भाव और कला का घनायास सामंजस्य है बिहारी में सचेतन एक सायास। केशव में कविता-कामिनी की विशेष सज्जा के लिए आभूषण का मोह है।

ऐतिहासिक के समय सभी कवियों में केशव का स्थान महत्वपूर्ण है। कला के परिमार्जन में बिहारी उनसे कहीं प्रगल्भ हैं। भावुकता और साक्षात्कार चाहता में घनानन्द उनसे बहुत बड़े हुए हैं। पद्याकार की संकृति का केशव को बहुत पीछे छोड़ जाती है। देव की रस चेतना को सभी स्वीकार करते हैं। और भी कलाकर हिन्दी के पास हैं ही सबता है उनमें कोई न कोई गुण केशव से बहुत बड़ चढ़कर हो। किन्तु सब मिलाकर केशव के पास जितना है उतना इन मध्ययुगीन कलाकारों में किसीके पास नहीं।

अभिव्यक्ता-सामर्थ्य की दृष्टि से केशव की भाषा मूर-तुलसी की अपेक्षा निर्बल है। किन्तु व्यवस्था की दृष्टि से वह उनसे सबल है। ब्रज के इतिहास में व्यवस्था की ओर ध्यान सबसे प्रथम केशव का गया था। इस प्रयास का सफल परिपाक बिहारी में जाकर हुआ है।

वस्तुतः हिन्दी-साहित्य के पास अनेक रत्न हैं जिनके नाम गुण उपयोगिता एवं प्रभाव भिन्न भिन्न हैं। हमारी ही बोली में हमारे हृदय और मस्तिष्क की एकत्र भव्य और देनेवाला कबीर के समान हिन्दी में दूसरा बीज है। हमारी संस्कृति के समस्त सौन्दर्य का प्रतिनिधि तुलसी के समान बीज है। भावों की उत्तम तरंगों में लहरा देनेवाला जादू मूर के अतिरिक्त और किसके पास है? अम्पनालोक में भाव की सूत्रिका में शरणी चित्र धरित करने में प्रसाद की कला का कितने उपमान बनाए! केशव का भी अपना महत्त्व है। भाव। भाव की कवित्व से व्युत्पत्ति की प्रतिभा से साहित्य की भावुकता से मिलाकर अपने बहुमुखी महत्त्व से अभिभूत कर देने की क्षमता रखनेवाला केशव का दूसरा नाम देने के लिए हिन्दी बहुत दिनों से सोच रही है और न जाने कब तक उसे सोचना पड़ेगा।

**परिशिष्ट**  
**सहायक ग्रन्थ-सूची**  
**१ हिन्दी**

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१	सप्तशती एवं बालमनुस्मृत्य	डॉ० दीनानाथ गुप्त
२	भाषाय कवि काव्य	प्रो० कृष्णचन्द्र वर्मा
३	भाषाय काव्यशास्त्र	डॉ० ह्यापलात दीपिन
४	भाषाय भिन्नरीत्या	डॉ० नारायणराय सन्ना
५	कविकुलकठानरुप	दूतह
६	एकावली	विद्याधर
७	कविप्रिया	केशवदास
८	काव्य निषय	भित्तरीत्या
९	केन्द्र पञ्चरत्न का भाषाशिक्षा	साना भगवानन्त
१०	केशव का काव्यकला	कृष्णचक्र गुप्त
११	केन्द्रशास्त्र—एक भाष्यरत्न	डा० सरनामसिंह 'भट्ट'
१२	काव्यशास्त्र	चन्द्रबन्धु पाण्डेय
१३	केन्द्रशास्त्री का धर्मशास्त्र	केशवदास
१४	केशव-प्रयाचना	विन्नायकप्रसाद मिश्र
१५	गुणती की काव्यकला	डॉ० सत्येन्द्र
१६	धर्मशास्त्र	केन्द्रशास्त्र
१७	अग्निनी	पद्माकर
१८	असवन्त ज्योत्स्ना	मुरारिनी
१९	दश प्रीत जनकी कविता	डॉ० नरेन्द्र
२०	नक्षत्र	केन्द्रशास्त्र
२१	भाषान बार्ता रहस्य	डॉ० द्वारिकादास पाराशर
२२	विद्या 'रत्नाकर'	जान्नायकप्रसाद रत्नाकर
२३	विद्यारी की वाग्बिम्बिता	विन्नायकप्रसाद मिश्र

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
२४	विहारी सतसई	म० जगन्नाथप्रसाद खन्नावर
२५	बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास	गोरेसागर तिवारी
२६	बुंदेल-वैभव—प्रथम भाग	गौरीगङ्गार द्विवेदी
२७	भक्तमाल	नाभादामजी
२८	भारत का इतिहास—भाग २	डॉ० ईश्वरीप्रसाद
२९	भारत का बहुद्व द्वितीय इतिहास	श्रीनेत्र पाण्डेय
३	भारतीय साहित्य की रूपरेखा भाग २	श्रीराम त्यागी
३१	भाव बिनास	देव
३२	भाषा भूषण	जसवन्तसिंह
३३	भमरगीतसार	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३४	मित्रवधु बिनाद	मित्रवधु
३५	मुगलकालीन भारत	डॉ० यागीर्वादीलाल
३६	मूल गोसाइचरित	वेणीयाध्वप्रसाद
३७	रत्नबावनी	के०वदाम
५८	रमिकप्रिया	के०वदास
३९	राधाकृष्ण प्रयासली—खण्ड १	ना० प्र० रामा चार्गी
४	राधावल्लभसम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य	डॉ० विजयेन्द्र नातक
४१	रामचन्द्र भूषण	सधिराम
४२	रामचरित	के०वदाम
४३	रामचरितमानस	मुमसीनस
४४	नघु भागवतामृत	बैरदेवर प्रेस बम्बई
४५	विज्ञानगीता	के०वदास
४६	वीरमिहदेवचरित	के०वदास
४७	वैराग्यगणक	देव
४८	गिराज भूषण	भूषण
४९	गिरमिह गरीज	गिरमिह
५०	श्री भक्तवत्सलचरित	प्रभुसुख ब्रह्मचारी
५१	संक्षिप्त रामचरित का की मूढिका	पोताप्रदत्त बहुष्वाय
५२	संगीत नविषो की हिन्दी रचनाएँ	नमनगङ्गार चतुर्वेदी
५३	सप्राप्त-मापूर	मुनपति मिश्र
५४	गूर और उनके साहित्य	डॉ० हरचन्द्रान रामा

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
५५	मूरसासजी नू जीवन-चरित	परीस
५६	मूरसागर	मूरदास
५७	हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	डॉ० मगीरय मिश्र
५८	हिन्दी के कवि और काव्य	गणेशप्रसाद त्रिवेदी
५९	हिन्दी-नवरत्न	मिथबधु
६०	हिन्दी-साहित्य	डॉ० राममुन्दास
६१	हिन्दी-साहित्य	डॉ० हठारीप्रसाद त्रिवेदी
६२	हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार शर्मा
६३	हिन्दी-साहित्य का इतिहास	भाबाय रामचन्द्र गुप्त

## २ संस्कृत

६४	अग्निपुराण	गीता प्रस
६५	अध्यात्मरामायण	गीता प्रस
६६	अनगरम	कल्याणमल
६७	अभिनानशाकुन्तलम्	कालिदास
६८	अनकारचोखर	कृष्ण मिश्र
६९	अनकारसवस्व	रामानन्द स्वयंकर
७०	अनकारमूत्र	रामानन्द स्वयंकर
७१	आनन्दमाला	भाबाय रामानन्द
७२	उत्तररामचरितम्	भवभूति
७३	उन्मेषसाहस्री	शकराचार्य
७४	वादम्बरी	बाण
७५	काममूत्र	वात्स्यायन
७६	काव्यकल्पलतावृत्ति	मयूरचन्द्र
७७	काव्यप्रकाश	भाबाय रामानन्द
७८	काव्यप्रकाश की टीका	कामन कृष्णजीकर
७९	काव्यान्तर	दण्डी
८०	काव्यान्तरकार	रामह
८१	काव्यान्तरकार-मूत्र	रामान
८२	कुवतपानम्	धन्य दीपित
८३	चण्डालोद	अय्येव
८४	दण्डिका	धनञ्जय

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
८५	दत्तरूपक के टीकाकार	घनिक
८६	ध्वयालोक	भानुदत्त
८७	नाट्यशास्त्र	भाचार्य भरत
८८	निम्बाविरच्य दशरलोकी	हरिदेव ध्यास
८९	नीतिघनक	मनू हरि
९०	नयपीयचरितम्	श्रीहर्ष
९१	प्रबोधचन्दोदय	कृष्ण मिश्र
९२	प्रसन्नरापव	जयदेव
९३	मृच्छवटिक	शूद्रक
९४	योगवासिष्ठ	गीता प्रस
९५	रसगनाधर	पण्डितराज जगन्नाथ
९६	रसाणवमुधावर	गिरिभूषण
९७	वक्राकिनजीवितम्	भाचार्य कुन्तल
९८	वल्गुभदिग्विजय	यदुनाथजी
९९	वेदान्तसार	मदानन्द
१००	वृत्तरत्नाकर	कैदार भट्ट
१०१	शृंगारप्रवाण	भोज नरेश
१०२	श्रीमाध्य	बल्लभाचार्य
१०३	श्रीमद्भगवद्गीता	गीता प्रस
१०४	सरस्वतीकुलकंठाभरण	भोज नरेश
१०५	साहित्यदर्पण	विद्वन्नाथ
१०६	हनुमन्नाटक	सं० दामोदर मिश्र

### ३ अंग्रेजी

१०७	A Cultural Heritage of India Series Part II	Ramkrishna Mission Calcutta
१०८	An Advanced History of India	R G Majumdar—Ed
१०९	Bernier's Travels	Bernier
११०	History of India As Told by Its Own Historians Part VI	Elliot and Dowson
१११	In-I Akabari	Blochman—Tr

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
११२	Introduction to Sahitya Darpan	P V Kane
११३	Mediaeval India	Lane Poole
११४	Orchha Gazetteer Part VI A	Capt C F Leuard
११५	Studies In Moghal India	J N Sarkar
११६	Vaishnavism Shaivism and Other Minor Religious Systems	R G Bhandarker

## ४ हस्तलिखित

११७	जहागीर-जस चन्द्रिका	कमलनाथ
११८	हस्तलिखित प्रतियाँ	रमणलाल हरि चौधरी

## ५ पत्रिका

११९	नागरी प्रचारिणी-पत्रिका	ना० प्र० सभा काशी
-----	-------------------------	-------------------

## ६ रिपोर्ट

१२०	ना० प्र० सभा खोज रिपोर्ट	ना० प्र० सभा काशी
-----	--------------------------	-------------------



## नामानुक्रमणिका

अ

- अगद—३०८ ३११ ३१३  
 अकबर—१३ १५ १६ २१ २५ ४०  
 ४६ ५६ ६० ६१ ६६ ८० ६२ ६६  
 २७३ २७४  
 अप्पयदीक्षित—१६८ २०४ २०७ २२८  
 २२९ २४६ २६६ ३७२  
 अबुनफ्जल—२३ ४६ ४७ ५६ ६४,  
 ६६ २६६ ३ ६  
 अभिनवगुप्त—११२ ११६ १४५ २१६  
 २२१ ३७२  
 अमीर खुसरो—११  
 अम्बिकादत्त व्यास—६१  
 अजुनदास केडिया—३७०  
 अलाउद्दीन—६

आ

- आनन्दवर्धन—११२ ११५ ११६ १८७  
 १८६ २१६ २२१ ३७२  
 आशीर्वाणीलाल श्रीवास्तव—२३ ६५

इ

- इन्द्रजीवसिंह—८ १० १२ १५ २ २५  
 ३० ३४ ३६ ४१, ४३ ४४ ४६  
 ४८ ४९ ५५ ६० ६६ ८०, ८४  
 १४० २४५

ई

- ईश्वरीप्रसाद—२१, ६२

उ

- उद्भट—२१६ २२२, २२८ २३८  
 उद्धव—३६२

औ

- औरंगजेब—६२

क

- कहैयालाल पोद्दार—३७०  
 कबीर—३७६  
 करनेस—४०  
 कल्याणदास—६ १० १८ ३८  
 कल्याणदे—११ ८०  
 कल्याणमन—१४७, ३५४  
 कृपाराम—४०  
 कृष्ण—३५ ५१ ६० ६२ ६८ १०४  
 ११२ १३७ १८७ १६२ २४४  
 कृष्णदत्त—११५  
 कृष्ण मिश्र—२६८ ३४६  
 कृष्णलाल शुक्ल—२८ २९ १५५ १५६  
 कान्हे पी० बी —११५ १५७ २ ५  
 २१५ २१७ २२२ २२८ २३३  
 २३६ २४१ २४६  
 कामसेना—५६ ५७  
 कासिदास—१६ १७१ २५० २५२  
 २७६ २६० २६२ ३२३  
 काशीनाथ—६ १० १२ १५, १८ २५  
 २८ २९, ३८ ४६ ५४ ८८

कीटम—३०, २५०

कुतल—०१२ ०१४ ०१५ ०२१

कुनार भुवालराय—२५६

कुलपति मिश्र—५१ ५३

'के' महान्य—३३

केनव ऊचाहार—८६

केनव गिरि—५

केशव—६२

केशव मिश्र—५३

केशवराय बबुषा—३५, ४ ५० ५१ ८८

कसारि—५ ३१ ५० ५१ ५३ ८७

ककेई—३११ ३३६ ३४२

ख

खटोक खां—१३

खडगजीवनिह—८५

ग

गण—१६ १८ १६ २७

गणपति—७० ८७ ३०७

गणेशकर त्रिवेणी—२४ २५ ३२ ३३

४६, ५२ ५४ ६१

गाधीजी—२ ०

गाधि—२६१

गिरिधरराय—३२१

गेनिलियो—३२

गोरखनाथ—१११

गोरेताल तिवारी—१३ ३३ ६४ ६६

गाविन्दास—३३ ८५

गौरांग—१०४

गौरीशंकर त्रिवेणी—२३ ३ ४८ ५२

६१ ६२ ८६

प्रियसन (धर जाज)—०४ ४६, ६१

॥

घनांग—१६ ३७६

च

चन्दवरराय—४८ ५४ ३२१

चन्द्रबसा पाड—०८ ३१ ४८ ५२ ५४

१ २

चन्द्रमानु—६३ ४५, ४८

चन्द्रमेन—४८

चार्वाक—८३

चिन्तामणि—१६, २४६ ३७२

चतय—६८ १०३

छ

छत्रपाल—८८

ज

जगन्नाथ तिवारी—०८ २६ २७२

जगन्नाथराय 'रत्नाकर'—२८ ४८ ५३

६८ ६६ ३७०

जयदेव—८ ६ ३२ ३८ १०६ ११

११४ १६६ १६८ २३२ ३११

३३८ ४७ ७२

जयनिह—५३

जसवन्तसिंह—६४

जहागीर—१५ ८४ ८५, ६२ ६६६

२७८ २६७ २८६ ३००

जायसी—५ ३६० ३६१

जीव गोस्वामी—१०३

जुमारसिंह—४३

जैमुनि—८७

ट

टोंड—४८

टाडरमन—१५, ५६

त

तान सरग—४६

तुलसी—४६ १६ १७ १६ २१, २७

२६, ५६ ५६ ६२ ७० ६८ १११

११८ ११६ १३५ १३८ १८२,

२५० २५३ २६५ २६६ ३०२  
३०३, ३०७ ३१० ३१३, ३१७  
३२७ ३३६, ३६० ३६२, ३६६,  
३७४ ३७६

तोष—१६ २४६

व

वण्डी—४, ११३ ११५ १६५ २ ४ २०६  
२१६ २२२ २२४ २२६ २३६  
२४१ २४२ २४४, २४६ ३५३

वत्तानय—६८

वगारथ—७० १०५ २६१ २७१ २६४  
३३४, ३४१ ३४८

वीनदयालु गुप्त (डॉ०)—६६

दूलहराम—४४, ३६८

देव—१६ १६ २४६ २७६ ३६३ ३६५  
३६७ ३७३

ध

धनजय—१४६ १४७ १४२ १६२ १६३  
१६५ १६६ १८० १८१, १८३ १८४

धनिक—१६२, १७८

न

नगेद्र (डॉ०)—३७१ ३७३ ३७४

नन्ददास—४० ३१७

नरहरिदास—४ ४५

नवरगदाय—४६ ६१

नागरीदास—५१

नाथमुनि—६७

नाभादास—१०२ १ ४

निम्बार्णाय—६८ १०, १०२

नूरजहाँ—६२

प

पण्तिरराज जगन्नाथ—३७ ५६ ११२,  
११६, १६४ १६८ १७८ १८१  
१८४, २०४ २०५ २११ २३४,

२३६ २४२

पतिराम—४० ५६

पष्पाकर—२४६ ३६७ ३६८, ३७६

परमानन्द—४३

परशुराम—८ ४८ २६० ३०२, ३०६

३०७ ३११ ३१२, ३३६ ३४२

३४३ ३६१

पीताम्बरदास बड़धवाल—२८ ३३ ३१६,  
३३२

पुष्प—४०

प्रतापराव—६३ ६४

प्रवीणराय—२१ २५, ३६ ४०, ४६ ५१,  
५५ ६१ ६६ ७४ ६३

फ

फनुहर—१००

फती—५६

ब

बलमन्न मिश्र—६ १ १५ २५ २६

३२ ५४ ८७

बाणमठ—११५ २४८ २७६ २८०  
३४६

बाति—३ ३ ३ ८

बिदुमाधव—२६६

बिहारी—१८ १६ ३१ ४१ ५० ५५,  
५८ ३६८ ३७६

बीरबल—१० १५ १६ १६ २१ २५

ब्लीवमन—१३ १४ २३ ४६ ४७

३५ ५५ ५७ ६० ६६

बोधा—१६

भ

भटारकर, धार जी—६८

भगवानदीन (माला)—१० २७ २६

३१ ३३ ६१ ६२ ६८, ७१ ७३

७७ २४५ ३१५ ३६४ ३७०

महीरथमिथ—१४८ १४५, १४८ १४५

१५ १५६

महृतामक—११६

महि—२१३

मरत—७१ ३०३ ३०५ २०७ ३११

३३६ ३४४

मरतमुनि—११२ ११४ १४५, १४७

१६१ १६८ १८६ १७३ १७

१७७ १७६, १८१ १८२ १८४

१८८ २४८

मनु हृदि—३६०

मानुष—१४७ २४८

मामह—४ ६८, ११२ ११५ १६५ १६७

२ ४ २०६ २१० २१२ २१५ २१६

२२२ २२५, २२८ २३० २३३

२३७ २४२ २४६ ३०१

भारवि—३२३

भास—१६

भित्तिरादास—२७६ ३६४ २६५ ३७३

भीमासाहव—८८

भूपाल (भावाय)—३५४

भूपण—१६ ४६, २५६ ३ ३ ३ ४

भोज—११३ ११४ १५५ १६८ १६५

२४८

म

महिराम—१६, २४८ ६२ ६५

मधुकराहा—६ १ १ १५, २४ २६,

२६, ४१ ४६ ४८ ५१ ६४ ६३

६४ ६ ३०० ३०८

मध्याचाय—६८ १००

मनु—७४

मम्मट—२७ ११३ ११४ ११६ १४५

१५४ १५५, १६३ १६५, १६ १६६

१७८ १८३ १८८ १८९ १८८

२०४ २०८ २०८ २१३ २१५

२१७ २१८ २२० २२२ २२६

२२८ २३१ २३ २३६, २४२

४४ ७६ ३७२ ३७३

माध—७१ २८० ३७३

मानसिह—८ ५६ ६६

मायागकरयानिक—६८ ५३

मिश्रवधु—२४ २५ २७ ३१ ३३ ५८

१

य

यामुनाचाय—६७

यारी माहव—८

यानवत्त्वज—३

र

रामनृति—४८

रघराय—४

रत्नवन—१४ १५, २३ ४१ ४२ ४४

४४ ४८ ६४ ३ = ३०६ ३१०

१५

रमागकरगुवन 'रसात'—३७०

रमलान—२४८

रहाम—५५

राजोवर—११ ११४

राणा प्रतापसिंह—४८

राधा—२५ ५१ ६६ ८६ ६६ १०२

१० १८७ १८६ २५४ २६४

२०४ ३ २

राधाकृष्णस—२७ ५८

राधाचरणगास्वामी—२७ ४६

राम—८ ६ ७ ५६ ५८ ७० ७१

८७ १०५ १०८ १२२ १२३ १ ५

१८ १ ८ १६७ १७४ २०२

२५७ २५८ २६ २६३ २६६

२६७ २७६, २७७ २८६ २८७ २८८

२८६ २६१ २६४ २६५ ३०२ ३०८  
३१२ ३१३ ३२५ ३२६ ३६१

रामकुमार वर्मा (ठा०)—२४ ४६ ३३

रामचन्द्र शुक्ल—२० २५ २७ ३१, ६१

८६ ६६ १७१ २७१ २४५ २८२

३३३ ३७४ ३७५

रामदहिन मिश्र—३७०

रामनरेश त्रिपाठी—३३ ६१

रामरत्न भटनागर—२७ २८

रामगाह—१० ११ १४ १५ ४३ ४५

४८ ५६ ८० ६४

रामानन्द—८७ ६८

रामानुजाचार्य—६७ ६८ १२५

रावण—१०८ १७५ २५७ २६० २६२,

२६३ २८६ ३०६ ३०७ ३०८,

३०९ ३११ ३१३ ३३८ ३४५

३४६

रामप्रतापसिंह—६ १४ २५ २६, ४२

४४

रुद्र—४ ११३ ११५ १६५, १६७

१६८ २ ७ २४१

रुद्रक—११४ ११५ १६७ २०३ २ ५

२०७, २०९ २१ २१३ २१५

२१७ २२० २२२ २२८ २२९

२३१ २३३ २३८ २४२ २४४

३५३

रूप गोस्वामी—१०३ ११०, ११२ १६४

२७६

स

सखिराम—३६६

ख

खल्लमाचार्य—३२ ६८ १ ० १ २

खशिष्ठ—१२३ ३३४ ३५२

खात्स्यायन—६१ १४७, ३५५ ३५६

वामन—११२ ११४ ११५ १५७ २०४

२ ६ २०८ २१२ २१३ २२५ २४२

३५३

वामन भलकीकर—१७६ १८० १८४

वाल्मीकि—७० १७१ १७६ १६६,

३०२ ३०७ ३१० ३३७ ३३८

विचित्र नयना—४६

विजयेन्द्र स्नातक (जीं )—१०२

विठ्ठलनाथ गोस्वामी—५७ ६८

विद्याधर—१३० २४८

विद्यापति—६४ ११० २५०

विभीषण—५६ २५७ २५८ ३ ६ ३३६

३४८

विष्णुस्वामी—६८ १००

विश्वनाथ—११२ ११६ १४५ १४७

१५ १५१ १५४ १५५ १६३ १६६

१७४ १७८ १८०, १८३ १८८

१९०, १९४ १९८ २०५ २ ७

२ ६ २१३ २१५ २१७ २१९

२२२ २२६ २२८ २३१ २३३

२३४ २३६ २३९ २४१ २४२

२४६ २४८ २६६ २६३ ३००

३५३ ३५४ ३७३

विश्वनाथप्रसाद मिश्र—३५ ७७-७८

१७७

विश्वामित्र—७० १२३ २६ २६१

२७० ३०२ ३३४ ३३८, ३४१

३४३ ३६१

वीरसिंहदेव—११ १२ १६ २४ ४१

४३ ४८ ५३ ५६ ६ ६२ ७६

८०, ८३ ८३ ८५, १३८ २६६

२६७ ३०६

वेणीमाधवनाथ—१६

व्यास (महर्षि)—११८ ३५३

# परिशिष्ट

७

शकराबाय—३२ ८८ ६७ ११= १००

३७४

विश्वसिंह भेंगर—२४ २२ १२ ५३

गिराजी—४८

गून्क—३४७

धेरगाह मुरी—१५

धली—३० २१०

चामसुन्दराल (डा०)—२४ २ ४८

१३ ५४

आनन पाण्डव—८०

धौपति—१६ २७३

धीहय—३७ २१० ५२३

४

सत्पेन्द्र (डा०)—१ ३

सनावन गोस्वामी—१००

सरकार जे० एन०—८१

सरदार कवि—२७ ६८ ७१ ७५ ७७

१७२

सरलामसिंह का 'कर'—२८ २८ ११८

२०२ २ ४ २१० २४१

सी० ई० मुमड—१४ २३

सीजा—७१ १०५ १०८ १६६ २६८

२८८ २८१ २८४ ३०४ ३०

०८ १० १ ३८ ४१

मुनीब—७१= ०५

मूर—४५ ७० २७ २८ १ = २५

०५० १७ २ २६० ३५

२ ७४ ७

मूरल मिश्र—= ७

मनाति—१८

ह

हजारीप्रसाद त्रिपा (डा०)— १

२४ ७ ८ ८७

हनुमान—१ = २ ८ २७७ ३०

२११ १ ३६, ३६५

हरवन्नाल मना (डा०)—८५

हरिमोय—२१ २ ८

हरिचरणन—७५

हमिबत्र भारतेन्दु—०

हिउ हरिवा—८८ १०२

हारानन शक्ति (डा०)—२८ ३

३० ४८ १३ १४ ६१ ७

७ १७७ १८७ २०० २०२ २

२१४ २१८ २२० २ ५

## ग्रन्थानुक्रमणिका

अ

- अगदपण—२४६  
अकवर टू श्रीरगजेब—२३  
अखरावट—३६१  
अग्निपुराण—२००  
अध्यात्मरामायण—३३८, ३३९ ३४८  
अनगरग—१४७ ३१२ ३५४ ३५५  
अनवर चन्द्रिका—५०  
अभिज्ञानशाकुन्तलम्—१७१  
अलकारसवस्व (रुप्यक)—१६६ १६६  
२० २०६ २१० २२० २२२  
२२६ २२८ २३० २३५ २३७  
२३६ २४० २४२ २४३  
अलकारसवस्व (विमर्शिनी टीका)—  
२२२ २३६

अलकारसखर—२१३ ३५७ ३५८

आ

- आइने अकबरी—१३ १४ २३ २४ ४६  
४७ ६५ ६६  
आमिरी कनाम—३६१  
आचाय नवि वेद्यव—२८ २९ १४५  
१५६  
आचाय देगवदास—२ २८ ३ ५३  
५४ ७५ ७६ १६७ २०० २०२  
२०६ २१४, २३६  
आनन्द भाष्य—६७  
आनन्दलहरी—३५, ६३, ८८, ८९

उ

उज्ज्वलनीलमणि—१०३ ११० ११२,  
२४६

उत्तररामचरितम्—३० २४८ ३ ३

उद्यम शतक—३७०

उपदेशसाहस्री—१३३

ऊ

ऊर्गवद—३१६

ए

एकवर्ती—१६६ २३५ २३७ २४८

एन एडवास हिस्ट्री आफ इण्डिया—६२

ओ

औरछा गजटियर—२ १३ १४ २३

३३ ४१ ५३ ६४

क

कविकुलकण्ठाभरण—३६६

कविकुलकल्पतरु—२४६

कवित्रिया—३५ ८ १ १३ १५ १६

२६ ३० ३१ ३४, ३५ ३७ ४१

४६ ४८, ५७ ५९ ६१ ६३ ७१

७७ ८० ८४ ८८ ११६ १३७

१३६ १४० १४३ १४५ १४४

१५८ १६१ १६४ १६७, २०१

२०४ २१३ २३७ २४, २४१

२४३ २४७ २५१, २६७ २७१

२७६ २८० २८५ २८९ ३०

३०१ ३१७ ३२४ ३२६ ३२८

३३१ ३३३ ३३७ ३४७ ३५३  
 ३५७ ३६० ३६२ ३६५ ३६८ ३७२  
 कादम्बरी—७१ २४१ २४८ २७६  
 ३३८ ३४६ ३४८  
 कामरूप की कथा—१६ १७ १६  
 कामसूत्र—६१ १४७ ३५५ ३५६  
 कामायनी—३६६ ३७०  
 काव्यालंकार—११३ १६५ १६७ २ ४  
 २ ६ २०८ २१५ २२२ २२५  
 २४२  
 काव्यकल्पलतावृत्ति—१५८ २१३  
 ३५८ ३५६  
 काव्यनिर्णय—३६४ ३६५  
 काव्यप्रकाश—५७ ११२ ११६ १४५  
 १७६ १८२ १८४ १६६ १८८  
 २०४ २०६ २०६ २१६ २२०  
 २२५ २२७ २३२ २३८ २४०  
 २४२  
 काव्यादर्श—११३ ११४ १६५ १६७  
 १६६ २०१ २०३ २ ४ २०६  
 २१० २११ २१३ २१६ २२२  
 २३० २३२ २३६ २३८ २४१  
 २ ८ २४२ २४४  
 काव्यालंकार भाष्य—१४७  
 काव्यालंकार सूत्र—१५७ २०६ २ ६  
 २०८ २२५  
 किराताजुनीयम्—२६४  
 कीर्तिलता—७६  
 कुलमानस—३०६  
 कुवलयानन्द—१६८ १६६ २०३ २०४  
 २ ६ २२४ २२७ २३२ २३३  
 २३८ ३७२  
 केम्पिज हिन्दू भाष्य इण्डिया—२३  
 केणव बौमुदी—७१

केणव-प्रधावली—१७१ १८३  
 केणवदास—२ २८ ३० ३१ ४६, ५२,  
 ५३ ६२  
 केणवदास एक धर्मग्रन्थ—२ २८ २६  
 केणवदासजी का ममीघुट—३५ ६३  
 १८६  
 केणवपचरल की माताशिका—२८ ४८  
 ३१५ ३६४  
 कृष्णलीला—३१ ६३ ८६  
 ग  
 गीतगोविन्द—३२४  
 गुणजी की काव्यकला—१०५  
 ख  
 खड्गालोक—११३ १६६ १६८ ३७२  
 खिन्न मीमांसा—२४६  
 छ  
 छन्दप्रभाकर (मानु)—३१६  
 छन्दमाला—३ ४० ५८ ६३ ७८ ८६  
 ६१ १४२ २६३ ३१७  
 छन्दसार ३६५  
 ज  
 जगदिनोद—३६७ ३६८  
 जगतल भाष्य इण्डिया हिन्दू—६६  
 जसबन्त जसाभूषण—३६६  
 जहागीर-जस चन्द्रिका—१६ ५६ ५६  
 ६१ ६३ ८४, ६१ ११० २४७  
 २७६ २७८ २६३ ३ ३१४  
 ३१५ ३१८ ३७४  
 जाबालोपनिषद्—२६६  
 जैमिनी कथा—६३ ८७  
 जोरावर प्रकाश—६८  
 व  
 वनस्पति—१४६ १५२ १६२ १६३  
 १६६ १७३ १७५ १७७ १७८,



१८०, १८२ १८४

दी हिस्ट्री आफ धनकार—१५७

देव और जनकी कविता—३७१ ३७३

देवशतक—१६ १८ १९

ध

ध्वन्यालोक—११६, १८७ १८९ १९१

२२० २२१

ध्वन्यालोक लोचन—११६

न

नक्षत्रशिल—३ ६३ ६८, ६९ १०५, ३०९

३१७ ३१८

नाट्यशास्त्र—११२ ११४ १५८ १६२

१६९ १७३ १७७ १७८ १८९

१८१ १८४ १२९ १९४

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९००)—

२ १७ २४, २६ ७१ ८१

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९०३)—

६५, ६८, ६९ ७८ ८४

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९०५)—

१८ ५३ ८७

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९०६)—

२४

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९११)—

८७ ८८ ८९

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९१७)—

६५, ७२ ८१ ८७

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९२०)—

८७

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९२६)—

६४, ६५ ७० ७२ ७३ ८१

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९३०)—

६४

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९४४ वि०)

—५० ५२

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (१९८७ वि०)

—५३

ना० प्र० समा सौज रिपोर्ट (२०१० वि०)

—६४ ६५ ६८ ७०

निष्वादित्य दान्तोकी—१०१

नीतिशास्त्र—३६०

नोक्स घान साहित्यदण—२०५, २१५

२१७ २२२ २२८ २२९, २३३

२३६ २३९ २४१

नपथीयचरितम्—२६४, ३३८, ३४७,

३४८

प

पद्मपुराण—१०

पद्मावत—२६१

प्रदीप काव्य—२४२

प्रवाचकद्रोण्य—८२, २९८ २९९, ३४९,

३५१ ४५१

प्रवाच रत्न मुषासागर—५३

प्रमत्तरायव—३२ ३८ ७१ ३१२ ३४

३४३ ३४६, ३४८

प्रिया प्रकाश—७७

प्रियप्रवास—३२१ ३६९

प्रमत्तद्विषा—२४९

स

सारहमासा—३ ६३, ९० ३०१

सालिचरित्र—७३ ८८

विहारी की वाक्त्रिभूति—१५ ३६

विहारी रत्नाकर—४९ ५० ५३ २५०

२५३

विहारी सतगद्—३६४, ३६८

बुद्धिमान का इतिहास—१३ १५, ३३

६४ ६६

बुद्धिमान—२१ २३ ४९ ५२ ९३

भ

भवानीविलास—२५०

भविष्यपुराण—१ ०

भारतीय साहित्य की रूपरेखा—६२

भावप्रकाश—३२ २४८

भावविलास—३६६ ३६७

भाषाभूषण—३६४

भ्रमरगीतसार—३६२

म

मादन वर्नाकपूर लिटरेचर आफ

हिन्दुस्तान—२४

मध्ययुग का इतिहास—२३

मृच्छकटिकम्—३४७

माण्डूक्योपनिषत्—११६

मिश्रबधु विनोद—२१ २५ २७ ४

मुगलकालीन भारत—२३ ६५

मुन्ताज़िब-उल-नवाबीय—२३

मूल गीताञ्जलि—१६ १६

मेघदूत—२५२

मेडीवल इण्डिया—६५

योगवासिष्ठ भाषा—३४६

र

रत्नवावनी—३ ७ १२ १५ १७ २६

३३, ४८ ६३ ६४ ६० ६३ ११०

२५६ ७६ २६३ ३०६ ३१

३१४ ३१८ ३२

रसगंगाधर—११२ ११६ १६४ १६६

१६८ १७८ १८० १८१ १८४

२ ३ २०५ २१२ २२२ २३७ २४०

२४२

रसचिन्ता—५

रसतरंगिणी—१८१ २४८

रसप्रबोध—२४६

रसमञ्जरी—४० १४७, २४८

रसरत्न—२४६ ३६५

रससहित—६३ ८६

रसविलास—२४६

रसभृंगार—२४६

रसानवमुखाकर—३५४

रसामृतसिन्धु—१०३

रसिकप्रिया—३५ ७ ८ १७ २८ ३०

३१ ३३ ३४ ३७ ४० ४६ ५७

५८ ६१ ६२ ६६ ७६ ७७ ८६,

९ १०८ ११६ १३७ १३६ १४३

१५३ १५६ १६० १६५ १६६

१६८ १७० १७२ १७३ १७६

१८४ १८६ १८४ २४६ २५१

२५३ २५६ २६४ २६६ २७६

२८४ २८६ २८७ २८३ ३००

३ १ ३१७ ३२५ ३२७ ३३

३३२ ३५३ ३५६ ३६५ ३६८

३७१ ३७४

राजस्थान (टीक)—४८

राधाकृष्णभाषावती—४६ ५०

राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और

साहित्य—१ २

रामचन्द्रभूषण—३६६

रामचन्द्रिका—३ ५ १ १६ १७ २०

३६ ३७ ५८ ५६ ६३ ६६ ७१

७७ ७६ ८३ ६० ६६ १०५ १०६,

११८ ११६ १२२ १२३ १२६

१२७ १३१ १३३ १३७ २४७

२५१ २५३ २५७ २५८ २६०

२६६ २६८ २७८ २८० २८३

२८५ २८१ २८३ २८४ २८५

२८६ ३०२ ३ ६, ३११ ३१४

३१७ ३२२ ३२४ ३२७ ३२९

३३५, ३३७-३४८ ३६१ ४६२

३७४ ३७५

रामचरितमानस—६ १७ ७१, ८४

११० ३०२ ३०३ ३२२ ३६१

३६२, ३७५

रामभक्ति प्रवाशिका—७१

रामालकृत मजरी—३ ६३, ८५ ८६

ल

लघु भागवतामृत—१०३ १०४

लालचन्द्रिका—५०

लोचन—६० ध्वयालोच लोचन

ल

ललितपर दृक्त्व—६५

ललितम दिग्निजय—१०१ १ २

लालमीषि रामायण—१०८ ३३८ ३३९

विद्यापति की पदावली—२५०

विदभाष्य—१०३

विज्ञानगीता—३, ५ ७, १० १२ १६

३४ ३५, ३७ ३९ ४० ४८ ५१

६० ६१ ६३ ८१ ८३ ८६ ८९

९५, १०७ १११ ११८ १३४

१३६ १३८ २४७ २६० २७३

२७५ २८३, २८७ २८९ २९२

२९४ ३२८ ३३७ ३४९ ३५२

३६१, ३७४

वीरसिंहवचन—३, ७ ११ १५ ३७

४५ ४७ ५६ ५८ ६३ ६९ ७१

८१ ८३ ८५ ८९ ९३ ९५ १०६

११० २४७ २५९ २६१ २७३

२७५ २८३ २८६ २८७ ३०९

३१४, ३१५ ३१८ ३२५ ३२९

३३१ ३६१ ३७४

वेदान्तसार—१०१ १२४

वराह्यप्रतप—६० दश शतक

वष्णुवधम का इतिहास—१००

वष्णुविष्णु छविष्णु एण्ड मदन भाइनर

रिसीवियस सिस्टम्स—६८ १००

वृत्तरत्नाकर—३५२

श

शिवराज भूषण—३६३ ३६४

शिवसिंह सराज—३ १६ २५ २७ ४९,

५३ ८५ ८८

शिवावाचना—३६४

शिशुपालवध—१६४

शृंगारविनय—२४८

शृंगारनिर्णय—२४९

शृंगारप्रकाश—१५५ २४८

श्री चैतन्य चरितावली—१०४

श्रीमद्भागवतगीता—८२ १२६ १३७

२६८ ३३८

श्रीमद्भागवत—८२, १०० १३६ २६७

श्रीभाष्य—६७

स

सक्षिप्त रामचन्द्रिका—२८ २९ २७९

सप्तम सागर—५१, ५३

सगीतरत्नाकर पर भाष्य—६३ ६०

सम्प्रदायप्रदीप—१००

सरस्वतीकण्ठाभरण—१६८ २००

२४८

सट्ठाज इन मुगल इण्डिया—६५

सावन—३६९ ३७०

साहित्यदण—११२ ११६ १४६ १४७

१८९ १९१ १९४ १९५ १९६

१९४ १९६ १९८ १९९ १७३

१७५, १८१ १८३ १८५, १९

१९८ १९९ २०४ २०५ २०८,

२०९, २१५ २२६ २२८, २३०

२३३ २३६ २३८, २४१ २४३,

२६३ २६५, २६७, २६८, २७२

साहित्यसार—३६५

मुख-विलासिनी—६७ ६८

सुधानिधि—२४६

मूर और उनका साहित्य—६६

मूर-सागर—२५० ३६२

ह

हनुमन्नाटक—३२ ७१ ३३८ ३३९,

३४३ ३४६

हनुमान जमनीला—६३ ८८

हरिप्रकाश—५०

हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—१४२

१४६ १४९, १५६ १५९

हिन्दी के नवि और काव्य—२४ २६ ३०

५२

हिन्दी नवरत्न—२२ २५ २७ ३१ ४०

५५ ५८ ५९

हिन्दी साहित्य (डा० गगनमुन्दरदास)—

२४ २५

हिन्दी साहित्य (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)

—७ १३ २६ ६६ ६७

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

—२४ २६ १०२

हिन्दी साहित्य का इतिहास—२० २५

६६ २८२ ३३३

हिस्ट्री आफ इण्डिया एंड टोल्ड बाई इट्स

ओन हिस्टोरियन—२३ ६२

## स्थानानुक्रमणिका

अनूपसाहर—६५	दिल्ली—१७ ६३, ६४ २६६
अयोध्या—७१ २८० २८५	नमदा—३३
आगरा—५५ ६० ८४	पचवटी—२८१ २६४
औदछा—८, ११ १४, १५ १७ १८, २४ २५ २६, २८ २९ ३३, ३४, ४१ ४६ ५० ५२ ५६ ६४ ७० ७२ ८० ८२ ८४ ८६ ११० ३०६ ३७५	प्रयाग—१०, ७७
काशी—३५ ६० ८३ १ ७ २६६ ३१४	फतहपुर—६५, ७२
कुम्हेर—३३	फुरेरा पिछौरा—५२ ५४
कृष्णगढ़—७५	बुल्लेसण्ड—२८ ३३ ५० ५२ ७२
गंगा—३४ ३८ ५६ १३६	बेतवा—३३ ८२
गोपाचल—६ १०	मथुरा—६ ३५ ४६, ५०, ५२ ५३, ६८ ७१ ७७ २६६ ३६२
ग्वालियर—१४ ५ ५२ ५४ ५५	मदनसागर—३४
घम्बल—३३ ६३	मारवाड़—७५
चुनार—८८	मेवाड़—६२
छतरपुर—८७	राजस्थान—३३
जहांगीरपुर—३४ ८०	रीवा—१६
जोधपुर—४८ ६२	सन्तितपुर—६८
झासी—३६	षाराणसी—३० 'का'गी
टीकमगढ़—३३	वीरसागर—३३ ८२
टेहरी—२४ २६ ३३	बेतवा—३० बेटवा
डीग—३३	ब्रज—५०
	बुन्दावन—१०२, १०३ १०४
	सीकरी—६३
	सोन—३३

## शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	१२	नकी	नरकी
३७	१३	श्रीहृष पङ्क्तिराज	श्रीहृष एव पङ्क्तिराज
५७	टि. ४	सोम्यत तपोपण्ये मुञ्ज	सम्मित तपोपण्ये मुञ्जे
१५६	७	जानता	जनता
१८२	११	भावभूतिया	भावभूमिया
१८४	टि. ४	बामन भातकीकर	बामन भूतकीकर
२७७	५	विरोधास	विराधासास
२७६	१	रसिकप्रिया	रसिकप्रिया
०६	१०	सिया	छडीदार
३०८	टि. २	रामचन्द्रिका	रामचन्द्रिका १२।१६
३६	२	वीरसिंहवधरित	वीरसिंहवध
३२३	२५	मापस्य मय	मापस्य मय
७१	१२	भ्युत्पत्ति	भ्युत्पत्ति
३७४	२८ २६	रामचन्द्रिका के मुक्तक कवि	रामचन्द्रिका के प्रबंध कवि, रसिक प्रिया-रसिकप्रिया के मुक्तक कवि



## शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७	१२	नरकौ	नरको
३७	१३	श्रीहर्ष पंडितराज	श्रीहर्ष एव पंडितराज
५७	टि. ४	सौम्यत उपोपदेश भुजे	सम्मित तथोपदेश भुजे
१५६	७	जानता	जतता
१८२	११	भावभूतिया	भावभूमियां
१८४	टि. ४	वामन भातकीकर	वामन भक्तकीकर
२७७	५	विरोधास	विरोधाभास
२७६	१	कविप्रिया	रसिकप्रिया
५६	१	सिया	छडीदार
३०८	टि. २	रामचन्द्रिका	रामचन्द्रिका १।५६
३०६	२	वीरसिंहदेववरित	वीरसिंहदेव
३२३	२५	भापस्य भप	मापस्य मप
३७१	१२	भ्युपति	भ्युत्पति
३७४	२८ २६	रामचन्द्रिका के मुक्कन कवि	रामचन्द्रिका के प्रबन्ध कवि, रसिक प्रिया-कविप्रिया के मुक्कन कवि